

बालगोठ कोटोरय इत्यमाणा प्रस्ताव - १४९

बालगोठ एवं विद्यालय ।

बालगोठ ईश

Lakodaya Series. Title No 145

BHARATIYA ITIHAS

KK DRISHTI

(History)

Dr Jyoti Prasad Jann

Shreeganga Jann

Publisher

Second Edition 1998

Price Rs. 10 00



भारतीय इतिहास

इतिहास

इतिहास इतिहास

१. भारतीय इतिहास, भाग-१

भारतीय इतिहास

भारतीय इतिहास भाग-२

भारतीय इतिहास

१९९८, भारतीय इतिहास भाग-२, भाग-२

भारतीय इतिहास १९९९

भारतीय इतिहास

भारतीय इतिहास, भाग-२

आमुख



इस पुस्तकमें प्राचीनतम कालसे लेकर स्वतन्त्रता-प्राप्ति पर्यन्त सम्पूर्ण भारतीय इतिहासका क्रमबद्ध विहंगावलोकन प्रस्तुत किया गया है। भारतवर्षकी सनातन भौगोलिक सीमाओंको दृष्टिमें रखकर अल्पवृद्ध भारत-के, जिसमें भारतीय सघके साथ ही पाकिस्तान और नेपाल भी सम्मिलित हैं, इतिहासका विवेचन अभिप्रेत रहा है। खण्डों और अध्यायोंके द्वारा जो विषय-विभाजन किया गया है उसकी योजना मेरी अपनी है। विषय-निष्पणमें यथासम्भव सर्वमाय अथवा बहुमान्य तथ्यों, घटनाओं एवं तिथियोंको ही अपनाया गया है, जहाँ कहीं ऐसा नहीं हुआ उसका कारण निजी शोध-खोजके निष्कर्ष हैं। जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़े १९६१ की जनगणनाके आधारपर दिये गये हैं। जहाँ सम्पूर्ण भारतकी भौगोलिक इकाईका प्रदन है वहाँ भारत और पाकिस्तानके जनसंख्या और क्षेत्रफल-सम्बन्धी आँकड़े सम्मिलित हैं। कुछ भौगोलिक नामोंको हाल ही में परिवर्तित किया गया है। यथासम्भव नये स्वीकृत भौगोलिक नाम पुस्तकमें प्रयुक्त किये गये हैं।

सामान्य इतिहास-पुस्तकोंसे दो-एक अन्तर भी इस पुस्तकमें दृष्टिगोचर होंगे। अथ सामान्य ऐतिहासिक आधारोंके साथ-साथ जैन ऐतिहासिक आधारोंका भी इस पुस्तकमें पर्याप्त उपयोग किया गया है, किन्तु उसी सीमा तक जहाँतक वे अथ प्रामाणिक आधारोंसे समर्थित होते हैं अथवा इतने सबल और विश्वसनीय प्रतीत हुए कि उन्हें मान्यता देना उचित

यह द्वितीय संस्करण

‘भारतीय इतिहास . एक दृष्टि’ व द्वितीय संस्करणके इतना जोर प्रकाशमें खानका श्रेय यदि एक ओर उभरी वृद्धिगत लोकप्रियता एक उपादेयताकी है तो, दूसरी ओर भारतीय ज्ञानपीठक मन्त्री एवं लोकोत्तम सम्मेलनके नियामक भार्ति लक्ष्मीनारायणी तत्परता एवं सुगमव्यवस्था ।

प्रथम संस्करणमें मुद्रणकी जो अशुद्धियाँ रह गयी थी वे इस संस्करणमें ठीक कर दी गयी हैं । मायाका भी यत्र-तत्र समातन्त्रक परिवर्तन किया गया है । पुस्तकपर प्राप्त समीक्षाओं आशिया नाम उठाकर कतिपय प्रसंगोंमें आवश्यक संशोधन कर दिये गये हैं । वहाँ-वहाँ कुछ परिशुद्धन भी किये गये हैं । भारतवर्षके दो मानचित्र तथा अन्तर्में सामान्यक्रमणिका दे दी गयी है, जो प्रथम संस्करणमें नहीं थीं । इन संशोधनों एवं परिवर्द्धनोंसे पुस्तकको उपयोगितामें समृद्धित वृद्धि होगी ऐसा विश्वास है ।

इस संस्करणमें गारणभूषण पाठक, समीक्षक, मुद्रक, प्रकाशक आदि सभी मजदूरोंका मैं हृदयसे आभारी हूँ ।

हालन्तक

—उद्योतिषाद जैन

२७ नवम्बर १९६४

संग्रह १ प्राचीन भारत

१ प्रागु ऐतिहासिक काल

प्रागुाविक - ९, पुरावाा प्रारम्भिक इतिहास - ११, भारत माात
- १४, पूर्वे पाषाण युग - १४, पुरातन पाषाण युग - १४, नम्य
पाषाण युग - १५, पानु पाषाण युग - १९, निम्न पाटो सम्मता
- २५, ऐदिक सम्मता - २९, उरुग काल - रामायणसे
महाभारत पर्यन्त ३१ ।

२ प्राचीन युग - प्रथम पाद

महाभारतस मफापोर पर्यन्त - ३५ - ६१

३. प्राचीन युग - द्वितीय पाद

मगध साम्राज्य - ६२ - १०५ ।

४ प्राचीन युग - तृतीय पाद

उत्तर भारत (ई० पू० २०० स ई० सन् ३०० तक)

आघ्न सातवाहन - १०७, पदिपमात्तर प्रदक्षिणे विदेगी शासक
- ११०, युनानी या यवन - ११०, इण्डीयापियन या पल्लव -
११२, इण्डीयापियन या शक - ११२, मद्र चष्टा वंश - ११८,
कुषाण वंश, मालवा - १२२, मयुरा - १२५, नाग वंश - १३३
वकाटक वंश १३७ ।

५. मार्चाम युग - चतुर्थ पाद

अथ मारुत (अ० १ के १२ ई एक)

कुल वंश - ११९, अमृतपुत्र - १४ अमृतपुत्र द्वितीय विजय-
रत्न - १४२ कुमारपुत्र अथ महेन्द्राश्रित - १४३ लक्ष्मपुत्र
विजयशिर - १४३ पुत्रपुत्र - १४४ बालिक पुत्र - १४४
कुमारपुत्र द्वितीय - १४४ पुत्रपुत्र - १४४ वैष्णवपुत्र - १४४
पुत्र - १४६, माधव वंश अयोध्या - १५२, कर्णवध मीनारि
वंश - १५३ लक्ष्मणवध वंश - १५४ हर्ष-वंश -
१५४ अरावत वंश और अयोध्या - १५६, अमृत वंश - १५७
दुर्जर द्वितीय - १५७ १ वी - १५७ अयोध्या के राजपुत्र राज-
- १५२, अयोध्या के महेन्द्राश्रित - १५३ अयोध्या के अयोध्या - १५४
रत्न के वंश - १५५, अयोध्या (वंश) का राजा वंश -
वाप के वंश - १५६ अयोध्या के अयोध्या - १५६ अयोध्या
का अयोध्या के राजा - १५७ अयोध्या के अयोध्या वंश
- १५८ अयोध्या वंश - १५९, अयोध्या के अयोध्या वंश
- १५९ ।

६. कर्णिका अथि राज्य और अयोध्या मारुत

अथि - १८ अयोध्या के अयोध्या - १९५, अयोध्या -
१९६, अयोध्या वंश - २११ अयोध्या - २११ अयोध्या - २१५,
अयोध्या वंश - २१५, अयोध्या - २१५ अयोध्या - २१५, अयोध्या
- २१५ अयोध्या वंश और अयोध्या - २२७ अयोध्या - २२८, अयोध्या
वंश वंश २२८ ।

७. अथि मारुत [१] २३१

अथि वंश - २४२, अथि राज्य २४२, अथि राज्य - २४८,
अथि राज्य - २५ अथि वंश - २५१ अथि वंश - २५२,

८. दक्षिण भारत [२]

वातापीके पदिचमी चालुक्य - २७८, वेंगिके पूर्वी चालुक्य - २८९, राष्ट्रकूट वंश - २९२, कल्याणीके उत्तरवर्ती चालुक्य - ३१०, कल्याणीके कलचुरि - ३१९ ।

९ दक्षिण भारत [३]

पूर्वमध्यकालक प्रमुख उपराज्यवंश - ३२३, सोदतिके रट्ट - ३२५, कोंकणक शिलाहार - ३२६, कोगाव वंश - ३३०, चगान्व वंश - ३३१, अलुप या अलुव वंश - ३३१, गंगधाराका चालुक्य वंश - ३३३, तुलुव देशमे वगवाडिका वग वंश - ३३४, वारंगलके फकातीय - ३३५, देवगिरिके मादव - ३३६, द्वार-समुद्रका होयसल वंश - ३३९ ।

१० विजयनगर साम्राज्य ३६२-३६०

खण्ड : २ • विदेशी शासनमे भारत

(मुसलमान और अँगरेजी शासन)

१ इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुल्तान

गुलामवंश - ४०४, खिलजीवंश - ४०९, सैयदवंश - ४१९, लोदीवंश - ४१९, सूरिवंश - ४२१ ।

२ पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

वगाल - ४२५, जोनपुर - ४२७, मालवा ४२७ गुजरात - ४३०, कश्मीर - ४३३, बहमनीराज्य - ४३४, धरारकी इमादशाही - ४३९, बीदरकी बरीदशाही - ४३९, गोलकुण्डाकी कुतुबशाही - ४३९, अहमदनगरकी निजामशाही ४४०, बीजापुरकी आदिलशाही - ४४१, खानदेशका फारुकीवंश - ४४४, राजपूत राज्य - ४४५ ।

३ मुण्डक-भाष्य - छान्दोग्य

बारा - ४१८ इन्द्र-४३१ अथवा ४३४ भार्गवीर - ४१११

४ मुण्डक-भाष्य - अथर्वसिद्धि

बारा - अथर्वसिद्धि - ५१९ भार्गवीर बारा ५१९१

५ अथर्वसिद्धि [१७७७-१८८७ ई]

बारा - अथर्वसिद्धि - ५४१ अथर्वसिद्धि बारा - अथर्वसिद्धि
बारा - ४८ अथर्वसिद्धि बारा - ५११ अथर्वसिद्धि बारा -
५१ अथर्वसिद्धि बारा - ५११ अथर्वसिद्धि बारा - ५१७
अथर्वसिद्धि ५११ अथर्वसिद्धि - ५१४ अथर्वसिद्धि - ५१९ अथर्वसिद्धि -
५४२ अथर्वसिद्धि - ५८४ अथर्वसिद्धि - ५८९

६ अथर्वसिद्धि-द्वारा अथर्वसिद्धि

अथर्वसिद्धि - ११ अथर्वसिद्धि - १११ अथर्वसिद्धि - १११
अथर्वसिद्धि - १११ अथर्वसिद्धि - ११४ अथर्वसिद्धि - ११९ अथर्वसिद्धि
अथर्वसिद्धि - ११७ अथर्वसिद्धि - ११७, अथर्वसिद्धि - ११७
अथर्वसिद्धि - ११८ अथर्वसिद्धि - ११९ अथर्वसिद्धि - ११९ अथर्वसिद्धि
अथर्वसिद्धि - १४१ अथर्वसिद्धि - १४१ अथर्वसिद्धि - १४१ अथर्वसिद्धि
अथर्वसिद्धि - १४१ अथर्वसिद्धि - १४२ अथर्वसिद्धि - १४२ अथर्वसिद्धि - १४२
अथर्वसिद्धि - १४४

७ अथर्वसिद्धि पुनः [१८७८ १८८७ ई]

अथर्वसिद्धि - ११९, अथर्वसिद्धि बारा अथर्वसिद्धि बारा
- ११८, अथर्वसिद्धि बारा अथर्वसिद्धि - १११ अथर्वसिद्धि बारा
अथर्वसिद्धि - १४२, अथर्वसिद्धि - ५८ अथर्वसिद्धि -
१ अथर्वसिद्धि - ७०९ अथर्वसिद्धि बारा - ७१४

खण्ड १
प्राचीन भारत

अध्याय १

प्रागैतिहासिक काल

प्रास्ताविक—उत्तरमें सुविस्तृत उत्तुंग हिमवान् पर्वतमालामें सुरक्षित तथा दक्षिणमें तीन ओर महासागरसे घेरे हुए और मध्यमें विन्ध्यमेखला-द्वारा उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ नामक दो विशाल भागोंमें विभाजित हमारे इस त्रिकोणाकार महादेशका सर्वप्राचीन उपलब्ध नाम अजनाम था। तदनन्तर यह भागत्वर्ष नामसे विख्यात हुआ। यह नाम भी सहस्रो वर्ष पुराना है। इस देशका मुख्य भाग आर्यखण्ड कहलाता था, विशेषकर उत्तरापथ ही सजा आर्यावर्त थी। उसके भी मध्य भागका नाम मध्यदेश था। गंगा, यमुनासे युक्त यह मध्यदेश ही प्राचीन भारतीय मस्कृतिका उद्गम स्थान रहा है। इसी प्रदेशमें भारतीय धर्म, दर्शन, ज्ञान और विज्ञान आविष्कृत एवं विकसित हुए, यहींमें देश देशान्तरोमें उनका प्रकाश फैला, इसी प्रदेशका आध्यात्मिक एवं बौद्धिक ही नहीं, राजनैतिक नेतृत्व भी चिरकाल तक न केवल सम्पूर्ण भारत देशपर ही बरन् उसके बाहर भी दूर दूर तक व्याप्त रहा।

अठारह लाख वर्गमील क्षेत्रफल तथा लगभग चौवन करोड़ जनसंख्याका यह विशाल भारतवर्ष एक पूरा महाद्वीप-सरीखा ही है। जल, धूल, भूमिधिति और जलवायु, जीव जन्तु और वनस्पतियों, खनिज और कृषि-उत्पादनोकी जितनी और जैसी विविधता इस देशमें है अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता। जातिभेद, भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियोंका भी यह एक अद्भुतालय ही कहा जाता है। किन्तु इतनी विषमताओं और विविध-

[illegible][illegible]

मानव भेदोंको जितनी विविधता और विभिन्न मानव जातिपौरा मिश्रण सो जैसा भातरयपमें रहा है ऐसा अन्यत्र कहीं नहीं रहा । स्मृत स्वसे दो प्रपात माथो धाराएँ यहाँ उरल्लव्य हाती हैं, एक ऋग, यज्ञ, नाग आदिके यज्ञजोषी यज्ञ धारा जिसे वर्तमानमें प्राय द्राविड नामसे सूचित किया जाना है और दूसरी उत्तर पश्चिमकी ओर उदयमें आनेवाली आर्य जातिके यज्ञजोषी यह धारा जो इण्डोआर्य कहलाती है । इनके अतिरिक्त प्राचीन बालोन आस्ट्रेलायड, मंगोलायड, मानरुमेर आदि और बाला-तरमें ईरानी, यूनानी, शन, पहाड़, कृपाण, इण, वरध, तुर्क आदि जातीय तत्त्व भी समय समयपर भारतीय जनतामें मिश्रित होते रहे हैं । भाषाकी दृष्टिमें भारतीय-आर्य, द्राविड, और मारमेर—ये तीन सत्य भारतीय भाषाभाषी मूलधारा हैं ।

पृथ्वीका प्रारम्भिक इतिहास—पृथ्वीके इतिहासके विषयमें दो विचारधाराएँ हैं । इनमें-से एक शास्त्रतयादी है जिसका विश्वास है कि सत्का कभी नाश नहीं होता और असत्का कभी उत्पन्न नहीं होता । इसके अनु-सार विश्व व्यवस्था और उसके अन्तर्गत हमारे पृथ्वीमण्डल तथा उसपर निवास करनेवाले मनुष्य आदि प्राणियोंकी परम्परा अनादि और अनन्त है । शून्यमे-से यभी किसी प्रकार उनका अकस्मात् उदय हो गया या कभी भी उनका सूर्यया दय या अभाव हो जायेगा, यह बात असम्भव है । पदार्थोंमें अपने-अपने द्रव्य क्षेत्र काल-भावके अनुसार निरन्तर परिवर्तन परिणमन होते रहते हैं । इन परिवर्तनोकी ही कोई-कोई सामूहिक अवस्थाविशेष ऐसी प्रत्यक्ष एव आत्यंतिक होती है कि उन्हें सृष्टि और प्रलय आदि नाम दे दिये जाते हैं ।

दूसरी विचारधारा सृष्टिवादी सत्कारोंसे उद्भूत है । इसके अनुसार ईश्वर आदि नामोंसे अभिहित शक्ति विशेषतः किसी समय अपनी इच्छासे सर्वथा शून्यमे-से हमारे विश्व, पृथ्वीमण्डल और मानवका एकाएक निर्माण कर दिया और एक समय ऐसा भी आयेगा जब वही शक्ति इनका सर्वथा

एच० जो० बेलगोरे अनुसार यह काल ८० करोड़मे ८० करोड़ वर्ष पूर्व तक रहा प्रतीत होता है । इन कालके प्रारम्भमें सम्पूर्ण पृथ्वी प्रायः एक रूप थी, उसमें भारत युरोप, अफ्रीका, अमेरिका आदि जंगो भौगोलिक दृष्टियों न बन पाये थीं । किन्तु यह अनुमान दिया जाता है कि भारतके हिमवान् प्रदेश तथा दक्षिणी पठारकी रूपरेखा भूनाटिक्य इतिहासके प्रारम्भम ही बन गयी थी । यन्तुत हिमालयसे कन्याकुमारी पर्यन्त सम्पूर्ण वर्तमान भारतके सीमा मूलाधार भी बन गया था । इस प्रकार भारतवर्षका मूल चट्टानी आधार समुद्रमार्गके शांत जीवनमें प्रारम्भसे ही अवस्थित था ।

निर्जीव युगके उपरान्त जीव युगका प्रारम्भ होता है । इसके तीन खण्ड हैं—पहला काल—पुरातन जीवयुग (पेलिजोइक), दूसरा काल—मध्यजीव युग (मेसोजोइक) और तीसरा काल—नव्यजीव युग (केनेजोइक) । यह पहला काल ८०० करोड़के अनुसार ४० से ३० करोड़ और चैल्सके अनुसार ३० से १५ करोड़ वर्ष पर्यन्त चला । इसी कालमें सर्व प्रथम घातल-पर वनस्पतिया और जीव जन्तुओंके अपने सरलतम प्रारम्भिक रूपोंमें उदय होनेका अनुमान किया जाता है, जिनमें ही शनै-शनै जलचर, नमचर एवं थलचर प्राणियोंका तथा जलाय एवं स्थलाय वनस्पतियोंका विकास हुआ । इस कालमें भूतलकी रूपरेखा भी वर्तमानसे भिन्न थी । दूसरे कालमें पृथ्वी बड़ी छोट मराह दिखायी, भूतलमें बड़े बड़े परिवर्तन हुए, जल-थल विभाजनमें अंतर पड़े । इस युगमें पृथ्वीकी भौगोलिक स्थिति बहुत करके जैन शास्त्रोंमें वर्णित 'अट्ठाई द्वीप-मनुष्य लोक'के सदृश थी, अर्थात् उत्तरीय ध्रुवकी पेट्र लेकर छलटे पटोरे-जैसा एक अविच्छिन्न भूखण्ड था जिस चारों ओरसे मेखलाकी नाई एक वृत्ताकार महासागर घेरे हुए था । तत्पश्चात् फिर एक मेखलाकार अविच्छिन्न भूखण्ड था—दक्षिणी भारतके कुछ भाग, अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदिको समुक्त करता हुआ । उसके नाचे फिर एक वृत्ताकार महासागर और अन्तमें दक्षिणी ध्रुव पर्यन्त ऊपर जैसा एक अय भूखण्ड था । यह काल १५

हे ४ करोड़ वर्ष पूर्व एक सभ्य : हीनराज नाम को ४ करोड़ ६ लाख वर्ष
पूर्व एक सभ्य अधिकाग्रहणकर्ता है । इस युगमें अधिकाग्रहणकर्ता समुद्र, हीन
मही-पद समस्त आदि अपने वर्तमान स्थितिमें आया है । इस युगमें
अन्धधर्म यही मान्यता थी-अन्ध, अन्धकारादि पूर्व युग-समस्त आदि यन्त्रादि
न-ले आ-वर्तमान अवस्था में आया है । और इसी युगमें अन्धधर्म वर्तमान
हीनराज की-लेवे अवस्था में आया नामक अन्धधर्म के विषय में आया है ।

[illegible]

४०००० से १५००० वर्ष पूर्वके मध्य ही लखित हुआ। इस युगके अम्य-
 शस्त्र, राछ रछोडे, ओडार आदि भी पापाण व अस्थियोंमे ही बने हैं
 बिन्दु आदिम ढगवे होते हुए भी वे पृथ पापाण युगयालोंकी अपेक्षा
 श्रेष्ठतर हैं। इसी कालमें सर्वप्रथम मनुष्यके धर्मभावकी किमी न किमी
 रूपमें अभिव्यक्त दृष्टिगाचर होती है। भित्तियोंपर अद्भुत रेखाचित्रोंसे
 युक्त कुछ आदिमकालीन पर्वतीय गुफाओंमें इसके चिह्न मिले हैं। अन्त्येष्टि
 सस्कार आदिके भी कुछ अवशेष मिले हैं। मृत अवधितयोंकी बँडी मुद्रामें
 भूमिम्य कर दिया जाता था, साथमें आगामी जीवनमें उपयोग करनेके
 लिए भोजनादि सामग्री भी रख दी जाती थी। ये लोग फल, कन्दमूल
 तथा शिकारमें प्राप्त मांस आदिवा भक्षण करते थे। उनमें रेखाशास्त्रका
 भी ज्ञान विद्यमान हो रहा था। दक्षिण भारतमें कर्नूलकी गुफाओंके परो-
 धणसे पता चलता है कि उनका सम्बन्ध जादू टाने-जैसे कितो-न-किसी
 प्रकारके धार्मिक कृत्योंसे रहा होगा। ये लोग मृत अवधितयोंकी देह गुफामें
 ही छोड़कर अथवा जाकर रहने लगते थे। रेखा एवं भित्तिचित्रोंसे अनुमान
 होता है कि इस युगके मानव समस्त धराचर पदार्थोंमें जीवकी सत्ता मानते
 थे, कितने ही सरलतम अपरिष्कृत एवं आदिमरूपमें सही, जीव या जीवनी
 अवधितकी सर्वव्यापकतामें उनका विश्वास था। ये पितृपूजक भी थे। मध्य
 प्रदेशके रायगढ़ जिलेमें स्थित भिंगनपुरके निषट भित्ति एवं रेखाचित्रोंमें
 युवन उस कालकी ऐसी गुफाएँ मिली हैं जो सम्भवतया उनके देवस्थान या
 मन्दिर थे। मनुष्यो, पशुओं एवं आव्ष्ट आदिके चित्रोंके अतिरिक्त जो
 कई रेखानिर्मित रहस्यपूर्ण सांकेतिक चित्र मिले हैं उनका कितने ही
 आध्यात्मिक साकतिक चिह्नोंसे अद्भुत सादृश्य है, वे चित्र कई मौलिक
 जैन मायताओंकी सांकेतिक अभिव्यक्ति जैसे लगते हैं।

(३) नव्यपापाण युग—ईसवीपूर्व लगभग १५०००-८००० वर्ष पर्यन्त
 नव्यपापाण युग चला। इस कालमें मानवकी आदिम सम्भ्यता और सस्कृतिने
 बड़े द्रुतवेगसे प्रगति की। विविध पापाण, हाथोदाँत, सींग, लकड़ी आदिके

किसी-न-किसी प्रकार अनुष्ठान करनेकी प्रयाएँ प्रचलित हुई। किन्तु
 ही वर्तमान अन्धविश्वासों, व्यक्तियों अथवा पदार्थोंको निषिद्धमान उनके
 समगनिषेध, परम्परागत आस्थाविकाओं, दैवी उपासकानों, लाककयाओं,
 यहाँतक कि सगोत और नृत्यके भी बीज नव्यपापाणयुगीन आत्मवादमें
 निहित थे। उस युगके जोववादकी अभिव्यक्तिका एक महत्त्वपूर्ण द्वार
 पापाण-पूजा थी। विभिन्न आकृतियोंके पापाणमण्ड विशेष विशेष दैवी
 शक्तियों अथवा देवी-देवताओंके प्रतीक या प्रतिनिधि समझे जाते थे।
 लिंग-पूजाका भी प्रचलन था। कालान्तरमें वैदिक आर्योंने पहले तो उसका
 विरोध किया किन्तु बादमें समझौतेकी भावनासे प्रेरित हो उसे अपना
 लिया। अस्तु जो लिंगेश्वर ऋग्वेदमें इन्द्रका शत्रु कहा जाकर निन्दित हुआ
 वही अथर्ववेदमें अनेक मन्त्रोंद्वारा पूजित-वर्द्धित हुआ।

जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है, देवमूर्तियोंका सर्वप्रथम उसी
 युगमें निर्माण होना प्रारम्भ हुआ। ये मूर्तियाँ पापाण अथवा काष्ठकी होती
 थीं। आज भी शायद इसीलिए काष्ठ और पापाणको धातुओंको अपेक्षा
 अधिक पवित्र और शुद्ध माना जाता है। साधु-सन्यासियोंके लिए भी काष्ठ,
 पापाण या मिट्टीके ही पात्र विहित हैं। देवपूजामें भाजन-पानकी विविध
 सामग्रियाँ समर्पित की जाती थीं, कहीं-कहीं हिंसक वलि भी होती थी।
 कृषि आरम्भ, चरागाह परिवर्तन, युद्ध यात्रा, आखेट आदिके अवसरोपर
 आनन्दोत्सव मनाये जाते थे जो भिन्न-भिन्न समूहोंको प्रकृति तथा परम्प-
 राओंके अनुसार हिंसक-अहिंसक दोनों ही प्रकारके होते थे। व्यक्ति, कुटुम्ब,
 वस्ती अथवा समूहको मंगल कामनाके लिए भी धार्मिक अनुष्ठान किये
 जाते थे। स्वप्नों और उनके फलमें विश्वास था। इसमें सन्देह नहीं कि
 शकुनापशकुनों एवं स्वप्नोंका मानव सत्कृतिके प्रारम्भिक विकासपर अत्यधिक
 प्रभाव पड़ा है। ज्योतिष सम्बन्धी प्राथमिक ज्ञान भी उन्हें था। व्योमचारी,
 ग्रह, नक्षत्र, तारिका आदिका वास्तविक रहस्य वे भले ही न जानत हों
 किन्तु चिरकाल तक प्रकृतिकी ही निरावरण गोदमें खेलते रहनेके कारण

वृक्ष, पशु-पक्षी आदि योनियोमें जन्म लेना, देवी-देवताओंको गदा, शङ्ख, चक्र, त्रिशूल आदि आयुधोंसे युक्त करना, दैत्य, दानव, प्रेत आदि दुष्ट आत्माओंका पूजन सत्कार करना, सामुद्रिक शास्त्र, ज्योतिष आदि अनेक ऐसी मान्यताएँ हैं जो उत्तरकालीन सुसम्स्कृत जीवनमें उन्नत आदिम विचाराका प्रभाव स्पष्ट प्रदर्शित करती हैं। जैन, वैदिक, शैव, वैष्णव, शाक्त, स्मार्त, बौद्ध, यहूदी, पारसी, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मोंमें अनेक रीति रिवाज, धार्मिक क्रियाएँ, मान्यताएँ एवं विश्वास उस आदिम युगकी वपौतीके रूपमें ग्रहण किये गये। वस्तुतः आजका सुसम्भ मानव उन तथ्यांकित नितान्त असम्भ आदिमकालीन मानवोंका कितना ऋणी है यह ठोक-ठोक अनुमान करना और उनको महत्त्वपूर्ण देनोंका उचित मूल्यांकन करना सहज सम्भव नहीं है।

धातुपाषाण युग—इस नव्यपाषाण युगके अन्तिम पादमें अर्थात् ईसासे लगभग आठ-दस हजार वर्ष पूर्व एक नवीन युग प्रारम्भ हो रहा था जिसे धातुपाषाण युग कहते हैं। इसीमें शनै-शनै धातु युगका प्रवेश हुआ जो प्रारम्भमें कहीं कहीं सा युग और कहीं ताम्र युगके रूपमें आया और अतत लोह युगमें आकर स्थिर हुआ। नव्यपाषाण युगके अन्तमें ग्रामीण सभ्यता स्थायी हो चुकी थी जिसमें पशुपालन और कृषिप्रधान उद्योग थे। किन्तु धातु युगके उदयके साथ-साथ नागरिक सभ्यताका उदय होने लगा जो प्रारम्भमें बड़ी-बड़ी नदियोंकी उपजाऊ घाटियोंमें फली फूली। उसके साथ-ही साथ नानाविध शिल्प उद्योगों, राज्यव्यस्था एवं राजनीति, जलीय एवं यलीय देशों विदेशी व्यापार आदिका भी उदय हुआ और वर्तमान मानवकी वास्तविक सभ्यता एवं संस्कृतिका व्यवस्थित विकास प्रारम्भ हुआ।

मनुष्यकी आदिमकालीन सभ्यता और उसके इतिहासका जो ऊपर सक्षिप्त विवेचन किया गया है, उसमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उन्नत सुदीर्घ पाषाण कालकी जो विभिन्न युगोंमें विभाजित किया गया है और उन युगोंकी वपोंमें जो अवधियाँ दी गयी हैं वे सर्वथा निराधार न होते हुए भी अनुमान मात्र ही हैं। अनेक विद्वान् उन्नत अवधियोंमें घटो

[illegible]

वनस्पतियोंके आकार, बल और सुख शान्तिमें ह्रास होता गया किन्तु कृत्रिमता, प्रयत्न और उद्योगमें विकास होता गया। प्रारम्भिक मानव विशालकाय, अतुल्य बलशाली, निष्शक, निर्द्वन्द्व, निरोह और सुखी था, उसकी जीवन सम्बन्धी आवश्यकताएँ अत्यन्त परिमित थीं और इच्छा करते ही वह उन्हें उसी स्थानके प्राकृतिक वातावरणमें प्राप्त कर लेता था और सन्तुष्ट रहता था। किन्तु धीरे-धीरे उसकी शक्तियाँ क्षीण होने लगीं, प्रकृतिमें स्वतः ही उसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति न होने लगी, उसे प्रवास और उद्यमकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी, संग्रह और सामाजिकता उसमें आने लगी, और जिसे हम सभ्यता कहते हैं उसका उसमें विकास होने लगा। हिमप्रन्धोंके उपरान्तका अर्थात् लगभग ५०००० वर्ष पूर्वके बादका जो पुरातन एवं नव्यपाषाण युग है वह यह सक्रांतिकाल था। जैन परम्पराके अनुसार जो तीसरे मुख्यमा-दुःखमा कालके अन्तिम भागमें चौदह कुत्कर या मनुआका एकके बाद एक पर्याप्त अन्तरस होनेका उल्लेख पाया जाता है वे इसी कालमें हुए प्रतीत होते हैं। उन्होंने देश-कालके अनुसार अपने समकालीन मनुष्योंका नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन किया बताया जाता है। इनमें अन्तिम कुत्कर नामराय थे जो मध्यदेशमें जहाँ अयोध्या स्थित है उस स्थानमें उत्पन्न हुए थे। उन्हींके पुत्र प्रथम तार्थकर ऋषभदेव थे।

नृत्तत्त्वविज्ञान (एथ्नोपोलॉजी) सम्बन्धी एवं पुगतास्त्रिक अन्वेषणोंसे प्राप्त निष्कर्षोंकी प्राचीन अनुश्रुतियों एवं मान्यनाओंके साथ संगति बैठानसे यह स्पष्ट है कि इस प्राचीनतम कालमें जब मनुष्यकी सभ्यताका सर्वप्रथम उदय हो रहा था, कमसे कम भारतवर्षस सम्बन्धित मनुष्य जाति तीन प्रधान समुदायोंमें विभक्त थी जिनके आचार-विचार और संस्कृति एक दूसरेसे भिन्न थीं। प्रथम समुदाय उत्तरी भारतके पूर्वी मैदानी भागमें गंगा यमुनाके दोआबोंसे लेकर अंग मगध पर्यन्त निवास करता था। ये लोग शान्तिप्रिय और शाकाहारी थे, लोक-परलोक, आत्माके अस्तित्व,

किया तो इन विद्याधरोंने विज्ञानका विकास किया। नाग, कृत्त, यक्ष, वानर आदि अनेक कुलोंमें विभाजित यह भारतीय विद्याधर जाति भारतीय महासागरमें फैले हुए विभिन्न द्वीपों एवं प्रदेशोंमें भी शन-शन फैल गयो। कालांतरमें इस विद्याधर जातिके वंशजोंको ही द्रविड सजा दी गयी। मानवों और विद्याधरोंके बीच प्रारम्भमें ही घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध रहे। परस्पर विवाह आदि भी होते थे जिससे रक्तमिश्रण बढ़ा। विद्याधरोंने मानवोंके ज्ञानसे लाभ उठाया तो मानवोंने विद्याधरोंके विज्ञानसे।

तीसरा समुदाय मानव वंशकी ही एक शाखा थी जो किसी बहुत पूर्व समयमें मध्यदेशीय मूल मानवजातिसे पुनर् होकर उत्तर-पश्चिमके पर्वतीय प्रदेशोंकी ओर चली गयी थी। यह समुदाय ज्ञान-विज्ञान दोनोंमें ही बहुत पीछे तक पिछड़ा रहा। पशुपालन इसका प्रधान काम रहा। यह समुदाय घुमकूट था और उत्तर-पश्चिम भारतवर्ती अपने मूलस्थानसे चलकर इसके अनेक दल हिन्दूकुशके दर्रोंसे पार होकर मध्यएशिया तक फैल गये। वहाँसे एक शाखा कुछ उत्तरकी ओर जा बसी, दूसरी पश्चिमकी ओर यूरॉपके यूनान आदिमें और तीसरी ईरानमें बस गयी। किन्तु इन सभी शाखाओंका परस्पर यातायात एवं सम्पर्क चिरकाल तक बना रहा, जबतक कि वे विभिन्न भूभागोंमें स्थायी रूपसे बसकर अपनी-अपनी स्वतन्त्र सभ्यताके विकासमें लग्न न हुईं। अपने देश-काल, रहन-सहन, जीवन-व्यापार आदि परिस्थितियोंके कारण ये लोग सामान्यतया भौतिकवादी, प्रकृति या प्राकृतिक शक्तियोंके उपासक, मांसाहारी, हिंसक एवं प्रवृत्तिप्रधान रहे। ये ही लोग कालान्तरमें आय अथवा 'इण्डोआर्य' नामसे प्रसिद्ध हुए। ये न तो मध्यदेशीय मानव आर्योंकी भाँति आत्मज्ञानरत थे और न विद्याधरोंकी भाँति विज्ञान एवं कला-कुशल। अतएव इनकी सभ्यताके विकासका आरम्भ उन दोनोंसे पीछे हुआ।

अस्तु, अयोध्या प्रदेशके नाभिसुत ऋषभदेवने पाषाणकालीन प्रकृत्याश्रित असभ्य युगका अन्त करके ज्ञान विज्ञान समुक्त कर्मप्रधान मानवी

सामान्यतया युक्तकाल सर्वप्रथम ४० वर्ष किया। अगोप्यारो हृत्पित्तान्तर
पर्यन्त प्रोद्यद् इस महीन कालवृत्तव्य प्रथम केन्द्र था। उन्होंने यहि विधि
कृति किया। चार्मिकर और विद्यालय कोटिक बदलकोरा तथा ऐतनुय,
बुधमणि प्रमाप्याय, अंशम उप और अन्य रूप चार्मिक बदलकोर्य मन्त्री
को कालरेष किया। राज्यमन्त्रस्था की कालम संकलन किया और चार्मिक
सम्कलने विकासके शोच-अपन विधे। नवीनयने कालिय और पुनरे
काले चामविषाकनका भी निर्भेय किया। वे स्वयं रक्तानु नइकाये एतौ
कालीके प्रागटीय कालिकोके शायीनतन रक्तानुर्धनका प्रारम्भ हुआ। कोन
की लौकिक एवं नागलौकिक उपदेश देकर उन्होंने पितृनु विरौह कोन
मार्ग अथवात्मा और वैशाख पर्यन्तके विधीय काल किया।

हमने पुनः समस्त भारत पर्यटन विभाग के सम्पूर्ण कार्यालयों पर
वैदिक एवं दार्शनिकों की सेवाएँ प्रदान की हैं। हमारे नामों पर ही
आपके सभी कार्यों में और आजीवन आपकी सेवाएँ प्रदान की हैं।
हम अपने पुनर्जात नामों के लिए या किसी भी प्रकार के दार्शनिक-आजीवन
सेवा हैं। हमारे ही किसी विचारों के नामों के लिए या किसी भी
ही या बड़े ही और उनके नामों के ही किसी भी नामों के लिए
हैं। हमारे पुनर्जात नामों के लिए हमारे नामों के नामों के लिए
हमारे एक नामों के लिए हमारे नामों के लिए हमारे नामों के लिए

अनुपमप्रेम-द्वारा आगे-बिठे यह अद्वितीय-कारण आत्मबोध को बाधों से सम्पन्न अनुभवार्थ अर्जुनार्थ मम या मायें ममत्ति मुक्ति और मुक्ति मार्ग कहलस्यथा था । इसके द्वारा अनुमानित संस्कृति ही ममत्व संस्कृति कहलाती । अनुपमके अन्तर्गत मान्य-मान्य अद्वितीय-आदि विभिन्न दर्शन-दर्शन इस संस्कृति-वा नीच-निच और कल-तथा-तथा-तथा नीच-बोधका पुनः पुनः प्रचार किया ।

सिन्धु घाटी सभ्यता—जिस कालमें मध्यदेशमें उपरोक्त श्रमण संस्कृति घोर-घोर विकसित हो रही या प्रायः उसी कालमें उक्त प्रथमधर्म एवं श्रमण संस्कृतिके बर्णित प्रभावित विद्याधराको शोधिता एवं भोजित-कना प्रधान उत्कृष्ट नागरिक सभ्यताका प्रारम्भ एक और गर्मदा नदीके घाटेमें और दूसरी ओर सिन्धु नदीकी घाटीमें हो रहा था। वर्तमान घाटाघाटोंके प्रारम्भिक दशकोंमें भारतीय पुरातत्त्व विभागकी ओरमें सिन्धु प्रान्तके लगाना डिप्टमें तथा पश्चिमी पन्नाके गाटगुमरी डिप्टमें जो महत्वपूर्ण मुद्राएँ एवं शोध शोध हुई हैं उसमें भारतमें एक अत्यन्त प्राचीन एवं अत्युत्कृष्ट नागरिक सभ्यताके अस्तित्वपर आश्चर्यजनक प्रकाश पड़ा है। सिन्धु घाटीकी मोहनजोदड़ो (मुर्तोजा टीला) नामक विशाल श्रमण सभ्यता सम्मानवकी अधुनाज्ञात प्राचीनतम सभ्यता मान्य होती है। पुरातत्त्वज्ञोंने एक पूरा नगर रोड निकाला है जिसकी गहर योजना, पक्की रूटोंके सुन्दर मुधार गवन, हाट-बाजार, चौरस्ते, नमामवन, विविध अन्न - पान्न, आभूषण, खेल - निलीने, मुद्राएँ, मूर्तियाँ आदि विविध पुरातात्विक सामग्रोंने जो यहाँस प्राप्त हुई हैं वर्तमान संसारको आश्चर्यमिभूत कर दिया है। गेहूँका रोती और उसका नोज्याप्त-के रूपमें उपयोग, रूईकी रोती और उगले वस्त्र बनाना, स्वर्णक आभूषण आदि सिन्धु घाटीके इन प्राचीन विद्याधरोंके ही आविष्कार माने जाते हैं। विद्वानोंके मतानुसार इस सभ्यताका जीवनकाल ई० पू० ६००० सन्वत् २५०० वर्ष तक रहा प्रतीत होता है। अवश्य परिमिडा एवं पैराओ वादनाहोंक पूर्ववर्ती प्राचीनतम मिस्रकी नीलघाटीकी सभ्यता तथा पश्चिमी एशियामें दजला-करातकी घाटीकी सुमेर सभ्यता ही सब-प्राचीन समझी जाती थीं। किन्तु अब उपरोक्त सिन्धु घाटीकी मोहनजोदड़ो सभ्यता उन दोनोंसे ही पूर्ववर्ती ही नहीं बरन् मानवकी सर्वप्रथम नागरिक एवं औद्योगिक सभ्यता अनुमान की जाती है, और प्राचीन मिस्रो, सुमेरी आदि सभ्यताएँ उसके पोछेकी तथा अनेक रूपोंमें उसकी शृणो मानी जाती हैं।

बड़ सम्पत्ता लोहूँके आसिफारके पूर्वकी अर्थात् बालुवावाग (बीरकीनिबिह) वा ठामबुवकी मानी जाती है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि टीकरे टीरकर लम्बवनाथके सम्पत्तमें सर्वप्रथम इन प्राचीन सम्पत्तिका प्रारम्भ हुआ । लम्बवनाथका विविध संरक्षण करके और हिन्दु देव विरकाक तक अपने ईश्वर अस्त्रोंके लिए प्रशस्त रहा है । बीर काक तक सिन्धुमें एक सम्पत्तर बनकर और लम्बव (सम्पत्त) आसिफे ओष विद्यमान थे भी बहुत सम्भव है कि सिन्धु लम्बवतके मूल अर्थकों एवं टीरकर लम्बवनाथके मूल अनुवाकियोंकी ही संरक्षणरम्भरही है । बड़ सम्पत्ता अर्थिक एवं लम्बव ही नहीं बल्कि प्राचीनिक भी तथा इनके पुस्तकता अनुपम प्रतीत होने अर्थके अनुवाक्यी और प्रथम संरक्षणके अनाक प्राचीन विद्याधर अर्थात् चारदीय इतिहास आसिफे पूर्वमे थे ऐसा प्रतीत होता है ।

हर बाग बागकका कथन है कि "सिन्धु संरक्षण एवं वैदिक संरक्षणके लुप्तप्रायक अर्थकवनेके बड़ बालु निविवाह किष्ट होती है कि इन दोनों संरक्षणियोंमें वास्वर कोई सम्पत्त वा सम्पत्त नहीं था । वैदिक अर्थ आसिफकथा अनुसिन्धुवक है अर्थ कि मोहम्बीरको एवं इन्धुपाने नृत्तिपूजा लम्बव इन्धु परिलक्षित होती है । मोहम्बीरकोके अर्थकीने इन्धुपुम्बीरका अर्थका लम्बव है । इन अर्थियोंमें लम्ब पुम्बीरकी आसिफियोंमें अर्थिक पुम्बीर अनुसिन्धुवने विद्यती है । बाग बागकके अनुसार वे प्राचीन बोधिदीकी नृत्तियाँ हैं । एक अन्य विद्वत्का कथन है कि "वे नृत्तियाँ एन्धुवना नृत्तिय करती हैं कि बालुवावाग सम्पत्तमें सिन्धु आसिफे निवासी न केवल पोषाव्वाह ही करती थे बल्कि बोधिबोकी नृत्तियोंकी पूजा भी करते थे । एन्धुवनाथ बोधिवा कथन है कि "सिन्धु आसिफे अनेक नृत्तियोंमें अर्थिक न केवल बीर ही देवनृत्तियाँ बोधपुम्बीर हैं और बड़ पुम्बीर अर्थिकमें सिन्धुवासीमें बोध मार्गके प्रचारकी किष्ट करती हैं बल्कि अर्थवाहन देव नृत्तियाँ भी बोधकी अर्थोन्धव नृत्तियाँ हैं । और बड़ बाधोन्धव अर्थ

मुद्रा विशिष्टतया जैन हैं। आदिपुराण आदिमें इस कायोत्सर्ग मुद्राका उल्लेख ऋषभ या वृषभदेवके तपश्चरणके सम्बन्धमें बहुधा हुआ है। जैन ऋषभको इस कायोत्सर्ग मुद्रामें खट्वासन प्राचीन मूर्तियाँ इसवी सन्के प्रारम्भ कालकी मिलती हैं। प्राचीन मिस्रमें प्राग्मिक राज्यघर्षोंके समयकी दोनों हाथ लटकाये खड़ी मूर्तियाँ मिलती हैं। किन्तु यद्यपि इन प्राचीन मिस्र की मूर्तियों तथा प्राचीन यूनानी कुगोइ नामक मूर्तियोंमें प्रायः वही आकृति है तथापि उनमें उस देहोत्सर्ग निस्सर्ग भावका अभाव है जो सिन्धु घाटीकी मुद्राओंपर अंकित मूर्तियोंमें तथा कायोत्सर्ग मुद्रासे युक्त जिन मूर्तियोंमें पाया जाता है। ऋषभ शब्दका अर्थ वृषभ है और वृषभ जैन ऋषभदेवका लक्षण है। वस्तुतः सिन्धु घाटीकी अनेक मुद्राओंमें वृषभ युक्त कायोत्सर्ग योगियोंकी मूर्तियाँ अंकित मिली हैं जिससे यह अनुमान होता है कि वे वृषभ लक्षण युक्त योगीश्वर ऋषभकी मूर्तियाँ हैं। ऋषभ या वृषभका अर्थ धर्म भी है शायद इसीलिए कि लोकमें धर्म सर्वप्रथम तीर्थकर ऋषभके रूपमें ही प्रत्यक्ष हुआ। प्रो० रानाडेके मतानुसार 'ऋषभदेव ऐसे योगी थे जिनका देहके प्रति पूर्ण निर्ममत्व उनकी आत्मोपलब्धिका सर्वोपरि लक्षण था।' उत्तरकालीन भारतीय मन्त्रोंके योगमार्गमें भी ऋषभदेवको उक्त मागका मूल प्रवर्तक माना गया है। प्रो० प्राणनाथ विद्यालकार न केवल सिन्धु घाटीके धर्मकी जैन धर्मसे सम्बन्धित मानते हैं वरन् वहाँसे प्राप्त एक मुद्रा (नं० ४४९) पर तो उन्होंने 'जिनेश्वर' (जिन इश्वरह) शब्द भी अंकित रहा बताया है और जैन आम्नायकी श्री, ह्रीं, क्लि आदि देवियोंकी मायता भी वहाँ रही बतायी है। वहाँसे नागफणके छत्रसे युक्त योगी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं जो सातवें तीर्थकर मुपाश्वकी हो सकती हैं। इनका लाटन स्वस्तिक है और तत्कालीन सिन्धु घाटीमें स्वस्तिक एक अत्यन्त लोकप्रिय चिह्न दृष्टिगोचर होता है, सड़कें और गलियाँ तक स्वस्तिकाकार मिलती हैं।

कुछ विद्वान् मोहनजोदड़ो सभ्यताके प्राग्आर्यकालीन होनेमें सन्देह

[illegible]

देनेवाले थे गुप्त मिश्रण रहा हो सकता है। कागजे का नवोदित वैदिक आयोका हठ्वावालाकि साथ ही सर्वप्रथम एवं सबसे भोपण संघा हुआ। वैदिक साहित्यो दस्यु, अगुर आदि यही थे। पश्चिमी एशियामें उनके बाद एक आनेवाली सुमेर, अस्तुर, बाबुली आदि सभ्यताओंका सम्पर्क अपनेगे ज्वेष्ठ मोहनजोदरो एवं समकालीन हठ्वा सभ्यताके साथ विशेष रहा। मिश्रकी प्राचीनतम सम्मता भी प्राय इसी कालकी है। ई० पू० २६५० के लगभग हठ्वावालोंके साथ पश्चिमी एशियाकी सुमेरी सभ्यताका सम्पर्क निश्चित रूपसे रहा प्रतीत होता है। तत्कालीन कालगणनामें यह तिथि महत्वपूर्ण है। हठ्वा सभ्यताके चिह्न गंगा, पम्बल और नर्मदाके कांठोंमें पश्चिमी उत्तरप्रदेश (हस्तिनापुर आदिमें), पश्चिमी राजस्थान तथा गुजरात काठियावाड़ आदि प्रदेशोंमें भी प्राप्त हो चुके हैं जो उनके विस्तृत प्रसारके सूचक हैं। इस सभ्यताकी उत्तराधिकारिणी ग्रीक आदि परवर्ती सभ्यताएँ मानी जाती हैं, और तदुपरात आर्या (दृढा आर्यनो) का तथा उनकी वैदिक सभ्यताका उदय हुआ माना जाता है।

वैदिक सभ्यता—आर्योंके मूल निवासस्थानके विषयमें बड़ा मतभेद है, किन्तु अधिक संगत यही प्रतीत होता है कि वे मूलतः भारतके ही निवासी थे और मध्यदेशके प्राचीन मानववंशी आर्योंकी ही उस शाखासे सम्बन्धित हैं जो ऋषभदेवके समयमें होनेवाले मानवी सभ्यताके उदयके कुछ पूर्व ही पश्चिमोत्तर प्रदेशकी ओर विचरण करने मूलशाखासे प्राय पृथक् हो गयी थी और चिरकाल पर्यन्त पृथक् ही रही। इसका एक कारण यह भी रहा प्रतीत होता है कि उनका प्रवाह और विचरण पूर्वकी ओर अपने मूल जातिबन्धुओंकी ओर न होकर पश्चिमकी ओर अर्थात् पश्चिमी एशियाई देशोंकी ओर हुआ। वहाँसे वे उत्तरी एशिया और पूर्वी एवं उत्तरी यूरोप आदिको ओर भी फैले। इनका प्रधान केन्द्र पश्चिमी एशिया रहा। उनकी एक शाखा जब ईरानमें घम गयी तो एक अन्य शाखा फिरसे भारतमें आयी और उनके जो जातिबन्धु यहाँ पहलेसे ही पश्चिमोत्तर

प्रदेशों में वहाँ के जनम मरीन जोलाइन कुँकर इन्होंने करवाती मरीके छपर बरनी ल्पायी बसितयं यनायी धुल्लेके जन्मीकी रचना की और समुद्रिबा कुल गजोनाली वैदिक संस्कृतिकी कल्प विना । जो के ए नीलकण्ठ घालीके कथानुसार भारतका वैदिक युग आखीव-ईश्वरी कल्पताके निराकारा ही एक चहुनु है । माचीन ईश्वरी और वैदिक संस्कृतिके अनेकविध सादृश्यके यह बात सिद्ध है ।

वैदिक युग के आरम्भकाल एक क्षत्रियके आरम्भिक कर्त्तव्यी एकताकी विधिके सम्बन्धमें विद्यापीथों में प्रवेश है । अब कि ईशानसुन्दर आदि कौन ई पू १९ ०-१ कल्प निमित्त कहे हैं जो ठिक और वैदिकी वाचस्पत्योदयके आचार्य के हैं ई पू १ ५ ४ के बीच अनुमान करते हैं । किन्तु वे दोनों ही मत्र अतिपरोक्षितपूर्व वाले हैं । अनुमान इस सम्बन्धों ई पू २ के लगभग स्थिर करते हैं और लगभग १ ०-१ ई पू कल्प वैदिक सम्बन्धका विकासकाल एक चरकोत्पन्न नाम मानता है । इसी बीच प्राचीन निम्नो रीतिमूलिक सम्बन्ध प्राचीन ईरानी सम्बन्ध प्राचीन चीनी सम्बन्ध पूर्वोक्त एशियाकी कस्बुर वास्तुकी द्वितीयक आदि सम्बन्धों, बुधम्बन्धकाली हिंदी निम्नो आदि सम्बन्धों तथा अमेरिकाकी काल सम्बन्ध आदि निम्नो अन्य प्राचीनकालीन सम्बन्धोंका आने-पाने करव एवं विकास हुआ ।

वैदिक साम्रज्यके प्राथमिक विकासके लक्षणकी व्याख्याके एवमात्र विष्णु पञ्चविंश तन्त्रन द्वाराच बात बतानी ऐसे करने भूलोहके लक्ष्य हैं। वे राज्य राज बदल, नाथि की बदलि केपताकीके करने कसिक्त प्रकृतिकी विविध घणितकीकी लुकिके करने हैं। इन लक्ष्यके साम्यकीके राज वैदिक राज्यके नाथिक किल्लाकी विजाकाल आचार-विचार एक-बहुन सामाजिक नाथिक एवं राजनैतिक संघटन औषिक इतिहास आदि विषयोंके साम्यकीके बहुत कुछ व्याख्याती राज्य ही जाती है। नाथिक विजाकाल पञ्चविक संस्थाकी कुरीति बताना और राजकी लक्ष्मी सुदृश्यके विजाका

सर्वोपरि स्थान, विश या जनपद, ग्राम या वस्तीकी व्यवस्था, समाजमें स्त्रियोंका सम्माननीय स्थान, बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व, वण-व्यवस्थाका प्रारम्भिक रूप, अनुलोम-प्रतिलोम विवाह, मासाहार, सुरापान, द्यूतव्यसन आदि तत्कालीन सस्थाओं, प्रथाओं एवं लोकदशाकी रोचक सूचनाएँ मिलती हैं । ऋग्वेदसे ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक वैदिक आर्योंका यज्ञविरोधी हठप्पावालोंके साथ सांस्कृतिक एवं राजनैतिक संघर्ष हुआ, युद्ध हुआ और सुलह हुई । उन लोगोंको आर्योंने दस्यु और दास आदि संज्ञाएँ दीं । इस कालकी प्रमुख घटना दशराज युद्ध है । भारतके प्राचीन भारतका भी इस वेदमें उल्लेख मिलता है । मानवी सभ्यताके मूलप्रवर्तक, योगेश्वर ऋषभकी स्तुतिमें भी कुछ मन्त्र हैं । किन्तु साथ ही लिंगेश्वरकी इन्द्रका शत्रु भी कहा गया है । कालान्तरमें ऋक्संहिताके रूपमें संकलित इस प्रथम वेदमें दश मण्डलोंमें विभाजित कुल १०१७ मन्त्र हैं । जैन अनुश्रुतिके अध्ययनसे पता चलता है कि दसवें तीर्थंकर शीतलनाथके उपरांत सर्वप्रथम ब्राह्मणोंने श्रमण-परम्परासे अपना सम्बन्ध विच्छेद करके अपनी पृथक् ब्राह्मण संस्कृति एवं वैदिक धर्मको जन्म दिया था । हो सकता है कि वैदिक आर्योंके समाजमें ब्राह्मण वर्गका सर्वोपरि स्थान देखकर मध्यदेशीय मानववशी ब्राह्मण उनकी ओर आकृष्ट हुए हों । वेदोंकी भाषापर मध्यदेशकी अर्धमागधी प्राकृतका तथा ईरानी आदि पश्चिमी भाषाओंका द्विविध प्रभाव रहा प्रतीत होता है । लिपि जो उन्होंने अपनायी वह भारतके मानववशियों-द्वारा आविष्कृत ब्राह्मी लिपि थी ।

उत्कर्षकाल—रामायणसे महाभारत पर्यन्त—शनै-शनै वैदिक आर्योंने भारतके आदिम निवासी मानवों और विद्याधरोंसे सुलह कर ली और उनका उनके साथ रक्तमिश्रण भी होने लगा । उन्होंने पूर्वकी ओर फैलना प्रारम्भ कर दिया और पञ्जाबसे लेकर समस्त पश्चिमी उत्तरप्रदेश उनका केन्द्र बन गया । उनकी राज्य शक्तियोंका भी विकास हुआ जिनमें

[illegible][illegible]

समन्वय या समझौतेका एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि रामायण एवं महाभारतकी घटनाओंके मध्यवर्ती कालमें वैदिक—आर्य समाजमें क्षत्रियोंकी शक्ति और प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया था—उनकी बलवती राज्यसत्ताएँ मजबूत हो गई थीं, ब्राह्मण मन्त्री और पुरोहित मात्र ही रह गये थे। इसी युगमें वैदिक क्षत्रियोंकी राजनैतिक शक्ति सर्वोपरि थी और यही काल वैदिक सम्प्रदायका चरमोत्कर्ष काल है। महाभारतके विनाशकारी युद्धने वैदिक युगका ही अन्त नहीं किया, वैदिक क्षत्रियोंकी राज्यसत्ताको भी अत्यन्त अवनत कर दिया।

जिस प्रकार इस युगके प्रारम्भमें अयोध्याके रामने दोना सत्कृतियोंके समन्वयका स्तुत्य प्रयत्न किया था उसी प्रकार इस युगके अन्तमें यदुर्वशी कृष्णने वैसा ही प्रयत्न किया। ये दोना ही महापुरुष भारतकी मौलिक सांस्कृतिक एकताके प्रतीक हैं—दोनों ही प्राचीन श्रमण एवं ब्राह्मण सत्कृतियोंके बीचकी सुदृढ़ कड़ियाँ हैं। कृष्ण भी दोनों ही परम्पराओंमें प्रायः समान रूपसे सम्माननीय हैं। उनके ताऊजात भाई चाईसर्वे तीर्थंकर अरिष्टनेमि भी यजुर्वेदमें स्मृत हुए हैं। कृष्ण स्वयं प्राचीन मानववशकी हरिवंश नामक शास्त्रमें उत्पन्न हुए थे और उन्होंने कुछ पांचालके वैदिक आर्य क्षत्रियोंके साथ विवाह एवं मंत्री आदि सम्बन्ध स्थापित करके तथा अपनी विलक्षण कूटनीति-द्वारा भारतकी ममस्त सत्कालीन राजसत्ताओंको मिलाकर, लड़ाकर और प्रभावित करके उन सबका ही नेतृत्व किया तथा उनके वंशजों-द्वारा कालान्तरमें ईश्वरके अवतारके रूपमें पूजे गये। साथ ही श्रमण अथवा जैन परम्परामें भी वे नारायण, अर्धचक्र, त्रिलोचन, श्रावकोत्तम, अपने समयके सर्वप्रतापी सधराक्षितमान् आदर्श नरेश एवं धर्मरक्षकोंके रूपमें स्तुत्य हुए हैं। स्वयं पाण्डव य-यु भी जैनधर्मके उपासक तथा अन्तमें जैन मुनियोंके रूपमें तप करते बताये गये हैं।

रामायण एवं महाभारतकी घटनाएँ बहुत थोड़े-से अंतरोंको लिये हुए ब्राह्मण एवं जैन दोना ही परम्पराओंमें प्रायः एक-सी पायी जाती हैं और प्राग्ऐतिहासिक काल

समाज कर्मों को करिये हैं। वास्तुतः टीवी कार्यक्रमों से कल्पनक एक दुबारे के
 पुरस्कार हैं और निरन्तर इतिहास के आरम्भ से कृषि अनुभूतिवन्त काल के लिए
 राष्ट्रीय परम्परा का वैदिक साहित्य, राजाधन एवं महाभारत नामक तथा
 पुराण नामक ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। इनमें ही वैदिक पुराण साहित्य तथा वैदिक
 अनुभूतियों की हैं। वैदिक किंवा कल्पनक विद्यालयों का नाम है, आरम्भ
 भारतीय इतिहास विद्या के वैदिक नाम पर वैदिकों का है। इसका ही वैदिक-
 विरोधी वैदिक है। वैदिक भारतीय लोककला की वैदिक ही वास्तविक
 ऐतिहासिक पुराण है। वैदिक किंवा वैदिक ऐतिहासिक अनुभव तथा राष्ट्रीय
 परम्परा के नाम भारतीय अनुभव। वास्तुतः वैदिक पुराण कल्पनक के एक
 कल्प-कल्पों के विषय नहीं वैदिक अनुभव अनुभव तथा वैदिक वास्तविकता के
 विषय हैं। अथवा वास्तविकता की पुराण भारतीय भारतीय नामक लोककला है। वैदिक
 वैदिक वैदिक और राष्ट्रीय वैदिक के अर्थों में समझना कुछ पूर्व ही वास्तविकता
 का पुराण की और निरन्तर ही पुराण की। राष्ट्रीय-वैदिक वैदिक के अर्थों में
 वास्तविक यह वैदिक का वैदिक करती वास्तविक करती वास्तविक-वास्तविक
 करती तथा वैदिक पुराण करती की नामों पर करती हैं। वास्तविक-पुराण और
 निरन्तर ही है।

विद्यालयों में महाभारत पुराण के अर्थों में वास्तविक भारतीय इतिहास के
 पुराण भारतीय इतिहास के अनुभव वन्त इतिहास नामक नाम और
 निरन्तर इतिहास का आरम्भ होता है।

अध्याय २

प्राचीन युग-प्रथम पाद

[महाभारतसे महावीर पर्यन्त]

बहुत समय तक भारतीय इतिहासका नियमित प्रारम्भ छठी शताब्दी ई० पू० में महावीर और बुद्ध-द्वारा क्रमशः जैन एवं बौद्धधर्मके प्रचार तथा मगध साम्राज्यके उदयसे माना जाता रहा। इसके बादका काल ऐतिहासिक तथा पूर्वका प्रागैतिहासिक कहा जाता था। किन्तु इधर कुछ दशकासे भारतीय इतिहासकारोंका झुकाव भारतवर्षके नियमित इतिहासको महाभारत युद्धके ठीक उपरांत प्रारम्भ करनेकी ओर बढ़ना जा रहा है। अस्तु, भारतवर्षका विधिवत् इतिहास अब गत लगभग तीन साढ़े तीन सहस्र वर्षका इतिहास माना जाता है। इसका प्राचीन युग महाभारत युद्धके ठीक बाद प्रारम्भ होकर मुसलमानों-द्वारा भारतकी विजयके साथ समाप्त होता है। इस छद्म सहस्र वर्षके सुदीर्घ प्राचीन युगका पूर्वार्ध प्रधानतया उत्तर भारतके इतिहाससे ही सम्बन्धित है, दक्षिण भारतके सम्बन्धमें इस युगमें कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती।

महाभारत युद्धको एक ऐतिहासिक घटना माननेमें अब प्रायः किसीको कोई शक नहीं है यद्यपि महाभारतमें कथित उसके वर्णनको जैसाका तैसा माननेमें प्रायः सभी सकोच करते हैं। इतिहासकाल अथवा भारतीय इतिहासके प्राचीन युगके आदिकालका सूचन करनेके लिए उक्त घटनाकी तिथिका निर्णय करना आवश्यक है किन्तु इसके सम्बन्धमें भी विद्वानोंमें बहुत मतभेद है। प्रो० पार्जोटरके अनुसार महाभारतकी तिथि ई० पू०

१५ ई मा रवेचन्द्र अनुसार, श्री लोचनान्न पाण्डी काटीके
अनुसार लवच १ ई ५ कर्मल छाटके अनुसार ई ५ ११२
पाण्डीकाटीके अनुसार ई ५ ११७५ अचल विद्यालकारके अनुसार
ई ५ १४२४ मा कापीलवार बाबनवालके अनुसार ई ५ १४५
हाम्पडि, बुड बुधानीके अनुसार ई ५ १४१४ बुडके ई ५ १४४९
और लेवके ई ५ ३१ २ किन्तु अनुमान यह रहे १५वीं प्याली
ई ५ के लवच हुआ माला ई । हुआठी वनलाके अनुसार भी यह ई
५ १४४३के लवच बीछा ई । इस गटलाके ३६ बरी बार अनुमाना बीन
पटीजिन् हुसैलापुर आश्रमका अधिकारि हुआ । अठार ई ५ १४
के लवच आश्रम इतिहासका माफीन पुन ग्राम्य हुआ अना वा
बुद्धा ई ।

[illegible]

राजनीतिक क्षेत्र में मद्रासराज के अन्तर्गत अन्तर प्रायद्वीप में एक कमिटी के
 माध्यम से—बतल कुद, चाचाय मुरवेय कीचक काटी पूर्व-
 निवेष्ट, बतल कमिटी अन्तर्गत अन्तर्गत और अन्तर्गत । इनमें भी कुद
 (राजधानी हतिनापुर) चाचाय (राजधानी कमिटी) कीचक
 (राजधानी अन्तर्गत) निवेष्ट (राजधानी निवेष्ट) और काटी
 (राजधानी काटी) अन्तर्गत यह राज्य अन्तर्गत है । इन सभी प्रायद्वीप

नरेश पुरु, इक्ष्वाकु और मागध इन तीन प्राचीन राज्य वंशोंमें-से ही किसी-न किसीके साथ सम्बन्धित थे । ये सभी राज्य उस समय प्रायः वेदानुयायी आर्यक्षत्रियोंके ही थे । इनके अतिरिक्त जो अन्य राज्य पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणमें स्थित थे वे प्रायः श्रमणोपामक क्षत्रियोंके थे ।

उपरोक्त १२ राज्य वंशोंमें भी सर्वप्रधान राज्य कुरुदेशमें हस्तिनापुर-के पुरु, कुरु अथवा पाण्ड्य वंशियोंका था । अर्जुनका पौत्र परीक्षित् उनका अधीश्वर था । किन्तु उसके समयमें ही वैदिक आर्योंकी बढ़ती हुई शक्तिके सम्मुख चिरकालसे दबो रही नाग आदि द्रविड जातियाँ फिरसे यश-तथ सिर उठाने लगीं । पश्चिमोत्तर प्रदेशकी तक्षशिला और मिन्यु मुन्वकी पातालपुरीके नाग विशेष प्रबल हो उठे । नवीन उत्साहमें जागृत, विशेषकर तक्षशिलाके नागोंने कुरु राज्यके ऊपर भोषण आक्रमण शुरू कर दिये । उनके साथ युद्धमें ही परीक्षित्की मृत्यु हुई । उनके बेटे जनमेजयका भी सारा जीवन नागोंके साथ युद्ध करते ही बीता । उसने उनका भरसक सहार भी किया किन्तु उनके बढ़ते हुए वेगको रोकनेमें वह भी असमर्थ रहा और हस्तिनापुर राज्य उत्तरात्तर क्षीण होता चला गया । जनमेजयके पश्चात् शतानीक, अश्वमेधदत्त और अधिसोमकृष्ण क्रमशः गद्दीपर बैठे । अधिसोमके समय अयोध्यामें दिवाकर, मगधमें सेनजित् एवं विदेहमें जनक उग्रसेन राज्य करते थे और पञ्जाबमें प्रवाहण जैवलिका प्रभाव था । अधिसोमके बेटे निचक्षुके समयमें नागोंके निरन्तर आक्रमणोंके अतिरिक्त कुरु देशपर लाल टिहोका भयकर प्रकोप हुआ, भोषण दुर्मिक्ष पहा और स्वयं राजधानी हस्तिनापुर गंगाकी बाढ़से ध्वस्त हो गयी । कुरुवंशी राजे देश-का परित्याग करके वत्स देशकी कौशाम्बी नगरीमें जा बसे । इस प्रकार उत्तरापथकी सर्वप्रधान वेदानुयायी क्षत्रिय राज्य शक्तिका कमसे कम कुरु प्रदेशसे अन्त हो गया । तदनन्तर नागोंने उसपर अधिकार कर लिया । तभीसे गजपुर या हस्तिनापुरका नाम नागपुर या हस्तिनागपुर भी प्रचलित हुआ । यह घटना लगभग ९वीं-१०वीं शताब्दी ई० पू०की है ।

प्रायः इसी समयके लक्षण विद्येमें अस्ति हुई । यहाँका राजा कण्व
जनक बड़ा शहीदा था जो प्रयत्ने करते मार गया और साथ ही विद्येके
कलावीकी राजमहाराज बल ही बना और बड़ी संघ राज्य स्थानि ही
बना । इसीके पहलेमें वैद्यकीके विषयविद्याना ईश्वरान्न विद्यमान ही था
था । विद्येका लक्षण ही इसीमें कि वह राजा और राजमहाराज मुख्य
वृद्धि या शक्तिवर्धनकी स्थाना हुई । वे लोक व्यवस्थाके राज्य
स्थिति में ।

[illegible][illegible]

का प्राय अत हो गया था और उनके स्थानमें एक ओर नागादि विद्याधर वणियाको राज्यमत्ताएँ तथागिला, पातालपुरी, उद्यानपुरी, पद्मावती, भोगपुरी, नागपर, अग या चम्पा तथा दक्षिणके भिन्न भिन्न भागोंमें स्थापित हो चुकी थीं और दूसरी ओर लिच्छवि, मल्ल, मोरिय, आदि व्रात्य क्षत्रियोंके अनेक गण या मघराज्य यत्र-तत्र स्थापित हो चुके थे, साथ ही पुरानी राज्यमत्ताओंके स्थानमें काशी और मगध आदिमें इन्हीं व्रात्यो अथवा तथा-कथित छात्र-बन्धुओंकी कई ऐसी प्रतापी राजतन्त्रीय शक्तियाँ प्रबल हो चुकी थीं जो साम्राज्य पदकी पोषक थीं। काशीके ब्रह्मदत्तने साम्राज्य स्थापित किया ही था। कुछ कालके उपरान्त मगध साम्राज्यका उदय हुआ।

ग्राह्यण परम्पराकी अनुश्रुतियोंमें लिच्छवि, मल्ल, मोरिय आदि जातियोंको व्रात्य कहा है। शैलनाक वंशको भी क्षत्रिय नहीं वरन् क्षात्रबन्धु कहा है। प्रो० जयचन्द्र विद्यालकारके अनुसार, 'इस शब्दका प्रयोग होन-ताका भाव सूचित करनेके लिए किया गया है क्योंकि वे व्रात्य लोगोंके क्षत्रिय थे, और व्रात्य वे आर्य जातियाँ थीं जो मध्यदेशके पूर्व या उत्तर-पश्चिममें रहती थीं। वे मध्यदेशके कुलीन ग्राह्यण क्षत्रियोंके आचारका अनुसरण न करती थी। उनकी शिक्षा-दीक्षाकी भाषा प्राकृत थी और वेशभूषा (आर्योंकी दृष्टिसे) परिष्कृत न थी। वे मध्यदेशके ग्राह्यणोंके सस्कार न करते थे और ग्राह्यणोंके बजाय अर्हताको मानते थे तथा चैतियो (चैत्यो) की पूजा करते थे।' वस्तुतः इस कालमें वैदिक आर्योंकी शुद्ध सत्ति अवशिष्ट ही नहीं रह गयी थी। रक्तमिश्रण, सांस्कृतिक आदान प्रदान एवं बहुधा धर्म परिवर्तन आदिके कारण एक नवीन भारतीय जाति उदयमें आ रही थी जिसमें श्रमणोपासक चातुर्वर्णके व्रात्यो अथवा नाग आदि द्रविड जातियाँका बाहुल्य था। आर्य द्रविडोंमें भी धीरे धीरे रक्तमिश्रण हो रहा था और परस्पर जातीय भेद-भाव मिटता जा रहा था। व्यवसाय-कर्मके अनुसार ग्राह्यण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्णोंमें समस्त भारतीय समाज बँटता जा रहा था। क्षात्र धर्म पालन करनेवाले चाहे वे वैदिक

[illegible][illegible][illegible]

जैन सूचियाँ अथ सूचियोंकी अपेक्षा अधिक बहुलत्ववापी और सम्भवतया अधिक कालवापी हैं। दूसरी बात यह है कि विभिन्न अनुश्रुतियोंकी सूचियों-
 ५- उन्होंने देशोंका उल्लेख विशेष रूपसे है जिनके माथ उनके अपने-अपने घमोंका अधिक सम्बन्ध रहा। उपरोक्त नामोंमें भी उस काल (६ठी शताब्दी ई० पू०) में मगध कोमल, वत्स और अवन्ति ही प्रमुख राज्य थे तथा वज्जियोंका गणतन्त्र गणतन्त्रोंमें प्रमुख था।

इस श्रमण पुनरुत्थान युग या उत्तर वैदिक काल (१४००-६००-ई० पू०) में एक ओर तो वैदिक यज्ञोंका कर्मकाण्ड बढा और दूसरी ओर ज्ञान व तत्त्व चिन्तनकी एक नयी लहर लक्षित हुई। वैदिक मन्त्रोंको ऋक्, यजुष् साम और अथर्व नामक चार संहिताओंमें सफलित किया गया। उनपर जटिल गद्य भाष्य बनाये गये जिन्हें 'ब्राह्मण' ग्रन्थ कहते हैं। एक दूसरे प्रकारके भी भाष्य बने जो 'आरण्यक' कहलाते हैं क्योंकि वे वनोंमें ऋषियों-द्वारा रचे गये बताये जाते हैं। वेदोंके ही कथचित् आश्रयसे एक दूसरे प्रकारका आध्यात्मिक साहित्य उदयमें आया जो रहस्यवादी होने अथवा बैठकर कहा जानेके कारण 'उपनिषद्' कहलाया। शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुचन, ज्योतिष और कल्प नामके छ वेदांगोंका भी विकास हुआ। इस धान्ति युगमें यज्ञोंके पूजा-पाठ एवं क्रियाकाण्डको खूब विस्तार दिया गया और सीधे सरल वेद मन्त्रोंके अर्थोंको अत्यन्त दुरुह एवं जटिल बना दिया गया। कहा जाना है कि इसी कालमें परोक्षित्की पाँचवीं पीढ़ीमें हस्तिनापुरके राजा अधिसोमकृष्णके समयमें नैमिषारण्यमें जब मुनि लोग यज्ञ कर रहे थे तो वहाँ व्यामरचित प्राचीन ब्राह्मणीय अनुश्रुतिक सग्रह या पूजाणको सूतोंने सब प्रथम गाकर सुनाया था। इसीके आचारपर ईसवी सन्के प्रारम्भसे लगभग रामायण, महाभारत आदिकी तथा गुप्त कालमें प्रमुख हिन्दू पुराणोंकी रचना हुई।

दूसरी ओर यज्ञोंके कमकाण्ड और आडम्बरके विरुद्ध देशवापी विद्रोह हो रहा था। इसका मूल कारण अहिंसाप्रधान एवं आध्यात्मिक श्रमण

[illegible][illegible]

रणको याज्ञिकहिंसामें अरुचि हो गयी थी। वैदिकधर्म इतना जटिल एवं आहम्बरपूर्ण बना आया गया था कि वह लोकग्राह्य हो नहीं रह गया था। यह धर्म जने कतिपय वेदानुपायो ब्राह्मण विद्वानोंमें ही सीमित होता चला गया। जनसाधारण या तो श्रमणोपासक था या ब्रह्मवादो जनकोके उपनिषद् धर्मका अनुसर्ता, अथवा इन दोनोंके समन्वयसे जो सदाचार एवं भक्ति प्रधान एक नवीन लोकधर्म सामान्यतः अलक्ष्यरूपमें उदित हो रहा था उसीसे सन्तुष्ट था। वर्णाश्रम व्यवस्था इस युगकी इस नवीन धाराकी एक प्रमुख विशेषता थी।

इस युगके उक्त श्रमणधर्म पुनस्त्यानके सर्वप्रथम पुरस्कर्ता याईसर्वे तीर्थंकर नेमिनाथ या अरिष्टनेमि थे। उनका जन्म यदुवशियोंके शूरसेन जनपदकी राजधानी शोरिपुर नानक नगरमें हुआ था। किन्तु उनको माल्यावस्थामें ही यादवगण शोरिपुरका परित्याग करके पश्चिमी समुद्रतटपर द्वारका नगरीमें जा बसे थे। वासुदेव कृष्ण इनके चचेरे भाई थे। कृष्णने प्रवृत्तिका मार्ग अपनाया और नेमिनाथने निवृत्तिका। चिरकाल तक अहिंसाधर्मका प्रचार करनेके उपरांत काठियावाड़क गिरनार या ऊर्जयन्त पर्वतसे नेमिनाथने निर्वाण प्राप्त किया था।

तीर्थंकर नेमिनाथका प्रभाव विशेषकर पश्चिमी एवं दक्षिणी भारतपर हुआ। दक्षिण भारतके विभिन्न भागोंसे प्राप्त जैन तीर्थंकरोंकी प्राचीन मूर्तियोंमें नेमिनाथकी प्रतिमाओंका बाहुल्य है, जो अकारण नहीं है। उत्तरापथके मध्यदेशमें उस समय वैदिक धर्म एवं वैदिक क्षत्रियोंकी राज्यसत्ताएँ ही सवल थीं। किन्तु महाभारतके विनाशकारी युद्धने उक्त राज्यसत्ताओंके साथ-ही-साथ वैदिक धर्मको भी वहाँ निस्तेज कर दिया था। स्वयं पाण्डववधु अन्त समयमें नेमिनाथके भगत हुए और उन्होंने दक्षिण भारतमें जाकर जैन मुनियोंके रूपमें तप करके सद्गति लाभ की बतायी जाती है। महाराज कृष्ण और बलराम जो तत्कालीन राजनैतिक जगत्क प्रधान एवं प्रभावशाली नेता थे, तीर्थंकर नेमिनाथके श्रावकोत्तम और अनुयायी थे। इन

दानपत्रपर जो लेख अंकित था उसका भाव यह है कि “सुमेज्जातिमें उत्पन्न बाबुलके खिल्दियन सम्राट् नेबुचेदनजरने जो रेवानगर (काठियावाड) का अधिपति हैं गदुराजकी इस भूमि (द्वारका) में आकर रैवताघल (गिरनार) के स्वामी नेमिनाथकी भक्ति की तथा उनकी सेवामें दान अर्पित किया।” दान पत्रपर उक्त पश्चिमी एशियाई नरेशकी मुद्रा भी अंकित है और उसका काल ई० पू० ११४० के लगभग अनुमान किया जाता है।

नेमिनाथके उपरान्त उक्त श्रमण पुनरुत्थान आन्दोलनके दूसरे महान् नेता तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे। ये काशीके राजकुमार थे और उरगवंशमें इनका जन्म हुआ था। यह वही वंश था जिसमें इसी युगका ऐतिहासिक चक्रवर्ती सम्राट् अश्वमेध हुआ था। डॉ० रायचौधरीके अनुसार काशी इस कालमें भारतका सर्वप्रमुख राज्य था और शतपथ ब्राह्मणके अनुसार काशीके ये राजे वैदिकधर्म और यज्ञोंके विरोधी थे। तीर्थंकर पार्श्वकी माताका नाम वामादेवी था और उनके पिता काशीनरेश महाराज अश्वसेन थे। प्राचीन बौद्ध अनुश्रुतिमें इनका ‘असम’ नामसे उल्लेख हुआ है तथा महाभारत आदिमें भी अश्वसेन नामक एक प्रसिद्ध तत्कालीन नाग नरेशका उल्लेख मिलता है। पार्श्वका जन्म ई० पू० ८७७ में हुआ था। ये बालब्रह्मचारी रहे।

बाल्यावस्थासे ही इनके हृदयमें ससार एवं भोगोंके प्रति विराग तथा जीवमात्रके प्रति करुणाका भाव था। तीस वर्षकी अवस्थामें ही इन्होंने घरका त्याग करके वनकी राह ली। कुछ काल दुर्द्धर तपश्चरण करनेके फलस्वरूप इन्हें केवलज्ञान एवं अहन्त पदकी प्राप्ति हुई। तदनन्तर शेष जीवन इन्होंने देश-देशान्तरमें विहार करके धर्मका प्रचार करनेमें बिताया। अन्तमें एक सौ वर्षकी आयुमें ई० पू० ७७७ में इन्होंने विहार प्रदेशमें स्थित सम्मेदशिखर पर्वतसे निर्वाण लाभ किया। वह पर्वत आज पर्यन्त पारसनाथ पर्वतके नामसे विख्यात है। बरेली जिलेका प्राचीन अहिच्छत्र

मानक तथा पारस्परिक विधि व्यवस्थामुक्ति रही थी। पारस्परिक विधि सम्मेलन यह है। इसका वर्ष तथा स्थान तथा भाषा काठा है। यह इसी अधिकार प्रतिपाद करने एवं धारण के अन्तर्गत व्यवस्थापन मुक्त सभी हैं। इसी ऐतिहासिकता के अन्तर्गत भी पिछले कोई लक्ष्य नहीं है, यद्यपि कुछ एकता एवं भावना बना हुआ है कि यद्यपि ही वैश्विक प्रवर्धन के अन्तर्गत एक-ही-कर्म एवं कि उनके पूर्वकी हीनकर ऐतिहासिक परिवर्तन बाहर है अन्तर्गत अधिकार के सम्मेलन के कुछ नहीं कर्म था अन्तर्गत।

[illegible]

करकंडू कीटके बावक बजिबके कलितधानी गरेय करकंडू भी ऐसि-
हाकिम कल्पित है । वे तीर्थकर पम्पके तीर्थमें डी कलक हुए वे बीर
कडूके कबालक टण्ड कडू पुनके बावक बजिब भी । राजपुत्रका त्याग कर
केय मुनिके बपने कडूके टण्डका की बीर कडूबडि प्राप्त की कडूकी बाटी
है । टण्डपुर बाविकी पुनकडूके बावक गुणसात्विक बिहारी टण्डकाकी बीर

अनुश्रुति प्रमाणित होती है। इनके अतिरिक्त पाञ्चाल नरेश दुमुख या द्विमुख, विदर्भ नरेश भाम और गान्धार नरेश नागजित या नागाति, तीर्थ-कर पार्श्वके अनुयायी अथ तत्कालीन नरेश थे।

डॉ० जाल चारपेण्टियरके अनुसार 'जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंके प्रमुख तत्त्व महावीरसे बहुत पूर्व, पार्श्वनाथके समयसे ही व्यवस्थित रहे आये प्रतीत होते हैं।' प्रो० हर्म्सवर्धके अनुसार गौतमबुद्धके समयसे पूर्व ही पार्श्वनाथ-द्वारा स्थापित जैनसंघ, जो निर्ग्रन्थ सघ कहलाता था, एक विधिवत् सुमण्डित धार्मिक सम्प्रदाय था। प्रो० रामप्रसाद चाँदका कथन है कि 'यह आमतौरपर विश्वास किया जाता है कि महावीरसे पहले भी जैन साधु विद्यमान थे जो कि पार्श्वनाथ द्वारा स्थापित संघसे सम्बन्धित थे। उनके अपने चैत्य भी थे।' डॉ० विमलचरण लाहा भी इस तथ्यकी पुष्टि करते हैं और कहते हैं कि महावीरके जन्मके पूर्व भी वह धर्म जिसके कि वे अन्तिम उपदेशक थे वैशाली तथा उसके आस-पासके प्रदेशोंमें अपने किसी पूर्वरूपमें प्रचलित रहता रहा प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कमसे कम उत्तरी एवं पूर्वी भारतके कितने ही क्षत्रिय जन, जिनमें कि वैशालीनिवासियोंकी प्रमुखता थी, पार्श्वनाथ-द्वारा स्थापित एवं प्रचारित धर्मके अनुयायी थे। आचाराग सूत्र आदिसे पता चलता है कि महावीरके माता-पिता पार्श्वके उपासक एवं श्रमणोंके अनुयायी थे।' इसी प्रकार प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकारका भी कथन है कि अष्वष्वेदमें भी जिन घ्रात्योंका उल्लेख है वे अर्हन्तों और चैत्योके उपासक थे। ये अर्हन्त और उनका चैत्य बुद्धके समयके बहुत पहलेसे विद्यमान थे। अभी तक आधुनिक पर्यालोचकोने केवल तीर्थंकर पार्श्वकी ही ऐतिहासिकता स्वीकार की है। अन्य पूर्ववर्ती तीर्थंकरोंके वृत्तान्त पौराणिक गाथाओंमें इतने उलझे हुए हैं कि उनका अभी तक पुनर्निर्माण नहीं हो पाया। तथापि हम वास्तविक निश्चित प्रमाण हैं कि महावीर और बुद्धके पहले भी भारतवर्षमें वैदिक धर्मसे सर्वथा भिन्न धर्म विद्यमान थे।'

आधुनिक कहलाते थे । आत्माके समक्ष ये देहको हेय और नाशवान समझते थे । उपरोक्त विचारोंका बौद्धधर्म या ब्राह्मण धर्मसे कोई सादृश्य नहीं है कि वे जैन धर्मके साथ अद्भुत सादृश्य रखते हैं । और क्योंकि ये मान्यताएँ सुदूर यूनान एवं एशिया माइनरमें उस कालमें प्रचलित थीं जब कि महावीर और बुद्ध अपने-अपने धर्मोंका प्रचार प्रारम्भ ही कर रहे थे अतः पैथेगोरस आदि पाश्चिमात्यके उपदेशोंसे प्रभावित रहे प्रतीत होते हैं ।

मेजर जनरल फ्लोर्गका कथन है कि 'लगभग १५०० से ८०० ई० पू० पर्यन्त, वृत्ति उसके बहुत पूर्व अनिश्चित कालसे सम्पूर्ण उत्तर, पश्चिम तथा मध्यभारतमें तूरानियोका जिन्हें सुविधाके लिए द्रविड कहा जाता है, प्रभुत्व रहता रहा था । उनमें वृक्ष, नाग, लिंग आदिकी पूजा प्रचलित थी, किन्तु उसके साथ ही-साथ उस कालमें सम्पूर्ण उत्तर भारतमें एक ऐसा अति व्यवस्थित, दार्शनिक, सदाचार एवं तप प्रधान धर्म, अर्थात् जैनधर्म, अवस्थित था जिसके आधारसे ही ब्राह्मण एवं बौद्धादि धर्मोंके सन्नास-मार्ग वादमें विकसित हुए । आर्थोके गंगा तट क्या सरस्वती तटपर पहुँचनेके पूर्व ही लगभग बाईस प्रमुख सन्त अथवा तीर्थंकर जैनोको धर्मोपदेश दे चुके थे । उनके उपरान्त ८वीं-९वीं शती ई० पू० में २३वें तीर्थंकर पार्श्व हुए और उन्हें अपने उन समस्त पूर्व तीर्थंकरोंका अथवा पवित्र ऋषियोंका ज्ञान था जो बड़े-बड़े समयान्तरोंको लिये हुए पहले हो चुके थे, उन्हें उन अनेक धर्मशास्त्रोंका भी ज्ञान था जो प्राचीन होनेके कारण पूर्व या पुराण कहलाते थे और जो सुदीर्घ कालसे मान्य मुनियों, वानप्रस्थों या वनवासी साधुओंकी परम्परामें मौखिक द्वारस प्रवाहित होते आ रहे थे ।'

कुछ लोग पार्श्वनाथके धर्मको चातुर्याम धर्म भी कहते हैं और इसका कारण यह बताया जाता है कि उनके द्वारा उपदेशित महाव्रतोंमें ब्रह्मचर्य व्रतकी गणना नहीं थी, केवल अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह ही थे और भगवान् महावीरने उनमें ब्रह्मचर्यको सम्मिलित करके व्रतोंकी संख्या पाँच कर दी । कुछ आधुनिक विद्वान् भ्रमवश यह भी कथन कर दते हैं कि वर्तमान

द्वेष्टाभार सम्प्रदाय मूलमें कार्यकी विध्याभ्यासके विचारोंके प्रभावित है। जब कि विचार्यर सम्प्रदाय बड़ापीरकी आस्थाप है। किन्तु हमने कोई कन्वेंट नहीं है कि वास्तवकी विवरणरमणताके साथ बड़ापीर एवं मुक्तके समान एक विषयमान है। बीजक-केपी बंधारकी बढमा हम वास्तवकी मूलक है कि वास्तवगतताके बड़ापीरःस्थानान साथ वतितक बढीके बड़ापीरके बढीयके कन्वेंट रकते है बत उपर केना केपीना बड़ापीरके प्रभाव विषय बीजक समचारके साथ विचार-विमर्श हुआ और कनककन है बतबैर प्रतिष्ठाप कर दिये गये। एक ऐसी भी अनुमति है कि बीजक केके मूल प्रवर्तक मुक्तकीति तथा उनके साथी कार्यपुत्र एवं श्रीरुपकायन आदि आत्मनके वास्तवकी प्रमणताके ही साथ है। ये मुक्तकीति एवं बीजक मुक्त है। बचता उनके कोई बीज मुक्त, यह कहना कठिन है।

[illegible]

रचना कर रहे थे । वेदोपर नियुक्त आदि टीकाएँ भी रची जा रही थीं । साथ ही कपिल, कणाद, गौतम, जैमिनी आदि ऋषि सांख्य, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, योग आदि षड्दर्शनोंका विकास कर रहे थे । षड्वेदांगों को भी व्यवस्थित रूप दिया जा रहा था और उनके अन्तर्गत तर्क, छन्द, व्याकरण, अलंकार, ज्योतिष आदि तथा उपांगके रूपमें आयुर्वेद प्रभृति लौकिक विद्याओंका सृजन भी प्रारम्भ हो रहा था । वानप्रस्थ आश्रम एवं प्रज्ज्याका तथा विद्याभ्यास, साहित्य साधना, तपश्चर्या एवं तत्त्वचिन्तनका जोर वेदानुयायी समाजमें भी बढ रहा था । दूसरी ओर श्रमण परम्परामें यह लोकश्रुति जोरोंपर थी कि इस कालमें अन्तिम तीर्थंकरके रूपमें एक महापुरुष जन्म लेगा । अतएव उक्त परम्पराके अनेक विचारक एवं सुधारक अपने-आपको तीर्थंकर घोषित करके अपने-अपने मन्तव्योका प्रचार करने लगे । मखल्लिगोशाल, पूरण कश्यप, पकुष कात्यायन, अजित केशकम्बलिन, सजय वेलट्टिपुत्त, शाक्यमुनि गौतमबुद्ध, निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र महावीर इत्यादि व्यक्तियोंने यह दावा किया । बौद्ध अनुश्रुतिमें उपरोक्त (बुद्धके अतिरिक्त) छह तत्कालीन तीर्थंकाका उल्लेख है । जैन अनुश्रुतिमें भी इन विभिन्न एकान्तिक विचारकोंका उल्लेख है । उससे तो यह भी पता चलता है कि उस कालमें छोटे बड़े मिलाकर कुल ३६३ 'पापंड' या धार्मिक सम्प्रदाय प्रचलित हो रहे थे जिनमें उपर्युल्लिखित ब्राह्मण एवं श्रमण विचारक और उनके मन्तव्य प्रमुख थे । सदाचारकी इस प्रबल लहरकी प्रतिक्रियाके रूपमें उच्छृंखल एवं नास्तिक लोकायत या चार्वाक मत-जैसे भौतिकवादी मार्गका प्रचार भी प्रायः उसी कालमें हुआ जो अनेक तथा अधिक विकृत रूपों एवं गुप्त सम्प्रदायोंके रूपमें चिरकाल तक बना रहा । गोशालका आजीवक सम्प्रदाय भी मध्यकालके प्रारम्भके कुछ पूर्व तक चलता रहा । ब्राह्मण परम्पराके षड्दर्शन और वैदिक एवं उपनिषदिक अन्य विचारधाराएँ भी स्वतन्त्र सम्प्रदायोंका रूप तो न ले सकीं, किन्तु उन सबके समन्वयसे तथा श्रमण विचारों एवं मान्यताओंको

नौ आर्थिक रूपसे आत्ममान् करने हुए बाजारस्थलों एक ऐसे बलिदान का योग्य दर्शन करके एवं विद्यमान हुआ भी अपनी अनेकविध बहुधा प्राप्त विरोधी मान्यताओं विधानों विचारों प्रथाओं एवं व्यवस्थाओं आदिसे प्राप्त कोशिश एवं श्रमक होता गया तथा यहाँ तक कि प्राप्तताधिकारों बहुमानक बहु मान्यता प्रदान करने बन गया ।

[illegible]

दाशनिक एवं तात्त्विक उल्लंघनोंमें उन्होंने उल्लंघना नहीं चाहा। जो उन्हें उचित जँचा ऐसे सदाचारके उपदेश-द्वारा उन्होंने सत्तारी मनुष्योंके दुःख निवारणका प्रयत्न किया। बोधि प्राप्त होनेके उपरान्त उन्होंने सारि-पुत्र मोद्गल्यान, आनन्द आदि कुछ व्यक्तिगणोंको अपना शिष्य और साथी बनाया। वाराणसीके निवृत्त सारनाथ (ऋषिपत्तनके) मृगदासमें उन्होंने पहले पहल अपना उपदेश दिया। कुछ सत्कालीन राजाओंने भी उन्हें आश्रय दिया।

उनकी मृत्युके उपरान्त उनके भिक्षुसभमें मतभेद उत्पन्न हुए। उनके मौखिक उपदेशका शिष्योंने त्रिपिटकोक रूपमें वर्गीकरण भी किया। उनके कुछ उत्साही शिष्य उनके धर्मका प्रचार दृढ़ता एवं कुशलताके साथ करते रहे। फिर भी सम्राट् अशोकके समय तक बुद्ध धर्मकी स्थिति दृष्टाढोल ही रही। अशोकने बुद्ध धर्म अंगीकार किया था नहीं, इसमें मतभेद है, किन्तु बालान्तरकी विदेशी बौद्ध अनुश्रुति उसे बौद्धधर्मका सर्वमहान् संरक्षक घोषित करती है। कमसे कम इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि अशोकके शासन कालमें ही बौद्ध धर्मका पाटलिपुत्रमें जो सम्मेलन हुआ उसीमें यह निर्णय किया गया कि बौद्ध धर्मके रक्षार्थ एवं प्रचारार्थ बौद्ध भिक्षुओंको विदेशोंमें भी जाना चाहिए। अस्तु, अनेक बौद्ध प्रचारक तिब्बत, चर्मा, सिन्धु तथा मध्य एशिया आदिकी ओर बिना किसी बाधा और कष्टकी परवा किय चले गये और उन्होंने वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार किया। चीन और तदनन्तर जापानमें भी थोड़े समय पश्चात् वे पहुँच गये। स्वयं भारतमें आनेवाले यूनानी, शक, पल्लव, कुषाण, हूण आदि विदेशी राजाओंमेंसे भी अनेकने इस धर्मको प्रोत्साहन दिया। भारतीय-यवन मिनेण्डर और कुषाण सम्राट् कनिष्कका नाम बौद्ध धर्मके प्रसिद्ध समर्थकोंमें लिया जाता है। बादके भारतीय नरेशोंमें हर्षवर्धन और वगलके पालवशी नरेश बौद्ध धर्मके अनुयायी एवं प्रबल पोषक थे। किन्तु हर्ष (७वीं शताब्दी) के उपरान्त ही बौद्धधर्म भारतवर्षसे

एक बरके साथ प्रियेदिन होने लगा और ११वीं-१२वीं जनवरी तक ए
देखने उनका साथ साथ टोप ही लगा । शिशु साथ ही बीच काफ़
बनी, लंबा दिग्ग-प्रतिष्ठा पूर्ण होनपर और अधिक बनेक विरोधोंमें यह बने
पने पने कोरकर्म हो गया । आज संसारको अनर्हताका बने बने
साथ इनी बनेका अनुयायी है और इनी कारण बहुत बहुत बनेकी बनेका
संसारके लम्बेपानीय बहुत बहुतपानीय लम्बे बने प्रकृतिमें ही जाती है ।
यह लम्बे ही बनेबनेका है कि बहुत बनेका बनेका बनेका बनेका बनेका
विशिष्टता संसार बनेका और विशिष्टीकरण भारतमें न होकर बने-
बनेका बनेका और फिर बनेका बनेका भारतमें ही होता है । लम्बे
भारतमें बहुत एवं कोरकर्मके इतिहास बनेका ही बनेका बनेका है । ही ही
विरोधों द्वारा ही प्रकृति होती है । बहुत ही विशिष्टता निर्बल करनेके लिए
ही द्वारा बनेका बनेका ही भारतीय साक्ष्य नहीं है । बनेके लिए ही विशिष्टता,
विशिष्टता बनेका और बनेका (बनेका) अनुयायी ही निर्बल होता
बनेका है और इन बनेका बनेका बहुत बनेका है । बनेका बनेका विशिष्टता
ही बनेका बनेका बहुत बनेका है । बहुत विशिष्टता विशिष्टता बनेका बनेका
बनेका बनेका बनेका है । १८३१ बनेका है । बहुत बनेका ८ बनेका
ही बनेका बनेका बनेका है । १९११ में बनेका बनेका है । बनेका १ बनेका
ही बनेका बनेका बनेका बनेका बनेका बनेका बनेका बनेका बनेका बनेका
बनेका है और बनेका बनेका १८ बनेका बनेका बनेका बनेका बनेका बनेका

इस मुन्के महापुरुषोंमें अर्थाधिक अन्धकारीय विद्या मुन्के महि
 मन्त्राधीन प्रथम महावीरका था । स्वर्ग मुन्के इनके हीमें अर्थाधिक नै
 मौर अन्धकारी अन्धकार करते थे । अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन
 हीमेंही अन्धकाराधीन ही यह अन्धकाराधीन ही है । अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन
 अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन २३ अन्धकाराधीन ही मुन्के नै अन्धकारी
 अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन
 अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन
 अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन अन्धकाराधीन

समय कुछ कालके लिए भले ही कुछ विवादग्रस्त रही हो किन्तु महावीर-द्वारा धर्मचक्र प्रवर्तनके उपरान्त उसमें किसीको कोई सन्देह नहीं रहा । उन्होंने न किसी नवीन धर्मका प्रचार करनेवाला दावा किया, न कोई नवीन मार्ग खोज निकाला, न किसी देवी-देवता या दैवी अथवा गुप्त शक्तिका आश्रय लिया और न किसी राजा महाराजाको ही सहायता चाही । उन्होंने एक सामान्य मनुष्यके रूपमें जन्म लिया, एक सामान्य समारी मनुष्यके रूपमें बाल्यावस्था एवं कुमारकाल व्यतीत किये, और स्व पुरुषार्थ द्वारा अपनी आत्माको उन्नतिके चरम शिखरपर पहुँचा दिया । आत्म-कल्याणके चिर-प्रचलित एवं तीर्थंकरों-द्वारा प्रणीत मार्गका उन्होंने अपने जीवनमें शुद्धतम एवं श्रेष्ठतम रूपमें अवलम्बन करके उसका औचित्य चरितार्थ किया था और लोक-कल्याणार्थ उसका उपदेश दिया था । यही महावीरकी सबसे बड़ी विशेषता थी और इसीके कारण विश्वके महापुरुषों-के उस महायुगमें भी वह अपना विशिष्ट स्थान रखते थे । आज भी, न केवल वह जैनधर्मके इतिहासके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं वरन् प्राचीन भारतके इतिहासमें तथा विश्वके धर्मोंके इतिहासमें भी उनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । जैनधर्मका तो जो कुछ वर्तमान रूप है तथा उसके गत ढाई सहस्र वर्षोंका जो कुछ इतिहास एवं संस्कृति है, उस सबका सर्वाधिक श्रेष्ठ अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरको ही है ।

चैत शुक्ल १३ (३० मार्च सन् ईसवी पूर्व ५९९) के दिन प्राचीन भारतके द्राव्य क्षत्रियोंके प्रसिद्ध वज्रिसद्य नामक गणतन्त्रके अन्तर्गत कुण्डग्राम (क्षत्रिय कुण्ड) के शासक वशी काश्यप गोत्री क्षत्रिय नेता सिद्धार्थकी पत्नी त्रिशला देवीने वर्धमान महावीरको जन्म दिया था । यह कुण्डग्राम उक्त वज्रिसद्यकी प्रधान राजधानी वैशाली (जिसकी पहचान बिहार प्रदेशमें मुजफ्फरपुर जिलेके बनाड़ नामक स्थानसे की गयी है) के निकट स्थित था । उक्त सद्यके अध्यक्ष वैशालीके लिच्छवी राजा

पेटक महावीरके मायापहचने । विष्णुजकी ज्येष्ठाके महावीर कथक पुन
 जयवा माजुपु और नमस्स भी कहकते से कवकि माजुपुकी ज्येष्ठाके से
 किम्बदन्ति एक मैत्राकिम कहकते । इनको जना विमला आरवाय
 मित्रकारिणी निरेहवता भी कहकती थी इन कारण से रिद्ध वा रिद्धेहि
 भी कहकते और अविनीर, रम्भिनीर म्हापार बर्दमान आदि विद
 विद नाम का कथाविनी इन्हें कवर-कम्पवर विद-विद कारणोंसे प्राप्त
 हुई । म्हापार पेटकके इन पुन से जिनदे-के ज्येष्ठ पुन त्रिहु जयवा विष्णु
 बलिबलके प्रसिद्ध जयवा केनापदि से । म्हापार पेटककी दीव बल
 पुत्रियेमें-के जेना कवकनरेय मैत्रिक विम्बहारके साथ विवाही थी, हुनी
 मैत्राज्मीनरेय पठापीनके साथ, बीरपी बधार्न देयके राजा कपरके
 साथ बीबी विष्णुजनीरक म्हापार जयमके साथ और चंदरी कथमि-
 नरेय बज्जयसेनक साथ विवाही थी । राज की ज्येष्ठा और कज्जा बाल-
 क्कपपरिणी पुनारी ली और म्हाजीनके उपदेवके कथिका कपी ।
 पेटकका कवस्य परिवार महावीरका जल वा । कवके विविध वायज
 भी जो जल कपरके प्रसिद्ध नरेय से महावीरके जल ली । उनके कथि-
 रिमन बज्जके राजा कथिबज्जन बज्जिन-नरेय शिखन वा महावीरके कृष्ण
 भी से, बायसी-नरेय ज्येष्ठियु, कपुनके राजा कथिरीर । ईशान्यनरेय
 बीजानर, पोरकपुर-नरेय विजयन बज्जयपुरके राजा विजयकेन पांदाक-
 नरेय वा जय इमिन्नापुनका राजा रत्नदि ज्येष्ठ ताकाजीन पदे-महापार
 महावीरके कपदेवके प्रचारित हुए बज्जने जाते हैं ।

कथिन्नानरेय मित्रजुकी जन्मा कपीनके साथ महावीरके विवाही
 बल कपी थी । एक पाकरनके अनुसार कनका बहु विवाह हुआ थी वा
 और इनके एक कन्धाका भी कनका हुआ वा । किन्तु कनका विद भारमके
 ही संनार-नेह-नीनीके निराल वा और बीरका बज्जान करनेकी कपनी

कव कव म्हापारिके म्हापार केन वा बीरके कपुन से ।

उत्काट भावना था। अतएव घरवालोंके आग्रहको उठाने अमार्ग किया और तीन वर्षको आयुमें मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी (११ नवम्बर, ई० पू० ५७०) के दिन इस बालघ्नहाचारी राजकुमारने ममस्ता नासारिष वैभवको गत मार्ग वनकी गह ली। बारह वर्ष पर्यन्त उन्होंने दुर्द्धर तपश्चरण बिना और इस प्रकार अपनी आत्माको सद्य प्रकाशकी मम-वालिमान्न शुद्ध एवं पवित्र बना लिया। इस बोधमें न उन्होंने उपदेश दिया और न शिष्य बनाये तथा अनेक उपमग एवं परीपट्ट सहन किये। अन्तमें बयालीस वर्षकी आयुमें वैशाख शुक्ला दशमी (२६ अप्रैल, ई० पू० ५५७) के दिन विहार प्रान्तमें जम्भक ग्रामके बाहर श्रृङ्गुला नदीके तटपर एक शालवृक्षके नीचे ध्यानस्थ बैठे हुए महावीरको बलज्ज्ञानकी प्राप्ति हुई—और वे सबज्ञ, सबदर्शो, अहत् परमात्मा हो गये। वहाँसे चलकर वे राजगृह अपरनाम पंचशैलपुरक बाहर स्थित विपुलाचल पर्वतपर पहुँचे और उमी वर्षकी श्रावण कृष्ण प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल उक्त पर्वतपर उनकी समवशरण सभा जुड़ी और उनका सर्वप्रथम उपदेश सर्वग्राह्य अममागधी नामक लोकभाषामें हुआ, यही उनका धर्मचक्रप्रवर्तन था। मगध सम्राट् विम्बिसार-श्रेणिक उनका सबप्रमुख श्रोता था। इन्द्रभूति, गीतम, अग्निभूति, वायुभूति, आयव्यक्त, सुधम, मण्डिकपुत्र, मौर्यपुत्र, दकम्पित, अत्रल, मैत्रेय और कौण्डिन्यगोत्रा प्रभाम उनके ग्यारह गणवर या प्रधान शिष्य थे जिनकी अव्यक्षतामें अनेक श्रमण मुनियोंके गण या सघ मगटित हुए। महामती चन्दना उनके आश्रितोंकी अव्यक्षा थी और मगधकी सम्राज्ञी चेलना श्राविका सघकी नेत्री थी। इस प्रकार मुनि-आश्रित-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघके रूपमें सुव्यवस्थित जनसमुदायको बिना किन्हीं यण, वर्ग, जाति, लिंग आदिके भेदभावके महावीरने अपना उपदेश दिया। तीस वर्ष पर्यन्त विभिन्न देश-देशान्तर्गमे विहार करके उन्होंने लोककी मुक्तिका मार्ग दिखाया। पूर्वोक्त सभी प्रसिद्ध राज्यों और उनकी राजधानियोंमें उनका विहार हुआ और तत्कालीन प्रसिद्ध राजा-महाराजाओंमें ने अवि-

नाम के कारेहारे प्रभावित हुए। हमने-वे जानेकोने वैन मुनि हस्तर
 बालप्रधान किया। हमने अपनेहोका छार बीतमार्दि बचवरोने इतबान
 कुठके रूपमें पूजा कीर रही विपुल वैन नामिक ताक्षितका मुख्य
 बना। अन्तमें काठिक कुल्ल बमालस्या संवत्सार, १५ अक्टूबर (१
 ५२७ या विष्णुपूर्व ४७० तथा अक्षय्य ९ ५ के आठवाला सुबोर्नके
 पूर्व अक्षय्य पालके कमल-हरोवारके बम निकट हीपाकार एक इलेके
 म्हावीरने निर्वाण लाभ किया। पाराभा उत्कलसीन राजा मन्मथी
 आत्मधारी इतिहास था। कहा जाता है कि इन कमल अनेक ली-
 पुक्तों कीर राजा-म्हापराबीने निम्न की मल्ल एवं की निष्कवि गौर
 अनुष्ठान के बचवाला निर्वाणोत्पन्न बनाया कीर पवित्रो वीरोहण किया।
 लकीके वीपावसीके लोहारकी लोकमें प्रवृत्ति हुई बतायी जाती है। म्हावीरने
 प्रचलन सिद्ध बीतम-बनेहको कही कमल कैवल्यजल हरीकी कर्मजि
 हुई मल रही उपलब्धमें बनेह एवं कम्भीके पुनका एवं फर्नर प्रचलन
 हुआ कहा जाता है। लोकमें म्हावीर निर्वाण लोक्तकी प्रवृत्ति रही कम्भी
 हुई। लीकेकर म्हावीरका विद्वान् कल्लम सिद्ध था। एक मल्ल संवत् ३०१
 उनके ही नामसे वर्षमानकर कहा गया।

म्हावीरके जीवनकाखी ही उनके लक्षण नाम कमल मल्ल मल्ल
 हो गये थे जो उनके हाथ मुख्यरहित वगुविह उनके करण थे।
 गौर ग्राह्य बचवाली बालप्रधानों की वनों का कुठोमें निवसत था।
 नाविकामोने कही वनों एवं वाटिकोके ली-पुल्ल इतिहास
 । पारवर्षके जल बल्लेक भागमें म्हावीरके अनुयायी थे भारतके बघर
 की बाल्मार, वनिका चरकोक आदि वीरोंमें उनके वचन थे। उनके वलि-
 तिन अनेक स्थिति पर्व आदि पूर्व लीकेकोके कल्लम की बने रही।

म्हावीरके अपनेहोका छार बद्धिवादाय कर्मचार साम्प्रदाय एवं
 लयाार कन वगुहण बर्ष था। बद्धिवा लक्षणों जितना अधिक स्थित
 लक्ष, ईश एवं व्यावहिक कन, लीकामिक एवं व्यावहारिक लीकी ही

दृष्टिप्राप्ति महावीरने दिया उनका सम्मननया अन्य किसी धर्मापदेशाने नहीं दिया। जैन धर्मको समझा अन्तिम विकसित रूप देनेका श्रेय अन्तिम तीर्थंकर महावीरको ही है।

महावीरके निर्वाणोपरान्त जैन नयका नायकत्व उनके प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतमको प्राप्त हुआ। महावीरका शिष्य होनेके पूर्व वह एक महान् वेदशास्त्रज्ञ प्रकाण्डब्राह्मण पण्डित थे। महावीरके उपदेशोंको गृहस्थावद्ध, व्यवस्थित एवं वर्गीकृत रूपमें संकलित करनेका श्रेय इन्हींको है। ये बौद्धधर्म प्रवक्तृ गौतम बुद्ध एवं पायसूपकार अक्षयपाद गौतमके समसामयिक होते हुए भी उन दोनोंसे भिन्न व्यक्ति हैं। ये भी अर्हत् देवली थे और महावीर भवत् १० (ई० पू० ५१५) में निर्वाणको प्राप्त हुए। इनके पश्चात् सुधर्माचार्य मघनायक हुए। यह भी अर्हत् देवली थे और म० न० २४ (ई० पू० ५०३) में निर्वाणको प्राप्त हुए। उत्पश्चान् जम्बूस्वामी जैनसंघके नायक हुए। ये चम्पाके एक कोट्याश्रीन श्रेष्ठिके पुत्र थे और महावीरके प्रभावसे उनके शिष्य हो गये थे। जैन मुनिके रूपमें मयुरगनगरके चौरासी नामक स्थानपर इन्होंने तपश्चरण किया था। म० स० ६० (ई० पू० ४६५) में जम्बूस्वामीको मोक्ष हुआ। एक अनुश्रुतिक अनुसार मयुराके चौरासी क्षेत्रसे ही इनका निर्वाण हुआ किन्तु एक अन्य मान्यताके अनुसार राजगृहके त्रिगुलाचलपर यह घटना घटी थी। महावीरकी शिष्य-परम्परामें जम्बूस्वामी अन्तिम देवली थे। मयुरा नगर और शूरसेन देशमें इनके द्वारा जैन धर्मका अत्यधिक प्रचार हुआ। इनके पश्चात् विष्णुकुमार, नन्दिमित्र, अपराजित, गोषर्दन और भद्रबाहुने क्रमशः मघका नेतृत्व किया। ये पाँचा ही श्रुतकेवली थे अर्थात् इन्हें सम्पूर्ण श्रुतका यथावत् ज्ञान था। इनमेंसे अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुका मृत्यु म० स० १६० (ई० पू० ३६५) में हुई। जैनधर्मक इतिहासमें इन आचार्यका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके समय तक जैन संघ अखण्ड अविभक्त रहा था, किन्तु इनकी मृत्युके उपरान्त उसके

छात्रजीमें बतयेर संभयेर देखयेर जाचारयेर बाधि पलाय होले
 एक हो गय । महावीर-बाप उपदेष्टित बच-पुर्खा की
 पुर्बजाग बरके समय तक अविच्छिन्न बा बहू की बीरे-बीर विच्छिन्न
 होले गया । यह बात पुन-विच्य परम्परासे मौलिक द्वारत बहया
 गया बा बीर बड़ी प्रकार बरके गई हो बर्य बाब तक बहया
 गया । यह भी एक कारण बा कि बतका कने-कने अविच्छिन्न हान
 होला गया । उपरोक्त मठमेंधरिया एक बरके बड़ा बापू निमित्त पय्य
 देखली बरकेबाका बहू हाथकेबर्बाय पद्याधुधिक बा मिशकी कने हान
 बापू पुर्ब बचना पाकर बाबाई माइबापू कने छहता धिबोके छान
 बहिन देखकी विहाय कर गये थे । पुनितकी उपचारिके उपरान्त की
 इस छात्रबोका मूक एवं अनुनाय बनिब देखमें हो स्वायी कने छह गया ।
 बीनबर्ब बड़ी बहूके हो अविच्छिन्न बा बीर इस सुनिबबके गम्भाधमसे बहू
 बीर अविच्छिन्न हो गया । कथारिक देखके धरबबैकपोल नामक स्वाय-
 की कनेया प्रभाव केन्द्र बकाकर बहू दक्षिणीय निम्न धरबबनब दक्षिण
 भारतके विचित्र प्रवेष्टीसे गया भारतीय स्वाहाधमकी हापदिकासे बीन
 बनीया प्रचार एवं प्रसार कनेमे संकल हो गया । इन सबका विचार की
 छान-कने देखकरकी परिस्थितियोंके अनुसार बहू हो गया । बहर
 निम्न हो छात्र ऐसे भी थे की दुर्भिक्षके समय पचबने हो यह बने थे
 निम्न दुर्भिक्षके दुर्भिक्षमें वे अपन कनेर नियम-समय जाचार-विचारकी
 जायमानुबुध दुरिक्षित न रख बने । इनमे गाना प्रकारके शिक्षाचारके
 बीन बचन हो बने । जायाम स्तुतामने कनेया नेगुन किया निम्न वे भी
 बहूते हूह विविधचार एक जायके हानकी रक्षकमें समय न हो तक ।
 बाबाधरब इन समयका जायाम जायबने पाटकिपुनबा परिपन्न बरके
 छात्रोंकी जायाम कने बचन की उपरान्त बहूति भी बीर अविच्छिन्न
 बनिबकी बीर मकर बीरपुन बलभीपुनकी कनेया स्वायी केन्द्र
 बनाया । इसी छात्राक छात्र कने ईश्वरीका प्रभाव बहूतीके बहूने स्नेहाभर

सम्प्रदायके जनक बने । इन दोनों शाखाओंके अतिरिक्त उत्तरपथके विभिन्न भागमें और भी अन्य अनेक जैन साधु थे । इनसे-से अधिकतरने कालान्तरमें मथुरा नगरको अपना प्रमुख केन्द्र बनाया और इनका विकास भी स्वतन्त्र रूपसे हुआ । मथुरा आदिके जैन साधु महावीरके महासत्तावर्द्धमें कर्णटकी या मागधी एवं पश्चिमी साधुओंके बीचकी एक महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हुए । इस प्रकार महावीरके निर्वाणके उपरान्त जैनमध निरन्तर प्रगति एवं विकासकी ओर अग्रसर होता गया और अनेक कालदोष, विकार एवं भेदादिके उत्पन्न होते रहनेपर भी तीर्थङ्करके मौलिक सिद्धांतोंका प्रचार देश-देशान्तरमें बढ़ता गया ।



धर्म रहा प्रतीत होता है। राज्यक्रान्तिके उपरान्त इस वंशके प्रारम्भिक नरेशोंमें सर्वप्रसिद्ध राजा श्रेणिक विम्बिसार था। हिन्दू पुराणोंमें उसके पिताका नाम जिघृनाग या दौघुनाक, बौद्धसाहित्यमें भट्टि और जैन अनुश्रुतिमें उपश्रेणिक मिलता है। श्रेणिकके कुमारकाशमें ही उसके पिताने किसी कारण कुपित होकर उसे राज्यमें निर्वासित कर दिया था और अपने दूसरे पुत्र चिलातिपुत्रको अपना उत्तराधिकार सौंप दिया था। अपने निर्वासन कालमें श्रेणिकने देश देशान्तरोंका भ्रमण करके अनुभव प्राप्त किया। इसी कालमें वह कतिपय जैनतंत्र धर्ममें माधुओंके सम्पर्कमें आया और उनका भक्त हो गया तथा जैनधर्मसे विद्वेष भी करने लगा। कुछ अनुश्रुतिपत्रोंके अनुसार वह बौद्ध हो गया था किन्तु यह बात असम्भव प्रतीत होती है क्योंकि महावीरके केवलज्ञान प्राप्ति (ई० पू० ५५७) के पूर्व ही यह फिरसे जैनधर्मका अनुयायी बन चुका था और उस समय तक बहु-माय मतके अनुसार बुद्धने अपने धर्मका प्रचार प्रारम्भ नहीं किया था। श्रेणिकका भाई चिलातिपुत्र राज्यकार्यमें विरह्य था और उसने दत्त नामक जैन मुनिसे वैभार पर्यंतपर मुनि-दीक्षा ले ली। फलस्वरूप सन ई० पू० ५८७ के लगभग श्रेणिक विम्बिसार मगधके सिंहासनपर बैठा। उसने राजधानी राजगृहका जिसे गिरिवृज या पंचशैलपुर भी कहते थे, पुनर्निर्माण किया एवं राज्यका संगठन और शासनकी व्यवस्था की। उसके तथा उसके वंशजोंके प्रयत्नसे यह सुन्दर महानगरी मगध साम्राज्यकी ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतवर्षकी प्रधान राजधानी बन गयी। उसके सिंहासनाब्द होनेके समय मगधका राज्य न विशेष बड़ा था और न वल्लवान। कोसलराज्य एवं वैशालीके वज्जिसंघकी सीमाएँ इससे सटी हुई थीं। श्रेणिककी महत्वाकांक्षाका आभास पाकर वैशाली नरेश चेटकके नेतृत्वमें कोसल तथा वज्जिसंघकी सेनाआने मगधपर आक्रमण कर दिया, किन्तु चतुर श्रेणिकने अवसर देखकर सन्धि कर ली। इतना ही नहीं, उसने चेटककी पुत्री चेलना और कोसलकी राजकुमारी कौशलादेवीके साथ

युक्त इन जनतन्त्रात्मक समस्याओं द्वारा उनसे साम्राज्यके उद्योग प्रत्या, व्यवसाय और व्यापारकी भारी प्रोत्साहन दिया। ये श्रेणियाँ ही आगे चलकर वतमान जानियोंके रूपमें धीरे-धीरे परिणत हो गयी। मन्नाद् श्रेणिक जनपदाका पालक एवं पिता कहा गया है। वह दयाशील एवं मर्यादाशील था, साथ ही दानवीर एवं निर्माता भी था। राजधानीके पुनर्निर्माणके अतिरिक्त सम्मेलनशिवर पर्वतपर जैन निषिद्धकाँ तथा अय्य जिनमन्दिर, स्तूप, चैत्यादि उसने बनवाये बताये जाते हैं। राजगृहके प्राचीन भग्नावशेषोंमें उसके नमयकी मूर्तियाँ आदि भी मिली बतायी जाती हैं। अपनी अग्रमहिषी एवं प्रिय पत्नी चेल्नाके प्रभावसे श्रेणिक जैनधर्मका भवन हो गया था। चेल्ना स्वयं महावीरकी मौमी (या ममेरी बहन) थी। महावीरका प्रथम समवशरण श्रेणिककी राजधानीके ही एक महत्त्वपूर्ण भाग, विपुलाचल पर्वतपर जुड़ा था और वही ई० पू० ५५७ की श्रावण वृष्ण प्रतिपदाको उनका सत्रप्रथम धर्मोपदेश हुआ था। महाराज श्रेणिक सपरिवार एवं सपरिस्कर उक्त समवशरण मन्नामें उपस्थित हुआ था और श्रावकोत्तम कहलाया था तथा महावीरके श्रावक नषका नेता बना था। कहा जाता है कि श्रेणिकने भगवान्‌में एक-एक करके साठ हज़ार प्रश्न किये थे और उन्होंने उन सबका समाधान किया था। इन प्रश्नोंके उत्तरा-के आधारपर ही विपुल जैन साहित्यका रचना हुई। उसकी, साम्राज्ञी चेतना श्राधिका सत्रकी नेत्री हुई। उसने अपनी समस्त सपत्नियों-महित महामती चन्द्रना आर्याके निकट धर्मका अध्ययन किया बताया जाता है। श्रेणिकके अभयकुमार, मेघकुमार, वारिपेण, कुणिक आदि कई पुत्र थे। इन सबमें अभयकुमार जेठे थे। यह अत्यन्त मेधावी, राजनीति निपुण एवं धर्मात्मा थे। श्रेणिकके जीवन कालमें ही वह अपने भाइयोंके साथ जैन मुनि हो गये थे। अतएव श्रेणिकने कुणिक अपरनाम अज्ञातशत्रुको जो कि महारानी चेल्नासे उत्पन्न हुआ था, राजपाट सौंपकर एकान्तमें धर्मध्यानपूर्वक शेष जीवन बितानेका निश्चय किया। राज्याधिकार पाने-

पर कुपितने देवराजके बहूबालेके अपने पिता श्वेतिकनो बन्दीपुत्रने बात
 किया किन्तु मन्त्राके वर्जना करनेपर वही परमात्मा हुआ और वह पिताके
 जवा मीने और वने जन्मन मुक्त करनेके लिए बना । श्वेतिक सबसे
 जन्मधिक स्नेह करता था किन्तु वने इन प्रकार जाता ईश्वरक यह यह
 समझा कि वह वने बारमेके लिए जाया है । जग बन्दीपुत्रकी रीतिरिति
 फिर कोइकर श्वेतिकने जन्ममत्ता कर ली । इन प्रकार इन मन्त्र प्रजापति
 एवं वर्जना करेगा तथा जबवने प्रथम ऐतिहासिक सत्कारका अनुमान
 हुआ । पावनपुत्र विद्याक नीरज की यह बहूत्वमय करके उत्तराय रात्र
 बहू जाये तो पयितनके स्वहनुर्वक बन्दी उपजायेके विरत करनेका प्रयत्न
 किया था ।

जगपतम् बुद्धि—जाने पिताके जीववकाशने ही (ई. पू.
 ५३५ ई.) प्रथमके सिद्धांतपर आधीन हो गया था । उसके पुत्र आठ वर्ष-
 के यह बन्दीपकी राजधानी जगताया यात्रक रहना जाया था । ३२ वर्ष
 राज्य करनेके उपरान्त ई. पू. २१ ई. जगपतपुत्री मृत्यु हुई । यह
 एक बहान् जगती यात्रक था और योग्यताक अथवा विभिन्नताक दोष
 उनके जगपतपुत्रने अपनी कठिने परिस्थितिपर प्रतीक बना था । इसने
 जल-वक-कीपमसे जगपत जगता जन्मधिक विस्तार किया । कोइक और
 परिश्रमकी बहुलता यति ही प्रथमके लिए सबसे बड़े प्रथम कारण की
 और प्रथमी कठिने प्रथम यात्रक था जगपत जगताकने यह और
 बुद्धिने यह दोषी जगतीकी यतिनी द्विप-विप करनेका प्रयत्न किया ।

कोइककी राजधानी इन प्रथम जगती की और इनका राजपुत्रकी
 परम प्रथमिन् जगपत जगता मन्त्राकी एवं प्रथिप यात्रक था । जग
 जिला विपविद्यालयने इनने जिला जगती की जग यह सर्व विज्ञान था और
 विज्ञानीका आदर करता था । जगपतपुत्रके जग बुद्धि जात्राय केपी जगके
 पुत्र थे । ईश्वरकी तथा आदरक यतिनि ही प्रथम दूर बनाये जाते हैं ।
 प्रथमिन् बहूधीरका जग था और मन्त्राक बुद्धि की जन्मधिक

आदर करना था। त्रिभुवनसार और चेटक का वह मित्र था, किंतु अब उसकी वृद्धावस्था थी और उसके पुत्र अयोग्य थे। उनके पुत्र युवराज विदुडभने पिताकी इच्छाके विरुद्ध स्वयं गौतमबुद्धके जीवनकालमें ही उनकी जन्मभूमि कपिलवस्तुपर नयकर आक्रमण करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। अज्ञानशत्रुने अवसर देव कोसलपर आक्रमण कर दिया और उसे पराजित करके उसका बहू भाग अपने साम्राज्यमें मिला लिया। अब उसने वैशालीकी ओर ध्यान दिया। लिच्छवि क्षत्रियोंका यह प्रसिद्ध वज्जिसभ एक आदर्श गणतन्त्र राष्ट्र था। उनकी विधि-विधान आजकी जनतन्त्रीय प्रणालीसे बहुत-कुछ सादृश्य रखता था। जनता या नागरिकोंके प्रतिनिधि राजा कहलाते थे। इन राजाओंकी मर्यादा संहिता थी और वे वैशालीके मथागारमें बैठकर शुद्ध जनतन्त्रीय पद्धतिसे राजनैतिक तथा अथ लौकिक एवं धार्मिक विषयोंपर विचार-विमर्श एवं वाद विवाद करते थे जिनका निर्णय बहुमत-द्वारा होता था। मतदानमें गलाका (बैलट) का भी प्रयोग किया जाता था। उस राष्ट्रकी तथा लिच्छवियां अथवा वज्जियोंके चरित्रकी स्त्रयं महात्मा बुद्धने प्रणामा की है और उन्होंने अपने मधक सगठनमें भी लिच्छवियोंकी अनेक विधियांका अनुकरण किया। बुद्धघाप आदि प्राचीन वीटाचार्योंने भी उनके आचार-विचार एवं प्रथाओंके सुन्दर वर्णन किये हैं। महाराज चेटककी अब मृत्यु हो चुकी थी और उसका मित्र राज्य कोसल पराजित हो चुका था। फिर भी वैशालीपर खुले रूपसे आक्रमण करनेका अज्ञातशत्रुकी साहस न हुआ। अब उसने वस्मकार नामक एक घूत ब्राह्मणको वैशाली भेजा। वहाँ उसने अपने छत्र, कौशल एवं विश्वासघात-द्वारा वज्जिमधकी एकता एवं शक्तिको निबल कर दिया और अज्ञातशत्रुकी वैशाली विजय करनेका सुअवसर प्रदान किया। कई एक छोटे-मोटे राज्य भी उसने जीतकर अपने साम्राज्यमें और मिलाये और इस प्रकार अवन्ति नरेश पालककी, जिमने कि कौशाम्बी नरेश उदयनके वत्सराज्यकी विजय करके अपनी शक्ति और अधिक बढ़ा ली थी, छोड़कर सम्पूर्ण भारतमें मगध साम्राज्यका कोई प्रबल

था और अपने कुल-धर्म जैनधर्मका ही अनुयायी था। ऐश्वर्य के मतानुसार उसने जैन श्रावक के तम धारण किये थे। वह बुद्धका भी आदर करता था किन्तु उनका अनुयायी नहीं हुआ प्रतीत होता। बौद्ध साहित्यमें उसका घटो निंदा की गयी है और उस पितृहता कहा गया है। किन्तु जैन अनुश्रुतिमें उसकी प्रशंसा मिलती है। उसने मूर्ति निर्माण कलाको भी प्रोत्साहन दिया। महावीर आदि तीर्थंकराको मूर्तिप्रोक्ते अतिरिक्त स्वयं अपनी मूर्तियाँ भी उसने बनवाई प्रतीत होती हैं। परमेश्वर नामक स्थानस किसी एक मूर्तिको डॉ० फाशीप्रसाद जायसवालने स्वयं अजातशत्रुकी मूर्तिके रूपमें चिन्हा है और उनके मतानुसार वह उन्नीसवीं शताब्दी में निर्मित हुई प्रतीत होती है। अजातशत्रुने कई अभूतपूर्व युद्ध यन्त्रोंका भी आविष्कार किया था।

अजातशत्रुके पश्चात् ई० पू० ५०३ में उसका पुत्र उदयिन (उदयो, अजउदयो अथवा उदयामट) मगधक सिंहासनपर बैठा और विभिन्न मतोंके अनुसार उसने १६, २४, २५ या ३५ वर्ष राज्य किया। वह भी राज्य प्राप्त करनेके पूर्व अपने पिता कुणिकको भाँति अगदेशका शासक रहा था। जैन साहित्यमें उसका पर्याप्त उल्लेख मिलता है और वहाँ उसका वर्णन एक महान् जन नरेशके रूपमें हुआ है। उसने पाटलिपुत्र नगरका, जिस कुमुदपुर भी कहते थे और जिसके भग्नावशेष वर्तमान पटना नगरके निकट मिले हैं, निर्माण किया तथा राजधानीको राजगृहसे उठाकर पाटलिपुत्रमें ही स्थापित किया। इस राजाकी भी एक प्रस्तर मूर्ति मिली है। इसने मगधके एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी अवन्तिको भी पराजित किया और उस महा-राज्यका बहुभाग अपन साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया। अब प्रायः समस्त उत्तरा भारत मगध साम्राज्यके अन्तर्गत था। कुछ अनुश्रुतियोंमें उदयिक पश्चात् अनुष्ट, मुण्ड, नागदशक या दशक आदि अन्य राजे भी इस वंशमें हुए बताये जाते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि महावार स० ६० (ई० पू० ४६७) में मगधमें एक नये वंशका प्रारम्भ हुआ जिसे नन्दवंश कहते हैं और

का जन्मसम १५ वा १५ वर्ष पञ्चम मासाब्दे भूत्वा । एतौ वर्ष प्रथम-
नीलक पालकके नाम-नाम अर्थात्तः राज्य संस्था भी भवति । तथा और
राज्यीनी प्रथम मासाब्दे ही एक उत्तराधिकारी बन जाती ।

इस महीने हमके प्रथम मासाब्दका नाम विष्णु-विष्णु अनुपुत्रिणोमे विष्णु-
नाम वाक्यनामा मासाब्दिक पञ्चदशम अर्थात्तः पञ्चदशम मासाब्दिक
आदि भिन्ना है, विष्णु कई एक विभिन्न मासीका अर्थात्तः बार दिया
तथा प्रतीत होता है । एता अर्थ है कि इसका नाम अर्थात्तः विष्णुनाम
का और यह प्रथमका पुत्र आदि न होकर ही ही पुत्रता अर्थात्तः का
विष्णु का पुत्र अर्थात्तः अर्थात्तः ही अर्थात्तः । वा मासाब्दका नाम
नामकी प्रथमक लिखत कहती एक मुनि भी निनी भी विष्णु अर्थात्तः
'नामा' वा 'अर्थात्तः' नाम कहा था । यह नाम प्रथमके नाम अर्थात्तः
हीनेका अर्थात्तः ही और विष्णुनाम नाम अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः
हीनेका । अर्थात्तः अर्थात्तः हीनेके अर्थात्तः नाम अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः
हुआ । यह और हमके कुछ अर्थ अर्थात्तः अर्थात्तः नाम भी अर्थात्तः है ।
तमने १८ वर्ष पञ्च (ई पू ४४९ तक) राज्य किया अर्थात्तः होता
है । प्रथम मासाब्दकी एकता विष्णु एवं अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः
वही रही ।

इसका अर्थात्तः हीनेके अर्थात्तः नामाब्दिक वा । ई पू
४४९-४४९ तक ४२ वर्ष अर्थात्तः राज्य किया । यह एक अर्थात्तः अर्थात्तः
और प्रतीत भी है वा । न व १३ (ई पू ४२४) में अर्थात्तः
अर्थात्तः विष्णु की भी और एक अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः
(वा अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः) की अर्थात्तः यह अर्थात्तः अर्थात्तः
वा और अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः किया वा । अर्थात्तः
अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः
आदि अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः
अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः
अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः अर्थात्तः

मिलालेखमें विदित है कि उसके शासनकालमें राजपूतानेकी माघमिका नामक प्रसिद्ध नगरी जैनधर्मका प्रमुखा क्षेत्र थी, जैनोकी यहाँ ध्वजा बम्पी थी और न केवल वहाँ महावीरकी पुष्कल मायता थी वरन् लोक-व्यवहारमें महावीर सनका ही प्रचलन था । भारतमें गान्धिताके प्रचलनका यह सर्व प्राचीन उल्लेख है । नन्दिवंशीकी हता कटार-धारा की गयी बतायी जाती है । उसके उपरान्त उनका पुत्र महानन्दिन राजा हुआ जिसने लगभग ४० वर्ष राज्य किया । यह भी अपने पिताके समान शक्तिशाली एवं प्रतापी नरेश था । इसीके शासन कालमें म० न० १६२ (ई० पू० ३६५) में अन्तिम श्रुतयवली भद्रबाहुकी मृत्यु हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि इसी नरेशके शासनकालके अन्तिम वर्षोंमें यह अनुश्रुति-प्रसिद्ध द्वादश-वर्षीय भयकर दुर्मिथ्य पड़ा था जिसकी पूर्वसूचना पाकर आचार्य भद्रबाहु कई महान् विषय मुनियोंके साथ दक्षिण देशको विहार कर गये थे । सम्भवत यह राजा भी उक्त भयानक शिष्य था और उन्हींके साथ मुनि होकर दक्षिणको चला गया था । इस दुर्मिथ्य पारमें जैनधर्ममें प्रथम बार फूट पड़नेकी बीज पड़े । दुर्मिथ्यकी उपशांतिके पश्चात् स्यूगमद्रके नरतृयमें दवेताम्बर अनुश्रुतिका पहला जैन सम्मेलन एवं आगमा-की वाचना पाटलिपुत्र नगरमें इसी कालमें हुई और इसी कालमें बौद्धाकी द्वितीय संगीति भी पाटलिपुत्रमें हुई ।

महानन्दिनके उपरान्त मगधमें फिर एक घरेलू राज्यक्रान्ति हुई । उसके राज्यकालके अन्तिम वर्षोंमें देश भयकर दुर्मिथ्यसे पीड़ित रहा था, इस मकटकालमें शासन भी अव्यवस्थित हो गया था । स्वयं वृद्ध राजा राज्यका परित्याग कर मुनि हो गया था और दक्षिणको चला गया था । इस परिस्थितिका लाभ उठाकर एक साहसी एवं चतुर युवक महापद्मने राज्य सिंहासन हस्तगत कर लिया । उसके अर्थ नाम सर्वासिद्धि और चण्डसेन (यूनानी लेखकोंका एप्रेमेज) मिलते हैं । कुछ लोग भ्रमसे उसे घनानन्द या घनानन्द भी कह देते हैं किन्तु यह नाम उसका नहीं वरन्

यूनानी सैनिकोंके दाँत खट्टे कर दिये। किन्तु आक्रान्ताओंको विपुल सैन्य शक्तिके सम्मुख अग्रोहेकी छोटी-सी सेना कबतक ठहरती, अन्ततः उसका पतन हुआ और बीस हजार स्त्री बच्चोंने जोहर द्वारा अपना अन्त किया। लिखित इतिहासमें जोहरका यह सर्वप्रथम उदाहरण है। अग्ने लगभग डेढ़ वर्षके प्रवास कालमें सिकन्दर और उसकी सर्वविजयी सेना पूरे पंजाब और सिन्धको भी विजय न कर पायी। नन्दके प्राची साम्राज्यकी सीमामें तो प्रवेश करनेका उसे साहस ही नहीं हुआ। ई० पू० ३२५ के प्रारम्भमें ही वह निराश होकर वापस लौट गया और ई० पू० ३२३ में बाबुल नगरमें उसकी मृत्यु हो गयी। पुरु और अम्भीको अपना कर्ग प्रतिनिधि नियुक्त करके और थोड़ी-सी यूनानी सेना छोड़कर वह भारतसे चला गया था। यदि पंजाब, सिन्ध एवं पश्चिमोत्तर प्रान्तके ये अनगिनत छोटे-छोटे राज-तंत्र एव गणतन्त्र संगठित होकर और मिलकर एक साथ यूनानियोंके विरुद्ध खड़े हो जाते तो वे निस्सन्देह सिकन्दरको पलक मारते ही बुरी तरह हराकर भारतकी सीमासे खदेड़ बाहर करते। सिकन्दरके मुठते ही उसके द्वारा जीता हुआ भारतका अंश शीघ्र ही पूर्ववत् हो गया और अधिकांश भाग अवशिष्ट भारतको तो पश्चिमी जगत्के इतिहासकी इस अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाका भान भी न हुआ। भारतवासियोंके लिए वह इतिहासकी एक शीघ्र ही विस्मृत कर दी जानेवाली गौण एव क्षुद्र घटना थी।

किन्तु सिकन्दरके भारत आक्रमणके कुछ सुपरिणाम भी हुए। भारतके बाहर पश्चिमी देशोंके साथ भारतवर्षके सम्पर्क और अधिक उन्मुक्त एव गहरे हो गये। पश्चिमोत्तर प्रदेशकी छोटी-छोटी शक्तियोंके छिन्न भिन्न हो जानेसे शीघ्र ही मौर्य साम्राज्यका विस्तार अफ़ग़ानिस्तान पर्यन्त फैल जानेके लिए भूमि तैयार हो गयी। भारतीय धर्म, दर्शन, ज्ञान और विज्ञान-के समस्त सम्य पश्चिमी जगत्में प्रसारित होनेका द्वार बन गया। यूनानी कलाका भारतीय कला, विशेषकर मूर्तिकला, पर प्रभाव पड़ा। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि सिकन्दरके साथ आनेवाले कई यूनानी

राम्य कार्यके शाय-कर्मकाय के लिये या और धारकाल के लिये बचाने
काहि म्याउ बुझोको नबुझ करन कीर जिहा या किन्तु धारकाल के लिये
ही कायके बचाना या । काय-कर्म करन म्याउ धारकाल काय-कर्म
ई न ३१७ के अनुसार काय-कर्म काय-कर्म कीरकाल के लिये बचाना
पुनः हुआ और कीर-कर्म कीर-कर्म हुआ ।

[illegible]

उनमें कुछ तो वनवासी (हिलोवाइ) थे जो नितान्त निष्परिग्रह, निष्पृह एवं नग्न तपस्वी थे, वनोंमें रहते थे, अल्पभोजी और विद्युद्ध शाकाहारी थे, हाथमें लेकर ही भोजन करते और जल पीते थे, मृत्युके उपरान्त शवको जीव जन्तुओं-द्वारा भक्षण किये जानेके लिए वनमें ही छोड़ देते थे और मृत्यु निकट जानकर विविध उपायोंसे जीवनका अन्त कर देते थे, अर्थात् समाधिमरण करते थे । वे देह और भोगोंकी चिन्तासे सर्वथा मुक्त थे, ज्ञान व्यान और तपमें लीन रहते थे । यह सब वर्णन जैन मुनियोंके अतिरिक्त अन्य किसी सम्प्रदायके माधुआपर पूर्णतया लागू नहीं होता । सप्तशिलाके निकट ऐसे ही मण्डन नामक एक प्रसिद्ध मुनिसे सिकन्दरने साक्षात्कार चाहा । मुनिने उसके निमन्त्रणका तिरस्कार कर दिया, इसपर सम्राट् स्वयं मुनिके पास गया । प्रश्न करनेपर मुनिने कहा कि यदि हमसे कुछ पूछना और लेना चाहता है तो पहले हमारी ही तरह अन्तर बाह्यसे नग्न हो जा । और फिर उन्होंने राज्यतृष्णा एवं भोगलिप्साका त्याग करके आत्माकी चिन्ता करनेका उसे उपदेश दिया । एक दूसरा साधु जिसका नाम कल्याण था सिकन्दरके साथ ही बाबुल चला गया । बाबुलमें जाकर उसने समाधिमरण पूर्वक चितारोहण किया । अपनी तथा स्वयं सिकन्दरकी निकट मृत्युकी सूचना इस मुनिने सम्राट्को पहले ही दे दी थी । उसकी मृत्युके पश्चात् साम्राज्यकी क्या दशा होगी, यह भी बता दिया था । इन वनवासी श्रमणोंके अतिरिक्त ऐसे भी स्रष्टवस्त्रधारी त्यागी श्रमण श्रावक थे जो वस्तियोंमें रहते थे और धर्मोपदेश, शिक्षा, ज्योतिष, चिकित्सा आदिके द्वारा लोकोपकारमें रत रहते थे । इन त्यागी गृहस्थों (ऐल्लक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि व्रती श्रावकों) का लोग बड़ा आदर करते थे ।

इन यूनानी लेखकाने तीर्थंकर ऋषभदेव एवं उनके पुत्र भरत चक्रवर्त्तसे सम्बन्धित लोकप्रचलित अनुधुतियाका भी उल्लेख किया है । नन्द, उपसेन, चन्द्रगुप्त मौर्य, अमित्रघात बिन्दुसार आदिके सम्बन्धमें उनके

उल्लेख मिलते हैं। इन उपरोक्त भिन्न कथाओंमें परस्पर बहुत-से अन्तर भी हैं। ब्राह्मण साहित्यमें चन्द्रगुप्तको नन्दका मुरा नामक घृद्रा दासीसे उत्पन्न पुत्र बताया है, बौद्ध अनुश्रुतिमें उसे मोरिय नामक दात्यक्षत्रिय जातिका युवक बताया है। किन्तु बौद्ध तथा ब्राह्मण अनुश्रुतियोंमें चाणक्य और चन्द्रगुप्तका जन्मसे मृत्यु पर्यन्त पूर्ण जीवन-वृत्त नहीं मिलता। जैन अनुश्रुतिमें इन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियोंके सम्बन्धमें अथसे अन्त तक पूर्ण वर्णन मिलते हैं और वे भी कई विभिन्न द्वारोंसे। अतः विभिन्न अनुश्रुतियों, ऐतिहासिक आधारों और मान्यताओंके समन्वय-द्वारा हमें उक्त कालकी ऐतिहासिक घटनाओंका बहुत कुछ प्रामाणिक विवरण उपलब्ध हो जाता है।

आचार्य चाणक्य मौर्यवंशकी स्थापनामें मूल निमित्त एव मौर्यसाम्राज्य-के प्रधान स्तम्भ थे। वे मगधाद् चन्द्रगुप्त मौर्यके राजनैतिक गुरु, समर्थ सहायक तथा उसके राज्यके कुशल व्यवस्थापक एव नियामक थे। राज-नीतिके ये महान् गुरु और इनका प्रसिद्ध अर्थशास्त्र अपने समयमें ही नहीं वरन् तद्नुत्तरकालीन भारतीय राजनीति एव राजनीतिज्ञोंके सफल मार्ग-दर्शक रहे हैं। प्राचीन जैन अनुश्रुतियोंके अनुसार आचार्य चाणक्यका जन्म ई० पू० ३७५ के लगभग गोल्लविषयके अन्तर्गत चणय नामक ग्राममें हुआ था। इस स्थानकी ठीक स्थिति अज्ञात है। कुछ अनुश्रुतियोंमें उन्हें पाटलिपुत्र और कुछमें तक्षशिलाका निवासी भी बताया है। इनकी माता-का नाम चण्डवरी और पिताका नाम चणक था जो जन्मसे ब्राह्मण और धर्मसे श्रावक (जैन) थे। जन्मसमयमें ही चाणक्यके मुँहमें दाँत थे जिससे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय कुछ जैन साधु चाणक्यके पित्रालयमें आये और उसके पिताने उनसे इस बातका उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि यह बालक बड़ा होनेपर कोई नारी राजा होगा। किन्तु ब्राह्मण चणक सन्तोषी वृत्तिका धर्मात्मा व्यक्ति था, राज्य व्रमवकी वह पाप समझता था अतः उसने बच्चेके दाँत उखाड़ डाले। इसपर उन

मुताबक नैब अनुसन्धिते विधाने लक्षित होतें हैं जतने किती अन्य अनुसन्धिते पावें। महत्त्व कि अनुसन्धिते विधानकारोपणको जो विधि (मार्ग) है (पृ. ११२) राष्ट्रीय मुताली इतिहासकारोंने ही है यह जो दर्ज जाति आधुनिक विधानोके अनुसार जाईं सेवोते ही प्राप्त हुई थी। नैब व्यवहार-विचारका यह समझ प्रगता प्रगत एवं प्रसार यह मुताली कि सर्व राष्ट्रीय मुताली एवं विधानोके विषयमें जो मुताली केवळोने कर लिया है कि वे ही वाच्यताही ही वे। वास्तविक विधानका जो कोई कनेक जमोने पावें किता।

विद्यार्थी के आत्मनयके कुछ वर्षोंके पश्चात् यापार्थमे एक महारथपूर्ण राज्य-
कल्पित हुई । कर्मवर्षका फल हुआ । मोर्षवर्षकी वृद्धके स्वाभने स्थापना हुई
और कर्मवर्षका कर्मवर्षाप्रान्त करने परमोत्कर्षकी प्राप्त हुआ । इस राज्य-
कल्पितके प्रधान नामक विविध और कल्पित मोर्ष और वृद्धके प्रधान
राजकीयके विचारके विभिन्न राज्यके नामके थे । नामके वृद्धा वृद्धके
कर्मवर्षाके विचारके उत्कर्षकीय मुवासी केवक कर्मका मोर्ष है, कर्मवर्षी
राजवर्षाके आकर कुछ कर्मके लिए राजवर्षाका मुवासी राज्यके मोर्षवर्षाके
की कर्मका कोई कर्मके नहीं करता । नामके कर्मवर्षाके की उत्कर्ष
कर्मका है वे उत्कर्षा विविध वर्षाके विभिन्न एवं मुक्ति है और कर्मकी
आधीवर्षा स्वयं नामके कर्मके कई को कर्मों बाद एक ही कर्मके
वर्षाके मुक्ति है । बहुत पीछेके विविध कर्म मुवासीके राज्य एवं कर्म-
वर्षाके विचारके विविध कर्मके कर्मके उत्कर्ष है कि मुवासीके
विचारके नामके, को विभिन्न और कर्मके की महारथ का, एक
महारथकी वृद्ध राज्य का । राजा कर्मके वृद्धा कर्मके विचारके
कर्मके कर्मके लिए कर्मके वृद्धा कर्मके कर्मके कर्मके कर्मके विचारके
की और कर्मके मुक्तिके कर्म कल्पितकी कर्मके वृद्ध कर्मके कर्मके
हुआ और कर्मके कल्पितकी कर्मके विचारके वृद्ध विचार । और
कल्पितके की कर्मका विचार कर्मके और कल्पितकी राज्य कर्मके

साधुओंका संग्रहा सट्टनोंमें थी अतः मयूर पोषण एव मयूरविच्छेदो निर्माण-
का व्यवसाय पर्याप्त महत्त्वपूर्ण था। घूमते घूमते चाणक्य एक दिन
इसी गाँवमें पहुँचा और गाँवके मोरियवशी मुस्तियाके घर ठहरा।
मुस्तियाकी पुत्री गभवती थी और उस उमरी समय चन्द्रपान करनेका
विचित्र दोहला उत्पन्न हुआ था। किन्तु चाणक्यने इस घातपर कि उत्पन्न
होनेवाले शिशुपर उसका स्वयंका अधिकार रहेगा युक्तिसे वह दोहला
शान्त कर दिया। तदनन्तर वह वहाँसे चल दिया। कुछ ही मास उपरान्त
उम लडकीने एक सुन्दर तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया और उम दोहलेके
आधारमें उसका नाम चन्द्रगुप्त रखा गया तथा परिभ्राजक चाणक्यमें
की गयी प्रतिज्ञाके अनुसार उसे परिभ्राजकका ही पुत्र कहा जाने लगा।
नद द्वारा चाणक्यका अपमान और चन्द्रगुप्तका जन्म आदि उपरोक्त
घटनाएँ ई० पू० ३४५ के लगभग हुईं।

विशाल साम्राज्यके अधिपति पराक्रमी मन्दोका समूह नाश करना कोई
हैसी खेल नहीं था, चाणक्य इस बातको भली प्रकार जानता था। किन्तु
वह दृढ़प्रतिज्ञ भी था अतः धैर्यके साथ वह अपनी तैयारीमें सलग्न हो
गया। अगले कई वर्ष उसने घातुविद्याकी सिद्धि एवं स्वर्ण आदि धन
एकत्र करनेमें व्यतीत किये यथाये जाते हैं। आठ-दस वर्ष बाद फिर वह
उसी ग्राममें आ निकला। ग्रामके बाहर वनमें कुछ बालक खेल
रहे थे। एक तेजस्वी बालक राजा बना हुआ था और अन्य बालकों-
पर शासन कर रहा था। कुछ देर तक चाणक्य बालकोंके इस
कौतुकको देखता रहा। तदनन्तर उसने उस बालकसे वार्तालाप किया
और उसकी तुरतवृद्धि, वीरता, साहस एवं तेजस्विताका दखकर बड़ा
प्रसन्न हुआ। वह सामुद्रिक शास्त्रका भी ज्ञाता था और उस बालकके
सामुद्रिक चिह्नोंमें उसे चक्रवर्ती सम्राटके सब लक्षण दीख पड़े। पूछताछ
करनेपर मालूम हुआ कि यह वही बालक है जिसकी माताका दोहला
उसने स्वयं शान्त किया था। अस्तु वह उस बालकको साथ लेकर चल

बाबुजीने यह बलिष्ठापनी की कि जब यह बातक स्वयं का राधा न
 हो कहेगा किन्तु किसी बाल व्यक्ति के अग्रहवशसे राज्य करेगा। जब राज्य
 होनेपर छत्रपतिता तथा उनके विपक्षियों स्थानों पर रहनेवाले बाबाजीके
 विरुद्ध बाबरने चौदह विद्यार्थियों (छत्र जब चतुर्मुखीव दर्शन
 मध्य पुराण, बर्षबालक) की पिछा राज्य की ओर सभी विद्यार्थी एवं
 राज्योंमें यह पारंपर्य हो गया। यद्योचित मात्रक एक राज्या कुम्हारोंके
 कार्य बहका विचार हुआ और यह बाबाजीविन शिवाकवृत्तिसे बलिष्ठाके
 राज्य औरत स्थिति करने का एक बार बहकी ली बहने यदि
 विचारमें राज्यके वही। बहों बहकी विचारताका ध्यानमें बहाना कि
 विषयों यह वही कुम्हरी हुई। बाबरनेको जब यह बात मालूम हुई तो यह
 कन्यार्यसके तिरु बहने निकल गया बहापत्र कन्यार्यविधि बहानाकन
 विचारोंका बहा आतर करता है और उन्हें पुनःक बाबाजीके कन्यार करता
 है यह राज बर्षविधि की। यह बाबरने बाबाजीपुत्र पहुँचा। बहों कन्ये
 राजबहाके बहात बलिष्ठाकी बाबरनेके बलिष्ठा करके बलिष्ठापन
 (बलिष्ठापनके बलिष्ठा) का यह राज्य कर दिया। किन्तु बहकी कुम्हरीता
 बलिष्ठाकी बहति एवं बहति स्वभावक कारण कुम्हरी विचारों विचारपुत्र
 बहानाक कन्यार बहने रह हो गया और कन्ये बाबरनेका बहाना
 किया। कन्यारक बाबरनेके बहों होकर बहने बहने बहने यह
 कन्येकी बीरक बलिष्ठाकी। बहने कन्यारकने बाबुजी-बाबा की वही
 बलिष्ठापनीका स्वरूप काके बलिष्ठापनके बहने यह एक ऐसे व्यक्तिकी
 बहने निकल गया की राजा होनेके कन्यार हो।

उपार्थ बोधार्थ किन्तुभीषणके आदिशोका कल्पना ना । ये शोक शस्त्र
कविता ये । स्वर्ग व्यापारके एक कथनर बोधिश्रुता इसी आदिशोके ये और
इह आदिशोके ये कथनकी श्रुति भी । इनका एक गुण शब्द अनुसन्धानकोका
ही था । मुनि ऐक्य आत्मक आदि शब्दों के अर्थ विवेचनर विवेचनर
विवरणके अन्तिमार्थः अनुसन्धानकारी होती है । उक्त काव्यके इन

मूर्ख है, उसने सोमा प्रान्तोको हस्तगत किये बिना ही एकदम साम्राज्यके केन्द्रपर घावा बोलकर भारी भूल की है। चाणक्यको अपनी भूल मालूम हो गयी और उन दोनोंने अब नवीन उत्साह एव कौशलसे तैयारी प्रारम्भ कर दी। विन्ध्यअटवीमें पूर्वसंचित किये हुए विपुल धनकी सहायतासे उन्होंने सुदृढ एव विशाल सैन्यमग्नह करना शुरू किया और पश्चिमोत्तर प्रदेशके यवन, काम्बोज, पारसीक, खस, पुलात, शबर आदि म्लेच्छ जातियोंकी एक बलवान् सेना तैयार की। बाह्यलोक उनके अधीन थे ही। पञ्जाबके मल्लि या मालव गणतन्त्रको भी उन्होंने अपना सहायक बनाया और हिमवतकूट अर्थात् गोकर्ण (नैपाल) के किरातवशके ग्यारहवें राजा पञ्चम उपनाम पर्वत या पर्वतेश्वरको विजित साम्राज्यका आधा भाग दे देनेका लोभ देकर अपना सहयोगी बनाया, और फिर मगध साम्राज्यके सीमावर्ती प्रदेशोको जीतना शुरू किया। एकके पश्चात् एक नगर, ग्राम, दुर्ग और गढ़ छल-बल कौशलसे जैसे भी बना अपने हाथमें करते चले गये। विजित प्रदेशोको सुसंगठित एव अनुशासित करते हुए तथा अपनी शक्तिमें उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए वे राजधानी तक पहुँच गये और उन्होंने उसका घेरा डाल दिया।

पर्वतकी दुस्साहसपूर्ण बर्बर युद्धप्रियता, चन्द्रगुप्तकी अद्भुत सैन्य-संचालन शक्ति एव रणकौशल और चाणक्यकी कूटनीति—तीनोंका संयोग था। पाटलिपुत्रपर भीषण आक्रमण हुए तथा उसके अन्दर फूट और पड़्यन्त्र रचाये गये। नन्द भी वीरतासे लड़े, धननन्द आदि समस्त नन्द-कुमार लड़ते-लड़ते धीरगतिको प्राप्त हुए। अन्ततः वृद्ध राजा महापद्मने भी कोई आशा न देखकर धर्मद्वार नामक प्रमुख नगरद्वारके निकट हथियार डाल दिये और आत्मसमर्पण कर दिया। उसने चाणक्यको धर्मकी दुहाई देकर सुरक्षित चला जानेकी याचना की। चाणक्यकी अभीष्ट सिद्धि हो चुकी थी, अतएव उसने नन्दराजकी सपरिवार नगर एव राज्यका त्याग करके अन्यत्र चले जानेकी उदारतापूर्वक अनुमति दे दी और यह भी कह

[illegible]

६ । १ । ४ जनकन यग्यकुल कीर बाधकन हृद कटीनी
केपके बाध कटनेन यग्यकुल वृद्धकर यमकतीर बाधकन कर
रिषा विष्णु बाधकन कूटनीपकन बाधकन भी कनकी लनीन बीन
पलिके कम्पन व कुपि कपि हारे कीर बाध कनकर बाध निरमे ।
कनकी केनाम इनका दूर कन पीछा दिया । ही बार के वरुन कनके
बाध-बाध कन । बाधकनकी गुरनकुटि कीर यग्यकुलके बाधकन एवं कनके
वर्तन कन निरवाकन ही इनको रखा की । इन भाव-नीरने हृद बार यग्यकुल
भूषके वरबाधकन ही कन धा कन कनकरन भी बाधकनने कनकी रखा
की । एक दिन एक कनके कोनके के बाधकन कन दूर कनके कन कनको
कनकी कनकनकी कोनके के कन कन कनके कन कि बाधकन कनकी एवं

मूख है, उसने सीमा प्रांतोंको हस्तगत किये बिना ही एकदम साम्राज्यके केन्द्रपर धावा बोलकर भारी भूल की है। चाणक्यको अपनी भूल मालूम हो गयी और उन दानाने अब नवीन उत्साह एवं कौशलसे तैयारी प्रारम्भ कर दी। विन्ध्यअटवीमें पूर्वमंचित किये हुए विपुल धनकी सहायतासे उन्होंने सुदृढ़ एवं विशाल सैन्यसंग्रह करना शुरू किया और पश्चिमोत्तर प्रदेशके यवन, काम्बोज, पारसीरु, खस, पुलात, शबर आदि म्लेच्छ जातियोंको एक बलवान् सेना तैयार की। बाल्होक्त उनके अधीन थे ही। पञ्जाबके मल्लि या मालव गणतन्त्रको भी उन्होंने अपना सहायक बनाया और हिमवतकूट अर्थात् गोकर्ण (नेपाल) के किरातवशके ग्यारहवें राजा पचम उपनाम पर्वत या पर्वतेश्वरको विजित साम्राज्यका आधा भाग द देनेका लोभ देकर अपना महयोगी बनाया, और फिर मगध साम्राज्यके सीमावर्ती प्रदेशोंको जीतता शुरू किया। एकके पश्चात् एक नगर, ग्राम, दुर्ग और गढ़ छल बल कौशलसे जैसे भी बना अपने हाथमें करते चले गये। विजित प्रदेशोंको सुसंगठित एवं अनुशासित करते हुए तथा अपनी शक्तिमें उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए वे राजधानी तक पहुँच गये और उन्होंने उसका घेरा बाल दिया।

पर्वतकी दुस्साहसपूर्ण ध्वंश युद्धप्रियता, चन्द्रगुप्तकी अद्भुत सैन्य-संचालन शक्ति एवं रणकौशल और चाणक्यकी कूटनीति—तीनोंका संयोग था। पाटलिपुत्रपर भीषण आक्रमण हुए तथा उसके अन्दर फूट और पड़्यत्र रचाये गये। नन्द भी वीरतासे लड़े, घननन्द आदि समस्त नन्द-कुमार लड़ते-लड़ते वीरगतिको प्राप्त हुए। अन्ततः वृद्ध राजा महापद्मने भी कोई आशा न देखकर घर्मद्वार नामक प्रमुख नगरद्वारके निकट हथियार डाल दिये और आत्मसमर्पण कर दिया। उसने चाणक्यको धर्मकी दुहाई देकर सुरक्षित चला जानेकी याचना की। चाणक्यकी अभीष्ट सिद्धि हो चुकी थी, अतएव उसने नन्दराजको सपरिवार नगर एवं राज्यका त्याग करके अन्यत्र चले जानेकी उदारतापूर्वक अनुमति दे दी और यह भी कह

[illegible]

अब अन्तर्गुप्त मोक्ष सम्प्राप्त्यनुयायी तुलसीदास जी अष्टमहिनी वनात्तर
नववक्त्र राजर्षिद्वाराहमपर आकृष्ट हुआ और वनके अन्त-अन्तगुप्त प्रणिवासी
ब्रह्मात्मका अभिर्षित हुआ । सम्प्राप्त्यनुयायी वन और इस प्रकार अन्तर्गुप्त
नार नरके मुखा इह प्रकलोक बाह्य परमविभुसर्ग मोक्षवर्धकी स्थला
ई नृ ११७ म हुई । अन्तर्गुप्तकी ब्रह्माद् बोधित करके के पूर्व आत्मनये
अन्तर्गुप्त स्थाविशक मन्त्रा राजर्षिके वदन्तीका विज्ञान किया और उसे
अन्तर्गुप्तकी सेवा करके के सिद्ध राखी कर दिया । वही सिद्धराज्य
सर्वशक्ति की राजत-द्वारा अन्तर्गुप्तकी हत्या करके के सिद्ध बोधी वही
विश्वकर्माके इशोवक्त्र वरदा आका और अन्तर्गुप्तका कार्य विज्ञानक कर
दिया । अन्तर्गुप्त निम्ना राजगुप्ती आदिता की वही अन्तर्गुप्तके
पश्ये कर दिया । वह स्वर्ग ब्रह्मात्मा मन्त्रा बली एवं अमल्य रहा ।
आत्मनये अन्तर्गुप्त ब्रह्माद् अन्तर्गुप्त मोक्षके ब्रह्मात्मका संज्ञान एवं
आत्मनये अन्तर्गुप्त बुद्धि सम्पत्ती की । ब्रह्मात्मका विस्तार, अन्तर्गुप्त और
अन्तर्गुप्त वनक आत्मनये अन्तर्गुप्त बुद्धिबल होयी वही । ई नृ
११९ में वही अन्तर्गुप्त विज्ञान करके अन्तर्गुप्तकी विज्ञान ब्रह्मात्मकी

उप-राजधानी बनाया । ई० पू० ३१७ में मगधमें नन्दीका गनन होनेपर भी उज्जैनमें नन्दाके कुछ वनाश या सम्बन्धी म्यत्र शन रहे प्रतीत होते हैं । यही कारण है कि कुछ जैन अनुश्रुतियोंमें नन्दयज्ञका अन्त म० सु० २१० (ई० पू० ३१७) में और कुछमें म० न० २१५ (ई० पू० ३१०) में कथन किया गया है ।

उज्जैनियोंके अधिकारमें करनेके उपरान्त उसने दक्षिण देशकी दिग्विजय करनेके लिए यात्रा की । मुराष्ट्रने मार्गमें उगने महाराष्ट्रमें प्रवेश किया । मुराष्ट्रमें गिरिनगरके नेमिनाथकी वन्दना की और उवस पर्वतकी तलहटीमें सुदर्शन श्री नामक विशाल सरोवरका निर्माण अपने राज्यपाल वैश्य पद्मगुप्तकी देख-रेखमें कराया । इसीके तटपर निर्ग्रन्थ मुनियोंके निवासके लिए चन्द्रगुफा आदि गुफाएँ बनवायीं । महाराष्ट्र काश्मिर कर्णाटक तथा तमिल देश पर्यन्त प्रायः समस्त दक्षिण भारतपर उसने अपना आधिपत्य स्थापित किया । प्राचीन तमिल साहित्य, अनुश्रुतियों एवं कतिपय शिलालेखोंसे मौर्योंका दक्षिण देशपर अधिकार होना पाया जाता है । दक्षिणकी इस विजयमें एक और भी प्रेरक कारण था । चन्द्रगुप्तका पितृकुल मौरिय आचार्य भद्रबाहु श्रुतित्रैलोक्यक भक्त था । द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षक समय इन आचार्योंके समग्र दक्षिण देशको विहार कर जानेपर भी वे लोग उन्हींकी परम्पराने अनुयायी रहे और मगधमें रह जानेवाले साधुओं तथा उनकी परम्पराको उन्होंने मान्य नहीं किया । भद्रबाहुकी शिष्य-परम्परामें जो आचार्य इस बीचमें हुए वे दक्षिण देशमें ही रहे अतः उनमें उत्तर भारत निवासियोंका कोई सम्पर्क नहीं हुआ परन्तु वे, यथा चन्द्रगुप्त, चाणक्य आदि, अपने आपकी आचार्य भद्रबाहुका ही अनुयायी कहते एवं मानते रहे । अतएव अपने परम्परागुरु आचार्य भद्रबाहुने कर्णाटक देशके जिस कट्यप्र या कुमारो पर्वतपर तपस्या की थी और समाधिमरणपूर्वक शरीर त्याग किया था तोयह्णमें उसका वन्दना करना तथा उनकी शिष्य परम्पराके मुनियोंसे

वर्तमान है। और इसी क्षणों में ही यह सब बातें हो गयी हैं।
 वे जो अन्तर्गत हैं वे सब बातें ही हैं।

कालिका की ओर से अन्तर्गत है। यह सब बातें ही हैं।
 वर्तमान है। और इसी क्षणों में ही यह सब बातें हो गयी हैं।
 वे जो अन्तर्गत हैं वे सब बातें ही हैं।

अफ़ग़ानिस्तान और कन्दहारको भी खाली करके मौर्य सम्राट्को समर्पण कर दिया । जो चार प्रान्त सिल्युकसने चन्द्रगुप्तको इस प्रकार दिये उनके नाम परोपनिसडाह, अरिया, अर्खोशिया और गदरोशिया (काबुल, हिरात, कन्दहार और बलूचिस्तान) थे । इसके अतिरिक्त कम्बोज (बदर्शा) और पामीर भी मौर्य सम्राट्के अधीन हुए । सिल्युकसने अपनी पुत्री हेलेनका विवाह भी मौर्य नरेशके (या उसके युवराजके साथ) कर दिया । चन्द्रगुप्तने भी मैथीके चिह्न स्वरूप उसे पाँच सौ हाथी भेंट किये । इस प्रकार अपनी वीरता और पराक्रमसे चन्द्रगुप्तने अपनी स्वभावसिद्ध प्राकृतिक सीमाओंसे वद्ध प्रायः सम्पूर्ण भारतपर अपना एकच्छत्र आधिपत्य स्थापित कर लिया । इतनी पूर्णताके साथ समग्र भारतवर्षपर सम्भवतया आज तक अथ किसी सम्राट्का, अंगरेजोंका भी, अधिकार नहीं हुआ ।

इसी युद्धके परिणामस्वरूप सिल्युकसका मेगस्थनीज नामक एक यूनानी राजदूत ई० पू० ३०३ में पाटलिपुत्रके दरबारमें आया, कुछ दिन यहाँ रहा और उसने राजा, उसकी दिनचर्या, राजधानी, शासनव्यवस्था, लोकदशा, रीति-रिवाजों आदिका वर्णन किया जो कि भारतके तत्कालीन इतिहासका सर्वाधिक मूल्यवान् साधन बना । दुर्भाग्यसे मेगस्थनीजके वृत्तान्त मूलतः नष्ट हो गये, किन्तु उसके दो-तीन सौ वर्ष बाद जिन यूनानी इतिहासकारोंने भारतके सिकन्दर सेल्युकसकालीन इतिहास लिखे उन्हें वह प्राप्त थे, वहींके आधारपर और बहुधा उनके उद्धरणोसहित ये इतिहास लिखे गये हैं अतः मेगस्थनीजकी साक्षी बहुत-कुछ अंशमें आधुनिक इतिहासकारोंकी भी प्राप्त हो गयी । मेगस्थनीजने भारतवर्षके भूगोल, जातियों, प्राचीन अनुश्रुतियों, रीति-रिवाजों, जनताके उच्च चरित्र एवं ईमानदारी, राजधानीकी सुन्दरता एवं सुदृढता, सम्राट्के चरित्र एवं दिनचर्या, उसकी न्यायप्रियता, राजनैतिक पटुता एवं शासन-कुशलता, विपुल चतुरगिणी सैन्यशक्ति जिसमें चार लाख घोर सैनिक, नौ हजार हाथी तथा अनेक अश्व, रथ आदि थे और जिसका अनुशासन आदर्श था, प्रजाके

धार्मिक वा शक्ति रूपक, जिन्ही व्यवहारी एवं व्यापारी व्याप एवं
 समुदायक विद्याही राज्यकर्त्तृवाही दुष्पचार व भिदीयक कर्त्तृ एवं
 कर्त्तृवाही वाहि कर्त्तृ कर्त्तृवाही, केवाही विविध विद्याही वा वाहि वाहि
 किन्द्वा कर्त्तृवाही, विविध वाहि कर्त्तृवाही वाहि कर्त्तृवाही
 वाहि वाहि कर्त्तृवाही । एके वाहि कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही वाहि वाहि
 वाहि कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही । एके वाहि कर्त्तृवाही
 कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही । वाहि कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही
 कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही । वाहि कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही
 कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही कर्त्तृवाही ।

[illegible]

बान्धुगुप्त भीमं बभौषा यो न्न शीरः प्राप्नुवोत्यपि विद्वेषः स्वमेव कारयत्

परता था। जैन अनुश्रुतियोंमें ब्राह्मण माहिन्त्यकी नीति उस कृपल या शूद्र नहीं बरन् शुद्ध धार्मिकबुल्लोत्पन्न कहा गया है। अत्यन्त प्राचीन निदान्त ग्रन्थ 'तिलोपपण्णत्ति'में उस उन मुकुटवद्ध माण्डलिक सम्राटामें अंतिम कहा गया है जिन्होंने जिनदीक्षा लेकर अन्तिम जीवन जैा मुनिके रूपमें व्यतीत किया था। वह आचार्य भद्रबाहुकी परम्पराका अनुयायी था और उनका ही पदानुसरण करनेका इच्छुक था। अतः ई० पू० २९८ में लगभग २५ वर्ष राज्य करनेके उपरान्त अपने पुत्र बिन्दुमारकी राज्य दकर वह मुनि हो गया और दक्षिणकी ओर चला गया। सम्भवतया गुग्राष्ट्रके गिरिनगरकी जिस गुफामें उसने कुछ दिन निवास किया था उस चन्द्रगुफा कहा जाने लगा। वहाँमें वह कर्णाटक देशके श्रवणबेलगोल स्थानमें पहुँचा। इसी स्थानपर भद्रबाहु श्रुतकेवलीने देह त्याग किया था। अतः इस स्थानके एक पर्वतपर चन्द्रगुप्त मुनिने भी तपस्या की और ई० पू० २९० के लगभग सल्लेखनापूर्वक देह त्याग किया। उनकी स्मृतिमें उसी समयसे वह पर्वत चन्द्रगिरि नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके ऊपर जिस गुफा (चन्द्रगुप्त श्रमति) में उन्होंने समाधिभरण किया था उसमें उनके चरणचिह्न बने हुए हैं। वहाँ लगभग ढेढ़ सहस्र वर्ष प्राचीन कई एक शिलालेख भी अंकित हैं जो इस सम्राट्के जीवनको उक्त महान् अन्तिम घटनाका उल्लेख करते हैं। इस नरेशके समयमें भारतवर्ष प्रथम बार अपनी राजनैतिक पूर्णता एवं साम्राज्यिक एकताकी प्राप्त हुआ और मगध साम्राज्य अपने चरमोत्कर्षपर पहुँचा था।

चन्द्रगुप्तके पश्चात् नन्दसुता सुप्रभासे उत्पन्न उसका पुत्र बिन्दुसार अमित्रघात (यूनानी लेखकाका अमिट्रोचेटिस) सिंहासनारूढ हुआ। ई० पू० २९८-२७३ पर्यन्त लगभग २५ वर्ष उसने राज्य किया। अपने पिता और माताके समान वह भी जैनधर्मावलम्बी रहा प्रतीत होता है। वह अपने प्रतापी पिताका योग्य उत्तराधिकारी था और उसके राज्यकालमें साम्राज्यका विस्तार, शक्ति, समृद्धि एवं प्रताप पूर्ववत् ही बने

पूर्व षो० आर० शामा ग्रान्थीको उसकी एकमात्र प्रति प्राप्त हुई थी, तदुपरान्त ही विद्वानोंने उसके सम्बन्धमें विशेष ऊहापोह प्रारम्भ की और उक्त प्रतिके आधारपर उसके मूलका समय इसवी सन्की दूसरी-तीसरी शती निर्धारित किया। स्पष्ट है कि वह चाणक्यका मूल अर्थ-शास्त्र न था।

लगभग ८२ वर्षकी आयुमें ई० पू० २९३ के लगभग महामति चाणक्य-को मृत्यु हुई। विदुसार अथ स्वच्छन्द था किन्तु चन्द्रगुप्त और चाणक्यके अभिभावकत्वमें जिसकी शिक्षा-दीक्षा हुई हो वह निकम्मा या अक्षत शासक नहीं हो सकता था। उसका शासनकाल शान्तिपूर्ण एव सुव्यवस्थित रहा। मध्यएशियाक भारतीय-यूनानी सम्राटोंसे भी उसके राजनैतिक आदान प्रदान हुए। मित्र, सीरिया आदिके यूनानी नरेशोंसे उसने मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखे। सिल्युकसके उत्तराधिकारी अन्तियोकस सोतरने उसकी राजसभामें डेइमेकस नामक यूनानी राजदूत भेजा था। मित्र देशके राजा टालेमोने भी डायनिसयो नामक दूत भेजा था। इन राजाओंने उसके साथ नानाविध उपहार एव भेंटोंका भी आदान-प्रदान किया। उसने यूनानी दार्शनिकोंको भारत आनेका निमन्त्रण दिया था।

चन्द्रगुप्तने दक्षिणकी विजय की थी किन्तु उसे मुसगठित और म्यायी करनेका अवसर उसे नहीं मिला था। विन्दुसारने भी दक्षिण यात्रा की। अपने कुल गुरु भद्रबाहुके समाधिस्थान तथा अपने पिता मुनि चन्द्रगुप्तके दशन करने या सम्भव है उनकी मृत्युके उपरान्त उनकी तपोभूमि एव समाधिका दशन करनेके लिए दक्षिण देशकी यात्रा करने जाना उसके व्यक्तिगत उद्देश्य थे, और विजित प्रदेशोंपर मौर्य आधिपत्य स्थायी करना तथा पहली विजयसे छूट गये देशोंको भी विजय करके सागरसे सागर पर्यन्त सम्पूर्ण दक्षिणपर अधिकार करना उसके राजनैतिक लक्ष्य थे। और इन दोनोंमें ही वह सफल हुआ। भद्रबाहु एव चन्द्रगुप्तकी तपोभूमि श्रवणवेल्लोलमें उसने कई एक जैन मन्दिर आदि भी निर्माण कराये बताये जाते हैं।

लघुस्तम्भलेख हैं और तीग गुहाभिलेख हैं । गत लगभग भी यथोक्त इन विभिन्न शिलालेखोंके ऊपर पाश्चात्य एवं पौराणिक प्राच्यविदों तथा इतिहासकारोंने बहुत-कुछ ऊहापोह किया है और उसके आधारपर सम्राट् अशोकके चरित्र, व्यक्तित्व, विचारों, धर्म, राज्यकाल एवं शासन व्यवस्था आदिका निर्माण और उसकी महत्ताका मूल्यांकन किया है । किन्तु इन शिलालेखोंमेंसे मिथ्या एक मास्की शिलालेखको छोटकर अन्यत्र कहीं स्वयं अशोकका नामोन्लेख नहीं मिलता । केवल 'देवानाप्रिय' या 'प्रियदर्शी' या 'देवानाप्रियस्य प्रियदर्शिनः राजा' आदि पद ही उसके सूचक मिलते हैं । जिस शिलालेखमें, सो भी केवल एक ही बार, उसके मूल नामका उल्लेख है भी वह सम्भवतः कारक (अशोकरसम रूप) में है और उसके आगे कुछ स्थान नष्टित हैं जो पढ़ा नहीं जाता । ऐसे भी कई विद्वान् हैं जो इन सब शिलालेखोंको केवल अशोक-द्वारा ही लिखाये गये नहीं मानते बल्कि उनमें से कुछका श्रेय उसके उत्तराधिकारी सम्प्रतिको देते हैं ।

शिलालेखोंसे अशोकको बौद्ध धर्मका सर्वमहान् प्रतिपालक एवं भवतः चित्रित करनेवाली बौद्ध अनुश्रुतियोंका भी विशेष समर्थन नहीं होता । वस्तुतः शिलालेखोंके आधारपर अशोकके धर्मको लेकर विद्वानोंमें सर्वाधिक मतभेद है । कुछ विद्वानोंके अनुसार वह बौद्ध था और बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही उसने ये लेख लिखाये थे । कुछ अन्य विद्वानोंके अनुसार इन लेखोंके भाव और विचार बौद्धधर्मको अपेक्षा जैनधर्मके अधिक निकट हैं, उसका कुल-धर्म भी जैन था अतः वह भी यदि पूरे जीवन भर नहीं तो कमसे कम उसके पूर्वार्धमें अवश्य जैन था । ऐसे भी विद्वान् हैं, और उन्हींकी बहुलता होती जाती है, जो यह मानते हैं कि वह न मुख्यतः बौद्ध था न जैन धरन् एक नीतिपरायण महान् प्रजापालक सम्राट् था जिसने अपनी प्रजाका नैतिक उत्कर्ष करनेके हेतु अपना एक नवीन नमन्वयात्मक, अमाम्प्रदायिक एवं व्यावहारिक धर्म लोकके सम्मुख प्रस्तुत किया था ।

इससे-जे २८ बिल्लोतमें नीरिबारे अन्तिमोक्त दिवो दिनीव (ई
 ५ २६१-२४६) को विन्नुकनका सोना वा बिमरे लोकोई इमेरेनव
 (ई ५ २८५-२४३) बतरी बरुआवे दिनीवने बरुव (ई ५
 २९५-२९८) अकडुनिवाड अलिमोलम (ई ५ २७३-२१९) और
 मीरमने अतिरमुदर (ई ५ २३३-२९९) आदि बरिबरी बुनल
 बरेदीका बाबोप्येव दिवा बरा है बिमरे बरुवरा रवबका बरुव भी बाव
 निरिबन हो बाता है । अन्य बरेव रावनीनक एवं इप्यनकीव बाव,
 रावारे बावनम्यापवादी बाव तथा भीकररा मुबक बावम भी इन
 दिवावेनोमे बल हन है ।

अनु, बावारा दिवावेबावे-व बटुबावका कती बावीकको बरुवे
 हुए भी कलठे बाव उपरीका बरु एवं बीछ अनुपुतिसे तथा बावुबक
 बिवावक बावक बाव तमनम कलठे हुए इन बरेवरा बावमने को बाव-
 म्यक मुबनारु बराबने बाती है बरुमे बरा बरुगा है कि बरुका बाव
 बावीक भी बावीक बावम्योक्त बावीकबाव का बावोवबन का । बाव-
 नातिव का बिबरसी बरुवी बावविदा की । विन्नुवार बादि बरुके पूर्वोमे
 तथा बाव भी कई एक बावरीव बरेदीमे है बावविदा बावम की बावी
 होती है । बरुमेबावे बावमकाबने बरु बरुवीका बावक रदा का और
 बनी बावम निवमन बिबिबाके एक बावमबाविदाकी बावोको बरुवी
 बरुमे बिबाविका का बिबडे मुबन बावका बुव बरुव हुआ बा । विन्नु
 नावे अलिम रिमि बावोके बावविमने बरुवर बिरोडका भी बरुव
 दिवा बा और बरु बरेवका बावम-बार भी बावका बा । इन्दी बावोमे
 बरु विन्नुवारके मुनीव मुबन बादि कई बुवीमे बावविबक बावम बावका
 बा बाव बावक बुव न होते हुए भी बिवावे बावे हो मुबन बावका
 और बावविबाव बीता । विन्नुवारकी मुबुके बावमन इन बाव बावोमे
 बिरोड बिम विन्नु बावोके मुबनके बाव बावम बाव दिवा । बावीवर्ष
 और बावका भी बावके अनुपुक की बाव बावी बावक बाव । बिब भी

विन्दुमारकी मृत्यु (ई० पू० २७४-७३) के तीन-चार वर्ष बाद ही वह अपना राज्याभिषेक करानेमें समर्थ हुआ। उसका एक दलालेगमें २५६ सम्पत्तिका उल्लेख है जिसका विद्वानों ने अनेक अर्थ किये हैं। ऐसा मानने-वालोंकी भी कमी नहीं है कि यह मर्या सवत् सूचक है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सम्पत्ति-द्वारा उसने अपने राज्यारोहणकी तिथि उन समयमें प्रचलित महावीर सवत्में ढींढी है जिसके अनुसार यह ई० पू० २७१-७० में पड़ती है। बौद्ध कथाओंका तो कहना है कि उसने अपने ९९ भाइयोंको हत्या करके अपना चण्ड अशोक नाम सार्थक किया था और राज्य प्राप्त किया था। किन्तु यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण हो नहीं प्रायः असत्य समझा जाता है। इसमें संन्देह नहीं कि प्रारम्भमें वह उस प्रकृतिका दृढ़ निश्चयी एवं कठोर शासक था। अपने स्वयंके भाइयोंका तथा अन्य विरोधियोंका उसने दृढ़तासे दमन किया था, किन्तु तथाकृत कुल्लुआम नहीं।

उसने कुशलता और कठोरतासे शासन किया, अपन शासनाधिनारियों एवं अधीन राजाओंपर पूरा नियन्त्रण रखा, जिसने सिर उठाया उसे ही कुचल दिया। कलिंग देशकी विजय नरसिंहराजने ई० पू० ४२८में की थी, तभीसे यह राज्य मगधके अधीन रहता आया था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नन्दराज्यक्रांतिके समय मगधमें आन्तरिक कलहको दखकर कलिंग राजे स्वतन्त्र हो गया। सम्भवतः चन्द्रगुप्त और विन्दुसारके शासनकालोंमें उन्होंने गुले रूपमें सिर नहीं उठाया, किन्तु विन्दुसारकी मृत्युके उपरान्त होनेवाले गृह-युद्धका लाभ उठाकर उन्होंने मगधके विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता मुल्लम-खुल्ला घोषित कर दी। अतः ई० पू० २६२ के लगभग अपने राज्यके ८वें वर्षमें एक भारी सेना लेकर अशोकने कलिंगपर आक्रमण कर दिया। भोपण युद्ध हुआ जिसमें लाखों व्यक्ति मृत्युके घाट उतर गये। सर्वत्र प्रचण्ड अशोक महान्वा दबदबा बैठ गया, अब भविष्यमें पचासो वर्षों पर्यन्त कहीं कोई मौर्य सम्राट् के विरुद्ध सिर उठानेका साहस नहीं कर सकता था। किन्तु साथ ही इस भयकर

बर-सँहारको ऐहिकर दशमुक्तक बौद्ध धर्मके संस्कारोंमें एक और बड़ीकी
 मानना ठिकमिन्न नहीं । बौद्धोंने प्रतिष्ठा कर ली कि बलिभयमें यह मुक्ति
 सर्वथा विरुद्ध है । इसकी सब मान्यता ही न थी । समूर्ण शास्त्र-
 बर्णन ही नहीं बौद्धोंके बौद्ध हीनाम्य प्रवेष्टानर ही बौद्धोंका निम्नतम
 एकाधिकार था ।

शास्त्र-मन्त्रणा मुखात् ही साम्राज्यमें सर्वत्र शांति और समृद्धि की
 बात सब राजाओंने अपना ध्यान शांतिपूर्व कामोंकी ओर दिया । समूर्ण
 और पशुओंके लिए चिकित्साघन मुक्त्यासे बुराई राजपूतोंकी परम्परा
 और सम्राट् निर्मात करवा सहस्रोंके किनारे बृद्ध कल्याण, निपाक-
 शांताई बनवायी । इत्यादि अनेक लोकहितकारी कार्य किये । इनमें
 बौद्धोंके वैदिक धर्मको प्रसन्न करनेका भी प्रयत्न किया और इनमें
 बौद्धधर्माधिक मनोमुक्ति देना करनेके लिए एक ऐसे राज-वर्षका प्रचार
 किया भी साम्राज्यिक एवं सर्वव्यापक था । बौद्धोंके समर्थ और बौद्धोंके
 पक्षों ही क्योंके विपक्षीय भावर किया । इनके विचार-विमर्श किया
 और समर्थ कल्याण किया । बौद्धोंके धर्मशास्त्रों और धर्मोत्तमोंकी भी
 योजना की । साम्राज्यके विभिन्न स्थानोंकी बौद्धोंके भाषा की और धर्म,
 धर्म और सम्बन्धता बौद्धों परम्पराके भी तीनों एवं सर्वोच्च स्तरोंको
 देखा । विभिन्न धर्मों एवं सम्बन्धोंके सम्बन्धित संस्थाओं, भाषाओं, धर्मों
 और समर्थों की निर्माण किया । विभिन्न धर्मों को सुधारकी आवश्यकता
 देवी बौद्ध धर्म-द्वारा अपना सामर्थ्य-द्वारा करनेका प्रयत्न किया । धर्मशास्त्र
 और साम्राज्यिक धर्मशास्त्रों बौद्धोंके अपना मुक्तक बनाया और अपने धर्मशा-
 स्त्रोंके प्रचार करनेके लिए अधिक-अधिक धर्म स्थापित एवं केन्द्रोंमें बौद्धोंके
 अपनी धर्मशास्त्रों विद्यमानों एवं समर्थोंके बौद्धोंके करवायी । वे धर्मशास्त्र
 बौद्धोंके ई ५ २५५ के प्रचलित विद्यमान समर्थोंके विद्यमानोंके प्रचलित
 होने हैं । बौद्धोंके धर्मशास्त्रोंके धर्मशास्त्रोंके धर्मशास्त्रोंके धर्मशास्त्रोंके लिए
 भी धर्मोंके निम्न 'बौद्ध' नामक धर्मशास्त्रोंके मुक्तक बनाया भी ।

गिरिनगरकी तलहटीमें अपने पितामह शत्रुगुप्त-द्वारा धनवाये गये सुदर्शन तालवा भी अपने यवन अधिकारी तुहफाम्फकी देम-रेसमें उमने जीर्णोद्धार कराया था ।

ऐसा प्रतीत होता है कि फलिंग युद्धके आग-पास अशोकने एक बौद्ध सुन्दरीके साथ जिसका नाम सम्भवतया तिप्परक्षिता था विवाह कर लिया था । वह स्वयं इस समय अछेष्ट वयका था । इस बौद्ध रानीके प्रभावमें वह कुछ अधिक धार्मिक और उसको प्रसन्न करनेके लिए सम्भवतः बौद्ध धर्ममें भी कुछ विशेष दिलचस्पी लेने लगा जिसके कारण बौद्ध लोग यह समझने लगे कि वह बौद्ध धर्मका अनुयायी हो गया । सम्प्रतिकथा आदि कथाओंसे पता चलता है कि उसका ज्येष्ठ पुत्र युवराज कुणाल बहुत ही सुन्दर था और उसकी आँखें कुणाल पक्षीके समान अत्यधिक आकर्षक थीं । उसकी विमाना तिप्परक्षिता उसपर मोहित हो गयी किन्तु राजकुमार सञ्चारि था अतः रानी अपना कुचेष्टाओंमें विफल हुई । प्रतिहिंसासे दग्ध रानीने पहचान करके सम्राटकी मुद्रासे अंकित एक आज्ञा भिजवाकर कुणालकी अन्धा करवा दिया । कुणाल कुशल संगीतज्ञ भी था अतः वह भिखारीके रूपमें राजधानीमें आया और समाटके महलके नीचे गाने लगा । गीतके मिस उसने अपना परिचय और स्वयंवर किये गये अत्याचारका भी संकेत किया । सम्राट्ने उसे पहचानकर तुरत बुलाया, सब हाल जानकर तिप्परक्षिताको जीते जी जलवा दिया, उसके साथिया एवं सहयोगियोंको भी कठोर दण्ड दिया, उसे स्वयं बहा पश्चात्ताप हुआ और उसने कुणालके नवजात शिशु सम्प्रतिको अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया ।

इसी समयके लगभग पाटलिपुत्रमें मोगलायन तिस्सकी अध्यक्षतामें तीसरा बौद्ध सम्मेलन एवं त्रिपिटककी संगीति हुई । सम्मेलनके नेताओंने यह निर्णय किया कि बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिए बौद्ध भिक्षुओंको विदेशोंमें जाना चाहिए । अतः बर्मा, तिब्बत, मध्यएशिया, लंका आदिमें बौद्ध प्रचारक गये । लंका (सिंहल) में उस समय विजयवंशी नरेश

देशभक्ति का ज्ञान प्राप्त करना था। यह ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा। ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा। ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा। ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा। ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा।

ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा। ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा। ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा। ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा। ब्रह्म ज्ञान के माध्यम से हमें अपने अन्तरात्मा को समझने का मौका मिलेगा।

अर्थशास्त्रमें दिये गये पवित्र दिनो एव जैन परम्पराके पर्व दिनोंसे प्रायः पूरी तरह मेल खाते हैं। शिलालेखोंमें उसके द्वारा निर्ग्रन्थों (नग्न जैन मुनियों) का विशेष रूपसे आदर करनेके उल्लेख हैं। ये उल्लेख अल्प-संख्यक इस कारणसे हैं कि उत्तर भारतके मगध आदि देशोंमें इन नग्न दिग्गम्बर मुनियोंका विहार अशोकके समयमें अपेक्षाकृत विरल था, दक्षिण देशमें उनका बाहुल्य था। मगधका जो जैन सघ इस कालमें प्रबल होता जा रहा था वह स्थूलभद्रकी परम्पराका था और खण्डवस्त्रधारी हो चला था। सामान्य श्रमण शब्दसे सब प्रकारके जैन साधुओंका बोध होता ही था। राजतरंगिणी एव आहनेअकबरीके अनुसार अशोकने कश्मीरमें जैन धर्मका प्रवेश किया था और इस कार्यमें उसने अपने पिता बिन्दुसार तथा पितामह चन्द्रगुप्तका अनुकरण किया था। कश्मीरके श्रोनगरको वमानेका श्रेय भी अशोकको ही दिया जाता है। वह नेपाल भी गया था और वहाँ उसने ललितपट्टन नामक नगर बसाया था। उसकी पुत्री चारुमती एव जामाता देवपाल वही जाकर बस गये। कर्णाटकके श्रवणबेलगोलमें उसने जैन मन्दिरोंका निर्माण करवाया बताया जाता है। इस विषयमें अनेक विद्वानोंको सन्देह नहीं है कि अशोक जैनधर्मके दयामूलक उपदेशोंसे प्रभावित था। उसका कुल परम्परा धर्म जैनधर्म था ही। अपने जीवनके अन्तिम कुछ वर्षोंमें उसने राज्य कार्यमें विरत होकर एक त्यागी गृहस्थ या श्रुती श्रावककी भाँति जीवन बिताया प्रतीत होता है। इस कालमें उसकी दानशीलता अतिशयकी पहुँच गयी बतायी जाती है जिसके कारण अमात्योंने उसपर प्रतिबन्ध लगा दिये। राज्यकार्य कुणाल करता था। ई० पू० २३४ या २३२ में लगभग ४० वर्ष राज्य करनेके उपरान्त अशोककी मृत्यु हुई। कुछ लोग उसकी मृत्यु तक्षशिलामें हुई बताते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि सम्राट् अशोकका स्थान विश्वके सर्वमहान् नरेशोंमें है। उसका साम्राज्य अतिविस्तृत एव अत्यन्त समृद्ध, उसका शासन-काल सुख एव शान्तिपूर्ण, उसका व्यक्तित्व महान् और उसकी प्रतिभा

[illegible][illegible][illegible]

हैं जैन अनुश्रुतिके अनुसार सम्प्रतिने जैन धर्मके लिए उसमें कुछ अधिक हो किया बताया जाता है। अनेक तीर्थोंकी वन्दना, जीर्णोद्धार, अनगिनत नवीन जिनमन्दिरों एवं मूर्तियोंका विभिन्न स्थानोंमें निर्माण तथा प्रतिष्ठा, विद्वशोंमें जैन धर्मक प्रचारके लिए प्रचारक भेजना, धर्मोत्सवोंका मनाना, साम्राज्य-भरमें अहिंसा प्रधान जैनाचारका प्रसार करना इत्यादि अनेक कार्योंका श्रेय इस सम्राट्को दिया जाता है। विन्सेण्ट स्मिथक अनुसार उसने अरब और ईरानमें भी जैन सस्कृतिके केन्द्र स्थापित किये थे। प्रो० जयचन्द्र विद्यालकाङ्कके अनुसार "चाहे चन्द्रगुप्तके चाहे सम्प्रतिके समयमें जैन धर्मकी बुनियाद तमिल भारतके नये राज्योंमें भी जा जमी, इसमें सन्देह नहीं। उत्तर पश्चिमके अनार्य देशोंमें भी सम्प्रतिके समयमें जैन प्रचारक भेजे गये और वहाँ जैन साधुओंके लिए अनेक विहार स्थापित किये गये। अशोक और सम्प्रति दोनोंके पायसे भारतीय सस्कृति एक विश्व सस्कृति बन गयी और आर्यावर्तका प्रभाव भारतकी सीमाओंके बाहर तक पहुँच गया।

अशोककी तरह उसके इस पोतेने भी अनेक इमारतें बनवायीं। राज-पूतानेकी कई जैन कलाकृतियाँ उसके समयकी कही जाती हैं। जैन लेखकोंके अनुसार सम्प्रति समूचे भारतका स्वामी था।" कई विद्वानोंका यह भी मत है कि अशोकके नामसे प्रचलित शिलालेखोंमेंसे अनेक सम्प्रतिद्वारा उत्कीर्ण कराये गये हो सकते हैं। अशोकको अपने इस पौत्रसे अत्यधिक स्नेह था, इसी कारण उसने इसे अपना उत्तराधिकारी भी बनाया था। उनका कहना है कि अशोकको उपाधि देवानाप्रिय थी और सम्प्रतिको वह प्रियदर्शिन कहता था अतः जिन शिलालेखोंमें 'देवाना प्रियस्य प्रियदर्शिन राजा' द्वारा उनके लिखाये जानेका उल्लेख है वे सम्भवतया सम्प्रतिके हैं, विशेषकर उनमेंसे भी वे शिलालेख जिनमें जीवहिंसा निषेध एवं धर्मोत्सवा आदिका वर्णन है।

जैन साहित्य, विशेषकर श्वेताम्बर परम्पराके ग्रन्थों यथा परिशिष्टपूर्व, सम्प्रतिकथा, आदिमें सम्राट् सम्प्रतिके विषयमें बहुत-कुछ लिखा मिलता

था। इसने भी दूर-दूर तक जैन धर्मका प्रचार किया बताया जाता है। इसने अल्पकाल ही राज्य किया। इसके उपरान्त युपमेन, पुण्यधम आदि कुछ अन्य राजे हुए और उज्जैनीमें १४८ वर्षके उपरान्त ई० पू० १६४ में मौर्य वंशका अन्त हो गया।

मगधमें दशरथके पश्चात् देववर्मन्, मनघनुष और बृहद्रथ आदि राजे हुए। इनमें-से एक-आध राजा प्रजापीडक भी था। अंतिम नरेश बृहद्रथको उसके ग्राह्यण मन्त्री पुण्यमित्र शुगने धोत्रेमें हत्या करके राज्यसिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया, और हम प्रकार मगधमें लगभग १३७ या १३३ वर्ष बाद ई० पू० १८४में मौर्य वंशका अन्त हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्प्रतिके शासन कालमें ही ई० पू० २०४के लगभग मौर्य साम्राज्यकी एकता भग होने लगी थी और कमसे कम वे प्रदेश जिनपर मौर्यवंशके ही राजपुरुष प्राचीन शासक थे स्वतन्त्र हान लगे थे। यही कारण है कि कुछ जैन अनुश्रुतियोंमें मौर्यवंशका काल १०८ वर्ष भी दिया है। कश्मीरमें सम्प्रतिका भाई या चाचा जालक (जलोक) स्वतन्त्र हुआ, कुछके अनुसार वह जैनी था और कुछके अनुसार क्षत्रिय। उसने म्लेच्छोंके, जो सम्भवतया यूनानी थे, आक्रमणमें देशको मुक्त किया बताया जाता है। कान्यकुब्ज पर्यन्त उसने अपने राज्यका विस्तार कर लिया था। गान्धारपर वीरसेनका राज्य था जिसका उत्तराधिकारी सुभगनेन था। इसने यूनानी नरेश अन्तिथोक महान्के साथ पूषवर्ती मौर्यों की भाँति मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये थे। यूनानी यूक्लाइमस और उसके उत्तराधिकारियोंने हम शास्त्राका अन्त किया। कुछ छोटे-छोटे मौर्य राजे मगध, पश्चिमी भारत, राजस्थान, खानदेश, काकण आदिके कुछ भागोंमें बहुत पीछे तक राज्य करते रहे। कलिगमें चैत्र या चेदिवंशका उद्भव हो चुका था। दूसरी शती ई० पू० के पूर्वार्धमें कलिग चक्रवर्ती सम्राट् पारवेलके कालमें उसका चरमोत्कर्ष हुआ। दक्षिणमें आंध्रवंशका उत्थान हुआ। इस प्रकार मौर्य वंशके साथ-ही-साथ मगध साम्राज्यका भी अवसान हो गया।

[illegible]

बहुधा विचार (ई. पू. १५४-११) कायेसी तदेवना इन बंधका बंधन
 त्यामक बा । इनके इनका-न बंधाबंध बा अनुविद कीः बाहुविदने (बा
 (ई. पू. ११८-८) वर्णन कही एकर विद्या । के नीय हायन
 बंधके ही अनुवादी रूप नीतन थे । विष्णु कायेसी बाणाके पाठक तीन
 बंधके इति कहिल्लु ही रहु बनीत हीने ई ।

અન્યથા તો ૬ ૭ ૮૧-૮૨ જે અવગણ્ય સ્થિતિમાં મળે એવા આદેશ

मन्त्री वसुदेव कन्वने अपने स्वामीका वध करके राज्य हस्तगत कर लिया । ४५ वर्ष तक (ई० पू० २८ तक) कण्व वंशका मगधपर अधिकार रहा । ये एक गौण स्थितिके राजे रहे ।

शुग वंशमें दस और कण्व वंशमें चार राजे हुए बताये जाते हैं । अपने मालविकाग्निमित्र नाटकमें महाकवि कालिदासने शुगवंशी अग्निमित्र-को अमर बना दिया है । शुग-कण्वकालमें मगध हतप्रभ था और विदेशी यूनानी, पल्लव, शक आदिको भारतमें राज्य स्थापन करनेका अवसर मिल गया । डेढ़ सौ वर्षके इस युगकी सबसे बड़ी देन यही है कि वर्तमान हिन्दूधर्मकी रूप-रेखा इसी कालमें बनी, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत तथा पुराणोंका सकलन प्रारम्भ हुआ और हिन्दुओंकी धार्मिक अनुश्रुति एवं प्राचीन रचनाएँ लिपिवद्ध होने लगीं तथा नवीन साहित्य रचा जाने लगा । श्रमण सत्कृति तथा उसके जैन, बौद्धादि धर्मोंके साथ समन्वय करके हिन्दूधर्म एक नवीन रूपमें उदय हुआ । देवी-देवताओंकी भक्ति एवं उपासना, मूर्तिपूजा, जीव दया आदि इसके प्रधान अंग थे । मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंके द्वारा सामाजिक जीवनका नियमन करना भी इस युगमें ब्राह्मण सुधारकोने आरम्भ किया । इस ब्राह्मण पुनरुद्धार आन्दोलन परिणाम-स्वरूप मगध एवं मध्यदेशमें बौद्ध और जैनधर्म भी सक्रिय होकर एवं अवनत होते चले गये । जैनधर्मके तो सुदृढ़ केन्द्र कर्णाटक, मध्यभारत, तोरापट्ट, कर्लिंग, मयूरा आदिमें स्थापित हो चुके थे और वह वहाँ फलतः फूलता संप्राण बना रहा, किन्तु बौद्ध धर्मको विदेशोंका तथा यवन, शक, कुषाण, हूण आदि विदेशी शासकों और उनके द्वारा शासित प्रदेशोंका प्रधान आश्रय रह गया ।

अध्याय ४

प्राचीन युग—वर्गीय पाद

उत्तर भारत (११ पृष्ठ १०-११ अंक १००)

श्रीवें बाबासाहेब के जन्मके समय-श्री-बाबा, जिसेबकर शुभ-कल्प बुद्धमें छीन बाबासाहेब कीजयमें एक बाबा बरतमें बाबीं तथा पूर्व-दक्षिणमें बलिभवा रीन (पेड़) बीच बसती बलिभवामें बाबासाहेबका बाताप्यायन रीन और बरत बलिभवामें बाबा, एक बहूय बुद्धाव बादी बिदेसी बातिथी । इनके बलिभवा मुनुर दक्षिणमें बीच बाबा, केरन बाबाबुन बादि छोटे-छोटे पत्त के और बुद्धी बाता एवं मयदेवमें बुद्ध, कल्प रीनके बलिभवा बुद्ध कल्प छोटे-छोटे पत्त तथा पत्तल है । वे बरतल छोटे, बाबाबाबा बुद्ध, बुद्धा बुद्धा बादि है । रीन-दक्षिणके बलि बाबा बुद्ध बादिबब बाति बिभवादि होकर पत्तलबाबा की और बके छोटे है । बाबा छोटे टी टीन ही पत्तलबाबा की छोटे बाबा मयबाबाके बाबा की प्रदेवमें बाबा बदे और बलिभवा बहू प्रदेव बाबा बाबाबा बा । बादेबाबा की पत्तलबाबा बाति छोटे ही बाबा और इनके बरतल बलिभवा बाबा एवं बाबाबाबामें बलिभवा छोटे बके बदे ।

कमरोका तीन बाग्याम्य परिसरोंमें-के कजिबके नीचे बंधका बरत
 बागर्ष तीन बाग्यद्वय्यापेक्षया बरतके समान हैं। १५ २ ०-१५ के
 समान गहा। कजिबकी बरतपेरे-कमरीकी बरतपेरे हार्दपुम्य बागि-
 के रिचपेरेनी एवं बरत पुम्यपेरे बरतपेरे इन बरतके रिचपेरेनीका
 पत्रा बरत है, रिचपेरे रिचपेरे बरतपेरे बरतपेरे रिचपेरे रिचपेरे ।

आन्ध्र-सातवाहन—दूसरी शक्ति आन्ध्र जातिके सातवाहन वंशकी थी। आन्ध्रोंका सर्वप्रथम उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मणमें मिलता है। यहाँ इनकी गणना पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मुतिव आदि जाति वास्य नीच व्यक्तियों या दस्युओंमें की गयी है और इन्हें अनाय कहा गया है। किन्तु प्रथम शती ई० का रोमन इतिहासकार प्लिनि आन्ध्रोंका एक शक्तिशाली जातिके रूपमें उल्लेख करता है जिसका विस्तृत साम्राज्य दक्षिणपट्टपर था और जिसके पास एक लाख पैदल दो हजार अश्वारोही और एक हजार हाथियोंकी भारी सेना थी। प्रतिष्ठानपुर या पैठन इनकी राजधानी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि शुंगकालके प्रारम्भमें ही प्रियदर्शिके शिलालेखोंमें उल्लिखित दक्षिण देशवासो भोजक, पैठनिक, रट्टिक, पुलिन्द आदि जातियाँ आन्ध्र जातिके सातवाहन कुलकी अधीनतामें संगठित हो गयी थीं। ये सातवाहन ब्राह्मण एवं नाग रक्तमिश्रणसे उत्पन्न हुए थे यद्यपि वे अपने-आपको ब्राह्मण ही कहते थे और अपने लिए 'एक ब्राह्मण', 'खत्तिपदमानमदन' आदि विशेषण प्रयुक्त करते थे। मत्स्यपुराणमें इस कुलमें ३० राजा हुए बताये हैं जिन्होंने ४६० वर्ष राज्य किया। अन्य पुराणोंमें १७, १८ या १९ राजा तथा उनका राज्यकाल ३०० वर्ष बताया है। सिमुक इस वंशका प्रथम राजा बताया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तीसरी शती ई० पू० के अन्तके लगभग सिमुकने पैठनमें अपना राज्य स्थापित कर लिया था। सम्प्रतिकी मृत्युके उपरांत इस राज्यकी शक्ति बढ़ने लगी। जैन अनुश्रुतिके अनुसार सिमुकने २३ वर्ष राज्य किया किन्तु अपने अन्तिम वर्षोंमें वह दुष्ट और दुराचारी हो गया था जिसके कारण उसे गद्दीसे उतारकर उसका वध कर दिया गया और उसका भाई कन्ह राजा हुआ। उसने नासिक पर्यन्त अपने राज्यका विस्तार कर लिया। तीसरा राजा शातकर्णी प्रथम बहुत महत्वाकांक्षी था, नानाघाटपर उसने अपनी मूर्ति स्थापित की थी, पश्चिमी मालवाकी विजय कर ली थी और शुंगोंसे युद्ध किया था। उसने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ भी किये थे।

[illegible]

६. इस विचार, सामयिकता के लिये किम्वदन्त है। यह सब अन्तर्गत मिली-जुल कर रहे हैं। जो अन्तर्गत है वह सामयिकता के लिये नहीं होता।

मालवा एवं पश्चिमी राजस्थानपर भी अधिकार कर लिया था। उसके उत्तराधिकारी शातकर्णी तृतीयके साथ क्षत्रप रुद्रदामन्की कन्याका विवाह हुआ था, किन्तु क्षत्रप-सातवाहन सधर्षका अन्त नहीं हुआ। अन्तिम नरेशोंमें यज्ञश्री शातकर्णी अधिक प्रसिद्ध है। उसके चाँदीके सिक्के प्राप्त हुए हैं जिनमें क्षत्रपोंका अनुकरण पाया जाता है। इस वंशका अन्तिम शात नरेश श्री पुलुमयी द्वितीय था। तीसरी शती ई० के प्रारम्भके लग-भग इस सातवाहन वंशका अन्त हो गया। इसके अनेक महारथी पदवी-धारी सरदार, जो अधिकांशतः नागजातीय थे और मूलतः आन्ध्रोंके सेवक होनेसे आन्ध्रभूत्य भी कहलाते थे, दक्षिण एवं मध्य भारतके विभिन्न भागोंमें स्वतन्त्र हो गये।

पैठनके ये सातवाहन राजे अधिकांशतः ब्राह्मण धर्मानुयायी थे किन्तु वे अन्य धर्मोंके प्रति भी सहिष्णु थे। प्राचीन जैन साहित्यमें सातवाहन राजाओंके अनेक उल्लेख मिलते हैं और उनमें-से कई एकका जैन होना भी सूचित होता है। किन्तु क्योंकि यह उल्लेख 'पैठनका शालिवाहन राजा' करके ही प्रायः पाये जाते हैं अतः ऐतिहासिक नाम-सूचीमें उन्हें चोन्हना दुष्कर है। इन जैनराजाओंमें सतसईके रचयिता हालके होनेकी सम्भावना है। यह प्रसिद्ध ग्रन्थ महाराष्ट्री प्राकृतमें आर्याछन्दोंमें लिखा गया है और जैन विचारोंका प्रभाव उसपर लक्षित होता है। सातवाहन राज्यमें प्राकृत भाषाका ही प्रचार था। ये राजा स्वयं तो विद्वान् या विशेष विद्यारसिक नहीं थे किन्तु विद्वानोंका आदर करते थे। जैनाचार्य शर्ववर्म-द्वारा कातन्त्र व्याकरणकी रचना तथा एक अन्य जैनाचार्य काणभिक्षु या काणभूति-द्वारा प्राकृतके मूल कथा-ग्रन्थकी रचना और उसके आधारपर गुणादयकी वृहत्कथाकी रचना इन्हींके प्रयत्नमें हुई प्रतीत होती है। इनके राज्यमें जैन मुनियोंका स्वच्छन्द विहार था। इन्हींके कालमें जैनसंघ दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदायोंमें विभक्त हुआ और इनका राज्य उन दोनों सम्प्रदायोंके साधुओंका सन्निस्थल था। दिगम्बर परम्पराके जैन आगमोंका सर्वप्रथम

संकल्प एवं विविधकारीकरण की इच्छा काजने और सम्भवतया इन्हींके राज्यमें हुआ था ।

पश्चिमोत्तर प्रदेशके विदेशी शासक—(१) मुगली या बबर—
 बिकनरवादी मुगलके वरपुत्र बलरामदास के बड़े बेटासि सिन्धुकरने
 बबरवा साम्राज्य स्थापित कर लिया था जिसकी सीमाएँ भारतवर्षकी रानी
 करती थी । सिन्धुकरके बंझने केबबर १ वर्ष राज्य किया । नीचे
 बलराजीके बड़े इन्हींके भारतमें प्रवेश करकेका राज्य नहीं किया बल्
 कनके बीचदुर्ग सम्भव हो गये । मुगलियोंकी कुछ छोटी-बोटी बलियाँ
 भारतवर्षमें व्यवस्य बन गयी । बलराजीके समयमें सिन्धुकर बंझका बलर
 बलियाँके द्वितीय राज्य कर रहा था । बबर यह जिसके राज्यके साथ
 बलियाँके राज्यमें बैठा था तो बलर रोज बलके बैलियाँ राज्यका राज्य बलियाँ
 राज्य स्थाप्य हो गया और इस बलर इन्हीं-बैलियाँ बंझका राज्य
 हुआ । ई ५ ९ के समयमें बलके वरपुत्रबलराजी मुगलराजके साथ
 बलर बलियाँके द्वितीयके बलियाँ कर ली और बलराजी बलराजी
 पुन बलियाँके (बलियाँ) के साथ बलराजी थी तथा बैलियाँके स्थाप्यता
 स्थाप्य कर ली । काबुल बलियाँके इस समय बलराजीका राज्य था तो
 सम्भवतया एक बलियाँकी राजकुमार था । समय ई ५ १९ में
 बलियाँ बैलियाँका राज्य हुआ । भारतवर्षमें बबर बलियाँके सिन्धुकरका
 बल बल हो गया बलराजी । बलने भारतपर राज्यन किया । बलरा
 और बलराजीके राज्य बलके साथी बन गये । यह बलराजी बैलियाँके बलराजी
 राज्य हुआ मुगलपुर (बलियाँ) तक जा पहुँचा । सिन्धु सम्भवतया
 बलर बलराजीके बलराजीके मुगल पाकर इन बलराजीके बलराजी
 बल बन गयी और वे राजराजीकी पुन बलियाँ किने बलराजी बलराजी
 बल गये । बबर एवं बलराजीके ही बलराजीके बलराजीके मुगली
 बलियाँके बलराजी बलराजी, सिन्धु बलराजी तक बलराजी बलराजी बलराजी
 हो गया । बलराजी (बलराजी) की, बलराजी बलराजी बलराजी बलराजी

उसने यूथोडेमिया रखा था, उसने अपनी भारतीय राजधानी बनाया। इस यूनानी आक्रमणके परिणामस्वरूप पतनोन्मुख मौर्य सत्ता मृतप्राय हो गयी। बृहद्रथ मौर्यके ग्राहण मन्त्रो पुण्यमित्र शुंगने सम्भवतया इसी स्वर्ण अवसरका लाभ उठाया और अपने स्वामीकी हत्या करके वह स्वयं मगध राज्यका स्वामी बन बैठा। दिमित्रके यापस चले जानेपर उसका वायसराय मिनेण्डर (मिलिन्द) जो सम्भवतया उसका उत्तराधिकारी भी हुआ, ई० पू० १६०-१४० तक सागलमें शासन करता रहा। यह शासक जैन और बौद्धोंके सम्पर्कमें आया और उनका भक्त हुआ। बौद्धाचार्य नागसेनका उसपर विशेष प्रभाव था। मिलिन्दपञ्चो (मिलिन्दके प्रश्न) नामक ग्रन्थका नायक यही यवनराज बताया जाता है। इस ग्रन्थमें जैनों और उनके सिद्धान्तोंका भी उल्लेख है और इस धर्मके विषयमें राजा तथा उसके साथी अन्य यूनानियोंकी जिज्ञासा प्रकट होती है।

बैक्ट्रियाके यूनानियोंका राज्य तो प्रथम शताब्दी ई० पू० के प्रारम्भके लगभग समाप्त हो गया किन्तु अनेक यूनानी भारतमें बस गये। उन्होंने जैन, बौद्ध, भागवत आदि भारतीय धर्मोंको अपना लिया और शनैः-शनैः वे भारतीय जनतामें ही समा गये। विदिशाके राजा भगदत्तके दरबारमें हिलियोदर नामक यूनानी राजदूत आया था और उसने वहाँ गरुडध्वज बनवाया था जिसपर अंकित लेखसे उसका भागवत धर्मानुयायी हाना सूचित होता है। मिनेण्डर सम्भवतया बौद्ध धर्मानुयायी हो गया था। इसी कालके एक यूनानी इतिहासकार ट्रोगसने अपने एक पूर्ववर्ती लेखकका और प्रमाण रूपमें उसके लेखोंका उल्लेख किया है। प्रो० टार्न आदि विद्वानोंका मत है कि ये यूनानी इतिहासकार भारतवर्षमें रहे और वहाँ जैनोंके विशेष सम्पर्कमें आये प्रतीत होते हैं क्योंकि उनके लेखोंसे पता चलता है कि वे जैनोंसे, उनके आचार-विचारोंसे और उनकी ऐतिहासिक अनुश्रुतियोंसे भली-भाँति परिचित थे और उन्हें ही उन्होंने अपना आधार बनाया था। सम्भव है कि इन भारतीय यवनोंमेंसे अनेक जैन साधुओंसे

प्रभावित होकर जैन धर्मके अनुयायी भी हुए हैं। बुद्धाजी केवल द्वितीयोपनयो
काली आधीकाके इतिवृत्तिवासी जैन शास्त्र विचारते मिले हैं। एक धर्मवा-
चार्थ (जैन शास्त्र) ग्रन्थ कही है। मैं आधीकाली माना करते रीति (वा एकेक)
को कहूँगे है। वही धर्मकी अवधि विद्यमान रही कहाती जाती है।

(२) एन्दोपनिषद् का प्रमाण—वीजिवाकी अति पवित्रता की
जिसे अन्तर्गत अनुयाय ईश्वर का और जिसकी राज्याधी राज्यकला
अन्वहार की विष्णुवर्णकी बुद्धाविर्गति राज्यात्मक एक ज्ञान का।
वीजिवाकी ही ज्ञान राज-राज यह भी स्वयम् ही क्या था विष्णु राज्याधी
वीजिवाके क्या था। इसका राज्याधी प्रमाण अतिवा का। विविध और
विभिन्नके ज्ञान पवित्रता का विष्णुवर्णक ग्रन्थ (ई. पू. १०१-
१४९) का। विविध ज्ञान आधारी विष्णुवर्णक ज्ञान का यह था राज
स्वयम् ही क्या था। धर्म-धर्म इसमें अपनी धर्मि ब्रह्म की और ई. पू.
११८ के अन्तर्गत विष्णु-व्यासके बीच अनुचर उपनिषद् ग्रन्थकार उन्हीं
कालिकार कर किया। इसके अन्तर्गतिकारी विष्णुवर्णक (ई. पू.
१९१-८८) के अन्तर्गत आधीका मान्यता हुआ। यहूके हैं हारे और पवि-
कालिके अधीन ही क्या विष्णु वीज ही फिर स्वयम् हीकर आधीके
पवित्रोत्तर ग्रन्थकार का क्या और अर्धमे पवित्रता अन्तर्गत क्या विष्णु।
ई. पू. ग्रन्थ अन्तर्गतों वीजिवा के ही पवित्रता राजा हुए। बुद्धके
अनुसार अनेक पवित्रता आधि उन्हीं की पवित्रता ही है। इस धर्मके अन्तर्गत
पवित्रता अन्तर्गत अन्तर्गत (विष्णुवर्ण) है विष्णु वृत् १९-४९ ई.
वर्णक राजा विष्णु। अन्तर्गत बुद्ध पवित्रता और जिन्हे भी मिले हैं।
इन्हींके राजा केवल आधीका अन्तर्गत आधीके अन्तर्गत अन्तर्गत पवित्रता-
आधीके अन्तर्गत ईसाई काला अन्तर्गत किया ऐसी भी एक अनुपुष्टि है।
पवित्रता अन्तर्गत अनेक अन्तर्गत की बुद्धाविर्गति पवित्र ही अन्तर्गतआधीके
विविध अन्तर्गतों यह क्या है। विष्णुवर्णक अनुपुष्टताकी पवित्रताके विष्णुवर्ण
की अनुपुष्टता अन्तर्गत है कि अन्तर्गतों में वही आधीका रहे हैं और वीज-

धम्म दोषित हो गये थे मर्यादा अपनी जन्मभूमिक बहुत-से सत्कार उठाने बनाये रहे ।

(२) इण्डोसीथिया या शक—चीनी आधारसे पता चलता है कि ई० पू० १७५-१६५ के लगभग वर्षों में हुनोका उन्थान हुआ जिन्होंने पश्चिमी चीनसे यू ची लोगोको सदेह बाहर किया । यह यू ची या तुखारी लोग पश्चिमकी ओर बढ़ गये और सोरनदीके तटपर उन्हें उन्हीं-जैसी एक अन्य भ्रमणकारी जाति मिली जो शक थी । तुखारोंने शकोको उनकी जन्मभूमिसे लदेडा अतः वे भारतमें रोमान्त प्रदेशोंकी ओर बढ़ आये और यवनो एवं पक्षियोंके राज्योंके विभिन्न प्रान्तोंपर दूट पड़े । मिथ्रेडेट्स द्वि० (ई० पू० १२३-८८) ने उनको पराजित करके अपने अधीन कर लिया, किन्तु प्रथम शती ई० पू० के प्रारम्भमें (ई० पू० ८५-७५ के लगभग) ये बोलनकी घाटी और विलोचिस्तानके मार्गमें आगे बढ़ आये और समस्त सिन्धु घाटीपर छा गये । पुष्कलावतीको उन्होंने अपनी प्रधान राजधानी बनाया । अपने मूलस्थान सोथिया (शकस्थान) की स्मृतिमें उन्होंने अपने इस गवीन वासस्थानका नाम भी इण्डोसीथिया (शकस्थान या शककुल) रखा । इनका सबसे बड़ा सरदार शाहानुशाही कहलाता था और उसके अधीन अनेक शाही (शक सरदार) थे । ई० पू० ७० के लगभग आचार्य कालके द्वितीय उज्जैनके दुराचारी राजा गदभिल्लके अत्याचारासे पीड़ित हो और अन्य सब उपायोंसे हारकर इन शकशाहियोंके पास सिन्धुवर्षी शकस्थानमें पहुँचा । वहाँ एक शाहीका अतिथि हुआ । कालकके ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान और बुद्धिमत्तासे शाही बहुत प्रभावित हुआ । उसी समय बुद्ध शाहानुशाहीका एक दूत एक छुरा और कटोरा लेकर शाहीके पास आया जिस देखते ही वह थर-थर कांपने लगा । कालकके पूछनेपर शाहीने कहा कि उसका स्वामी उससे नाराज हो गया है और इन वस्तुओंको भेजनेका अर्थ है कि वह अपना सिर उस छुरेसे काटकर उसी कटोरेमें रखकर शाहानुशाहीके पास भेज दे अन्यथा उसका सकुटुम्ब

पर राज्य करने लगे। भारतीय घमों, रीति-रिवाजों, नामादिकोंको अपनाकर और भारतीयोंके साथ विवाह सम्बन्ध आदि करके ये भारतीय नरेशोंकी भाँति ही यहाँ बस गये। इस प्रकार ई० पू० ५० के लगभगसे सन् ई० ५० के लगभग तक जो विभिन्न शक क्षत्रियाँ भारतके विभिन्न भागोंमें सत्तारूढ रहीं ये निम्न प्रकार हैं—(क) पुष्कलावतीके प्रधान शक नरेश—शाहानुशाही—जिनमें सर्व प्रसिद्ध महार्य मोगा था। उसके सिक्कोपर कतिपय भारतीय तथा यूनानी देवी देवताओंकी मूर्तियाँ अंकित मिलती हैं। स० ४२ और ७८ के दो अभिलेखोंमें उसका नामोल्लेख मिलता है जो ई० पू० ६६ में स्थापित पूर्व शक संवत्में होनेसे ई० पू० २४ तथा सन् १२ ई० के निर्धारित होते हैं। उसके अतिरिक्त अजेस प्रथम और द्वितीयके होनेका और पता चलता है जो सम्भवतया उसके उत्तराधिकारी थे। इन शक शाहानुशाहियोंके उपरान्त पुष्कलावतीपर पल्लवोंका अधिकार हो गया प्रतीत होता है। विन्दुफर्न (गोण्डोफरनीज) जिसका समय १९-४५ ई० निश्चित होता है, इस कालका प्रसिद्ध पल्लव नरेश था। उसका सं० १०३ का अभिलेख भी पूर्वशक स० में होनेसे सन् ३७ई० का है। विभिन्न प्रान्तोंके शक क्षत्रप इन पल्लवोंको भी शक शाहानुशाही-की भाँति अपना अधिपति मानने लगे।

(ख) उपरोक्त शक क्षत्रपोंमें-से एक शाखा सक्षशिलामें स्थापित हुई थी जिसमें लिअक, कुगलक, पतिक आदि क्षत्रप हुए। इनका उल्लेख स० ७२ (सन् १२ ई०) के अभिलेखमें मिलता है।

(ग) एक शाखा सुदूर वाराणसीमें स्थापित हुई जिसमें मेवकि आदि नाम मिलते हैं।

(घ) एक शाखा मयुरामें स्थापित हुई, इसमें हगन, रज्जुबल, घोडास आदि नाम मिलते हैं। मयुराके ये शक महाक्षत्रप अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनके, विशेषकर क्षत्रप घोडासके, मयुरासे अनेक शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनमें कई यथा सं० ४२ (ई० पू० २४),

पं ३२ (वृ १६) भारतीय विविधता भी है। इन विचारधाराओं
 का अर्थ है कि वे धर्म शास्त्र स्थायीतः पर्याप्त धर्मशास्त्री एवं
 जगदीश्वरों से। इनका शास्त्र मुख्यतः भारतीयतः ही युक्त है और वे
 सभी भारतीय धर्मों का आधार करते हैं। धर्मधर्मों की ओर भी इनका
 आकर्षण रहा। अतीत होता है और अपने से अधिक है। अतीत होता है।
 मनुष्यी धर्म का अर्थ है कि धर्मधर्मों में धर्म धर्मधर्मों की ही अर्थ
 का अर्थ है। अतः धर्मधर्मों में धर्मधर्मों का अर्थ है धर्मधर्मों का।
 इन धर्मधर्मों का अर्थ है धर्मधर्मों का अर्थ है धर्मधर्मों का अर्थ है
 धर्मधर्मों का अर्थ है धर्मधर्मों का अर्थ है धर्मधर्मों का अर्थ है
 धर्मधर्मों का अर्थ है धर्मधर्मों का अर्थ है धर्मधर्मों का अर्थ है

(४) परमात्माहीनो की एक पाप्मा कीछापमें की स्थापित हो गयो थी । बहुत भूतक बहुमान परमात्मा की छापि छाने इस पाप्मामें हुए । ये बहुमान बहुमानों से की परमात्मा की कल्पना है । जिस परमात्माका सम्मान-कार्य भूतकः अस्तिवि द्रव्य वा और जिसके मेलनमें अन्य सब आत्माहीन मालापर आश्रय किया वा बहु सम्मानका भय वा भूतक वा । जिसका-विषयसे सब आत्माहीन परमात्मा करके पाकमें निदान विद्या कीर छिन्न विन्न कर विद्या ही इस पाप्मामें कीछाप्य एवं भूतकपर अस्तिकार करके अत्मा छाने स्थापित कर किया । एक और माकमेंके विद्यापरिणत और दुखी और ईश्वरके परमात्माहके कारण इस बहुमानोंकी कल्पित कीछापि लगी रही किन्तु इसमें अज्ञानी ईश्वरके सम्मान से बहुत परमात्माहीन हो गई । बहुमान एक परमात्मा कर्मविहित इच्छापी एक परमात्मापूर्ण वीर्य वा । और अनुभूतिमें इसके आश्रय परमात्मा वरीष्ठात्मा वरीष्ठात्मा वा वरीष्ठात्मा अस्ति नाम जिससे ही और वही वरीष्ठात्मा वरीष्ठात्मा है । इसकी पाली-क्य नाम भूतक वा और परमात्माका नाम वरुणात्मा वा की सम्मानका अनुभूतका ही परमात्मा वा । कल्पना ४ कर्मका परमात्मा कर्मविहित वीर्य एवं परमात्मा वीर्यके कारण वरुणात्मा ही की कल्पना कल्प ११-११ ई

आदर्श विद्यालय राय पट

निश्चित होता है। यूनानी भूगोलवेत्ता टालेमीने भी इस नरेशका उल्लेख किया है। नहपानके अपने तथा उसके जामाता उपवदात या कृपभदत्त और कुशल मन्त्री अयमके कई शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो वर्ष ४१से ४६तकके हैं। सम्भवतया नहपानके पूर्वज भूमकने अपने अन्तिम दिनमें अथवा स्वयं नहपानने अपने राज्याख्यमें ही मालवा देशके बहुभागपर अधिकार करके यह नवीन वर्णगणना चालू की थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं उज्जैनीपर उसका अधिकार नहीं हो पाया और इस महानगरीको प्राप्त करनेके लिए पैठनके सातवाहन नरेशोंके साथ उसको प्रतिद्वन्द्विता एवं संघर्ष बराबर चलता रहा। अन्ततः सन् ६५ ई० के लगभग गौतमपुत्र शातकर्णोंने भूगुकच्छपर आक्रमण किया, घोर युद्धके उपरान्त नहपानकी पराजय हुई और उसने सन्धि कर ली। सातवाहन नरेशने अपनी विजयके उपलक्ष्यमें नहपानके अनेक सिक्काको हस्तगत करके और उनपर अपनी भी मुहर लगाकर अपने राज्यमें चालू किया। नहपानने राज्यभार अपने जामाता उपवदात, मन्त्री अयम और सेनापति यशोमतिकको सौंपकर स्वयं जिनदीक्षा ले ली प्रतीत होती है।

इस समय तक इन शकाका प्रायः पूर्णतया भारतीयकरण हो चुका था, इन्होंने भारतीय आचार-विचारों, भाषा और नाम, वेष-भूषा और प्रथाएँ, धर्म और संस्कृति अपना लिये थे। एक जैन अनुश्रुतिके अनुसार इस महाराज नरवाहनने अपने मित्र मगधनरेशको मुनिरूपमें देखकर उनकी प्रेरणासे अपने राज्यश्रेष्ठि एवं मित्र सुबुद्धिके साथ मुनिदीक्षा ले ली थी। इस समय दक्षिणार्थ जैनसंघके नेता सभाचार्य अर्हद्बलि थे, वही सम्भवतया इसके दीक्षागुरु थे। सन् ६६ ई० में उन्होंने महिमा नगरीमें एक महामुनि सम्मेलन किया था। इसी सम्मेलनमें सर्वप्रथम निर्ग्रन्थ दिगम्बर सधम नन्दि, सेन, सिंह, देव, भद्र आदि उपसंघ उत्पन्न हुए थे। इसी कालमें गिरिनगरकी पूर्वोक्त चन्द्रगुफामें अवशिष्ट आगम ज्ञानके धारक एवं अष्टाग निमित्तके ज्ञाता धरसेनाचार्य तपस्या करते थे। अपना अन्त

[illegible][illegible]

शकोंपर भी किसी युद्धमें आंशिक विजय प्राप्त की। सातवाहनोंने शकाके नवप्रचलित सवत्की भी अपना ऐनेका प्रयत्न किया, इसी कारण यह कालान्तरमें शक-शालिवाहन सवत्के नामसे भी प्रसिद्ध हुआ। क्षत्रपकालके प्रथम ही वर्षोंमें शक-सातवाहन प्रतिद्वन्द्विता और भी अधिक तीव्र हो गयी और सातवाहन साम्राज्यके अन्तके साथ ही उसका अन्त हुआ।

चष्टनका पुत्र जयदामन् था। उसने अपने पिताके साथ कुछ वर्ष राज्य किया किन्तु पिताके जीवनकालमें ही उसकी मृत्यु हो गया प्रतीत होती है। उसके उपरान्त उसका पुत्र महाक्षत्रप रुद्रदामन् प्रथम राजा हुआ। उसके राज्यारम्भके कुछ वर्ष बाद ही उसके पितामह चष्टनकी मृत्यु हुई। रुद्रदामन्के सन् १३० ई० के शिलालेखके समय तक चष्टन जीवित था। रुद्रदामन् इस वंशका सर्वाधिक प्रतापी नरेश था, उसके समयमें क्षत्रप साम्राज्य उन्नतिके चरम शिखरपर था। इस राजाके सन् १५० ई० के एक वृहत् शिलालेखसे, जो कि जूनागढ़ प्रशस्तिके नामसे प्रसिद्ध है, उनकी अनेक विजयों, पराक्रमों, लोकहितके कार्यों आदिका पता चलता है। यह शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और गिरिनगरके सुप्रसिद्ध सुदर्शन तालके तटपर ही अंकित है। रुद्रदामन्ने भी उस ऐतिहासिक सरोवरका जीर्णोद्धार कराया था। रुद्रदामन्का पुत्र दामजदश्री था जिसने गिरिनगरकी पूर्वोक्त चन्द्रगुफामें आगमोद्धारक आचार्य धरसेनके स्वर्गधामकी स्मृतिमें एक शिलालेख उत्कीर्ण कराया था। उसके उपरान्त रुद्रसिंह प्रथम गद्दीपर बैठा यह भी जैनधर्मका अनुयायी रहा प्रतीत होता है। प्रायः इसी कालमें इस वंशकी एक राजमहिलाने महावीरको जन्मभूमि वैशालीकी तीर्थ-यात्रा की थी जैसा कि वहाँसे प्राप्त उक्त महिलाकी कतिपय मुद्राओंसे विदित होता है।

पश्चिमी शकोंका यह महाक्षत्रप वर्ष २४२ वष पर्यन्त उज्जैनी राजधानीसे एक विस्तृत प्रदेशपर राज्य करता रहा। दूसरी-तीसरी शताब्दीमें तो दक्षिण भारतके भी अनेक भाग उसके अधीन थे। ३२० ई० में

बौद्ध अनुश्रुतिमें उसे अशोकके समान ही बौद्ध धर्मका गवत और प्रश्रयदाता कहा गया है और उसमें उसके द्वारा पेशावरमें एक बौद्ध स्तूप बनवाने, पादमोरमें चतुर्थ बौद्ध सम्मेलन बुलाने और बुद्धचरितके कर्त्ता प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोषको प्रश्रय देनेके उल्लेख मिलते हैं। यह बौद्ध धर्मके महायान सम्प्रदायका पोषक रहा बताया जाता है। किन्तु विद्वानोंका मत है कि उसके साम्राज्यमें सभी धर्म प्रचलित थे और यह धर्मसहिष्णु नरेश सभीका आदर करता था। मथुराके अनेक जैन शिलालेखोंपर उसका नाम अंकित है। धामस आदि विद्वानांके अनुसार कमसे कम अपने राज्यकालके पूर्व भागमें उसका शुक्राय जैन धर्मकी ओर अधिक रहा प्रतीत होता है। कहा जाता है कि एक प्राचीन जैन स्तूपका भी उसने जोर्णोद्धार कराया था। कनिष्ककी मूर्तियाँ भी मिली हैं। उसके समयमें बौद्ध साहित्यका सर्वप्रथम प्रणयन प्रारम्भ हुआ। कनिष्ककी राज्यारोहण तिथि सन् ७८ ई० मानो जाती है और कुछ विद्वानांके अनुसार वही प्रचलित शक सवत्का प्रवर्तक था। किन्तु जैसा कि पीछे कहा जा चुका है शक-सवत्की स्थापना भद्रचष्टन वशये गस्थापक चष्टन द्वारा उज्जनीकी विजयके उपलक्ष्यमें हुई प्रतीत होती है। सम्भव है मयोगमें कनिष्कका राज्यारम्भ भी उत्तर-पदिचममें उसी वर्ष प्रारम्भ हुआ हो। उसके तथा उसके उत्तग-धिकारियोंके लेखोंमें जो वर्षसंख्या मिलती है वह उससे राज्यके प्रथम वर्षसे चालू हुई प्रतीत होती है, बादमें उन्होंने एक सवत्का रूप ले लिया जो सयोगसे शक सवत्के अनुरूप होनेसे उत्तरापथमें भी लोकप्रिय हो गया। कनिष्ककी हत्या उसके सेनानियोंने उसके सोते समय कर दी थी।

उसके उपरान्त क्रमशः ह्विष्क (१०७-१३८ ई०), कनिष्क द्वि० (११९ ई०), वशिष्क, वासुदेव (१५२-१७६ ई०) इत्यादि कई राजे हुए। इन राजाओंके अनेक जैनार्जन शिलालेख मथुरा आदिसे प्राप्त हुए हैं। ये सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णु रहे प्रतीत होते हैं। जैनधर्मकी, विशेषकर मथुरामें, इनके कालमेंवि शेष उन्नति हुई। वासुदेवके उपरान्त कृपाण

करके व्यापार-वाणिज्यमें ही अपना उपयोग लगाना प्रारम्भ कर दिया किन्तु अपने गणतन्त्रात्मक ध्येनी संगठनकी ओर भी घट्टत पीछे तक भग नहीं होने दिया । मालव लोग विराट देशमें भी अधिक स्थिर न रह सके और अन्तत आगे बढ़कर उज्जैनी प्रदेशमें बस गये । सम्प्रतिको मृत्युके उपरान्त इन स्वतन्त्रता प्रेमी मालवोंने उज्जैनीको केन्द्र बनाकर अपनी गणतन्त्रात्मक सत्ता स्थापित कर ली और धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ायी । यह देश भी उनके कारण मालवा कहलाने लगा । शुंगों और शण्वोंके राज्यकालमें मालवोंके मालवगणने पर्याप्त शक्ति संचय कर ली थी ।

ऐसा प्रतीत होता है कि कलिंगचक्रवर्ती सम्राट् शारवेत्रने मालवगणकी भी विजय कर लिया था और सम्भवतया उसकी गणतन्त्रात्मक सत्ताकी भी नाश कर लिया था किन्तु उसके नायकों के पदपर अपना कोई राजकुमार नियुक्त कर दिया था । यह पद उसकी वंश-परम्परामें रुढ़ हो गया । ई० पूर्वं ७४ में इसी वंशका महेंद्रादित्य गर्दभिल्ल मालवगणका अध्यक्ष और उज्जैनीका गणतन्त्रीय राजा था । वह बहुत अत्याचारी और दुराचारी शासक था । गणोंकी भी अवहेलना करता था । उस समय उज्जैनी जैनोंका प्रधान केन्द्र थी, जैन साध्वियों और साधुओंका वहाँ स्वच्छन्द विहार होता था । कालक द्वितीय उस कालके एक प्रसिद्ध जैनाचार्य थे, जो पूर्ववस्थामें एक राजकुमार थे । उनकी बहन सरस्वती भी साध्वी थी । वह अनिन्द्य सुन्दरी भी थी । उक्त साध्वीका आगमन जब उज्जैनीमें हुआ तो उसके रूपपर गर्दभिल्ल मुग्ध हो गया । उसने अवसरस्वी अपहरण करके उक्त साध्वीको अपने महलमें उठवा मँगाया । सूचना पाते ही कालक वहाँ आया, उसने गर्दभिल्लको बहुत प्रकार समझाया, अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियोंसे भी कहलवाया किन्तु उस दुराचारी निरकुश शासकको अपने दुष्ट अभिप्रायसे विरत करनेमें वह समर्थ न हो सका । गर्दभिल्लके भयसे आस-पासके राजे भी हस्तक्षेप करनेका साहस न कर सके । अतः सन्तत कालक

नभीवाहन) का अधिकार अवश्य रहा प्रतीत होता है । सन् ७८ ई० में क्षहारातोंके उत्तराधिकारी पश्चिमी शक क्षत्रपोंके वश सस्थापक भद्रवर्धनने इस नगरपर स्थायी अधिकार करके शक सवत्की पुनः प्रवृत्ति की और लगभग सौ छेड़ सौ वर्षों तक इसी वशके अधिकारमें यह प्रदेश चला । शनैः-शनैः मालवगण भी इस पराधीनतामें क्षोणप्रभ और क्षोणशक्ति हो गये ।

अन्ततः ४थी शती ई० प्रारम्भमें गुप्त साम्राज्यका उदय होनेपर इस प्रदेशपर उस वशका अधिकार हुआ और उज्जैनी गुप्तोंकी उपराजधानी बनी । इस समय तक यह नगर बराबर जैनधर्मका एक प्रमुख केन्द्र बना रहा । श्वेताम्बर सम्प्रदायका तो यह प्रथम प्रधान केन्द्र था, किन्तु गुप्त कालके उदयके पूर्व ही इस स्थानसे पश्चिमकी ओर हटकर उन्होंने सुराष्ट्र-देशकी वल्लभी नगरीको अपना प्रधान केन्द्र बना लिया था । फिर भी उज्जैनी महानगरी विभिन्न धर्मों और संस्कृतियोंका सिन्धस्थल बनी रही । भारतीय साहित्य, ज्ञान और विज्ञानके सृजनमें इस महानगरीका सर्वोपरि स्थान रहा है । राजनैतिक राजधानी न रहनेपर भी शताब्दियों पर्यन्त यह नगरी भारतवर्षकी सांस्कृतिक राजधानी बनी रही और इसको वैसा घनाने-में जैन धर्मावलम्बी विद्वानों, मुनियों और श्रावकोंका भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा । जैनधर्म और साहित्यके इतिहासके साथ इस महानगरी और मालवा देशका अटूट सम्बन्ध है । भारतके सर्व प्रसिद्ध एवं सर्व प्राचीन लौकिक सवतो—प्रथम शक (ई० पू० ६६), विक्रम (ई० पू० ५७) और शक शालिवाहन (७८ ई०)—का जन्मस्थान भी उज्जैनी ही है ।

मथुरा—मथुरा नगरका जैन, वैष्णव, शैव, बौद्धादि विभिन्न भारतीय धर्मोंके साथ अत्यन्त प्राचीन कालसे ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहता आया है । मागधत धर्मके परमदेव भगवान् कृष्णकी यह लीलामूमि तथा उसके अनुयायियोंका महातीर्थ रहा है । बुद्धका भी वहाँ आगमन हुआ बताया जाता है और कुपाण कालमें यहाँ कई विशाल बौद्ध स्तूप एवं विहार विद्यमान थे । शैवोंका भी इस नगरके साथ प्राचीन सम्बन्ध है, और सहस्रो

ई० पू० में, उपरोक्त देव निमित्त स्वर्णमयी स्तूपको ढँटोसे ढँक दिया गया था। कुहरर, स्मिथ, बोगल आदि पुरातत्त्वज्ञ भी इस स्तूपके अवशेषोंको देखकर इसी निष्कर्षपर पहुँचे कि यह जैन स्तूप ईसासे नमते कम पाँच छह सौ वर्ष पुरा निमित्त हुआ था। अन्तिम सीधंकर महावीरका पदार्पण भी इस नगरमें हुआ बताया जाता है। उस समय यहाँका राजा पद्मोदयका पुत्र उदितोदय था। सम्यक्त्वकी मुदी वषामालाका घटना क्षेत्र और समय यही है। महावीरकी शिष्य-परम्परामें अन्तिम केवली जम्बूद्वामीने मथुराके चौरासी क्षेत्रपर दुर्द्धर तपश्चरण किया था। उन्हींके उपदेशसे इस नगरमें महान् दस्यु अञ्जनचोरने अपने ५०० माषियों-सहित दस्युवृत्ति छोड़कर मुनिग्रत धारण किया था और घोर उपसर्ग सहन करते हुए सद्गति प्राप्त की थी। इन मुनियोंकी स्मृतिमें यहाँ ५०० के आभग स्तूप निर्माण किये गये थे जिनके अवशेष मध्यकाल तक विद्यमान थे।

नन्द और मौर्यकालमें मथुरामें जैनधर्मकी क्या स्थिति रही निश्चयसे नहीं कहा जा सकता। ४थी शती ई० पू० में द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षके कारण उत्तरापथके जैन संघका एक बड़ा भाग अन्तिम श्रुतिकेयली भद्रबाहु-को अध्यक्षतामें दक्षिण देशको विहार कर गया था। दुर्भिक्षको समाप्तिपर भी उनमेंसे अधिकांश साधु वहीं रह गये और उनका संगठन कालान्तरमें मूल संघके नामसे प्रसिद्ध हुआ। मगधमें ही जो साधु रह गये थे उन्होंने स्थूलमद्र और उनके शिष्योंके नेतृत्वमें अपना पुण्य संगठन कर लिया। दुर्भिक्षके समय आपद्घर्मके रूपमें इन मागधी साधुओंने जो शिथिलाचार ग्रहण कर लिया था वह शनै-शनै रूढ़ होता गया और कालान्तरमें दिगम्बर-स्वेताम्बर सम्प्रदाय भेदका कारण बना। मथुरा आदि मगधसे दूरस्थ प्रदेश दुष्कालके प्रकोपसे उतने अस्त नहीं हुए थे, अतः यहाँके जैन साधु कर्णाटकी (दक्षिणी) और मागधी (उत्तरी) दोनों ही धाराओंसे अपने आचार-विचारमें कुछ विलक्षण रहे। दुष्कालका यह प्रभाव अवश्य हुआ कि ४थी-३री शती ई० पू० में मथुरामें बौद्ध और ब्राह्मण धर्मोंने विशेष

[illegible]

कमुपके विभिन्न स्थानी कीर निर्देशकर कंवाही तीरेके कल रात्री
 कम्बलित रात्रिों की कम्बलितियाँ कवा कीकड़ी की कम्बलित रात्रि हुर है।
 कम्बे विभिन्न तीरेकपेकी रात्रि का कम्बल कल रात्रि कम्बल-कम्बल
 कम्बलित रात्रि कम्बलित रात्रि, कम्बल रात्रि-कम्बल रात्रि कम्बलित रात्रि
 कम्बलित रात्रि कम्बलित रात्रि कम्बलित रात्रि कम्बलित रात्रि कम्बलित रात्रि
 कम्बलित रात्रि कम्बलित रात्रि कम्बलित रात्रि कम्बलित रात्रि कम्बलित रात्रि

विशाल, शिलास्नम्भ, आयागपट्ट, अष्टमंगलद्रव्य, ऐतिहासिक, तोरण, जितान्त्रय, प्रपा (घाघटी), उदयान आदिसे अवलोक्य प्राप्त हुए हैं । कई प्रस्तर-लक्षणोंपर ऋषभ-चैराग्य, महावीर-जम आदिसे पौराणिक दृश्य धारित हैं । कई एकपर दिगम्बर मुनियोंकी और पुछरर लण्डयानवासी धन-पालक मायुओंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । भारतीय तथा दक्ष आदि विदेशी नर नारियोंकी मूर्तियाँ भी निजी घेपभूपामें अङ्कित मिलती हैं । शोर-शोषण-से सम्बन्धित अनेक दृश्योंसे मथुरा-नियमितियाँ तत्कालीन घेपभूषा, श्रम-कार, मनोरंजन, कलाप्रियता आदिपर सुन्दर प्रकाश पड़ता है । अपनी उत्कृष्ट कारीगरीके कारण ये अवशेष आज भी भारतीय कलाके गौरव माने जाते हैं ।

प्राप्त शिलालेखोंमें-से डेढ़ सौसे अधिक प्रकाशित हो चुके हैं और उनमें आधेसे लगभग तिन्निगुणत हैं । अधिकांश यप संख्या ४ से १८ तकके हैं । कुछमें शक महादात्रप रज्जुचल, शोडास, मेवन्कि के नाम अङ्कित हैं और कुछमें कनिष्क, ह्विष्क, यद्विष्क, वासुदेव आदि कुषाण सम्राटोंके । मथुराके इन शिलालेखोंके आधारपर ही प्रथम शती ई० पू० के शक-दात्रपों तथा प्रथम व द्वितीय शताब्दी ई० के कुषाण-नरेशोंका पूर्वापर एवं वास्तविक सन्तोषजनक रूपमें निदिचन करना सम्भव हुआ । इन अमिलेखोंमें भक्तों-द्वारा विविध धर्मायतनों, उपकरणों, कलाकृतियों एवं लोकोपयोगी वस्तुओंके निर्माण कराने और दान देनेके उल्लेख हैं । उनमें लगभग साठ जैन गुरुओं-का उनके विभिन्न कुल, शाखा, गण तथा उपाधियों-सहित नामोल्लेख है, लगभग तीस तपस्विनी साध्वियोंके, लगभग एक सौ गृहस्थ श्रायकों और लगभग पचास महिला श्रविकाओंके भी नामोल्लेख हैं । इन लेखोंसे पता चलता है कि उस समय विभिन्न धर्मों, जातियों, वर्गों और व्यवसायोंके भारतीयजन तथा मथुरावासी यवन, शक, पल्लव, कुषाण आदि विदेशी भी जैनधर्मके भक्त थे । उनकी स्त्रियाँ भी स्वतन्त्रतापूर्वक पुरुषोंकी भाँति ही धर्मका पालन करती थीं, बल्कि दान देने और धर्मायतनोंका निर्माण

बाल्माको, सीति आदि विद्वानोंके नेतृत्वमें ग्राहणीय साहित्यके प्रणयनको भारी प्रोत्साहन दिया। उधर सिंहलद्वीपमें वहाँके राजाके आश्रयमें बौद्ध-सघ पालि त्रिपिटकको सकलित एवं लिपिवद्ध करनेका प्रयत्न कर रहा था। फलस्वरूप स्वयं भारतमें कनिष्कके आश्रयमें अश्वघोष, पार्श्व, वसुमित्र आदि बौद्ध विद्वानोंने चतुर्थ बौद्ध-संगीति बुलायी और स्वतन्त्र साहित्यका भी निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया था। ऐसी स्थितिमें मथुराके दूरदर्शी जैन गुरुओंने भी सरस्वती आन्दोलन-द्वारा अपने कट्टरपन्थी धर्मबन्धुओंके सकोच एवं सकीर्णताको दूर करनेका प्रयत्न किया, यह स्वाभाविक ही था। ई० पू० १६० के लगभग कलिंग चक्रवर्ती सम्राट् खारवेलने उड़ीसाके कुमारीपर्वतपर एक मुनिसम्मेलन किया था। सम्भवतः मथुरासंघके प्रतिनिधियोंके प्रभावसे ही उक्त सम्मेलनमें सरस्वती आन्दोलनका प्रारम्भ हुआ जिसका कि पदक्षेप स्वयं खारवेलका जैन नमस्कार मन्त्रसे युक्त बृहद् शिलालेख था। मथुरामें इतनी बड़ी सख्यामें लिखाये गये तत्कालीन जैन शिलालेख उक्त आन्दोलनकी प्रगतिके प्रतीक हैं। इतना ही नहीं, मथुरा सघने पुस्तकधारिणी सरस्वतीदेवीकी विशाल प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करके इस आन्दोलनमें जान ही डाल दी। दूसरी शती ई० के पूर्वार्धमें कुपाण नरेशोंके शासन-कालमें आचार्य नागहस्ति-द्वारा प्रस्थापित सरस्वती-देवीकी जो खण्डित मूर्ति मथुराके ककाली टीलेसे प्राप्त हुई है वह न केवल जैन सरस्वतीकी ही सर्वप्राचीन उपलब्ध मूर्ति है वरन् अन्य सम्प्रदायो द्वारा निर्मित उक्त देवीकी ज्ञात मूर्तियोंमें सर्वप्राचीन मानी जाती है। मथुरामें जैन सरस्वतीकी वैसी मूर्तियाँ बहुत पहलेसे ही बनने लगी थीं इसमें कोई सन्देह नहीं है और इसी कारण ज्ञान-जागृतिके उस प्रथम महान् जैन आन्दोलनको सरस्वती-आन्दोलनका नाम देना उपयुक्त ही है।

मथुरासे प्रचारित इस आन्दोलनका परिणाम यह हुआ कि दक्षिण एवं उत्तर भारतके कुन्दकुन्द, शिषार्य, कुमारनन्दि, विमलसूरि, उमास्वामी

आदि अनेक निष्कर्षाचार्य ईश्वरी शक्त के आत्मके पुत्र ही शत्रु-रचना में संलग्न हो गई और आशुतोष के मरहमर्दी आचार्य बुद्धि करके बने । अतः प्रथम एनी ई । ये ही करने कम दक्षिणात्मके विद्यार्थ्याचार्यों में बने । आशुतिष्ठ आशुतोषाचार्य के अन्तिम वर्ष निम्नलिखित कर अल्प तथा आत्म-बाल्यपक्ष आचार्य के इच्छापूर्वीय करमातृकीय करमातृकीय और प्रथम-कुलीनके भी इच्छापूर्वीय करने आत्म कर रिने । बहानि आत्म-आत्मकी मीरिष्ठ परमात्मा बहने कर कर को बहनी रही । इस आत्म संकल्पका एक वीर्यात्मा यह हुआ कि कि अश्वमेधकी अनुष्ठानने टाकना चारुई ने यह न एक बहाना और प्रथम एनी ई । के अन्तिम वर्ष में वीर हीन अश्वमेध अश्वत्थ विद्यार्थ आत्मिक और वीर्यात्मा परमात्मा इन ही वीरों में बहने के लिए विद्यार्थ हो गया । वीर्यात्मा चारुई के शत्रु बहनी आत्म-बाल्यपक्ष की कुछ कुछ ही निष्पत्ति करने लगे और बहने संकल्पका विरोध आत्म-वीर ही वर्ष बार एक करते रहे ।

बहानि अनुष्ठानके दोषों के बीच अश्वमेध करने के प्रकल्प में विद्यार्थ हुए तथापि कमता अश्वमेध-आत्मिकता पुन संकल्प हुआ । अश्व-विद्यार्थ के अश्वमेध की कल्पने अश्व-आत्मिकी वीरों ही अश्वमेध पुन एका न बहने आत्मिकी विद्यार्थ के अश्वमेध विद्यार्थ और न वीर्यात्मा के । अश्वमेध अश्वमेध की कल्पने अश्वमेध ही रही । किन्तु एक ही अश्व अश्वमेध की नहीं बहाना और अश्व एक वीरों के बीच की कटी ही बने रहे । अनुष्ठान आत्मिक अश्वमेध वर्ष ११८ १२० एवं ११९ (अश्वमेधका एक वर्ष) के भी वीर विद्यार्थ के अनुष्ठाने आत्म हुए हैं । इस आत्मिकी आशुतिष्ठ आशुतोषाचार्य अश्वमेध अश्वमेध अश्वमेध अश्वमेध अश्वमेध और ने भी वीर्यात्मा के अश्वमेध अश्वमेध रहे अश्वमेध ही रहे हैं । अनुष्ठान वीर वीर वीरों के अश्वमेध अश्वमेध अश्वमेध और अश्वमेध अश्वमेध की करता रहा । अतः १ - ११९ ई के अश्वमेध आशुतिष्ठकी अश्वमेधकी अनुष्ठानों ही वीर्यात्मा आशुतोषाचार्य एक अश्वमेध अश्वमेध आशुतिष्ठ आशुतोषाचार्य अश्वमेध करने के लिए हुआ

किन्तु वह परस्पर मतभेदके कारण विफल प्रयत्न हुआ। इससे स्पष्ट है कि द्येताम्बर और दायद दिगम्बर दोनों ही सर्वोपा कट्टर एवं बहुभाग अश मथुरावालोको सन्देहकी दृष्टिसे देयता था और उन्हें दूसरे पक्षकी ओर झुका समझता था। इस प्रकार जैन धर्मका एक प्रमुख पेन्द्र बने रहने हुए भी मथुरामें ८वीं-९वीं शती ई० पर्यन्त दिगम्बर द्येताम्बर भेद उत्पन्न न होने पाया।

मथुरासे प्राप्त प्राचीन जैन अवशेषोंके सम्बन्धमें अनेक देशी एवं विदेशी पुरातत्त्वज्ञों, कला-मर्मज्ञा, इतिहासकारा और विद्वानोंने जो अपने अभिमत प्रकट किये हैं उनसे उक्त अवशेषोंका धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व भली प्रकार प्रकट है। उनसे भारतवर्षकी साम्प्रतिक अभिवृद्धिमें प्राचीन मथुराके जैनोंके प्रशसनीय योगदानका मूल्यांकन करना भी सम्भव हो जाता है।

नाग वंश—नाग जाति भारतकी एक आर्योत्तर ही नही बरन् प्रागार्य आदिम जाति थी। महाभारत युद्धके उपरान्त उसकी शक्ति एकवारगी प्रबल वेगसे जागृत हो उठी थी और उसने वैदिक अथवा आर्य क्षत्रिय राज्याको प्रायः समाप्त ही कर दिया था। नाग जातिके ही काशीके उरग वंश और तदनन्तर मगधके शिशुनाक वंशने प्रथम ऐतिहासिक भारतीय साम्राज्यकी नींव डाली थी। नाग जातिके क्षत्रियोंको ब्राह्मण लोग ब्राह्मण-क्षत्रिय कहते थे। नागोंके अतिरिक्त वैसी ही प्रागार्य अन्य जातियोंके भी अनेक ब्राह्मण क्षत्रिय वंश उदयमें आ गये थे। ब्राह्मणक्षत्रिय मुख्यतया श्रमण-परम्पराके उपासक थे, उनमेंसे वज्जि, लिच्छवि, शक्य, मल्ल, मौरिय, शाक्य आदि अनेक वंशोंने अपने गणतन्त्र स्थापित कर लिये थे। किन्तु नन्द एवं मौर्य सम्राटोंके बढ़ते हुए प्रतापके सम्मुख ये सभी गणतन्त्र हस्तप्रभ हो गये थे और शनैः शनैः मगध साम्राज्यमें समा गये। पंजाबमें आर्य जातियोंके भी कुछ गणतन्त्र थे, किन्तु सिकन्दरके आक्रमण और तदनन्तर आय विदेशी शासकोंके कालमें ये सब क्षीणशक्ति और छिन्न भिन्न हो

करी वे । कुशाभीरी अवस्थिसे काय कम्पनर मज्जमाति दिखे प्रकटयै
जायी । उहके काय-ही-काय सबैक पुराने बचराज्ज भी दिखै बलापन्
हूए । यह मान्यतिका दुखरा ऐतिहासिक पुरस्कारन था ।

बाद-बचराज्ज पुनके इतिहासके उद्धारकर्ता एव ही राष्ट्रीयता
कायबलाजके अनुसार इन कायके प्रथम काय बाक्यबला करवान विरिचानै
हुआ था । सुनौके पालन-कालमें यह नगर उरराजा का राज्य-विनिधिवा
इतिहास विवादास्पद था । ई. पू. अवधन ११ में ईश नामक बाव
राजा विरिचका पादक निवृत्त हुआ और उहके उरराज्ज भीम
राजराज अवधनम् और बंवरनै प्रथम धरती ई. पू. के बादके अवधन
हक इन प्रदेयर कायन पिवा । सुनौके पुरानके बाद वे नाम राये काय
स्वतन्त्र हो करी वे निम्न कम्पनीमें निम्नानिपके समानके काय तथा
उरराज्ज मज्ज-कायानीके काय काय और कायनी राज्यानीकी विरिचानै
उद्धार लाजियारके विषय पचावतीमें के करी । यही अवधन ई. पू. २
के अनु ७८ ई. पचाव मुनकनी पित्तुनी बलाकनी पुरस्कार उरराज्ज,
अरराज्ज विरराज्ज और नामराजनी अवध स्वतन्त्र कायन पिवा ।
नम्पि-काय कपार कायमें कुशाव धरिजना हक विरराज्ज हीनके काय
नामनीय मज्जप्रदेयमें कने करी और हीमराज्ज एवं बलापुरके नन
नर्मनीमें उरराज्ज कपार कई बलाकौ कप राय कपे री । कुशरी मज्जनी
ई के उरराज्जमें कुशाव कायामके मज्जिन विररिमें वे बहानि निरककर
कनेककप हरी हूए नवा उरराज्ज नाम्पिनीमें कपे और कने कनी
राजानी बलाक कपरीके काय-नामके प्रदेयर राज्य करी करी । उर
नन-स्वतन्त्र प्रदेय प्रथम कायक नन-काय (अवधन १४-१७ ई.)
का और उररी कपि यह नन नन-काय नन बहकता ई । नहा काय ई कि
बलाकके बलाक विरके मज्ज हो करी वे उर काय नाम्पिनीमें यह बला
भापिज्ज ननके नाम्पिनी भी इतिहासमें उरराज्ज हुआ ।

ऐसा उररी होय ई कि कुशाव कायुरके राज्यानीमें नाम्पिनीका

नव-नाग उत्तर प्रदेशके पूर्वी भागका एक स्वतन्त्र शासक था। उसका उत्तराधिकारी वीरसेन (१७०-२१० ई०) नवनागसे भी अधिक प्रतापी था। पञ्चावमें यौवेयो-द्वारा कुपाणोंके विरुद्ध किये गये विद्रोहसे उत्पन्न अव्यवस्थाका लाभ उठाकर वीरसेनने अपनी शक्तिका विस्तार करना प्रारम्भ किया। उसने शीघ्र ही कौशाम्बीसे मथुरापर्यन्त समस्त देशपर अधिकार कर लिया और कुपाणोंको उत्तर प्रदेशसे निकाल बाहर किया। उसने पञ्चावतो और मथुराको अपनी उपराजधानियाँ बनायीं और उनमें अपने प्रसिद्धियों एवं उपशासकोंके रूपमें नाग उपराजवंश स्थापित किये। पञ्चावतोका यह नागवंश टाकवंश कहलाता है और इसमें भीमनागसे गण-पति नाग पर्यन्त छह-छह शासकोंने सन् २१०-३४४ ई० पर्यन्त राज्य किया। मथुराका वंश सम्भवतया यदुवंश भी कहलाता था। इस वंशने भी प्रायः इतने ही काल राज्य किया किन्तु इसके अमीतक केवल दो राजाओं—कीर्तिपेण और नागसेनके ही नाम प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त अम्बालेके निष्कट नृधन नामक स्यानमें, बुलन्दशहर जिलेके इन्दुपुरमें और वरेली जिलेके अहिच्छत्रमें भी नागराज्य स्थापित हुए। सुदूर दक्षिणमें भी एक शक्तिशाली नाग मण्डल था और राजतरंगिणीके अनुसार कश्मीरमें भी एक नाग वंशका राज्य रहा प्रतीत होता है। किन्तु उत्तर भारतका इस कालका प्रमुख और प्रधान नाग राज्यवंश कान्तिपुरीका भारशिख वंश ही था।

वीरसेनके उपरान्त ह्यनाग, भयनाग, वहिननाग, चरजनाग और भवनागने क्रमशः सन् ३१५ ई० पर्यन्त राज्य किया। इन नाग-नरेशोंने कुपाणोंको अन्ततः भारतवर्षको सीमाओंके बाहर खदेड़ भगाया और उन्हें ईरानके सासानो शाहशापुर (३री शती ई०का मध्य) की धारण लेनी पड़ी। कुपाणोंका अन्त हो जानेके बाद भी मगधमें उनके महाकाय वंश-म्परके वंशजोंका शासन चलता रहा। यही वंश सम्भवतया मुख्य वंश भी कहलाता था। काम्बुज (हिन्दचीन) के राजाका एक दूत सन् २४५ ई० के लगभग पाटलिपुत्रके मुख्यराजाके दरबारमें आया था।

कैलाशम पादकिण्ठद्वारिणे सम्प्रस्थित अनुभूतिर्ने श्री पादकिण्ठधरः कला-
 पाटी मुकुटकिं वाहनं चौरः पतः वरकी वीर्यं वाहू व विवायका
 कलिका मित्राः ॥ इत विदेही बंधके कलः करनेवा सेव बकाटक किण्ठ-
 वलिको ॥ को पादकिण्ठेना एक महाहापत वा । इसके कवरालत बन्नामें
 यी पुनः कवरालत स्थापित हुआ । किन्तु मयबने कवरौता पश्य स्वावी
 व पदा । प्राचीन किण्ठलिखने वहाँ वीर्य ही कलौ स्थापन कल
 स्थापित कर की और पादकिण्ठको करने कवरालतका केन ववा किया ।
 वस्तुतः इन कवरौकी कालन-यवाकी यी बंधालक यी भारतिव कलके
 केता ये और कलकी कालकलमें कलः संवर्ने उनके प्रतिनिधि स्वरूप कलके
 वावराय्य कलः प्रकालन लमिन्वित वे । कलः मुबने कवरालन प्रकाली ही
 कलिक कोकप्रिय यी । वृषी वंशधर एवं राजस्वालयी वीर्य कवरुनाय्य
 कलके कलके, कलकाय्यमें कालन विहारने किण्ठकि कलकि कलकि
 कलः कवरालत वे । किन्तु काल कलित कलक यी और इन कलः कलके
 प्रकल कलिकको कलकी कलकाय्य किण्ठमें देकर कलकी कलकाय्य स्थापित
 करके बंधालिकको कलकेमें कलः यी । कलके किण्ठमें यी वे कलः
 उधार और कलिकु वे । कलकी कलिकी केन और केन यी ही कलकी
 कलिक यी । किण्ठका कलकाय्यकलः, कलः कलिकल कलकि कलके कलः
 केन कलकाय्यकी यी कलिक केन एवं कलकाय्य केन वे । केन अनुभूतिर्ने
 काल कलिकी किण्ठ कलकाय्य प्राप्य है, वे प्राचीन किण्ठकलके बंधक कल
 कल है । कलकाय्य कलकाय्य कलकाय्य केन एवं कलकाय्य कलकाय्य किण्ठके
 कलकाय्यकलः केन यी कलः ही किण्ठ कलकाय्य है । कलके कलः कलः यी
 कलके कलकी स्मृति कलके कलः है । कलकी कलकाय्यकलकाय्य कलकि कलिकी
 यी कलः कलकाय्यके कलकाय्यकलकाय्य केन कलकी कलिकी
 है । कलः कलकाय्य कलकाय्य यी कलः कलकाय्यकलः कलः कलः कलः
 केन कलकाय्यके कलकाय्यकी किण्ठ कलकाय्य कलः के कारण कलः कलः
 कलिकी ही कलकाय्यकलः कलकाय्य वा । कलः कलः कलिका कलिक

लाएन था। सर्प साछन विशिष्ट तीर्थकर पादर्वकी परम्पराभवन नागजाति नागमण्डित यागिराज शिवकी ओर भी आकृष्ट हुई इसमें क्या आश्चर्य।

वकाटक वंश—नवनागवंशका अन्तिम शासक भवनाग पुत्रहोन था, उसके मात्र एक कन्या थी जिसे उसने अपने सामन्त विन्ध्यदावित वकाटकके पोत्र और प्रवरसेन वकाटकके पुत्र गौतमापुत्रको विवाह दो था। गौतमी-पुत्रकी शीघ्र ही मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र रुद्रसेन वालक था, किन्तु वह अपने पितामहके छाटे-से राज्यका ही नहीं बल्कि अपने नानाके विशाल राज्यका भा उत्तराधिकारी था। भवनागकी मृत्युके उपरान्त प्रवरसेनने अपने पोतेके सरक्षकके रूपमें भारशिष और वकाटक दोनो राज्याँको सम्मिलित करके शासन चलाया। यह बड़ा शक्तिशाली राजा था। चारों दिशाओंमें उसने दिग्विजय की, विशेषकर मालवा, गुजरात और सौराष्ट्रको विजय करके उसने ४थी शती ई० के प्रारम्भमें उक्त देशोंमें चण्ड-वंशी शक क्षत्रपोंके शासनका प्रायः अन्त कर दिया था। अब वकाटक शक्ति भारतवर्षकी सर्वोपरि राज्य-शक्ति थी। सन् ३३५ ई० में प्रवरसेनकी मृत्यु हुई और उसका पोत्र अब उत्तराधिकारी रुद्रसेन प्रथम (३३५-३६० ई०) गद्दीपर बैठा। उसके राज्यमें उत्तरप्रदेश, मध्यभारत, मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र तथा दक्षिणके भी कुछ भाग शामिल थे। उसके अन्तिम दिनोंमें शकक्षत्रप रुद्रवामन द्वितीयने फिरसे सौराष्ट्र एवं गुजरातपर अधिकार कर लिया। रुद्रसेनके पश्चात् पूष्यसेन वकाटक (३६०-३८५ ई०) राजा हुआ। इसका पुत्र रुद्रसेन द्वितीय था। इस कालमें मगधमें गुप्त साम्राज्यका उदय हो रहा था। वकाटक शक्ति अब भी प्रबल थी और पश्चिमी शक क्षत्रपोंका अन्त करनेमें विशेष रूपसे सहायक हो सकती थी। अतः गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीयने अपनी कन्या प्रभावतीका विवाह रुद्रसेन द्वितीयके साथ कर दिया। विवाहके पाँच वर्ष उपरान्त ही रुद्रसेनकी मृत्यु हो गयी और प्रभावतीने राज्यकार्य संभाला। वकाटक सेनाओंको सहायतासे गुप्तसम्राट् गुजरात सौराष्ट्र आदिसे भी शक सत्ताका उच्छेद

अध्याय ५

प्राचीन युग—चतुर्थ पाद

उत्तर भारत (सन् ३००-१२०० ई०)

चौथी शताब्दी ई० के पूर्वार्धमें नाग-वकाटक युगकी समाप्ति और गुप्त साम्राज्यके उदयो नाग-हीना-ताम्र भारतीय इतिहासक प्राचीन युगका पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है और उसके उत्तरार्धका प्रारम्भ हो जाता है। इस उपगन्त कालमें ऐतिहासिक साधनाकी विविधता एवं प्रचुरताके कारण इतिहासकारका कार्य भी पहलेकी अपेक्षा अधिक सुगम हो जाता है।

गुप्त वंश—गुप्त वंश मूलतः सम्भवतया प्राचीन भारत जातिका ही एक ऐसा वंश था जिसने वैश्य वृत्ति अंगीकार कर ली थी। किन्तु प्राचीन कालमें और विशेषकर श्रमण परम्पराके अनुयायी ब्राह्मण आदिकोंमें वर्ण अमल नहीं बरतता था और वर्णपरिवर्तन सहज था एवं व्यक्तिगत स्वेच्छा-पर निर्भर था। अतः प्रारम्भिक गुप्तलोक राज्याधिकारी और मामल आदि भी रहे प्रतीत होते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्यके शासन-कालमें उसका एक कर्मचारी जो गिरनार प्रदेशका शासक था वैश्य पुष्यगुप्त था। मयूराके एक शककालीन जैन शिलालेखमें एक गोप्तिपुत्रका उल्लेख है जो शकों और पल्लवोंके लिए 'कालक्याल' सृज्ज कहा गया है। उसकी जननी गुप्त वंशकी कन्या रही प्रतीत होती है। इसी प्रकार भरहुतके एक स्तम्भ लेखमें एक अथ गोप्तिपुत्रका उल्लेख है जिसका नाम राजा विसदेव था।

ऐतिहासिक गुप्तवंशका प्रथम पुरुष राजा श्रीगुप्त था जिसने नाग-वकाटकों द्वारा मगधसे शक शासनका उच्छेद कर दिये जानेके समय

नाकाम्यादे ४ पीठव दूर्वकी बीर बनना एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर
 दिया था। वह प्रदेशमें बौद्ध धर्मकी प्रवृत्ति कुछ अधिक थी यह राज्य
 भी इसी धर्मका अनुयायी रहा प्रतीत होता है। मूर्धनिका उनके निज
 अपने बीली बौद्ध धर्मियोंके विराटके लिए एक विहायना निर्माण की
 कठिन बहस्य बना है। कबका उत्तराधिकारी महेन्द्रवन्धु का मिलने
 'महासाह चरपी चारण की। इनका पुत्र चन्द्रवन्धु प्रथम का बीर बनने
 'महासाह-विजय' उत्पत्ति चारण की। ऐतिहासिक कुछ बंदना गयी प्रथम
 ब्रह्मर्ष का बीर कृ ३१९-२ ई में इसके साम्राज्यवैरके ही कुछ
 मन्त्रीकी प्रवृत्ति हुई गन्ना जाती है। उत्तरी पक्षमें वह समय निष्कर्मिभक्त
 पालिकायों का। पाटलिपुत्रकी वज्रका अधिकार था। चन्द्रवन्धुने
 पाटलिपुत्रके सिन्धुवि नरेणकी एकमन्त्र कन्ना गुमाछेरीके बाव निज
 करके अपनी पालिका विस्तार किया। इन कन्नायके कारण पाटलिपुत्र
 की वज्रका अधिकार ही मन्त्र बीर सिन्धुविमन्त्रका सम्पूर्ण प्रदेश बड़े
 राज्यका क्षेत्र बन गया। चरित्रकी बीर उत्तर प्रदेशमें भी अपने अपने
 राज्यका विस्तार किया। निष्कर्मिधर्मके इति कृष्णका प्रवृत्ति करकेके लिए
 कबने सिन्धुविमन्त्रा गुमाछेरीकी वृत्ति की बनने बाव ही अपनी गुमाछेरी-
 पर अधिक कठिनी बीर मन्त्र पालिकाके क्लेश लोह कुछ पक्षे हुए की
 बड़ीसे उत्पन्न सिन्धुवि-रीतिव अनुकूलकी बनना उत्तराधिकारी बनना।
 चन्द्रवन्धु प्रथमने सम्भवतया कृ ३१५-३२८ ई तक राज्य किया बीर
 कृ ३१९-२ ई में सम्भवतया कबने पाटलिपुत्रमें बनना साम्राज्यवैर
 करके स्वयंकी ब्रह्मर्ष घोषित किया था।

समुद्रगुप्त (३२८-३८८ ई) एक वरम मन्त्री बीर चन्द्र
 विजेता ब्रह्मर्ष का अपनी धर्मिकके कारण वह भारतीय धर्मिकमें
 स्वर्गीय माना जाता है। राज्यमें बड़े मुद्रकबद्धका आक्रमण करना बड़ा
 बाकके केन्द्रमें बड़े मन्त्र पालिकाके बड़े निज विजेत किया किन्तु
 अनुकूलन बीर ही विजेतका वरम कर दिया। समुद्रगुप्त वह धर्म

यके लिए निकला। सर्वप्रथम उसने अहिच्छत्र-नरेश अच्युत, पद्मावती-
 रेश भारशिव नागसेन और पूर्वी पजाबके कोटकुल वशी नरेशको विजय
 करके अपनी आर्यावर्तकी विजय पूर्ण की। तदनन्तर उसने दक्षिणकी
 विजययात्रा की और दक्षिणकोसलके राजा महेन्द्र, महाकान्तारके
 यात्रराज, कोशलके मटराज, पिष्टपुरके महेन्द्रगिरि, कोटदूरके त्रामिदत्त,
 ऐरण्डपल्लके दमन, कांचीके विष्णुगोप पल्लव, अवमुक्तकके नीलराज,
 वेगिके हस्तिवर्मन, पाल्लकके उग्रसेन, देवराष्ट्रके कुवेर, कौम्यलपुरके
 घनजय आदि विभिन्न छोटे-बड़े राजाओंको पराजित करके उनसे
 अपनी अधीनता स्वीकार करायी। उसकी दक्षिण यात्राका लाभ उठाकर
 उत्तरके अनेक नाग, वकाटक तथा अन्य राजाओंने विद्रोह कर दिया था,
 अतः लौटकर उसने उनका नमन किया और उनमें-से अनेकोंके राज्यको अपने
 साम्राज्यमें मिला लिया। समतट, कामरूप, नेपाल, दवाक और कर्तृपुर
 आदि प्रत्यन्त राज्योंको उसने अपना करद बनाया, आटविक राजाओंको
 परिचारक बनाया और मालव, अर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर आदि
 गणराज्योंसे भी अपनी अधीनता स्वीकार करायी। अवशिष्ट शक, मुरुष
 आदि राजाओंका भी दमन किया। इस प्रकार इस महान् विजेताने
 प्रायः सम्पूर्ण भारतमें अपनी विजय-पताका फहरायी और पाटलिपुत्रके
 गुप्त साम्राज्यको अपने विस्तारकी चरम सीमापर पहुँचा दिया। इस
 उपलक्ष्यमें उसने नवीन सिक्के चलाये तथा अश्वमेध यज्ञ किये। किन्तु ये
 यज्ञ प्राचीन वैदिक शैलीके हिंसा-प्रधान यज्ञ नहीं थे धरन् दान-गुण्य, दीन-
 हरिद्रोंकी सहायता आदि ही इन सांकेतिक यज्ञोंका प्रधान अंग था।
 इस सम्राट्के गुणों, विजयों एवं कार्यकलापोंका सुन्दर वर्णन प्रयागके
 अशोक स्तम्भपर उत्कीर्ण इस नरेशकी विस्तृत मस्कृत प्रशस्तिमें पाया
 जाता है जिसका रचयिता उसका सन्धिविग्रहिक महादण्डनायक हरिषेण
 था। सम्राट् समुद्रगुप्त विद्याव्यसनी, संगीत और कलाका प्रेमी, वीरपराक्रमी,
 कुशल सेनानायक, महान् योद्धा, उदार दानी और धार्मिक नररत्न था।

कुछ विद्वानोंके मतसे बहो था । उसके सिक्के भी मिलने हैं । चीनी यात्री फाह्यान (३९९-४१४ ई०) ने इसीके समयमें भारत-यात्रा की थी ।

कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य (४१४-४५५ ई०) पट्ट महा-देवी ध्रुवदेवीसे उत्पन्न चन्द्रगुप्तका पुत्र था । इसके समयमें विशाल गुप्त साम्राज्य अक्षुण्ण रहा, बल्कमे लेकर बंगालकी खाड़ी पर्यन्त उसका अबाधित शासन था । गुप्तशक्ति इस समय अपने चरम शिखरपर थी, सर्वत्र सुख शान्ति और समृद्धि थी । सम्राट् परम भागवत था किन्तु जैन, बौद्ध आदि ऋषि धर्म भा स्वतन्त्रतापूर्वक फल-फूल रहे थे । इसने भी अद्वैतमेध यज्ञ किया । मध्य भारतमें पुष्यमित्रोंने विद्रोह किया किन्तु कुमार स्कन्द-गुप्तने उनका दमन किया । बर्बर श्वेन हूणोंके आक्रमण भी इस सम्राट्का अन्तिम दिनामें प्रारम्भ हुए । इसने नये सिक्के भी चलाये । मालन्दा विश्व-विद्यालयका उदय भी इसीके समयमें हुआ बताया जाता है ।

स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य (४५५-४६७ ई०) का बड़ा भाई पुरुगुप्त उसका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था, किन्तु पुष्यमित्रा और हूणोंके दमनमें अदभुत वीरता प्रदर्शित करनेके कारण स्कन्दगुप्त लोकप्रिय हो गया था और पिताकी मृत्युके बाद वही साम्राज्यका अधिपति हुआ । उसने सिंहासन-पर बैठते ही समस्त प्रान्तोंमें शासक नियुक्त करके शासन-व्यवस्था ठीक की । उसने पर्णदत्तको सुराष्ट्रका गवर्नर बनाया । पर्णदत्तके पुत्र चक्रपालितने जो जूनागढ़ (गिरनार) का नगरपाल था इतिहासप्रसिद्ध सुदर्शन तालका जीर्णोद्धार कराके वहाँ शिलालेख अंकित कराया था । स्कन्दगुप्तके शासनकालमें हूणोंके आक्रमण घराबर होते रहे और उसका सारा जीवन उनके साथ युद्ध करते ही बीता । मिटारीकी विष्णुमूर्तिके लेखमें इस सम्राट्-द्वारा देशको हूणोंसे त्राण दिलानेका वर्णन है । युद्धोंके कारण देशकी समृद्धि कम हो गयी, राजकोष भी खाली हो गया, उसके सिक्के भी हलके तथा मिश्रित स्वर्णके हैं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसने साम्राज्यको अक्षुण्ण रखा । गुप्त वंशका यह अन्तिम महान् सम्राट् था ।

पुष्पगुप्त (४१३-४६ ई)—चरमपुत्रके चौथे पुत्र ही का नाम
 बनना बना था। पुष्पगुप्त की सब कुछ ही कुछ का महान्त हुआ। यह
 बीड़ बर्मरा अनुवासी यह और एक निर्दोष शासक था। बरहस्पत नीलनेक-
 न हृष्टादे आश्रमके मन्त्र ही अपनी पत्नी बाली की कन्या कर दी थी। यह
 बह गुरुत्व ही बना की बीड़ ही। इनके समयमें माथी तथा रचित
 कोकले की कुछ मन्त्र बनना अधिकार कर लिया।

मरुतिहगुप्त (४६-५३ ई) पुष्पगुप्तका पुत्र था। इनके 'आश-
 रित्य' शासि शास की। यह भी बीड़ था। इनके समयमें ही पुत्र
 शासकगुप्त। ज्ञान शरी था।

कुमारगुप्त द्वितीय (४६३-४७३ ई) बीमर और वरमनामर
 था। इनके बहादुरी बलवानों विराम विजय कर लिया। इनके बाद
 पुष्पगुप्त नामा हुआ जिसने समयमें ४७५ ई. तक राज्य किया। यह पुत्र
 बरह पिरन गार्ग्यगुप्तने ही इनके बने थे। आश्रमका विस्तार अनुचित
 होता था रहा था। पुष्पगुप्त बर्मने बीड़ का और बालक्य विहारकी इनके
 बड़ी बहादुरी की थी। इनके वरमान् पौष्पगुप्त नामा हुआ जिसने समयमें
 ५०३ ई. तक राज्य किया। इनके पुत्रने आश्रम की भाव गयी जिस
 का इनके निरन्तरमें लक्ष्मी काया फिरने बड़ी हुई मिली है। यह राजा
 बीमरबर्मने राजा करीब होता है।

इनके समयमें कुछ साम्राज्य विस्तार-विषय होने लगा। इनके पत्नीकी
 अन्तर मन्त्रगुप्त नामाशिवका अधिकार बना जाता है। तीरमनके
 नेगुप्तने हर्मने फिर इनका आश्रम विराम। वर्ष ५१०-११ ई. में मन्त्रगुप्तने
 कई पुत्री बह गार्ग्यगुप्त की किया, किन्तु इनका अन्तर बनना ही था।
 पुत्र राज्य जब बरमानने मन्त्रगुप्त मन्त्र अन्तर गार्ग्यगुप्तने ही बीमर गह बना
 था। इनके आश्रममें अन्तर विराम पतिविरति का नाम अन्तर अनेक
 अन्तरीय शासक शासक एवं इनमें स्थान ही बने थे। इनके-ही शासक
 अन्तरीय अन्तरीय अन्तरीय, अन्तरीयके बर्मन और बालकीके दीपक

नरेश प्रमुख हैं। इन्हीं शक्तियोंने अन्ततः गुप्तोंका उच्छेद किया। गुप्त नरेशोंका सूर्य अस्तगत था, यशकी कटि धागाएँ हो गयी थीं। ५३५ ई० में भानुगुप्तकी मृत्यु हुई और कुमारगुप्त तृतीय गद्दीपर बैठा। तदनन्तर दामोदरगुप्त राजा हुआ और उसने लगभग ५५० ई० तक राज्य किया। इस कालमें कन्नोजमें ईशानवर्मन् मौग्यरिने स्वतंत्र होकर सम्पूर्ण मध्यदेशसे गुप्त शासनका अन्त कर दिया। दामोदरगुप्तके उपरान्त महासेनगुप्त राजा हुआ। छठी शतीके अन्त तक वह जीवित रहा। उसके समयमें गुप्त वंशकी शक्ति फिर कुछ मँमली। उसके पुत्र कुमारमात्य देवगुप्तने मालवापर अधिकार कर लिया और वहाँ स्वतंत्र शासककी भाँति राज्य किया। यह महाराज देवगुप्त जैनधर्मानुयायी था। इसने वगालके गुप्तवंशी शासक पलाणके साथ मिलकर गृहवर्मन् मौग्यरिसे युद्धमें पराजित किया और मार डाला। इसपर गृहवर्मन्के माले, थानेश्वरके राज्यवर्धनने देवगुप्तपर आक्रमण किया और उसे पराजित किया। इस पराजयसे देवगुप्तका चित्त संसारसे विरक्त हो गया और वह अपने ही वंशके जैन मुनि हरिगुप्तसे दीक्षा लेकर जैन साधु हो गया। उसके साथ ही मालवा व मध्यभारतमें सदाके लिए गुप्तवंशका अन्त हो गया। उसके पिता महासेनगुप्तने अपनी बहनका विवाह थानेश्वरके आदित्यवर्धनके साथ कर दिया था और देवगुप्तका छोटा भाई माधवगुप्त अपनी बुआके पास थानेश्वरमें ही रहता था, अतः राज्यवर्धन और हर्षके साथ उसकी मैत्री रही। महासेनगुप्तके बाद पाटलिपुत्रके गुप्त राज्यका माधवगुप्त ही स्वामी हुआ। उसके उपरान्त आदित्यसेन, देवगुप्त द्वितीय, त्रिष्णुगुप्त और जीवितगुप्त क्रमशः गुप्तोंके सिंहासनपर बैठे। ७वीं शतीके अन्तके लगभग जीवितगुप्तकी मृत्युके साथ-साथ गुप्त वंश और उसके राज्यका अन्त हो गया।

यद्यपि गुप्त साम्राज्यका अम्युदय काल समुद्रगुप्तसे लेकर स्वर्द्धगुप्त पर्यन्त लगभग छेड़ सौ वर्षका ही रहा तथापि ४ शी से ६ शी ई० पर्यन्त तीन सौ वर्षका काल भारतीय इतिहासका गुप्तयुग कहलाता है।

तीनों ही प्रधान धर्म समुन्नत दशामें सहयोग एव सद्भावपूर्वक फले-
 फूले । गुप्तवशमें प्रधानतया भागवत धर्मको प्रवृत्ति थी और प्रमुख
 सम्राटोंके समय वही राज्यधर्म था किन्तु इस वशके कई, विशेषकर उत्तर-
 वर्ती, राजे बौद्ध धर्मके अनुयायी हुए और कुछ एक जैन धर्मके भी ।
 राज्यवशके स्त्री-पुरुषोंमें स्वेच्छा और स्वरुचिके अनुसार इन तीनों ही
 धर्मोंके अनुयायी रहे पाये जाते हैं । गुप्त-नरेश सर्वधर्मसहिष्णु थे । धार्मिक
 अत्माचार या प्रतिबधोका उस कालमें कोई चिह्न नहीं मिलता । जहाँतक
 जैनधर्मका सम्बन्ध है वह समुन्नत दशामें था । कर्णटिकको केन्द्र बनाकर
 प्रायः पूरे दक्षिणापथपर दिगम्बर सम्प्रदाय व्याप्त था । गुजरात, सोराष्ट्र,
 पश्चिमी राजस्थान और मालवामें श्वेताम्बर सम्प्रदाय प्रमुख था ।
 उत्तरापथमें मथुरा, हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, भिन्नमाल या धीमाल, कोल,
 उर्चनगर, कोशाम्बी, देवगढ़, विदिशा, श्रावस्ती, वैशाली, वाराणसी,
 पाटलिपुत्र, राजगृही, चम्पा, पट्टाहपुर आदि जैनधर्मके प्रसिद्ध केन्द्र थे ।
 पञ्जाबसे लेकर बंगाल तक जैन मुनियोंका स्वच्छन्द विहार था । प्रधानत
 दिगम्बर श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायोंमें विभक्त तथा अनेक गण गच्छ
 शास्ता गुरु अथवा आदिके रूपमें सुसंगठित चतुर्विध जैनसंघ एक परिपुष्ट
 लोकपाल या और जन-जीवनपर उसका पर्याप्त नैतिक प्रभाव था ।
 गुप्तकालीन उपलब्ध जैन अथर्ववेद मथुरासे प्राप्त प्रस्तरमयी जिनमूर्तियाँ,
 यक्ष-यक्षियोंकी मूर्तियाँ एव कई पिलालेख, कहाऊँ (जिला गोरखपुर)
 का पंच जिनेश्वरको प्रतिमाओंमें युक्त लेखांकित जैनस्तम्भ, पट्टाहपुर
 (बंगाल) से प्राप्त तथा पंचस्तूपारवयो यात्राके दिगम्बर गुह्यों-द्वारा
 उन्मोच कराया हुआ रामपत्र जिसमें बटगोहालोक जैन अधिष्ठानको किसी
 ब्राह्मण दम्पति-द्वारा शान्त दिये जानेका उल्लेख है, विदिशाके निकट उदय-
 गिरिके पिलालेख मुक्त जैन गुह्यमंदिर, देवगढ़ (जिला झाँसी) के प्राचीन
 जैनमंदिर आदि प्रमाण हैं । मगधके जिस लिच्छवि गणको सहायतासे तथा
 लिच्छवि राजकुमार कुमारदेवीके साथ विवाह करनेका कारण चन्द्रगुप्त

चाण्डाल कहते हैं । वे नगरके बाहर रहते हैं और जब नगरमें आते हैं तो सूचनाके लिए लकड़ो बजाते चलते हैं जिससे लोग जान जायें और बचकर चले । जनपदमें कोई भी सूअर या मुर्गी नहीं पालता, न जोषित पशुओंको बेचता है । न कहीं सूनागार और मद्यकी दुकानें हैं । केवल चाण्डाल ही मछली मारते, मृगया करते और मास बेचते हैं ।' चीनी यात्रीके वर्णनसे प्रकट इस तरहका आचार-विचार जैनधर्मके व्यापक प्रभावका ही फल रहा होगा । मद्य-मास, मछली, प्याज, लहसुन, मृगया आदिका सेवन न हिंदू धर्ममें वर्जित था और न बौद्धधर्ममें । इन वस्तुओंका ऐसा सर्वथा अभाव जैन प्रभावसे ही सम्भव हो सकता था । सारांश यह कि गुप्तकालमें उदार गुप्त-नरेशोंके प्रश्रयमें जैनधर्मका प्रभाव एव प्रसार देशमें पर्याप्त व्यापक था, यह धर्म उस कालमें समुन्नत दशामें था और लोक-जीवनका एक प्रमुख अंग था । देशकी सांस्कृतिक अभिवृद्धि, कलाकृतियों, विविध साहित्य एव विज्ञानके निर्माण विकासमें भी तत्कालीन जैनोंका योगदान कम नहीं था । श्वेताम्बर आगमोंका सकलन भी इसी युगमें (४५३ई०) में देवद्विगणि-द्वारा वल्लभीमें हुआ था ।

हूण—श्वेत हूण मंगोलियाकी निवासी एक अत्यन्त बर्बर, युद्धप्रिय और खानाबदोश जाति थी । इन्हींके दबावसे पीड़ित होकर २ वीं शती ई० पू० में यूची जाति स्वदेशसे खदेड़ी जाकर सोथियापर जा टूटी थी और परिणाम स्वरूप शकोंका भारतमें प्रवेश हुआ था । एक बार फिरसे हूणोंके आक्रमणोंसे त्रस्त होकर १ वीं शती ई० में यूचीलोग कुपाणोंके रूपमें भारतमें प्रविष्ट हुए । भारतके कुपाण साम्राज्यकी प्रबल शक्तिके कारण हूणोंने उन्हें फिर तग नहीं किया और वे पश्चिमकी ओर यूरोपीय देशोंपर टूट पड़े जहाँ उनके दुर्दान्त आक्रमणोंने विशाल रोमन साम्राज्यको छिन्न-भिन्न कर दिया । पश्चिमी जगत्में हूण सरदार एटिल्लाका नाम चिरकाल तक भयका संचार करता रहा । पाँचवीं शती ईसवीके द्वितीय पादमें इस भयकर जातिने फिर भारतकी ओर रुख किया । गांधार आदि भारतके सीमान्त प्रदेशोंपर

महाराष्ट्र इतिहास कट दी

वह विजय दिननी स्थायी रही थी। तोरमाण या तोरराय उसके उपरान्त भी जीवित और शक्तिशाली रहा। ५१५ ई० के लगभग उसकी मृत्यु हुई और उसका पुत्र मिहिरकुल हूणराज्यका अधिपति हुआ। वह भी भयंकर योद्धा था किन्तु अपने पिताकी भाँति मध्य और उदार धामन नहीं था, बल्कि क्रूर और अत्याचारी था। उसके सिक्कोंमें इसका चैव होना सूचित होता है। एरन और ग्वालियरमें उसने जिलाखेस भी मिले हैं। अपनी अमहिष्णुता, क्रूरता और अत्याचारोंके कारण वह सबका अप्रिय हो गया। इसने साकल या स्याल्कोटको अपनी राजधानी बनाया था और बालादित्यको भी पराजित किया था, किन्तु सन् ५३०-३१ में मामकेके यशोधर्मने उसे बुरी तरह हराया। फल-स्वरूप उसने भागकर कश्मीरमें शरण ली और वहाँ अपने आश्रयदाताका ही छप्पे मारकर कश्मीरका राज्य हथिया लिया। ५४२ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। साकलका राज्य उसके भाईने पहले ही हस्तगत कर लिया था। मिहिरकुलने बौद्धोंपर बहुत अत्याचार किया था जिसके लिए बालादित्यने जो बौद्ध या उसे फिर परास्त किया कहा जाता है। इसके उपरान्त हूणोंका फिर कोई उल्लेख नहीं मिलता। कश्मीर और पश्चिमी पंजाबमें जो हूण राज्य जम गये थे तथा उत्तर प्रदेश और मध्य भारतमें जो फुटकर हूण बस गये थे धीरे-धीरे उनका भारतीयकरण हो गया और वे भारतीय समाजमें ही खिल-मिलत हो गये। गुप्त साम्राज्यके पतनका प्रधान श्रेय हूणोंको ही है।

प्राचीन जैन अनुश्रुतिमें भगवान् महावीरके निर्वाणसे एक सहस्र वर्ष बाद कल्कि का अन्त कहा है जिसके अर्थ है कि ८७३ ई० में उसका अन्त हुआ। उसने ४० वर्ष पर्यन्त अत्याचार पूर्ण राज्य किया बताया जाता है और क्रूरता, बर्बरता, अनीति तथा धर्म, धर्माचारों एवं धर्मापतनोंका विध्वंस, आदि उसके राज्यकी विशेषताएँ बतायी जाती हैं। उसकी मृत्युके उपरान्त उसके पुत्र अनितंजयका धर्मराज्य स्थापित हुआ कहा गया है। अतः जिस हूण सरदारने कुमारगुप्त प्रथमके समय सन् ४३३ ई० के लगभग

उसकी अनेकों विजयाका तथा उसके द्वारा हूणोंको बुरी तरह पराजित करने आदिका वर्णन है और लिखा है कि भारतके सभी नरेशोंने यशोधर्मन्के नम्मुख मन्त्रक झुका दिया था। इस अद्भुत वीरका पूर्वापर अमोक्तक ज्ञात नहीं हो सका है। उसके साम्राज्यका भी उसीके साथ अन्त हो गया। हूणोंकी शक्तिका तो उसने अवरोध कर ही दिया किन्तु साथ गिरते हुए गुप्त साम्राज्यको भी एक ठोकर लगा दी। अब साम्राज्यके विभिन्न सामन्त और प्रान्तीय शासक खुले रूपसे स्वतन्त्र हो उठे।

कन्नौजका मौखरि वंश—यह एक प्राचीन मागध वंश था। गुप्त साम्राज्यकी स्थापनाक उपरान्त गुप्तोंके फरद सामन्तोंके रूपमें गयाके समीपवर्ती प्रदेशपर मौखरियोंका शासन था। इन सामन्तोंमें महावर्मा, सार्द्ध-लवर्मा और अनन्तवर्माके नाम मिलते हैं। इसी वंशकी एक शाखा गुप्तोंके सामन्तोंके रूपमें कन्नौजपर शासन करती थी। ६ठी शती ई० के प्रारम्भमें राजा हरिवर्माका पुत्र आदित्यवर्मा मौखरि कन्नौजका शासक था। उसकी पत्नी गुप्तवंशकी ही एक राजकन्या थी। इससे मौखरियोंकी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ गयी। आदित्यवर्माके पुत्र ईश्वरवर्मा (५२४-५५० ई०) ने हूणोंके आक्रमण और यशोधर्मन्की विजयोंमें उत्पन्न परिस्थितिका लाभ उठाकर कन्नौजमें अपना स्वतन्त्र राज्य जमा लिया। यशोधर्मन्के साथ हूणोंकी पराजयमें भी उसका हाथ था। उसके पुत्र ईशानवर्मा (५५०-५७६ ई०) ने अपने-आपको महाराजाधिराज घोषित कर दिया और पर्याप्त शक्ति बढ़ा ली। स्वयं गुप्तसम्राट् कुमारगुप्त तृतीयसे उसने युद्ध किये। उसका उत्तराधिकारी शवर्मा अपने पिताकी ही भाँति वीर और महत्वाकांक्षी था। गुप्तोंके साथ उसने निरन्तर युद्ध किये और गुप्त-नरेश दामोदर गुप्तको पराजित करके उसकी सत्ता और शक्ति अति क्षीण कर दी। अब कन्नौजका मौखरि राज्य उत्तर भारतकी सर्वप्रधान शक्ति था। उसके बाद अवन्तिवर्मा और फिर गूहवर्मा कन्नौजके राजा हुए। गूहवर्माका विवाह स्थानेश्वरके वैश्य राजा प्रभाकरवर्धनकी कन्या राज्यश्रीके साथ हुआ था।

ईशानदेव पदाङ्क और भाग्यदेव देवालय विनकर मन्मथदेव पाया
 का प्रथम पिता और पुत्रों कबकी मृत्यु हो गयी । मन्मथदेव का
 पामर्श्वर्य और हर्षवर्धनने इन पुरुषोंके सम्मान किया । इनके पामर्श्वर्यके
 मंगलक एवं अतिरिक्तिक रूप कर्मोका पावन भी लैलाका और इन
 प्रकार एक-एक के-विशेष कर्मका हृदय और कर्मोका पामर्श्वर्य
 स्वात्मकारके पात्रों ही विन दया ।

[illegible]

हर्षवर्धन—(६९-९४) ग्वालेरवाले नरम बरतका सम-
 रथि, समझालू और काम ही मन्त्रिमन्त्रेय था । बहुमाने स्वयंसे सत्कार
 प्राप्तका एकलोक नरपति था । इसकी कथानि विस्तारित की थी । बीबी
 बायी हुसैन (९२९-९४३ ई) ने इसके सामनकावर्षी बालकी भाषा
 की इस पादके किन्ही कृतान्तरे बालवर्षी लक्ष्मीन कामिक,
 समर्थिक और एकलोक नरपति तथा बहादुर वरवर्षके चरित्रका बहुत
 कुछ कहा बताया है । इस बात पराधी और निर्मला था । कलर पादके

प्रायः सब नरेशोंको उसने अपने अधीन कर लिया था। गुप्त वंशका प्रायः अन्त ही हो चुका था। अपने वंशशत्रु गौड़के शशांकके साथ उसने कई युद्ध किये जिनमें उसके मित्र कामरूप नरेश भास्करवर्मन्ने भी उसकी सहायता की किन्तु उसका पूर्णतया दमन करनेमें वह सफल नहीं हुआ। सोराष्ट्रके मयंक राजा द्रुवसेनको भी उसने पराजित किया और गुजरातका कुछ भाग अपने अधीन कर लिया। इस राजाके साथ उसने अपनी कन्याका भी विवाह कर दिया बताया जाता है। चालुक्य चक्रवर्ती पुलकेशी द्वितीयके साथ भी उसने युद्ध किये किन्तु उनमें उसे सफलता न मिली। कलिङ्ग-कोसलका राजा, जिसका नाम सम्भवतया हिमशितल था, उसका मित्र था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जैनाचार्य अकलक द्वारा उसकी सभामें बौद्धोंको पराजित कर देनेके कारण जब उसने बौद्धोंको स्वदेश निर्वासित कर दिया और जैनधर्मको अपनाया तो हृषने उसपर आक्रमण कर दिया। युद्धमें हिमशितलकी मृत्यु हो गयी किन्तु चालुक्य विक्रमादित्य प्रथमकी सेनाओंके आ जानेके कारण हृषको वापस लौटना पड़ा। इस प्रकार प्रयत्न करनेपर भी उत्तर भारतमें आगे हृष न बढ़ सका। वह बौद्धधर्मका परम भक्त था साथ ही पञ्चममहिष्णु, उदार और दानी भी था। कन्नौज उसकी राजधानी थी। कन्नौज और प्रयागमें उसने कई महती सभाएँ कीं। प्रयागमें तो हर पाँचवें वर्ष यह एक प्रकारका महान् अनुष्ठान करता था जिसमें बौद्ध, जैन (निर्ग्रन्थ), दैव और वैष्णव साधुओंको निमन्त्रित करता और भग्नूर दान देकर सबका सन्तुष्ट करता था। इन दानोंमें यह राजकोषको खाली कर देता था और अपने तनके कपड़े भी उतारकर याचकाको दे डालता था। वह गुणियों और विद्वानोंका आदर करता था। उसका राजकवि बाण था जो हर्ष-चरित, शकम्भरी आदि रचनाओंके लिए सुप्रसिद्ध है। नीरदेव क्षत्रपक नामक एक जैन विद्वान् बाणका मित्र था और सम्भवतया हर्षकी राजमभा-का एक विद्वान् था। स्वयं हृषने भी प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागावत् नामके तीन नाटकोंकी रचना की थी। उसके कुछ शिलालेख भी मिलते हैं।

के प्राकृतकाव्य 'गोडवहो' में यशोधर्मन्की दिग्विजयका विवाद वर्णित है। महावीरचरित, उत्तररामचरित, मालतीमाधव आदि प्रसिद्ध मस्कृत नाटकाके रचयिता महाकवि भवभूति भी महाराज यशोधर्मनके ही आश्रित थे। ७४० ई० के लगभग कश्मीरके ललितादित्यने अपनी विजययात्रा आरम्भ की और ७५० ई० के लगभग उसने यशोधर्मन्को पराजित करके कन्नौजपर अधिकार कर लिया।

आयुध वंश—७६० ई० के लगभग कन्नौज फिर स्वतन्त्र हुआ और यहाँ एक नवीन वंशके यज्जायुध, इन्द्रायुध और चक्रायुध नामक राजाओंने क्रमशः राज्य किया। जिनसेनके हरिवंशकी रचना (मन् ७८३ ई०) के समय उत्तरापथमें कन्नौजके इन्द्रायुधका राज्य था। किन्तु अपने उत्तरमें कश्मीर नरेशों, पूर्वमें पालवंशी राजाओं और दक्षिणमें राष्ट्रकूटोंके निरन्तर दबावके कारण आयुध वंश ८वीं शती ई० के अन्ततक ही समाप्त हो गया। भिन्नमालके गुजर प्रतिहारोंने इस परिस्थितिका लाभ उठाया। राजस्थानमें शक्तिसिन्धु करके उन्होंने कन्नौजपर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही समस्त उत्तरापथपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

गुर्जर प्रतिहार—प्राग्मुसलमान कालीन राजपूत वंशमें प्रमुख थे और अपने-आपको श्रीरामके प्रतिहार लक्ष्मणका वंशज कहते थे। मागवाह-के भिन्नमाल अपरनाम श्रीमाल नामक स्थानको इन्होंने अपना प्रथम केंद्र और राजधानी बनाया। हरिश्चन्द्र इस वंशका नस्थापक था। किन्तु वास्तवमें प्रथम महान् नरेश नागभट्ट प्रथम (७४०-७५६ ई०) था। ७५६ ई० के लगभग उसने मित्रके अरवोंको हराकर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। पश्चिमी भारतकी इस प्रकार रक्षा करनेसे उसका प्रताप एवं राज्य-विस्तार बढ़ा। नादीपुरके गुजर, जोधपुरके प्रतिहार, भडौचके चाहमान आदि अनेक छोटे छोटे राज्य उसके अधीन हुए। इसके उपरान्त नागभट्टके भतीजे कश्कुक और देवराज क्रमशः राजा हुए। कश्कुक जैनधर्मी था और उसने एक विशाल जैनमन्दिर बनवाया था। तदनन्तर देवराजका

ग्रन्थोंकी रचना की। इस नरेशने वज्रोज, मयुरा, ब्राह्मिन्वाइ, मोपरा आदि स्थानोंमें अनेक जैन मन्दिर बनवाये बसाये जाते हैं। वज्रोजका मन्दिर १०० हाथ ऊँचा था और उसमें भगवां महावीरकी स्पर्णमयी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी थी। म्वालयरमें भी इस राजाने एक २३ हाथ ऊँची सोनार प्रतिमा स्थापित की थी।

यत्तराजका पुत्र नागभट्ट द्वितीय नागावलोक आम (८००-८३३ ई०) अपने पिताके समान ही प्रतापी और विजेता था। पालों और राष्ट्र-कुटोंके पारण वज्रोज फिर गुर्जर प्रतिहारोंके हाथसे निकल गया था किन्तु नागावलोकने अन्ततः चक्रायुधका अन्त परमे वज्रोजपर ८१६ ई० के लगभग स्थायी अधिकार कर लिया और उसे ही अपनी प्रधान राजधानी बनाया। इस नरेशने आभ्र, सैषव, विदर्भ और कालिङ्गके राजाओंको अपने अधीन किया, बंगालके पाल-नरेशको पराजित किया और आनत, मालवा, किरात, तुर्ष्क, वरम, मत्स्य आदि राज्याके अनेक भाग छीन कर अपने साम्राज्यमें मिला लिये। राष्ट्रकुट गोविन्द तृतीय (७९४-८१४ ई०) से उसके कई युद्ध हुए और ये दोनों परस्पर प्रबल प्रतिद्वन्द्वी बने रहे। नागभट्ट द्वितीय गुजरेक्ष्वर भी कहलाता था। यह नरेश भी जैन-धर्मका बड़ा प्रश्रयदाता था। जैन साहित्य और अनुश्रुतियोंमें उसकी प्रशंसा पायी जाती है। जैनाचार्य प्रभाषद्रसूरिके प्रभावकचरित्रके अनुसार ८३३ ई० में उसकी मृत्यु गगामें समाधि लेकर हुई। वह भी जैनाचार्य वज्रभट्टसूरिका बहुत आदर करता था। मयुराके प्राचीन जैनस्तूपका जोर्णोंद्वार इसीके आश्रयमें हुआ बताया जाता है। यह एक धर्मात्मा राजा था, जिनेन्द्रकी भाँति विष्णु, शिव, भगवती और सूर्यका भी भक्त था। उसके पुत्र रामदेव या रामभद्रने केवल तीन वर्ष (८३३-८३६ ई०) राज्य किया और उसके अल्पकालीन शासन कालमें राज्यकी क्षति हुई।

रामभद्रका पुत्र भोज इस वंशका सर्वमहान् नरेश हुआ। प्रभास, आदिवराह, मिहिर आदि विरुद्ध प्राप्त परम भट्टारक महाराजाधिराज

प्राचीन युग-चतुर्थ पाद

बरबोरकर जोरबोरने मकरम ५ वर्ष (८१६-८८५ ई) तक राज्य
 किया । इन इलाही नदीयके मकरम राजधानी बरबोर (बरबोर) और
 उल्लाखरके इन बुर्रर प्रविष्टार लाप्राग्यक वीर्य बरम बीबानो बुर्रर
 बरम राजकुम और कमबुर्रर बरबोरके बरबोर बुर्रर बरम
 रई । बरबोरके मकरमबुर्रर भी उनका बुर्रर हुआ । बरबी बिजब हुई और
 बरबी बराबर दिगु इन बुर्ररके बरबोर लाप्राग्यकी धर्म और बरबोरके
 बरबी बरबी बरबी बरबी । बरबरा भी इनके बिजब किया जेराकबुर्रर
 (कुम्भकम्भ) के बरबोरके और लाप्राग्यके बरबोरके राजे बरबोर बरम
 बर । बर बर बरबोर केबानी और लाप्राग्य निर्वाता बा । बर ८५१ ई
 के बरग्य बरबोरके बरबोर बरबोर मुम्भकम्भके बरबोर बरबोरके बरबोर
 बर बर है और बरबोरके धर्म एक बरबोरकी बरबी बरबोरकी है । बर
 बरबोर बर बरबोर और बरबोर बा । बरबी कुम्भकम्भ मकरमकी बर
 बरबोरके बा दिगु बरबोरके बा बरबी बरबोरके बा । बरबीके धर्म
 बरबोर ८५२ ई के बरबोरके बरबोर बरबोरके धर्म बरबोरके
 बरबोर (कुम्भकम्भ) के बुर्ररके बीतर रिक्त धर्मबोरके धर्मबोरके
 बरबीके बरबोरके धर्मबोर लाप्राग्यके बरबोरके धर्म बा । बरबोर है कि
 धर्म बरबोरके लाप्राग्यके बरबोरके धर्म बरबोरके धर्म बरबोरके धर्म
 बरबोरके धर्म है बरबोर बुर्रर निर्वाता ही बरबी बरबोर हुआ ही । बरबोरके
 धर्मबोरके बरबोरके धर्म बरबोरके धर्म बरबोरके धर्म बरबोरके धर्म
 बरबोरके धर्म हुआ बा और बरबोरके निर्वाताके बरबोरके धर्म (बा धर्म)
 और बरबोर (बरबोर) धर्मके बा धर्मके धर्मबोरके धर्म बरबोरके
 बा । बरबोरके धर्मबोरके धर्म बरबोरके धर्म बरबोरके धर्म बरबोरके
 है । धर्मके धर्मके धर्म बरबी धर्मबोरके और धर्मबोरके धर्म है ।

बिबोर बीबका पुत्र बरबोरके धर्म (८८५-९८५ ई) भी एक
 बरबोर धर्म बा । बरबोरके और बिजबके बरबोर बरबोरके धर्म
 बरबोरके धर्मके लाप्राग्यकी धर्म बरबोरके और धर्मबोरकी बरबोरके

वैभव अक्षुण्ण रहे। वह विद्वानोंका आश्रयदाता और साहित्यका प्रेमी था। कपूरमजरी, काव्यमीमामा, बालगमायण, बालभारत आदि ग्रन्थोंके रचयिता महाकवि राजगोखर उसके गुरु थे। उनके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र भोज द्वितीय गद्दीपर बैठा किन्तु उसकी शोघ्र ही मृत्यु हो गयी अतः कनिष्ठ पुत्र महीपाल (९१०—९४० ई०) राजा हुआ। यह सूर्योपामक था। राजगोखर इसका भी राजकवि था, चण्डकोशिक नाटकका कर्त्ता क्षेमेश्वर भी इसी राजाका आश्रित था। ९१५ ई० में अग्व लेखक अलमसूदीने इस गुर्जर नरेशको बहुत धनी और शक्तिशाली वर्णित किया है। किन्तु ९१५—१८ ई० में ही राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीयने कन्नोजपर चढाई की और उसका बहुत विध्वंस किया। कन्नडके जैन महाकवि पम्प-द्वारा रचित पम्पभारतके अनुसार इन्द्रके सामन्त नरसिंह चालुक्यने महीपालको बुरी तरह हराया और अपने घोड़ोंको गगाके सगममें नहलाया। वस्तुतः महीपालके समयमें ही गुर्जर प्रतिहार वंशकी अवन्ति प्रारम्भ हो गयी। उसका उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल द्वितीय भी भारी विद्याप्रेमी था, जैनाचार्य सामदेव सूरिने इसी नरेशके लिए अपने राजनीतिके महान् ग्रन्थ नीति-वाक्यामृत और महेन्द्रमातलिसजल्पकी रचना की थी। तदनन्तर क्रमशः देवपाल (९४६—६० ई०), विनायकपाल, महीपाल द्वितीय, विजयपाल, राज्यपाल, त्रिलोचनपाल और यशपाल नामक राजा हुए। यशपालके समय १०२३ ई० मयुरामे एक नवीन जैन मन्दिरका निर्माण हुआ। ११वीं शताब्दी ई० के मध्यके लगभग यशपालकी मृत्युके साथ इस वंशका अन्त हो गया, इस बीचमें ९८६ ई० के लगभग मालवा स्वतन्त्र हुआ, ९६२ ई० में गगनरेश मारसिंहने प्रतिहारापर आक्रमण किया और उन्हें पराजित किया। इन शनैः खजुराहोक चन्देले, ग्वालियरके कच्छपघट, घागके परमार, मध्य भारतके कलचुरि, गुजरातके सोलकी आदि स्वतन्त्र हो गये और कन्नोजका गुर्जर प्रतिहार नाम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। कन्नोजके अन्तिम राजाओंने मुबुक्तगोन और महमूद गजनवीके विरुद्ध मटिण्डेके साथी

सोनोका पुत्र इतिहासप्रसिद्ध पृथ्वीराज तृतीय (गंगविघोरा) था। चन्दवरदाई
 भाट उसका मित्र और राजकवि था, ऐसा प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज एक
 महान् योद्धा एषवीर नरेश था। कन्नौजके जयचन्द्र और महोबेके चन्देलोंके
 साथ उसको प्रबल प्रतिद्वन्द्विता थी। पृथ्वीराज द्वारा कन्नौजकी राजकन्या
 तयोक्ताके हरणकी घटना लगभग ११७५ ई० की है। ११८२ ई० में
 उसने परमाल चन्देलको पराजित किया था। मोहम्मद गंगेके हमलेको
 उसने घोरतापूर्वक रोका और ११९१ ई० में तराइनके प्रथम युद्धमें
 गंगेको बुरी तरह हराकर भारतवर्षसे श्मशेह दिया। किन्तु परस्परकी
 फूटके कारण ११९३ ई० में तराइनके दूसरे युद्धमें शारीकी विजय हुई।
 पृथ्वीराज बन्दी हुआ और मार डाला गया। फलस्वरूप दिल्ली और
 अजमेरपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया।

अय चौहान राजाओमें धवलपुरीका चण्डमहाराज (९८२ ई०)
 अधिक प्रसिद्ध है। अजमेर, नाडोल, दिल्ली तथा अय सभी स्थानोंके
 तत्कालीन चाहमान नरेश जैनधर्मी न होते हुए भी जैन धर्मके पापक थे
 और जैन गुरुआका आदर करते थे। उनमेंसे अनेक राजपुरुष जैनी भी
 रहे। नाडोलमें चौहान राज्य ९६० से १२५२ ई० तक रहा। इस वंश-
 का अश्वराज चौहान जिनभक्त था और उसने अपने राज्यमें पशु-हिंसापर
 प्रतिबन्ध लगाया था। उसका पुत्र अहलदेव अपने पितासे भी अधिक
 उत्साही जैन था। यह राजा भी महावीरका परम भक्त था, उसने
 ११६२ ई० में उसकी तीर्थकरका एक विशाल मन्दिर नादरामें बनवाया था
 और उसके लिए कतिपय श्रावकों एवं साधुओंकी सुरक्षामें बहुत सी
 सम्पत्ति दान कर दी थी। सन् १२२८ ई० के एक ताम्रशासनसे इस
 दानका पता चलता है। यह राजा अन्तमें राज्य त्याग करके जैन साधु
 हो गया था। उसके पूर्वज लाखा और दादराव तथा घंशज कल्लण, गजेसिंह
 कृतिपाल आदि अय राजे भी जैन थे।

दिल्लीके तोमर—दिल्लीकी कतिपय राजाप्रलियोंके अनुसार, जो

भी इस समय निबल हो चुके थे। अतः नौवकने एक स्वतंत्र शासक की भाई राज्य किया, महाराजाधिराज की नपाधि धारण की और अपने राज्य का विस्तार किया। अपने गोपित पुत्र मुंज को राज्य देकर सन् ९७४ ई० के लगभग अपने एक जैनात्तापसे मुनि दीक्षा ले ली और दीप शोधन एक जैन तपस्वी के रूप में ध्यतीत किया बनाया जाता है।

उसका उत्तराधिकारी मृज यावपतिराज एवं उत्पलराज भी बहलगा था। वह बड़ा धीर, पराक्रमी, कवि और विद्याप्रेमी था। तन्नामिक चालुक्य सम्राट् सैलप द्वितीय पर उसने छह बार आक्रमण किया और कई बार उसे पराजित किया। मातयी बारम्बार आक्रमणमें वह स्वयं सैलप का वशी हो गया। बन्दी दशमैं ही मुंज का तैरपको यहा मृणालवतीने प्रेम हो गया और इस प्रकार वह एक प्रसिद्ध भारतीय प्रेमगाथा का नायक हुआ। मृणालवती की महायताम यह बन्दीगानसे भाग निकला, किन्तु पकड़ा गया और उसको हत्या करवा दी गयी। यह घटना लगभग ९९५ ई० की है। मुंजके सम्बन्धमें प्रवचनितानमणि आदि जैन ग्रन्थमें अनेक कथाएँ मिलती हैं। नवसाहसाकचरितक लेखक पद्मगुप्त, शृंगारकके लेखक घनजय, समये भाई घनिक, जैन कवि घनपाल आदि अनेक कवियोंका वह आश्रयदाता था। जैनाचार्य महामेन और अमितगति का यह राजा बहुत सम्मान करता था। इन जैनाचार्यों उसका प्रथममें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। मुंज स्वयं जैनी था या नहीं यह नहीं कहा जा सकता किन्तु वह जैन धर्मका प्रबल पापक था इसमें सन्देह नहीं है।

उसका उत्तराधिकारी और भाई सिन्धुल या सिन्धुराज कुमार नारायण नवसाहसाक (९९६-१००९ ई०) भी जैनधर्मका पोषक था। प्रद्युम्नचरितके कर्त्ता मुनि महासेनया वह गुरुवत् आदर करता था। अभिनव कालिदास कवि परिमलका नवसाहसाक चरित्र इसी राजाकी प्रशंसामें लिखा गया है। हुणो एवं लाट नरेशोंके साथ इसके कई युद्ध हुए। चालुक्योंसे भी अपने भाईका बदला लेनेके लिए इसने युद्ध

प्राचीन युग-चतुर्थ पाद

किया । जिनचन्द्र नामक एक जैनीको उसने गुजरात प्रान्तका शासक नियुक्त किया था । १२ वीं-१३ वीं शताब्दीमें धाराके परमारनरेश विजयवर्मा और उसके उत्तराधिकारियों सुभटवर्मा, अजुनवर्मा, देवपाल और जैतुगिदेवने १० आशाघर आदि अनेक जैन विद्वानोंका आदर किया था । आशाघरने अपने विविध-विषयक लगभग चालीस ग्रन्थोंकी रचना उन्हीं नरेशोंके आश्रयमें की थी । विल्हण कवीश, मदनोपाध्याय आदि अनेक संस्कृत कवि भी इनके प्रश्रयमें रहे थे । १३वीं शती ईसवीके अन्त तक परमार राज्यका अन्त हो गया और मालवापर मुसलमानोंका शासन हो गया । किन्तु फिर भी मालवा और उसके उज्जैन, धार, माण्डू आदि प्रमुख नगर जैन एवं हिन्दूवर्गमें और उनकी संस्कृतियोंके प्रसिद्ध केन्द्र बने रहे ।

मेवाड़के गुहिलौत—मेवाड़ राजस्थानका स्यात् सर्व-प्राचीन राज्य है और उसकी प्राचीन राजधानी चित्तौड़ (चित्रकूटपर) प्राचीन कालमें भी एक प्रसिद्ध नगरी थी । ८वीं शताब्दी ई०के मध्य तक यहाँ मौर्यवंशकी एक शाखाका राज्य था । उक्त शताब्दीके प्रारम्भमें जिस मौरिय राजाका यहाँ शासन था उसका उपनाम सम्भवतया धवलम्पदेव था । श्रीवल्लभ उसका उपाधि थी और श्वेतच्छत्र उसका राज्य-चिह्न था । उसके उत्तराधिकारी राहप्पदेवको पराजित करके राष्ट्रकूट दन्तिदुर्गने उपरान्त उपाधि और चिह्न स्वयं ग्रहण कर लिये थे । धवलम्पदेवके कनिष्ठ पुत्र सम्भवतया वीरम्पदेव थे जो आगे चलकर प्रसिद्ध जैनाचार्य वीरसेन स्वामीके नामसे प्रख्यात हुए और जिन्होंने दिगम्बर आगमोंकी विद्यालयाय टोकाओंकी रचना करके उन्हें धवल नामांकित किया । इसी चित्रकूटपर (चित्तौड़) में जैनगुरु एसाचार्य निवास करते थे । वे ही वीरसेन स्वामीके विद्यागुरु थे । राहप्पके राजा होनेपर ही सम्भवतया वीरसेन दीक्षा ले ली थी और ७५० ई० के लगभग राष्ट्रकूटों-द्वारा राहप्पको पराजयके उपरान्त वे राष्ट्रकूटोंकी राजधानीके निकट वाटनगरमें चले गये थे और वहीं अपना विद्यापीठ स्थापित करके उन्होंने धवलादि

महात्मा जन्मोन्नी रचना की की । राष्ट्रपति के कोई पुत्र नहीं था जब उनके पदवात्त उदया मानता रचनाउपक कालकोय कालाय होम्नय इव चित्तीरका यमा हुआ और बनने नहीं बुद्धिजीव रंधनो स्वयमा की । बुद्धिजीव राखता बनने-बापको नुर्मबंधी बहरी मे और यह रंध राखतापने नीमोडिया नावने की इच्छा हुआ । इसी समय चित्तीरके एक राखताय इच्छा विज्ञान स्वेताम्ब बाविका बाविकोच्छाउके उपरीरके प्रभावित होकर नावु ही बने और यह ही पतिव स्वेताम्बउचार्य इतिवन्तुरि हू इच्छाि बनेक संवत्त इच्छा विमिधविमवक जन्मोन्नी रचना की । १२वीं पताम्नीके तनरायने बुद्धिजीव बघरा इच्छा राखा पतिवन्तुरि हू । इच्छावतवा इसीके समयमे चित्तीरका कच्छािच्छा वीर कीच्छावन्त बुद्धा बना वा विमका कीच्छािच्छा १२वीं बहरीमे एक विमम्बर वीर लेव बहरीबाने विम्वर इव वम्ब बरके करावा वा ।

चित्तीर राखतायने लयाने वीर और वीरबन्धन एक प्रमुख रेश राखा । बुद्धिजीव बघरा राख एक पुत्र-वर्म वीर वा विम्वर हू रंधके राखे वीरबन्धके प्रति बने बघार और बहिवन्त रई । कई राखे और राखतापने चित्तीर ही स्वी-पुत्र लय प्रभाव बनाने, वन्नी वीरवाय बहरी वीरवाय, लयवाय वीरवाय रंधवायक और वन्त बहरी राख-वर्मवायरीवने के की बनेक वीरों हूने है । बहा मान्य है कि वेवाइ राखने बह-वन्त बुद्धी बुद्धिके बिच् बनकी नीच रन्नी बन्नी की लय-वन्त राखकी औरके वीरवायिर बनानेकी बघा की । वीरवायिर हीरावन्त वीरवाय अनुवाय नुर्मन्तके बघान्त वीरवाय बना राख-वर्म राखता-वाय बना वा केविरवाय-वीर इच्छा वीर और बनकी बहवन्त वीरवायरी वीरवाय वीर वीर ही बहरी वीर वीरवाय और वीर की बघा एक पुत्रवे बने बहरी है । बनेक वीरवायिर वेवाइवरीबाने स्वयं वा बनकी अनुमतिके बनवाये और चित्तीर ही वीर वीरवायिर बिच् बह बिने स्वयं चित्तीरके बावोन बहरीके विम्वर बावोन वीरवायिर बने हू है । और बहरी वेवाइ राख बने स्वा-

सन्ध्य-प्रेम एवं म्रदेश-भक्तिके लिए इतिहासमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उसके घोर राणाओंने १७वीं शताब्दी पर्यन्त मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की। राणाओंकी दृढ़ आनको निमानेमें मेवाड़का जैनधर्म तथा उसके जैन घोर मन्दिर मशायक रहे। घोटमें भी गुहिलोंकी एक शाखाका राज्य था।

हस्तिफुण्डिका या हथूँडीके राठोट—१०वीं शती ई० में राजस्थानके हथूँडी नगरमें राठोट वंशी राजपूतोंका प्राचीन राज्य था। इन राठोटोंका सम्बन्ध सम्भवतया दक्षिणके गण्डकूट घंटासे था। वंशीवने गहड़वानोंसे भी इनका कोई सम्बन्ध था या नहीं यह नहीं कहा जा सकता। सम्भव है जोधपूर-मारवाटक राठोट हथूँडीके वंशसे ही सम्बन्धित हों। हथूँडीका राठोटवन्ध जैनधर्मका अनुयायी था। ९१६ ई० में इस वंशका राजा विदग्धराज जैनधर्मका परम भक्त था। उसने अपनी राजधानी हथूँडीमें प्रथम तायकर ऋषभदेवका विद्याल मन्दिर बनवाया था और उस मन्दिरके लिए बहुत-सी भूमि प्रदान की थी। उसके गुरु वासुदेवसूरि या बलभद्र थे। राजाने स्वयंको स्वर्णके साथ तुलनाकर उसे मन्दिर और गुरुका दान कर दिया था। सन् ९३९ ई० में विदग्धराजके पुत्र एवं उत्तराधिकारी सम्भटने भी उक्त मन्दिरके लिए विपुल द्रव्य दान किया था और अपने पिताके दान-पत्रकी भी पुनरावृत्ति की थी। यह राजा भी परम जैन था। इसका पुत्र महाराज घवल भी परम जैन-भक्त था। उसने ९९७ ई० में उपरोक्त मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया, दान दिया और ऋषभदेवकी एक नवीन प्रतिमा स्थापित करायी। इस राजाके गुरु वासुदेवसूरिके शिष्य शान्तिभद्रसूरि थे और गुराचार्यने वह दान प्रशस्ति लिखी थी। जैनधर्मकी प्रमादनाके लिए इस नरेशने अनेक काय किये। १२वीं शती ई० के उपरान्त हथूँडी राज्य सम्भवतया जोध-पूरके ही अधीन हो गया अथवा एक छोटा सा उपराज्य रह गया।

थावस्तीके ध्वजवशी नरेश—उत्तर प्रदेशके पूर्वी भागमें जिला बहराइचके अन्तर्गत थावस्ती (वर्तमान सहेटमहेट) एक प्राचीन महानगरी

वतमा विन्ध्यप्रदेश (बुन्देलखण्ड) गुप्तकालीन गुप्त साम्राज्यकी एक प्रसिद्ध
 भूमि थी। देवाढ़ और गजुराहो आदि उसके प्रमुख नगर थे। मनु ८:१
 ई० में नानुक्त चन्देलने इस वंशकी स्थापना की और गजुराहो नाम का गजु-
 राहोको अपनी राजधानी बनाया। चन्देलोंका मूल सम्बन्ध खेदिम रत्न प्रतीत
 होता है और इनका उद्गम भार एवं गोष्ठ जातियामे हुआ अनुमान किया
 जाता है। किन्तु उनकी अपनी अनुश्रुतियोंके अनुसार उनका पूर्वगुरु
 आश्रय था। वे अपने-आपको आग्नेय ऋषि और उदकी मन्तान बताते हैं।
 नन्तुषर्न कन्नौजके प्रतिहारोंके सामन्तके रूपमें ही चन्देल राज्यकी स्थापना
 की थी अतएव प्रारम्भिक चन्देल राजे प्रतिहारोंके अधीनस्थ राजाओंके
 रूपमें भी रहे। नन्तुषर्नके पश्चान् वाधवति राजा हुआ, उसके दो पुत्र जेजा
 (जयशक्ति) और वेजा (विजयशक्ति) थे जिन्होंने क्रमशः राज्य किया।
 जेजाके नामपर यह प्रदेश जेजाकभूमि नामसे प्रसिद्ध हुआ बताया जाता है।
 कालान्तरमें इसी शब्दका विकृत रूप जुझोती हुआ। जेजाकी पुत्री नट्टाका
 विवाह त्रिपुरीके कलचुरि-नरेश कोषकल प्रथम (८४५-८८० ई०) के साथ
 हुआ था। वेजाके बाद गहिल राजा हुआ और फिर तप चन्देल गद्दी-
 पर बैठा। इसने ९०० से ९२५ ई० तक राज्य किया। इसके समयमें
 चन्देलोंका उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ। हर्षका पुत्र यशोधर्मन या लक्षधर्मन
 (९०५-९५४ ई०) और अधिक प्रतापी था। कन्नौजके महोपाल प्रतिहार-
 से उसके मित्रवत् सम्बन्ध थे और उससे उसने एक प्रसिद्ध विष्णुमूर्ति भी
 प्राप्त की थी। इसका पुत्र वग (९५४-१००२ ई०) बड़ा महत्वाकांक्षी
 था। उसके समयमें चन्देल राज्य एक सर्वथा स्वतन्त्र राज्य था और वह
 अपने समयके सर्वाधिक शक्तिशाली नरेशोंमें-से था। ९९० ई० में उसने
 सुवृक्षगीन गजनिधीके विरुद्ध भट्टिण्डेके जयपालकी सहायता की थी और
 युद्धमें स्वयं भाग लिया था। खजुराहोके सर्वप्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ जैन
 एवं वैष्णव मन्दिरोंमें-से कई इसी उदार नरेशके समयमें और उसके प्रथम
 निमित्त हुए थे। वहाँका भग्न पार्श्वनाथ-मन्दिर इस राजाके शासनके प्रथम

सन् १९४४ ई. के जून महीने के सम्मेलित
विश्वमैत्रेय महासभा में श्री कृष्णदास बाहिन साहब प्रसिद्ध जैन लेख एवं
राजपुत्र-द्वारा जैन धर्म के प्रचार के सम्बन्ध में। उन्होंने कई महीने
की मुद्रित लिखित कराये थे। इनके कुछ मुद्रित साहित्यिक दृष्टि से राजा की
सादर करता था। जैन धर्म की प्रवर्धन की दृष्टिसे भी करेता था।
१. ८ ई. के जून सम्मेलन काही-द्वारा महम्मद जैनकीके विषय
निर्धारित करने महम्मद साहब जिन्हा की महम्मद राजा महम्मद साहब।
महम्मदकीके साहित्यिक-साहित्य साहित्यिक विषय प्रसिद्धि के विषय
इसी महीने कुछ विचारोंकेने ध्यानकासने सन् १. २८ ई. में हुई थी।
सन् १. २३ में महम्मद जैनकीके लक्ष्य मुद्रित विचार कराये हुए था,
जनी जैनके सम्बन्धी दृष्टिसे राजा महम्मद साहब।

११वीं शतीके उत्तरार्धमें ११वें राजा कीर्तिवर्मन राज्य किया। उनके समयमें कन्देव राज्याली सिन्धु किनारे बसे। जब कन्देव एक सगान्धीके लिए बुझझमानोंके आक्रमणमें ली मारतवर्षकी मार मिला और कन्देवाली इन सिन्धुके कुछ समय छुट्टया। कीर्तिवर्मनके मन्त्री कन-राजने सन् १९७ ई. के सैन्यसे मन्त्रील पुर्न सन्वाकर सगाना मार कीर्तिवर्मि रखा राज्यमें कई सैन्य सैन्य सन्धि मन्त्रि की बने। इसी राजाके आसनवाक्यमें १९९ ई. के सन्वाक्य छुट्टयादिमें सगाना उन्नीस सन्धिवाक्य मन्त्रि की राज्य-मन्त्राके सैन्य की मन्त्रा वा। १९९ ई. के सन्वाक्य मन्त्राके सैन्य की मन्त्रा वा।

१२वीं शताब्दी के मध्यमें पत्थर-तरेख मस्जिदों का एक निर्माता था। उसने अनेक मस्जिदें, क़रीब १००० मीन एवं सैनिक-मस्जिदों का निर्माण कराया। सन् ११४५, ११५४, ११५५, ११५८, ११५९ आदिकी अनेक मीन मुस्लिमों इन राजाओं के आश्रयवाक्यमें उल्लिखित हुई मिलती हैं। ११५५ की मुस्लिम क़रीब निर्माता किसी दूसरे राजा का नाम भी उल्लिखित है।

सन् १९९५ के १२ ३ ई. कर्मण्ड कन्वेन्स-नरीस परामर्शद्वारा वा परामर्शना

राज्य रहा। यह हम घण्टा अन्तिम मगान् नरेश था। दिल्ली-अजमेरका
 जूजोराज चौहान और कन्नौजका जयचन्द्र गढ़वाल उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी
 थे। महोदयेके लोकप्रसिद्ध योद्धा बाल्हा और उदल परमाल चन्दके ही
 आश्रित एवं मेतानायक थे। जगन्निष्के आह्वानपुन उस बाल्हाकी उन अनेक
 वीरगाथाओंको सजीव बनाये गया जिनमें महावंके ये वीर नायक थे।
 सन् १००२ ई० में परमालकी मृत्यु हो गया और चन्देलोंन मुत्तुसुद्दीन
 ऐबकम पराजित होकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। परमादिदेव
 भी निर्माता था, अनेक मन्दिर उसका कालमें बने। अहारक धान्तिाय
 तीर्थकरकी सुन्दर विशाल मङ्गासन मूर्तिका इमोके राज्यमें सन् ११८०
 ई० में रूपका पापटने बनाया था। १३ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें चन्देलराज
 वीरवर्मनदेव भी अजयगढ़के तथा अनेक देव-मन्दिरोंका निर्माणके लिए
 प्रसिद्ध हैं। उनके समयका सन् १२७८-७८ की मूर्तियाँ एवं लेख मिलते
 हैं। सन् १३१० ई० के लगभग चन्दल राज्यका अन्त हुआ और यह
 मुसलमानी साम्राज्यमें अलाउद्दीन खिलजी-द्वारा मिला लिया गया।

लगभग ४०० वर्षके दीर्घकालमें चन्दल नरेशाने भारतीय कलाका
 अभूतपूर्व पोषण किया। उनका निजका धर्म जैन न होते हुए भी वे
 जैनधर्मके प्रति अत्यन्त सहिष्णु और उसके प्रबल पोषक रहे। देवगढ़, खजु-
 राहो, महोबा, अजयगढ़, अहार मदनपुरा, मदनसागरपुर, वानपुर, पपीरा,
 चन्देरी, हूदाही, चन्दपुरा, छतरपुर, टोकमगढ़ आदि चन्देल प्रदेशके प्रायः सभी
 प्रमुख नगरोंमें समृद्ध जैनोंकी बड़ी-बड़ी धस्तियाँ थीं, उनके श्रीदेव, वासवचन्द्र,
 धृमदचन्द्र आदि अनेक निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुओं एवं विद्वान् आचार्योंका राज्य-
 में समुक्त विहार था और अनेक भव्य विशाल जैनमन्दिरों एवं जैन कला-
 कृतियोंका उन स्थानोंमें निर्माण हुआ। जैनकलाके ये चन्देलकालीन उदाहरण
 भारतीय कलाके सर्वोत्कृष्ट नमूनोंमें-से हैं और पूर्व मध्यकालीन भारतीय
 कलाशैलीका सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। सबत राज्यके जैनियोंने भी
 राज्यकी सवतोमुखी उन्नतिमें पूणतया योगदान दिया। शिव और विष्णुक

देशो राज्य उस कालमें उत्पन्न हो गये थे। उनके अतिरिक्त तिब्बत, नेपाल, कुमायूँ, गडवाल, आसाम आदिमें भी म्यतत्र या अर्धस्वतन्त्र राज्य थे। एक अनुश्रुतिके अनुसार इस कालके पगिहार, परमार, सोलंकी, राठोड़, चौहान, बल्लवाहे आदि अधिकांश राजपूतवंश अग्निकुलके वंशज होते हैं और वर्नल टाडरों मतानुसार उनके अग्निकुल कहलानेका कारण यह भी हो सकता है कि वे जनघर्ममें दोषित हो गये थे। कमसे कम उस कालके विभिन्न छोटे बड़े राज्यवंशोंका जो इतिहास प्राप्त है उसमें इस विषयमें तो सन्देह नहीं है कि इन राज्यवंशोंमें अन्त्याधिक काल तक जैनधर्मकी प्रवृत्ति अवश्य रही थी। इन सब ही राज्यात्मक जैनधर्म और उनके अनुयायी मुखपूर्वक फले-फूले। राजागण जैनधर्मके यदि अनुयायी नहीं होते थे तो उनके प्रति उदार एवं सहिष्णु अवश्य रहते थे। साथ ही जैनधर्म और उनके आचार-विचारके प्रभावसे उनकी योग्यता, युद्धप्रियता और स्वातन्त्र्य-प्रेममें कोई कमी नहीं आयी थी। उनके पतनका सामाजिक कारण उनकी परस्परकी फूट, जाति और कुलका दुर्गमिमान, उनमें परस्पर एकता और एकमूत्रताका अभाव और दूसरी ओर धन एवं राज्यके लोभसे प्रेरित धर्मांध एवं क्रूर मुसलमान जातियोंके अनवरत आक्रमण, छल, बल और कोसल थे, जिन्होंने सहज और धीमे ही देशको विधर्मों विदेशियोंकी पराधीनतामें जकड़ दिया।

सूर्य, शक्ति तथा विष्णुके विभिन्न अवतारोंको लेकर अनेक सम्प्रदाय चल पड़े थे। तान्त्रिक और धाममार्गी सम्प्रदाय भी उत्पन्न हो गये। बौद्ध शैव या लिंगायत-जैसे नये नये सम्प्रदाय तथा जोगिया और साधुआ-द्वारा चलाये गये नये-नये पन्थ नित्य पैदा हो रहे थे। इन समस्त विभिन्न एवं बहुधा परस्पर-विराधी सम्प्रदायों और पन्थोंको सामूहिक रूपसे, विशेषतया मुसलमानों द्वारा, हिन्दूधर्म कहा जाने लगा, उन सबका अन्तर्भाव इस एक ही नाममें सामायित किया जाने लगा और इनमें से किसी भी सम्प्रदाय या पन्थका माननेवाला अपनेको हिन्दू कह सकता था और कहलाने लगा।

पदान हुआ तथापि उसकी सैद्धान्तिक मूलभित्ति अट्टिग रहो, उसके
 मौलिक विश्वास और परम्पराएँ स्थिर रहे और इनके कारण वह भारतका
 एक स्वतन्त्र एवं प्रमुख धर्म बना रहा। उसके प्रेरक तत्त्व मजीब
 बने रहे और उनके कारण उसके अनुयायियोंका धार्मिक उत्साह
 सजग रहा। इन्हीं कारणोंने जैनधर्मकी तथाकथित हिन्दूधर्ममें आत्मशान्ति
 होनेमें रक्षा की और साथ ही उसे बौद्धधर्मकी जो गति हुई उससे भी
 उसे बचा लिया। भारतवर्षकी मौलिक धार्मिक महिष्णुनाने इस देशमें
 धार्मिक विद्वेष, अत्याचार एवं साम्प्रदायिक वैमनस्यपर बहुत कुछ
 सफल नियन्त्रण रखा। यही कारण है कि मुसलिम युगके पूर्व एवं
 अनेक अंशोंमें उसके प्रारम्भके उपरान्त भी विभिन्न भारतीय धर्म बहूत
 कुछ परस्पर सहयोग एवं सहभावपूर्वक साथ साथ फलते-फूलते रहे।
 आनेवाले मध्यकालके विदेशी विघर्मों मुसलमान शासन-कालमें जैनधर्मकी
 प्रायः वही दशा और स्थिति रही जो अब भारतीय धर्मोंकी थी।
 उसके शान्तिप्रिय एवं धनी व्यापारी अनुयायियोंके कारण मुसलमान
 शासकोंने भी उसपर अत्यधिक अत्याचार नहीं किया प्रतीत होता।



र राज्यके इष्टदेव 'कलिग जिन' कहलाते थे । विद्वानोंमें इस विषयमें तमोद है कि ये 'कलिग जिन' आदि या अग्रजिन प्रथम तीर्थंकर ऋषभ-
 थे, या महलपुर (कलिगदेशस्थ भद्राचलम् या मद्रपुरम्) में उत्पन्न
 सर्वे तीर्थंकर शीतलनाथ थे अथवा २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे । किन्तु
 महावीरके जन्मके पूर्व भी इस जनपदमें उक्त कलिग-जिनकी प्रतिष्ठा थी
 इसमें सन्देह नहीं है । तीर्थंकर पार्श्वका विहार कलिग देशमें हुआ था ।
 भगवान् महावीर भी वहाँ पधारे थे और राजधानी कलिग नगरके निकट
 कुमारी पर्वतपर उनका समवसरण लगा था । उपरोक्त घटनाओंकी
 स्मृतिमें उक्त स्थानपर स्तूपदि स्मारक बने थे और मुनियेकि निवासक
 लिए गुफाएँ भी निर्मित हुई थीं जो खारवेलके समयके बहुत पहलेसे वहाँ
 विद्यमान थीं । इन सब बातेंसि विदित होता है, जैसा कि प्रो० राखालदास
 वनर्जीका भी मत है, कि उड़ीसा प्रारम्भसे जैनधर्मका एक प्रमुख गढ़
 था । वस्तुतः इस प्रदेशमें आर्यसभ्यता और सस्कृतिके प्रवेशका श्रेय
 जैनधर्मको है ।

छठी शताब्दी ई० पू० में कलिग देशपर जितशत्रु नामक राजाका
 राज्य था जो महावीरक पिता राजा सिद्धार्थका मित्र और बहनोई था ।
 इसकी कन्या यशोदाके माघ महावीरके विवाहकी बात चली थी किन्तु
 महावीरने आजन्म ब्रह्मचारी रहनेका ही दृढ़ निश्चय कर लिया था अतः
 यह विवाह न हो सका । जितशत्रु सम्भवतया किसी प्राचीन विद्याधर
 वंशस सम्बन्धित था । उसके वंशजोंने नन्दकाल-पर्यन्त इस देशपर निर्वाधि
 शासन किया प्रतीत होता है । महावीर निर्वाण सवत् १०३ (ई० पू०
 ४२४) में मगधनरेश नन्दियर्धनने कलिगपर आक्रमण किया और उस
 राज्यकी अपने साम्राज्यका अंग बनाया । सम्भवतया वह स्वयं जैनी था
 अथ कलिगकी राजधानीमें प्रतिष्ठित कलिगजिनकी भव्य मूर्तिको अपने
 साथ लिवा लाने और अपनी राजधानी पाटलिपुत्रमें प्रतिष्ठित करनेका
 लोभ सफल न कर सका । मगधनरेश महानन्दिनके उपरान्त ई० पू०

संख्या ६

कठिम्, गुजरात बंगाल, सिन्ध, कश्मीर, सिख
और कश्मीर भारत

कश्मिरा—कश्मिर राजा पूर्वी लघुहस्तपर ताम्रगुरुके बंधन रहने केन्द्र हुआ था। उसकी उगानी सोम बंधनवालीकी ग्यारह बराबरी की कश्मिर के मध्य पंचमके कथनात्त करने का है। पूर्वि मारुताय मारुतापर बंधन और कश्मिरकी नीमा मध्यमरात्रिकी कश्मिरकक्षक कथनमाना एक बहिष्करी थी। कश्मिरकीमध्य या महाकोलक देश भी लघुबा पक्षके भीतर ही रहता था। कश्मिर (वर्तमान कश्मीर) को विषयविष देश भी कहा गया है क्योंकि उद्यम केन्द्रक कश्मीर और नीमाक (कश्मिरी बंधन) के बीच देश कश्मिरास्थित है। वैदिक साहित्यमें कश्मिरका कोई उल्लेख नहीं है। महाभारतमें कश्मिरा वर्णन एक कथ्य प्रत्येकके रूपमें हुआ है। विषया पक्ष विषयायन था। वर्तमानकक्षके अनुसार वहाँ एक विषय प्रकाशका लुटी काय बनता था। वर्तमानकक्षमें इसे मध्यक देश कहा है और वहाँ मारुतायकी पक्षकी कहा है। इन प्रकार कश्मिरा-मारुतायों कश्मिर देश विषयायन एक एक कथार्थ कश्मिरिक देश बना रहा। मध्यमरात्रिकी कश्मिरके और उद्यम की मध्यमरात्रिकी कश्मिरके मध्यक कश्मिर है किन्तु मध्य लघुगुरुके कोलक महाभारतकी उद्यम कश्मिरा वहाँ है। इसका विरहीत क्षेत्र कश्मिर और लघुगुरुकी कश्मिर देशके मध्यक मध्यक मिलती है। कश्मिरके वर्तमान कश्मिरा लघुगुरुकायके क्षेत्र है और इन देशमें कश्मिरा मध्यक कायके ही क्षेत्र हीनकक्षकी कश्मिरा पक्षी मध्य होता है। इस देश

तमनकालके अन्तिम वर्षोंमें कलिंग फिरेसे स्वतन्त्र हो गया और वहाँ एक
 नवीन राज्यवर्गका उदय हुआ। यह नवीन वर्ग जो जैनधर्मानुयायी था।
 गौतम गज्जवंशमें इसका कोई सम्बन्ध था या नहीं यह नहीं कहा जा
 सकता। सम्भावना यही है कि यह कलिंगके किन्हीं प्राचीन राज्यवर्गों की
 मान्य थी। म्हावेल्के गिलालेग्रर अनुसार इस वर्गका नाम ऐल या और
 यह वेदि या चंद्रवंशकी एक शाखा थी। तत्कालीन राजाका नाम सम्भवतया
 क्षेमराज था। कुछ विद्वानोंके अनुसार क्षेमराजका पुत्र वृद्धिराज था और
 उसका पुत्र निक्षुराज म्हावेल् था, किन्तु कुछ-कुछका मत है कि ये म्हावेल्
 वेल्की ही अपनी उपाधियाँ थीं। जो भी हो इसमें सन्देह नहीं है कि
 म्हावेल्के पितामहने ही सम्प्रतिके समयमें इस राज्यवर्गका स्थापना का जो
 और कलिंगकी स्वतन्त्र किया था। म्हावेल्के पिताजी मृत्यु अपने पिताके
 जीवनकालमें ही हो गयी थी अतएव उक्त वृद्धिराजका उत्तराधिकारी
 उसका पोता म्हावेल् हुआ। कलिंग चक्रवर्ती म्हावेल्काहन राजाके म्हावेल्-
 का जन्म लगभग १९० ई० पू० में हुआ, १५ वर्षकी आयुमें (ई० पू०
 १७५ में) उसे युवराजपद प्राप्त हुआ और २८ वर्षकी आयुमें ई० पू०
 १६६ के लगभग उसका राज्याभिषेक हुआ। उसके उत्तरात्त वर्षसे कम
 १० वर्ष पर्यन्त उसने राज्य किया जिसका विशद वर्णन उसके स्वयंके
 गिलालेग्रमें प्राप्त है। उसके (ई० पू० १५२ के) उत्तरान्त वह कितने
 वर्ष जीवित रहा और उसने क्या-क्या किया इसके जाननेका वर्तमानमें
 कोई साधन नहीं है। म्हावेल् म्हावेल्का यह इतिहास-प्रसिद्ध गिलालेग्र
 उडोसा प्रदेशके पूर्वी जिलेमें स्थित भुवनेश्वरसे तीन मीलका दूरीपर
 विद्यमान स्रष्टगिरि पर्वतके उत्तरी भागपर जो कि उदयगिरि कहलाता
 है वने हुए हाथीगुफा नामके एक विशाल एवं प्राचीन कृत्रिम गुफामन्दिर-
 के मुख एवं छतपर उत्कीर्ण है। १७ पक्षियोंका यह महत्त्वपूर्ण लेख
 ८८ वर्गफुट क्षेत्रमें लिखा हुआ है। लेखकी भाषा अर्द्ध-मागधी तथा
 जैनप्राकृत मिश्रित अपभ्रंश है। लेखके साथमें मुकुट, च्चन्द्रिका,

१९४ में जो राज्याभिषेक हुआ, उसका नाम अठारह बत्तिस राजा विराजमान हो गया प्रतीक होता है। इन समय सम्भवतः कोई ब्रह्मदीक्षक भी हुआ, किन्तु वह नहीं कहा जा सकता कि वह महीन बंध होने का प्रतीक हो सम्भवतः या प्रतीक कोई महीन बंध था। दूसरी तरफ़ से अठारह बत्तिस के अर्थों के अर्थ-साथ देवताई-इतिहास का प्रतीक है। अथवा कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि वह उत्तरीय बत्तिस राजा की मूर्ति है और सम्भवतः वह वह समय जब देवदीर्घ राजा या जिसके बंधने का प्रतीक देवदीर्घ राजा के स्थापना की थी और अठारह बत्तिस की कई राजाओं के राजा विराजमान था। अठारह बत्तिस के अर्थों के अर्थ-साथ देवदीर्घ राजा की मूर्ति है। अथवा कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि वह उत्तरीय बत्तिस राजा की मूर्ति है और सम्भवतः वह वह समय जब देवदीर्घ राजा या जिसके बंधने का प्रतीक देवदीर्घ राजा के स्थापना की थी और अठारह बत्तिस की कई राजाओं के राजा विराजमान था। अठारह बत्तिस के अर्थों के अर्थ-साथ देवदीर्घ राजा की मूर्ति है। अथवा कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि वह उत्तरीय बत्तिस राजा की मूर्ति है और सम्भवतः वह वह समय जब देवदीर्घ राजा या जिसके बंधने का प्रतीक देवदीर्घ राजा के स्थापना की थी और अठारह बत्तिस की कई राजाओं के राजा विराजमान था।

०१४०१ पाठ्यालो हें पु. के. शास्त्राचे अर्थवचन वसाहतु अस्मृति यांचे

तलोंको भेंट लेकर अपने घरणोंमें नमस्कार कराया । पाँचवें वर्षमें राजा
 उम नहरको राजधानी (तोसालि या वर्निंग नगर) तक लिवा लाया जिसे
 महाघोर सवत् १०३ (ई० पू० ४२४) में नन्द राजाने सर्वप्रथम खुद-
 वाया था । छठे वर्षमें उसने राज्यैश्वर्य प्रदर्शनार्थ प्रजाजनोके कर आदि
 माफ किये, दीन-दुखियोपर कृपा दिखायो, उन्हें सन्तुष्ट सुखी
 किया और पोरजानपदों (जनत आत्मध संस्थाओं, नगरपालिकाओं,
 ग्रामपचायतों, व्यावसायिक निगमों, श्रेणियों आदि) पर सैम्हो हजारों
 विविध प्रकारके अनुग्रह किये । सातवें वर्षमें उसकी रानीने, जो यगदेशस्य
 वज्रधर राज्यकी राज्यकुमारी थी, एक पुत्र प्रसव किया । आठवें वर्षमें
 सारवेल्ने विशाल मेनाके साथ उत्तरापथकी विजय-यात्रा की, गगधपर
 आक्रमण किया, गोरधगिरि (गया जिलेका बराबर पर्वत) पर भीषण
 युद्ध करके राजगृह नरेशको शस्त किया और उसके भयसे यवनराज दिमित्र
 भी अपनी समस्त सेना, वाहनो आदिको यत्र-तत्र छोड़कर मथुरासे भाग
 गया । यमुना तटपर (मयुरामें) पहुँचकर पुष्पित पल्लवित कल्पवृक्ष
 मभी अधीनस्थ राजाओं तथा अश्व-गज-रथ सैन्य सहित वह राजा सय
 गृहस्था द्वारा पूजित स्तूपकी पूजा करने जाता है । उसने याचकोंको दान
 दिया, ब्राह्मणोंको भरण-भोजन कराया और अरहन्तोंकी पूजा की । नवें
 वर्षमें उसने प्राचीन नदीके दोनों तटोपर अटतीस लाख मुद्रा व्यय करके
 महाविजयप्रासाद नामका मुन्दर एव विशाल राजमहल बनवाया । दसवें
 वर्षमें अपनी सेनाओंको विजय यात्राके लिए पुन भारतवर्ष (उत्तरापथ)
 की ओर भेजा और फलस्वरूप उसके सब मनोरथ पूरे हुए । ग्यारहवें
 वर्षमें उसने दक्षिण देशको विजय किया, पिथुण्ड नगर (पृथुदकदम्पुरी)
 का ध्वस किया (उसमें गदहोंके हल चलवाये) और ११३ वष पहलेमे
 संगठित चले आये तमिल राज्योंके सबको छिन्न भिन्न किया ।
 (अर्थान्तर—आ केतुमद्रकी उस १३०० वष प्राचीन निम्बकाष्ठ निर्मित
 प्रतिमाका जुलूम निकाला जिसकी कि स्थापना पूर्ववर्ती राजाओंने पृथुद-

रनोंकी बैठ लेकर अपने चरणोंमें नमस्कार कराया । पाँचवें वर्षमें राजा
 राम नहरको राजधानी (तोसलि या वलिंग नगर) तथा लिदा नामी द्वि-
 महाशिव सन् १०३ (ई० पू० ४२४) में नन्द राजाने सर्वप्रथम गुरु-
 दाया था । छठे वर्षमें उसने राज्यार्थ प्रदर्शनार्थ प्रशासनिक कर आदि
 माफ़ किये, दोन-दुनियोंपर कृपा दिखायी, उन्हें सन्तुष्ट सुखों
 किया और पीरजानपदों (जनत-आत्मक सम्पत्तियाँ, नगरपालिकाओं,
 ग्रामपचायतों, व्यावसायिक निगमों, श्रेणियों आदि) पर सबको हठात्
 विविध प्रकारके अनुग्रह किये । सातवें वर्षमें उसकी रानीने, जो वंगदेशमें
 वज्रवर राज्यकी राज्यकुमारी थी, एक पुत्र प्रसव किया । आठवें वर्षमें
 सायबेन्ने विशाल सेनाके साथ उत्तरापथकी विजय-यात्रा की, मगधपर
 आक्रमण किया, गोरधगिरि (गया जिलेका बगवर पर्वत) पर भीरुप
 युद्ध करके राजगृह-नरेंद्रको प्रस्तुत किया और उसके भयसे यदनराज दिग्भिन्न
 भी अपनी समस्त सेना, वाहनों आदिकी यथ-तत्त्व छोड़कर मयुरासे भाग
 गया । यमुना तटपर (मयुरामे) पहुँचकर पुणित पल्लवित कल्पवृक्ष
 सभी अधीनस्थ राजाओं तथा अस्त्र-गज-रथ-सैन्य सहित वह राजा मय
 गृहस्थों-द्वारा पूजित स्तूपकी पूजा करने जाता है । उसने याचकोंको दान
 दिया, ब्राह्मणोंको भरण-पान भोजन कराया और अगह्णोंकी पूजा की । नवें
 वर्षमें उसने प्राचीन नदीके दोनों तटोंपर अठतीस लाख मुद्रा व्यय करके
 महारविजयप्रानाद नामका सुन्दर एवं विशाल राज्यमहल बनवाया । दसवें
 वर्षमें अपनी सेनाओंको विजय यात्राके लिए पुनः भारतवर्ष (उत्तरापथ)
 की ओर भेजा और फलस्वरूप उसके सब मनोरथ पूर्ण हुए । आठवें
 वर्षमें उसने दक्षिण-देशकी विजय किया, पिथुण्ड नगर (पृथ्वीकदम्पुरी)
 का व्वस किया (उसमें गदहोंके हल चलावाये) और ११३ वर्ष पहलेके
 सगठित चले आये तमिल राज्योंके सबको छिन्न-भिन्न किया ।
 (अर्थान्तर—आ केतुनदकी उस १३०० वर्ष प्राचीन निम्बकाष्ठ निर्मित
 प्रतिमाका जुलूस निकाला जिसकी कि स्थापना पूर्ववर्ती राजाओंने पृथ्वी-

कलिंग आदि और बृहत्तर नारत

पराधीन इतिहास कृ. पी.

लिए आये थे। इस मुनि-सम्मेलनमें राजाने भगवान्‌की दिव्य ध्वनिमें उच्चरित उस शान्तिदायी द्वादश्याग श्रुतका पाठ कराया, जो कि महावीर संवत् १६५ (ई० पू० ३६२—भद्रबाहु श्रुतधेवलीके समय) से निरन्तर ह्वासको प्राप्त होती आ रही थी, (तथा उसके उद्धारका प्रयत्न किया) और इस प्रकार उस क्षेमराज, वृद्धिराज, भिक्षुराज (राजपि) धर्मराज नरेशने भगवान्‌की उक्त कल्याणकारी वाणीके सम्बन्धमें प्रश्न करते हुए, उसका श्रवण और चिन्तन करते हुए समय बिताया।

विशिष्ट गुणोंके कारण दक्ष, समस्त धर्मोंका आदर करनेवाला, धर्म सस्थाओंका उद्धार, सुधार एवं सत्कार करनेवाला, अप्रतिहत-चक्रवाहन (जिसके रथ, ध्वजा, सेनाकी गतिको कोई नहीं रोक सका), साम्राज्योंका सतत विजयी एवं साम्राज्य-संचालक और सरक्षक, राजपियोंके वशमें उत्पन्न महाविजयी राजचक्री ऐसा राजा खारवेल श्री था।”

उपरोक्त शिलालेखका महत्त्व सुस्पष्ट है। समयकी दृष्टिसे सम्राट् प्रियदर्शीके अभिलेखोंके पश्चात् इसी शिलालेखका नम्बर आता है। ऐतिहासिक महत्त्वकी दृष्टिसे यह लेख प्राचीन भारतके समस्त उपलब्ध शिलालेखोंमें सर्वोपरि है। उस कालका यही एक-मात्र ऐसा लेख है जिसमें वंश, वय-मंथ्या, तत्कालीन जनसंख्या, देश और जाति, पद नाम इत्यादि अनेक बहुमूल्य ऐतिहासिक तथ्योंका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। प्रो० राजाल-दास वनर्जेके मतसे यह लेख पौराणिक वंशावलिओंकी पुष्टि करता है और ऐतिहासिक काल-गणनाको ५वीं शती ई० पू० के मध्यव लगभग तक पहुँचा देता है। देशके लिए ‘भारतवर्ष’ नामका सर्वप्रथम शिलालेखीय उल्लेख इसीमें मिलता है। कर्लिंग देशकी तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दशा, राजाकी योग्यता, राजकुमारोंकी शिक्षा-दीक्षा और प्रजाके प्रति राजाके कर्तव्योंका यह सुन्दर दिग्दर्शन कराता है। विहार और उड्डोताके सम्बन्धकी ऐतिहासिकताको २००० वर्ष पूर्व तक ले जाता है। इसमें तो किसीको भी कोई संदेह नहीं कि इस लेखको उत्कीर्ण

कर्लिंग आदि और बृहत्तर भारत

हृदयमिहको कहा था, यह लेण निर्मित कराया था। मधुपुरी गुफाके निचले भाग में स्थित पानालपुरी नामक गुफाको महाराज एक महादेव वाहनके वरात् (सम्भवतया पुत्र) कलिगाधिपति महाराज तुल्यश्रीन निर्मित कराया था। यमपुरी लेणके लेखमें ज्ञात होता है कि यह राजगुमार बहुयन निर्मित कराया था, सम्भव है कि उसने स्वयं भी वहाँ धर्म नाथन किया हो। व्याघ्र गुफाको नगर-यायाधीश भूतिने निर्मित कराया था। इस गुफाके निकट ही सपगुफाम बम्म, हन्निण और चूलबम्म नामक व्यक्तियोंके लेख हैं जिनसे विदित होता है कि गुफाके प्रामादको प्र म देने और अन्तर्गृहको नागर व्यक्तित्व बनवाया था। जम्बेश्वर गुफामें महा-वाग्मि और नाकियके नाम अंकित हैं। आठो हाथीगुफा किसी धार्मिकद्वारा प्रदत्त की गयी थी। तत्त्वगुफा कुसुम नामके किसी राज्य-कर्मचारी (पादमूलिक)-द्वारा निमाण करायी गयी थी। अन्तर्गुफाका लेख भी उन श्रमणोंकी गुफा सूचित करता है। इन विभिन्न गुफा-मन्दिरों, लेणों और शिलालेखोंसे स्पष्ट है कि खाग्वेलके बाद भी कई शताब्दियों तक खण्ड-गिरि-उदयगिरिकी गुफाएँ जैनाका पवित्र तीर्थ और जैन श्रमणोंका प्रिय आवास बनी रहीं तथा कलिंगके राजवंशमें, राज्य-कर्मचारियोंमें और जनमाधारणमें जैनधर्मकी प्रवृत्ति बनी रही। ऐसा प्रतीत होता है कि कम-से कम प्रथम शताब्दी ई० के उत्तरार्ध तक जबतक कि सातवाहन नरेशोंने कलिंग देशक बहुभागको विजय नहीं कर लिया, कलिंग देशपर खाग्वेलका वश शांतिके साथ शासन करता रहा, किन्तु अन्तर्देशीय राजनीतिमें वह नहीं उलझा।

प्रथम शताब्दी ई० पूर्वके पूर्वार्धमें (मन् ७४ ई० पू० के लगभग) शारवेलक एक वंशज, वक्रदेवके पुत्र महेन्द्रादित्य गन्धर्वसन गृहभिल्ल (या वरभिल्ल) ने मालवेक नवस्थापित गणराज्यका नायकत्व प्राप्त करके उज्जैनीमें गृहभिल्ल वंशकी स्थापना का थी। गृहभिल्लके अत्याचारा और अनाचारोंने उसे मालकाचायवे प्रयत्नसे शको-द्वारा ई० पू० ६१ में राज्य

बहुत एवं बेचरी निर्वाहित कराया किन्तु ई पू० १७ ई. तकने राज्य
 पुन और विजयवातिकने बनोली बार बनया। आजकलको राज्य नि
 और बीचकाल तक त्यागपूर्वक राज्य किया। अपने पुत्रको बनें तिक
 तिककी निर्देश बताया रही। एक ही वय परीक हमीरन कीक
 बंधन राज्य रहा।

राजनीय साधक पाकिस्ताने विहित होता है कि कात्तारने बालने
 बंधनकी ही कात्तारने की वही एक कनिष्ठपुरने और पुनरी विद्वाने की
 कने परतार आत्मविनाही बंधन बना। सम्राज्यको इको पुन-पुनर
 कलाकर बनिबना कात्तारन-नरीक बनिबोपुन प्रकटनि (अप की नि
 ना उत्तराव) कनिष्ठ-निबन करनेमें कला हुआ। पुनरी कनी ई० के
 कने बालन कात्तारनकोका पुन होनेपर बनीकने निबानी कना प्रकट
 बंधने कनेकी कला कनेकने बीबीपुनरत नाक कनेने बीन
 राज्यकी इत्यत किया। पुन कात्तारनने की बनिबन पुन क
 बनिबन रहा प्रतीत होता है। बनिब निनेने पुन तन्त्रक बनेन की
 कनी बालन पुनक है। कनेने ही बनिबने कनेने ही इत्यत क
 २०-३० कनी ई के बीकानने नाकापुन-कात्तार बनि कना की क
 प्रकटने प्रकट पुन ही बना। कात्तार बने की बीबी-बीबी बनिब हो क
 क। कन पुनकाकने ही इन बनेने कन कोनी कनेकी प्रकट तन्त्रक
 पाकी बाती है। कनपुनने कात्तारने कनेकन पुन नाकने निब कने
 के पुन कात्तार नाकाकने कने पुन कात्तारने की राज्य रहा प्रती
 होता है तथा कनी कनेने प्रतीत राज्य बनेने पुन बीन निब (कने)
 में की का बने।

१०-११ कनी ई में कनिष्ठ बनेने बार राज्य-बनेने कन पुन
 प्रतीत होता है—कना पुनी-बनेने ना। कनेकने कनेकने इन
 कात्तारने कनिष्ठ बनेने कनपुर ना कनेकने कने नाकाकनी कनाकर पुनी
 कनेकने कनाका की की और कना कनेकने (कात्तार ११ ई) की

प्रचलित किया था। उड़ीसा देशके दक्षिणी भाग (सम्भवतया गजमें जिले) पर इनका अधिकार था। इस वंशके इन्द्रवर्म प्रथम, हस्तिवर्म, इन्द्रवर्म द्वितीय, दानार्णव, इन्द्रवर्म तृतीय आदि राजाओंके अभिलेख गगन-सवत् २८ से ११४ पर्यन्त (५२५-६४१ ई० तक) के मिलते हैं। इन नरेशोंके मूल कर्णटकी वंशका कुलधर्म जैनधर्म था अतः ये भी उसीके अनुयायी अथवा कमसे कम उसके उदार प्रश्रयदाता रहे प्रतीत होते हैं। ७वीं शतीके प्रारम्भ तक यह वंश अवनत एव गौण दशामें रहा। किन्तु वज्रहस्तदेव (१०३८-६८ ई०) ने इस वंशका पुनरुद्धार किया, कलिंगनगरको राजधानी बनाया और देशके बहुभागको विजय करके त्रिकलिंगाधिपतिकी उपाधि धारण की। उसके उत्तराधिकारियों राजराजा, चोडगग और नर-मिहदेवक समयमें यह वंश उन्नतिके शिखरपर था। तदुपरान्त फिर अवनत हुआ। अन्तिम राजाकी पुत्रीका विवाह एक नागवंशी सरदारके साथ होनेसे यह राज्य नागवंशके अधिकारमें चला गया, जो मुसलमानों और फिर मराठोंको अधीनतामें रहता हुआ १८वीं शती तक चलता रहा।

दूसरा वंश तोशलिके भौमकरोँका था। इस वंशका संस्थापक स्वारवेस-के किसी सामन्तका वंशज रहा प्रतीत होता है। भौर्यकालीन प्राचीन महानगरी तोशलिको ही इस वंशने अपना केन्द्र बनाया था। ३री शतीसे ५वीं-६ठी शती ई० पर्यन्त इस राज्यका अस्तित्व रहा। उसके उपरान्त इसका ह्रास हुआ और सम्भवतया गौण सामन्तो-जैसी अवस्था हो गयी। कियौंकि राज्य प्रायः इसी प्रदेशमें रहा है। इसका शासक भञ्जी वंश उड़ीसाके सर्वप्राचीन वंशोंमें समझा जाता है, सम्भव है कि वर्तमान भञ्जी राजे प्राचीन भौमकरोँके ही वंशज हों। इस राज्यके आनन्दपुर तालुकेमें उस नगरसे १० मील दूर घनमें पोछा सिंगडि और बदखिया नामकी प्राचीन वस्तियाँ हैं। उनके आस-पास वनो और पहाडियोंमें जैन तीर्थंकरों एव देवी-देवताओंकी अनगिनत प्राचीन खण्डित अखण्डित मूर्तियाँ और विशाल मन्दिर, देवायतन, स्मारकों, सरोवरों आदिके खण्डहर हालमें ही दृष्टि-

नीचर हूँ । कुछ पुतिबोपर बाह्यी विधियें केव ही उत्पन्न हैं ।
अविद्यावशात्मेतमें दोषादि विद्येमें निवृत्त विम अविद्यावशात् और एत
आप्त दिनाके धार्मिक उत्सववाली आधीन अनुपुष्टिका वर्धन है पर
स्वल्प अतिष्ठ होता है और इस अवशेषोसे निवृत्त होता है कि धारणे
अपराध ही धर्मकरो धार्मिक राज्यवाक्यें मुक्तवाक्यें अत एक एक अवे
ये धर्मकर्म पूर्ववत् अकृता-कृता और अकृता-कृता कहा रहा था । ईश अति
होता है कि एकी अकृताकीसे अकृता-कृता और अकृता-कृता अति
अकृताकी इस अकृताकी धीरे-धीरे अकृता-कृता ।

[illegible][illegible]

विद्वानोंमें मतभेद है। किन्तु ऐसा लगता है कि हुएनसांगके समय कोसल और श्रिकाँगका अधिपति कोई वह सोमवशी राजा था जो भद्रकालकदेव-सम्बन्धी जैन अनुश्रुतिका कलिंग-नरेश हिमशीतल है। यह गौडके बौद्ध विद्वेपी शशाङ्कका प्रतिद्वन्द्वी और कन्नौजके हर्षवर्धनका मित्र था तथा स्वयं भी मद्राघानो बौद्ध सम्प्रदायका अनुयायी था। उसका राजमहिषी जैनधर्मकी भक्त थी। एक समय वह उद्योसाके होरक तटपर स्थित अपनी उपराजधानी रत्नसचयपुरमें निवास कर रहा था। कार्तिकी अष्ट-ह्लिकका पर्व निकट था। रानीने उस अवसरपर जिनेन्द्रके रथोत्सवद्वारा पर्व मनानेका विचार किया किन्तु राजाके बौद्ध गुरु डममें बाधक हुए। अन्ततः राजाने निर्णय दिया कि यदि जैनाचार्य बौद्ध विद्वानोंको शास्त्रार्थमें हरा देंगे तो जैन रथ निकलनेकी अनुमति दे दी जायेगी। रानी तथा अन्य जैनो जन घड़े चिन्तित हुए। उनके मौभाग्यसे उसी समय नगरक बाहर उद्यानमें महाराष्ट्रके दिग्गज जैनाचार्य अकलकदेव तभी आकर लहरे थे। उन्होंने तुरन्त बौद्धोंकी चुनौती स्वीकार कर ली। ६ महीने तक विवाद हुआ। बौद्ध लोग तारादेवीका सहायतासे शास्त्रार्थ कर रहे थे। अन्ततः अकलकदेवने घटमें स्थापित ताराका विस्फोट करके बौद्धोंको पराजित किया। राजा बड़ा प्रभावित हुआ और उसने जैनधर्म अंगीकार कर लिया। अनेक बौद्धोंको सम्भवतया दशम निष्कासित होकर सुदूर पूर्वके भारतीय राज्यों एवं उपनिवेशोंमें चला जाना पड़ा। हर्ष डम समाचारको सुनकर क्रुद्ध हुआ। वह दक्षिणके चालुक्योंपर भी विजय प्राप्त करना चाहता था अतः उसने कलिंगके मार्गसे मसैन्य प्रयाण किया। हिमशीतलके साथ घाट युद्ध हुआ जिसमें वह मारा गया। किन्तु उधर अकलकदेवने चालुक्य राजधानी वातापीमें जाकर अपने भयन चालुक्य सम्राट् विक्रमादित्य प्रथम माहमतुग (६४३-८० ई०) को इस वादक समाचार सुनाया। अतः हर्षके आक्रमणकी सूचना पाते ही वह तुरन्त हिमशीतलकी सहायताका पहुँचा। हिमशीतलकी रक्षा ता वह न कर सक

कलिंग आदि और गृहत्तर मारा

हिन्दु ईश्वर परमेश्वर होकर मानव जीव तथा जीव जीवज राक्षसों की रक्षा की गयी। वे ब्रह्मापै तन् ६४९-४४ ई की ई। इतरण्ठी होकरकी लम्ब-बनी। ईश्वर जीव जीवज बनेके अनुयायी हो गये। हिन्दु चीनी यात्रीके विवरणों तथा पुराणतन् जीव अनुसृष्टिरी आदि कल्प ऐतिहासिक वाक्यमें क्या कल्प है कि ८वीं शती ई पूर्वतन् अनुसृष्टि कल्पित ईश्वर जीवजर्ष अन्धी कल्पताने वा।

इसके इन विविध रत्नों और राजर्षियोंके अतिरिक्त विदर्भ म्हावीरजर्षके कल्पुरि और वैजिके नुषी वासुजर्ष की कल्पितकी राजनीतिमें कभी कभी ई ई म्हातन्पूर्व नाम केने कभी वे। कल्पितरर्षी जीव अम्हातन्-वे की कल्पित एक कल्पी वाक्यकल्प विस्तार किया। कल्पितमाली वाक्यी कल्पितके वाक्य और कल्पितके अनुसृष्टि मरेष इस ईश्वर जीवज-कल्पी करती थी। कल्पितके वाक्यकल्प कल्प एक नुषा ही बन गया। १८वीं शतीमें मरुतने वाक्यकल्प किया और नाकपुरके राजीकी कल्पितके नुषी कल्पित राजर्ष कल्पा।

वाक्यिक नुषितके ईश्वर कि कल्पित किया वा कल्प ई इस विधान ईश्वर राजर्षर्ष एवं जीवजर्ष आरम्भमें जीवजर्ष वा और म्हावीर कल्पितके ईश्वर रर्षी कल्पी ई कल्पित नुषी था। इसके कल्पित म्हातानकी जीवजर्ष तथा ईश्वरजर्ष की नुषी कल्पित हुआ। जीवजर्ष नुषी ई ई के ८वीं शती कल्पित बना था। कल्पित जीव और ईश्वरजर्षके कल्पित कल्पित नामजर्ष वाक्यिक की नुषी कल्पित हुआ। जीवजर्षक इस ईश्वरमें एक कल्प म्हात हुआ ही कल्प वा। तथापि १९वीं शतीमें राजा कल्पितकी ईश्वर कल्पितकी और ईश्वर कल्पितके विधानतन् कल्पितके प्रमाण नुषिके विधानकी ईश्वर ई। १९ वीं शतीमें जीवजर्षक की कल्पित हुआ। १९वीं शतीमें कल्पितरर्षी कल्पितके नुषी कल्पित कल्पितकी अतिरिक्त ईश्वर कल्पित कल्पितकी कल्पित ही इस ईश्वरकल्प कल्पित कल्प ईश्वर। कल्पितकल्प नुषित ईश्वरजर्ष नुषीकल्पित विधानकल्प की नुषित करता ई।

उड़ीसा गजेटियरके लेखक डब्ल्यू० एच० हण्टरके अनुमान इस दशके आदिम धामियोंका धर्म भी जैनधर्म ही था, यहाँके यवन राज्योंने भी इसी धर्मको अपनाया। १०वीं ११वीं शतीके उपरान्त यहाँके जनाने द्रुत वेगसे स्वधर्म छोड़ा। जो फिर भी अडिग रहे, उनके यंशज मराकोके रूपमें आज भी विद्यमान हैं।

महाकोसलके कलचुरि—कलिंग देशके पश्चिमी भाग (जो दक्षिण कोसल कहलाता था) तथा विदर्भ और मध्य प्रदेशके कुछ भागोंसे महाकोसल राज्यका निर्माण हुआ था। मगधके नन्द मौर्य आदि सम्राटोंके पश्चात् कलिंगचक्रवर्ती खारवेलका और फिर आध्र मानवाहनापा इस प्रदेशपर अधिकार रहा। तदुपरान्त वकाटकोंका राज्य हुआ जो ५वीं शती ई० पर्यन्त चला। वकाटकोंके सामन्ताके रूपमें ही सम्भवतया कलचुरि वंशका, जिसे चेदि या हंहय वंश भी कहा गया है और जा सम्भव है चैत्रवर्शी खारवेलके वंशजोंको ही शाखा थी, तीसरी शती ई० में उदय हुआ था। गुप्तोंने वकाटकोंको समाप्त किया अतएव उनके समयमें महाकोसलके कलचुरि गुप्तोंके करद राजाओंके रूपमें चलते रहे। आहठमण्डलमें त्रिपुरी इनकी प्रधान राजधानी थी। दक्षिण चेदि या दक्षिण कोसलके कलचुरियोंकी राजधानी रतनपुर (विलासपुर) थी। कलचुरियोंकी एक शाखा सरयूपारी नामसे भी प्रसिद्ध हुई जिसका राज गोहा बहराइचमें था। कलचुरि वंश एक अत्यन्त प्रतिष्ठित वंश था। विभिन्न राजवंशोंके नरेश कलचुरियोंके साथ विवाह सम्बन्ध करनेमें गौरव मानते थे। कलचुरि या त्रैकुटव संवत् २१९ ई० में प्रारम्भ हुआ अतः यही तिथि कलचुरि वंशकी स्थापना की मानी जाती है। किन्तु इस वंशका उत्कर्षकाल ८वीं से १२वीं शती ई० पर्यन्त रहा, और उसमें ७वीं शतीका चक्रवर्ण एक प्रसिद्ध राजा हुआ। ८वीं शतीमें लक्ष्मणराज राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीयका सामन्त था। उसके पुत्र कोषकल प्रथमका विवाह चन्देल राजकुमारोंके कलिंग आदि और बृहत्तर भारत

माउ हुआ था और इसी लक्षणे समर्थाकारों द्वारा अधिक बढ़ी ।
 संस्करण द्वितीय या तृतीय (८७८- ६) तक बनायी गयी था
 सम्पूर्ण संस्करण और रचयिता अपने निवास में और अपने कनिष्ठ
 कर्म के समर्थाकारों द्वारा किया था । उनके बाद सम्पूर्ण और
 फिर पुनरावृत्ति संस्करण हुआ । वर्ष १८८०-८१ विद्वत्समर्थकारों
 माउ संस्करण को माउ संस्करण में माउ बना । १८८१-८२ ई
 तक इनका माउ किया । वह माउ गरी निवास और विवेक था । इनमें
 रचना का माउ निवास के ही बना । माउकारों बनाया था । इनमें
 गरी इनका माउ सम्पूर्ण संस्करण में गरी विवेक की विद्वत्समर्थकारों
 समर्थाकारों सम्पूर्ण द्वितीय या इनका की समर्थाकारों में गरी ।
 इनकी गरी समर्थाकारों माउकारों में गरी द्वितीय गरी का माउ सम्पूर्ण
 संस्करण पुनरावृत्ति द्वितीय और माउकारों द्वितीय सम्पूर्ण हुआ ।
 सम्पूर्ण माउ इनका १८८१ माउ का माउकारों माउकारों माउकारों
 विद्वत्समर्थकारों द्वारा कर किया था । विद्वत्समर्थकारों समर्थाकारों
 विद्वत्समर्थकारों (१ ८८१-८२ ई) माउ और माउकारों का । इनका
 पुन संस्करण (१ ८८१-८२ ई) और भी अधिक माउकारों का पुन माउ-
 कारों माउकारों इनमें विवेक किया । माउकारों माउकारों और विवेक
 माउकारों । कनिष्ठ माउकारों माउकारों माउकारों इनमें विवेक
 माउकारों माउकारों माउकारों का माउकारों (१ ८८१-
 १८८२ ई) का और फिर माउकारों (१८८२-८३ ई) माउ हुआ ।
 १८८३ माउकारों माउकारों विद्वत्समर्थकारों (१८८३ ई) इन माउकारों
 माउकारों माउकारों । इनका माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों
 विवेक का किया और माउकारों माउकारों माउकारों ।

माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों
 माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों
 माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों
 माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों माउकारों

भी जैनधर्मके प्रति महिष्णु और उदार रहे और इस धर्मका आदरको दृष्टि देखते थे। प्रारम्भिक तरेगोमें महाराज पाकरगणने वि० स० ६८० (६२३ ई०) में जैनतीर्थ कुल्पाक क्षेत्रकी स्थापना की थी और उसके लिए वारह ग्राम प्रदान किये थे। कलचुरि-नरेश गयकणदेव (११२५-५४ ई०) भी जैनधर्मका आदर करता था। उसके महामामन्ताधिपति गोल्हणदेव गठौरने जो जैनधर्मका अनुयायी था, जबलपुरसे ४२ मील उत्तरमें स्थित बहुग्रीवन्दके ग्यनुवादेव नामक प्रसिद्ध जैनतीर्थको जिनमूर्तिकी प्रतिष्ठा कराया था। विजयसिंहदेव कलचुरि (११९५ ई०) तो निश्चित रूपसे परम जैन था और उसके समयमें राज्य एवं प्रजाका प्रधान धर्म जैन ही था।

सम्पूर्ण महाकोसल दशमें प्राचीन जैन मन्दिरा, मूर्तियों एवं अन्य धार्मिक कलाकृतियां अवशेष यत्र-तत्र-सर्वत्र इतने बिखरे हुए मिलते हैं कि जिससे हम तथ्यमें सन्देह नहीं रहता कि पूर्व मुसलिम कालमें यह प्रदेश गताब्दियों पयन्त जैनधर्मका एक प्रमुख गढ़ रहा है। कलचुरियोंके शासन कालमें जैनाश्रित शिल्प स्थापत्यकलाका इस प्रदेशमें अभूतपूर्व विकास हुआ। कोई कोई जैन कृतियाँ तो तत्कालीन सम्पूर्ण भारतीय कलाकी उत्कृष्टताका प्रतिनिधित्व करनेकी क्षमता रखती हैं। अनेक जैनतीर्थ एवं सांस्कृतिक केन्द्र इस प्रदेशमें स्थापित हुए यथा कुल्पाक क्षेत्र, सनुवादेव, रामगिरि, अचलपुर, जोगोमारा, कुण्डलपुर, कारजा, आरग, झोरा, धाराशिव आदि। कारजा प्राचीन कालसे ही एक प्रसिद्ध दिगम्बर जैन केन्द्र रहता आया है। अपभ्रंश भाषाके सुप्रसिद्ध जैन महाकवि पुण्ड्रकान्त रोहणखेहके निवासी थे। रामपुर जिलेके आरग स्थानमें एक प्राचीन जैन-मन्दिर है और उसके निर्माता तत्कालीन राजे राजपि तुल्य कहे जाते थे। डॉ० हीरालालका मत है कि ये राजे महामेघवाहन खारवेलके वंशज रहे प्रतीत होते हैं। सम्भव है कालान्तरमें ये कलचुरियोंके सामन्तरूपमें रहे हों। महाकोसल विदम्बका अचलपुर नगर भी प्राचीन जैन केन्द्र

[illegible][illegible]

प्रधान श्रीचौधर आशुतोषजी के प्रधान बनकर पुण्डरीकजी इन प्रदीप्त
कर्मरूप धर्मजी के निरीति काय किया गया था। बाबा जी । ठरफवार भय

अनेक तीर्थंकरोंने इस प्रदेशमें विहार किया। महाभारत-कालमें श्रीकृष्णके ताऊजात भाई २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमिका तो यह प्रान्त प्रधान विहार-क्षेत्र था। स्वयं कृष्ण, बलराम आदि हरिवंशी यादवोंने शौरसेन देशके शौरीपुरका परित्याग करके सौराष्ट्रके समुद्रतटपर द्वारका-जैसी मनोरम नगरीका निर्माण किया था और उसे अपनी राजधानी बनाया था। उसीके निकट जूनागढ़के राजा उग्रसेनकी कन्या राजुलदवाँके साथ नेमिकुमारका विवाह रचानेके लिए यादवोंकी वारात चढ़ी थी। किन्तु दोन पशुओंकी पुकार सुन, मुकुट और कंकणको ताड़कर धर्मवाग् नेमिकुमार ससार, दह और भोगोंसे विवक्त हुए तथा निकटवर्ती ऊर्जयन्त अपरनाम गिरनार पर्वत-पर जाकर तपस्यामें लीन हो गये। महामती राजुलने भी उन्हींका अनुकरण किया। इसी पर्वतपर नेमिनाथको वैवल्लभान प्राप्त हुआ और अन्तमें इसी पर्वतके शिखरसे उन्होंने निर्वाण लाभ किया।

सन् ई० के प्रारम्भसे लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व मध्य-एशियाके प्रसिद्ध प्रागैतिहासिक साम्राज्य बाबुलके अधिपति खिल्दियन वंशी सम्राट् नेबुचेड-नज्जने इस गिरिराजकी वन्दना की थी और इसके प्रभु अरिष्टनेमिकी सेवामें बृहत् दान समर्पित किया था, जैसा कि इस स्थानसे प्राप्त उक्त नरेश-की लेखांकित मुद्रासे प्रमाणित होता है। इस प्रकार तीर्थंकर महावीरसे ही नहीं, तीर्थंकर पार्श्वनाथसे पूर्व भी इस प्रदेशमें तीर्थंकर अरिष्टनेमिकी उपासना, गिरनार पर्वतकी तीर्थ रूपमें मान्यता और जैनधर्मका प्रभाव विद्यमान थे। बौद्ध अनुश्रुतिके सोलह महाजनपदोंमें इस देशकी गणना नहीं है किन्तु जैन अनुश्रुतिके प्राचीन राज्यों एव आर्य देशोंमें कच्छ नामसे इसकी गणना स्पष्ट मिलती है। चन्द्रगुप्त मौर्यने इस प्रदेशको विजय करके उसे अपने साम्राज्यमें मिला लिया था। उसने स्वयं गिरनारकी यात्रा की थी और उसकी तलहटीमें अपने कर्मचारी वैश्य पुण्यगुप्तकी देख-रेखमें एक विशाल एव सुन्दर मरोवरका निर्माण कराया था, जो सुदर्शन झीलके नामसे विख्यात है। चन्द्रगुप्तने इसी सरोवरके निकट मुनियोंके निवासके लिए एक कलिंग आदि और बृहत्तर भारत

कराया था तथा वहाँ अपनी महत्त्वपूर्ण प्रशस्ति अंकित करायी थी। उसके पुत्र-
 दामजदश्रीने उपरोक्त चन्द्रगुफामें एक शिलालेख अंकित कराया था जिससे
 उस नरेशके जैनी होनेमें कोई सन्देह नहीं है। उसने यह लेख आचार्य
 धरसेनकी मृत्युकी स्मृतिको अमर बनाये रखनेके लिए अंकित कराया
 प्रतीत होता है। इसी वंशकी एक राजमहिषीकी नामांकित मुद्रा भी
 महावीरकी जन्मभूमि सुदूर वैशालीके खण्डहरोंमें मिली है जिससे विदित
 होता है कि वह रानी वहाँ तीर्थ-यात्राय गया होगी। इस प्रदेशपर शक-
 क्षत्रपोंका राज्य ४थी शती ई० के अन्त तक चलता रहा। ४थी शताब्दी
 ई० के अन्तमें गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने वकाटकीकी
 सहायतासे शकोंकी राज्यशक्तिका उन्मूलन किया और यह देश गुप्त
 साम्राज्यका अंग बन गया। सन् ३००-३१३ ई० में आर्य स्कन्दिलकी
 अध्यक्षतामें मयुरामें श्वेताम्बर साधुओंका एक सम्मेलन हुआ था, प्रायः
 उसी समय नागार्जुन सूरिने वल्लभीमें एक वैसा ही सम्मेलन बुलाया था
 और उसमें आगमोंके सकलनकी चर्चा उठायी थी। इससे विदित होता है
 कि ३री शतीके अन्त या ४थी के प्रारम्भके लगभग ही सौराष्ट्र और
 विशेषकर उसकी राजधानी वल्लभी श्वेताम्बर सम्प्रदायका केन्द्र बन गयी
 थी। गुप्तोंके कालमें यह प्रदेश साम्राज्यकी एक भुक्ति था और सम्राट्
 स्कन्दगुप्तने पणदत्तको इस भुक्तिका प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था।
 इस पणदत्तके पुत्र चक्रपालितने जो गिरिनगरका कोटपाल था, सुदर्शन
 झीलका पुनर्जीर्णोद्धार कराया और वहाँ एक शिलालेख भी अंकित
 कराया था।

गुप्तकालमें ही गुजरातमें मौर्य वंशका उदय हुआ। वल्लभीको इस
 वंशने अपनी राजधानी बनाया। कुमारगुप्त प्रथमके समयमें ही इस वंशकी
 स्थापना हो गयी प्रतीत होती है और गुप्त सम्राटोंके करद राजाओं या
 सामन्तोंके रूपमें ही इस वंशका प्रारम्भ हुआ। यही कारण है कि इस
 वंशके नरेशोंके समस्त अभिलेख गुप्त सवत्में ही मिलते हैं। मौर्यक

कलिंग आदि और छहत्तर भारत

उन्होंने अपने आश्रयदाता शिलादित्यका भी उल्लेख किया है। मह राजा बौद्धोका भी समान रूपसे आदर करता था। चीनी यात्री ह्वेनसांगने भी उसका उल्लेख किया है। बौद्धग्रन्थ मज्झिमीमूलकल्पमें इस राजाके राज्यका विस्तार उज्जैनीसे लेकर समुद्रतटवर्ती लाट देश पर्यन्त बताया है। शिलादित्यका भतीजा ध्रुवभट्ट या ध्रुवसेन द्वितीय था जिसे हपवर्धनने युद्धमें पराजित किया था किन्तु फिर अपनी पुत्रीका विवाह उसीके साथ करके उससे मैत्रो सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। सम्भवतया हर्षका जामाता होनेके कारण ही यह राजा महायानी बौद्धधर्मका भक्त हुआ। हर्षकी मृत्युके उपरान्त वह स्वतन्त्र हो गया। उसका पुत्र धरसेन चतुर्थ भी महायानी बौद्ध था, उसने अपने लिए चक्रवर्ती शब्दका भी प्रयोग किया है जिससे सूचित होता है कि उसने विजयों-द्वारा अपने राज्यका विस्तार भी किया था। ६९५ ई० के लगभग भारतमें आनेवाला चीनी यात्री ह्वेनसांग लिखता है कि वल्लभी नालन्दाकी भाँति ही बौद्ध धर्मका प्रमुख ज्ञान-केन्द्र थी। इस शताब्दीमें गुणमति, स्थिरमति, जयमेन आदि वल्लभीके प्रमुख बौद्धाचार्य थे। बौद्धोंके इस उत्कर्षने वल्लभीमें जैनधर्मको सौ डेढ़ सौ वर्षके लिए गौणता प्रदान कर दो प्रतीत होती है। ७१५-४३ ई० के बीच अरब सरदार हाशमके सेनानी जुशैदने वल्लभीपर आक्रमण करके उसे लूटा था। मैत्रकवश अब अवनत हो चुका था और शिलादित्य सप्तम (७६६ ई०) सम्भवत इस वंशका अन्तिम राजा था।

८वीं शतीके उत्तरार्धमें गुजरात देश सौराष्ट्रके सैयद, भडोचके गुर्जर, लाटके चालुक्य, सौरमण्डलके वराह, अन्हिलवाड़ेके चावडा (चापोलकट) आदि अनेक छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा हुआ था। जैनाचार्य जिनसेनके हरिवंश (७८३ ई०) के अनुसार इन सबमें सौरमण्डलके वराह प्रमुख थे और वहाँ महावराहका पुत्र या पौत्र जयवीर वराह राज्य कर रहा था। किन्तु इसी समय भिन्नमालके गुर्जर-प्रतिहार और दक्षिणके राष्ट्रकूट दोनों ही गुजरातको हस्तगत करनेके लिए उतावले हो रहे थे। प्रतिहार

में जयशेखर चापोत्कटके पुत्र वनराजने इस वंशको स्थापना की थी।
 अपने गुरु स्वैताम्बराचार्य शीलगुणसूरिके उपदेश, आशीर्वाद और
 सहायतासे वनराज राज्य स्थापित करनेमें समर्थ हुआ। उसने वल्लभी और
 उसके मैत्रकाका अन्त किया और अन्हिलपाटन नामक नवीन नगर बसाकर
 उसे अपनी राजधानी बनाया। इस वंशके समयमें जैनधर्म ही प्रायः
 राजधर्म रहा यद्यपि शैव और शाक्तधर्म भी राज्यमान्य बने रहे। राज्यके
 अधिकांश प्रभावशाली वर्ग, धनिक महाजन, राजमन्त्री आदि जैन थे।
 वनराजका प्रधान मन्त्री चम्पा नामक जैन घणिक या जिसने चम्पानेर नगर
 बसाया। निम्नय नामक एक धनवान जैन श्रेष्ठिने, जिसे वनराज पिता
 तुल्य मानता था, अन्हिलवाड़ेमें ऋषमदेवका मन्दिर बनवाया। निम्नयका
 पुत्र लहोर वनराजका सेनापति था। गुरुदक्षिणाके रूपमें वनराज शीलगुण
 सूरिको अपना राज्य समर्पित करना चाहता था किन्तु उन्होंने उसके
 बदलेमें उससे एक मन्दिर बनवानेके लिए कहा, अतः राजाने राजधानीमें
 पचासर पाश्वनाथ नामका प्रसिद्ध जिनालय बनवाया। इस जिनालयमें
 पार्श्व प्रतिमा पचासरसे लाकर स्थापित की गयी थी। वनराजने और भी
 कई जिन-मन्दिर बनवाये। उसके बाद योगराज, रत्नादित्य, क्षेमराज,
 आकडदेव और भूयडदेव या सामन्तमिह नामके राजा इस वंशमें क्रमशः हुए।
 ९७४ ई० में मूलराज सोलकीने इस वंशका अन्त किया। वर्धमान
 नगरमें भी चापवंशकी एक शाखाका राज्य था जिसमें विक्रमार्क, अदक,
 पुलकेशी, ध्रुवमट्ट और धरणीवराह नामके राजे हुए। ये भी जैन धर्मके
 पोषक थे। गिरनार-जूनागढ़के चूडासमाप्त १०वीं से १६वीं शती तक
 राज्य करते रहे। सोमनाथके मूल निर्माता इसी वंशके प्रारम्भिक नरेश
 थे। ये जैन धर्मके प्रति भी सहिष्णु रहे।

गुजरात-अन्हिलपाटनका सोलकीवंश दक्षिणके प्राचीन चालुक्यवंशकी
 ही एक शाखा था। सौराष्ट्र, मत्तमयूर और लाटमें भी चालुक्योंके छोटे-
 छोटे वंश स्थापित थे। किन्तु गुजरातके इतिहासमें अन्हिलवाड़ेके चालुक्यों

अररररररर रीररीररीररर रररर री रररीररर ररररररर री । रररर रररर-
 ररररर री रर ररर ररररररर ररर ररररररर रररीर रीर रर रररर
 ररररररी रररररर ररररर ररररर ररररर री । रर १४१-४२ री
 री ररररर रीरररीरर रर ररररी ररररर री रीर १४४ री री
 ररररर रर ररररर ररररर रररर ररर ररररररर री ररर । रररर-
 ररररर री रररर रररी रररररी ररररर । ररररर-रररर ररररर
 रीररीरर रर रररर ११४ री री रररर रररी ररर री । रररर
 रर ररररररर (११५-११६ री) री रररर ररररर ररररर
 ररररर रीर । रररररररर रर ररररररर रर रररर रर ररररर
 ररर (११-१२ री) रर । रररर ररररी रररर ररररीर
 रीररररर रीररर रीर । रीररी रररररी रर ररररर । रीर
 रररररर रर रर रर । रीररीरर ररररी री रीररररी रीररर
 रीररररर ररररररर ररर ररररर रररर रर । रररर
 रीरररररर ररररर रररररर रीरर रररी रीरररररर रर
 ११२ री र रीरर ररर ररर ररर रीररर रररर रर । रीरररर
 ररर रर ररी रररर रीर ररररर रीर ररर री ररी रर रर रररर
 रर रररर ररी री रर रीर ररर री रीर ररर रीरररर रर री
 ररर रीररररी रीररी रीरर ररीर रीरर रीरर रीरररी री
 रीरररी ररररर रीर । रीरर रर रररररर रर (११-
 १२ री) रर रीरर ररर ररी रीरर ररर रीर रर । ररर रर
 रीर ररररररी ररररर ररररर रररर (११४-११५ री)
 रर । रर रर ररररररी ररररर रर ररी ररर रीर । रर
 रररररररर रर ररररर रररर रर री ररररीरर री रर
 रर । रररी रररर रीरररर रररर री रररीर रीररर री
 रररर रीरररर रर ररर रर री रररर रीररी ररर ररर
 ररर रीरररररी री ररर १२ रर री रीर री । रर रर-

शास्त्रका भी ज्ञाता था और सिद्ध चक्रवर्ती कहलाता था । उसने अपना सवत् भी बनाया । रायविहार नामक आदिनाथका सुन्दर जिनालय और गिरनार पर्वतपर नेमिनाथके मुख्य मन्दिरको बनवानेका ध्येय भी इसी राजाको है । मुसाल, शान्तनु, उदयन, आलिंग, पृथ्वीपाल आदि उसके अनेक राजमात्रो जैनों थे । पृथ्वीपालने आवूक एक मन्दिरमें अपने सात पूर्वजाकी हाथोनशीन मूर्तियाँ बनवायी थी । राजा जयसिंहने १२ वर्ष तक मालवाके परमारोंके साथ युद्ध करके उनपर विजय प्राप्त की और वह अवतिनाथ कहलाया । उसने सर्वराका दमन किया और महावेके चन्देलोंको संधि करनेपर विवश किया । उसकी नीति प्रधानतया आक्रमणात्मक थी और उसक समयमें गुर्जर साम्राज्यकी अभूतपूर्व सन्नति एवं विस्तार हुआ । उसके प्रसिद्धमन्त्रो उदयनन सोरठक दुर्द्धर राजा गंगारको पराजित करके मिथ्वराजको चक्रवर्ती पद दिलाया था और इसी उदयनने कणवितो (अहमदाबाद) में एक जिनालयका निर्माण कराकर उसमें ७२ बहुमूल्य द्रव्य प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करायी थी । उदयनके पुत्र आहड, बाहड, अम्बड, सोल्ला आदि भी विपक्षण राजमात्रो और प्रचण्ड सेनानायक थे । स्वयं महाराज जयसिंह ज्ञान और कलाका बड़ा प्रेमी था और विद्वानोंका भारी आदर करता था । माजकी उज्जैनोको भाँति ही उसने अन्हिलपाटनको ज्ञानका अनुपम केन्द्र बनानेका निश्चय किया और वहाँ एक विशाल विद्यापीठकी स्थापना की । सुप्रसिद्ध दिग्गज जैनाचार्य हेमचन्द्रको उसने अपने आश्रयमें हानेवाली साहित्यिक प्रवृत्तियोंके नेतृत्वका भार सौंपा । लगभग २० नवीन ग्रन्थोंका निर्माण हुआ, स्वयं हेमचन्द्रने द्वाध्याश्रयकाव्य और सिद्धहेम व्याकरणकी रचना की, उनके शिष्य रामचन्द्रने अनेक नाटक रचे, कवकल कायस्य व्याकरणके आचार्य नियुक्त हुए, यागभट्टने अलंकार ग्रन्थकी रचना की, तथा गुणचन्द्र, महेन्द्रसूरि, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, वर्धमानगणि, यशश्चन्द्र, बालचन्द्र, आनन्दसूरि, अमरचन्द्र आदि अनेक जैन विद्वानों एवं साधुओंने राजासे सम्मान प्राप्त किया । राजाको दार्शनिक शास्त्रार्थ सुननेका भी शौक

कलिंग आदि और घृहचर भारत

स्वयं थे। उन्होंने पथ प्रदर्शनमें उसने राज्य संचालन किया, उसके मन्त्री, सेनानायक एवं अन्य उच्च पदस्थ कर्मचारी भी अधिकांशतः जैन थे और सब ही कुशल सुयोग्य एवं विश्वस्त थे। थोड़े ही समयमें उसने बाह्य एवं अन्तर्गत शत्रुओंका दमन करके अपनी स्थिति सुरक्षित एवं सुदृढ़ कर ली और शासन-व्यवस्था सुचारु कर दी। तदनन्तर शेष १५-२० वर्ष उसने कला, ज्ञान और धर्मकी सेवा-साधनामें व्यतीत किये। उसने श्रावकके व्रत धारण करके परम आर्हत् विरुद्ध प्राप्त किया, राज्यमें पशुहिंसा, बलि, शिकार, मद्यपान, जुआ आदिका निषेध किया, मृत्यु दण्ड वन्द किया, युद्धसे विराम लिया, राज्य-भरमें अमारि घोषणा करवा दी, दोन दुखियोंका पालन किया, निस्सन्तान विधवाओंके स्वत्वकी रक्षा की, चतुर्विध सघने साथ शत्रुजय, गिरनार तथा अन्य तीर्थ क्षेत्रोंकी यात्रा की, और सोमनाथके मन्दिरका भी विस्मरण नहीं किया। यह राजा भारी निर्माता भी था, कहा जाता है कि उसने १४४० नवीन मन्दिर बनवाये और १६०० का जोर्णोंद्वार कराया, स्वयं राजधानीमें भी अनेक सुन्दर जिनालय निर्माण कराये। प्रारम्भमें वह निरक्षर था किन्तु राजा होनेके उपरान्त सत्सगसे शीघ्र ही उसने लिखना-पढ़ना सीख लिया, विद्वानोंकी सगति एवं वाद विवादमें उसे आनन्द आता था, कवि, पण्डित, चारण, जैनजैन विद्वान्, साधु तपस्वी सभी उसके राज्य और दरबारकी शोभा बढ़ाते थे, राजा चरित्रवान् और एकपत्नीव्रतका पालक था, ब्राह्मण विद्वानों और कवियोंने भी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वास्तवमें कुमारपाल एक आदर्श नरेश था। ११७२ ई० में हेमचन्द्रकी मृत्यु हुई, गुरु वियोगसे सन्तप्त राजा कुमारपाल भी ६ मास पश्चात् ११७३ ई० में मर गया।

कुमारपालके कोई पुत्र नहीं था, उसका दोहित्र प्रतापमल्ल उसका उत्तराधिकारी था, किन्तु उसके भतीजे अजयपालने चालाकीसे सिंहासन हस्तगत कर लिया। वह शैवधर्मका अनुयायी था और बड़ा असहिष्णु था, उसने पुराने मन्त्रियों और सरदारोंको अपमानित किया और उन्हें नष्ट किया।

कलिंग आदि और बृहत्तर भारत

[illegible]

मुबारकाबके वार ही कोर्नरी बंझका बनन आरम्भ हो गया था । इस अवसथ बानसै भी मुबारकाबके बीरव बीर बलिष्ठ तथा बल-शक्त भी बनकर उठा इनके बीच साम्यविचारधारेमें ही थी । बीच हिन्दु तथा मुस्लिम-मताधिकार के लिये बानसै ने भी बल-शक्ति का प्रयोग किया था । बानसै के लिये भी मुबारकाब बीरव बीर बलिष्ठ तथा बल-शक्त भी बनकर उठा इनके बीच साम्यविचारधारेमें ही थी । बीच हिन्दु तथा मुस्लिम-मताधिकार के लिये बानसै ने भी बल-शक्ति का प्रयोग किया था । बानसै के लिये भी मुबारकाब बीरव बीर बलिष्ठ तथा बल-शक्त भी बनकर उठा इनके बीच साम्यविचारधारेमें ही थी । बीच हिन्दु तथा मुस्लिम-मताधिकार के लिये बानसै ने भी बल-शक्ति का प्रयोग किया था ।

जने दमन किया किन्तु वह उनका अन्त न कर सका। साथ ही ब्राह्मणों और उनके धर्मका बोलवाला हुआ। छठके पुत्र दाहिरके समय ७१२ में अरब सेनानी मुहम्मद बिन कासिमने सिन्धपर भयकर आक्रमण किया। दाहिर घोरतापूर्वक लड़ने हुए मारा गया और सिन्धपर हिंदूगण्यका अन्त तथा मुसलमानों का सत्तनका प्रारम्भ हुआ। कुछ विद्वानों ने मतसि सिन्धके स पत्तनका श्रेय अरबोंकी घोरतासे अधिक सिन्धके बौद्ध और ब्राह्मणोंके आस्थासघातकी है। अरबोंने प्रारम्भिक अत्याचारोंके बाद बहुत कुछ मठि-गुनापूर्वक धामन किया। बौद्धधर्म तो शनै-शनै तिरोहित हो गया और इसके विकृत अवशिष्टांश तथा शाक्त धर्मके सम्मिश्रणसे सिन्धमें वाममार्ग-ता प्रचार हुआ। जैनधर्म पतनपता रहा, शनै-शनै वैष्णवधर्म भी प्रविष्ट हुआ और जैनधर्म भी व्यापारी वर्गमें बना रहा। कवि श्रीरूपके नैषध-चरितसे विदित होता है कि ८वीं सनाब्दीमें भी सिन्धमें जैनधर्म अच्छी दशामें था। मुल्तान नगर तो मध्यकालमें भी इस प्रदेशमें जैनधर्मका प्रमुख केन्द्र बना रहा। गोहो पाशवनाथजी सुप्रसिद्ध मूर्तिसे सम्प्रचित अनुश्रुतियाँ भी प्राचीन कालमें सिन्ध देशमें जैनधर्मके अस्तित्वका समर्थन करती हैं। मध्यकालमें पार्श्व-जिनकी इस प्राचीन ऐतिहासिक प्रतिमाके संरक्षक सिन्ध देशान्तर्गत पौरनगर (पारकर) के मोहवशी राजपूत राजे रहे और वे इसे अपना कुल-देवता मानते रहे।

काश्मीर—यह पन्जाब और मध्य एशियाके बीच स्थित मुख्य पर्व-तीय देश है जो हिमालय पर्वत मालाओंमें ही होकर निम्नत और नेपालमें भी सम्प्रचित है। यह एक प्राचीन राज्य है। आर्योंने ही इसे सर्वप्रथम सम्यता प्रदान की। मिकन्दरके आक्रमणके समय यह विद्यमान था और चन्द्रगुप्त मौर्यने भी उसे अपने साम्राज्यका अंग बना लिया था। सम्राट् अशोकके पुत्र जलौकने वहाँ स्वतन्त्र राज्य किया। कल्हणकी राजतरंगिणी और अवुलफ़ज़लकी आइनने अक्षरोंके अनुसार जलौकने ही इस देशमें जैन-धर्मकी प्रतिष्ठा की थी। तदुपरान्त कनिष्क आदि कुषाणोंका वहाँ राज्य

उसने दमन किया किन्तु वह उनका अन्त न कर सका । साय ही ब्राह्मणों और उनके धर्मका बोलबाला हुआ । छठके पुत्र दाहिरके समय ७१२ ई० में अरब सेनानो मुहम्मद बिन कासिमने सिन्धपर भयकर आक्रमण किया । दाहिर वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारा गया और सिन्धपर हिन्दू राजका अन्त तथा मुसलमानी शासनका प्रारम्भ हुआ । कुछ विद्वानोंके मतसे सिन्धके इस पञ्चक श्रेय अरबोंकी वीरतासे अधिक सिन्धके बौद्धों और ब्राह्मणोंके विश्वासघातकी है । अरबोंने प्रारम्भिक अत्याचारोंके बाद बहुत कुछ सहिष्णुतापूर्वक शासन किया । बौद्धधर्म तो शनै-शनै तिरोहित हो गया और उसके विकृत अवशिष्टांश तथा शान्त धर्मक सम्मिश्रणसे सिन्धमें बाममार्ग का प्रचार हुआ । शैवधर्म पनपता रहा, शनै-शनै वैष्णवधर्म भी प्रविष्ट हुआ और जैनधर्म भी व्यापारों धर्ममें बसा रहा । कवि श्रावणके नैपथ्य-चरितसे विदित होता है कि ८वीं शताब्दीमें भी सिन्धमें जैनधर्म अच्छी दशामें था । मुल्तान नगर तो मध्यकालमें भी इस प्रदेशमें जैनधर्मका प्रमुख केन्द्र बना रहा । गौड़ी पाण्डनाथकी सुप्रसिद्ध मूर्तियों सम्बन्धित अनुश्रुतियाँ भी प्राचीन कालमें सिन्ध देशमें जैनधर्मके अस्तित्वका समर्थन करती हैं । मध्यकालमें पार्श्व-जिनकी इस प्राचीन ऐतिहासिक प्रतिमाके संरक्षक सिन्ध देशांतर्गत पोरनगर (पारकर) के सोडवशी राजपूत राजे रहे, और वे इसे अपना कुल-देवता मानते रहे ।

कश्मीर—यह पञ्जाब और मध्य एशियाके बीच स्थित सुरम्य पर्वतीय देश है जो हिमालय पर्वत मालाओंमें ही होकर निम्नत और नेपालसे भी सम्बन्धित है । यह एक प्राचीन राज्य है । आर्योंने ही इसे सत्रप्रथम सम्पत्ता प्रदान की । मिकन्दरके आक्रमणके समय यह विद्यमान था और चन्द्रगुप्त मौर्यने भी उसे अपने साम्राज्यका अंग बना लिया था । मग्राद् अशोकके पुत्र जलौकने वहाँ स्वतंत्र राज्य किया । कलहणकी राजतरंगिणी और अबुलफ़ज़लकी आइने अकबरीके अनुसार जलौकने ही इस देशमें जैनधर्मकी प्रतिष्ठा की थी । तदुपरान्त कनिष्क आदि कुषाणोंका वहाँ राज्य

कलिंग आदि और उत्तर भारत

नामशेष हो गया और शैवधर्म इस देशका प्रधान धर्म हो गया। इन नरेशोंने संस्कृत साहित्यकी भारी प्रेरणाह्वन दिया। मैया, गोमक, शिव-
स्वामिन, रत्नाकर, अमिनन्द, क्षेमेन्द्र, मोमदेव (कथासरित्सागरका लेखक,
१०६३ ई०) विरहण (१०६४ ई०), कल्हण (११०० ई०) आदि अनेक
संस्कृत कवियों एवं विद्वानोंने इन नरेशादे आश्रयमें भारतीमें भण्डारकी
भरा। कल्हणकी राजतरंगिणी कश्मीरके इतिहासका अपूर्व ग्रन्थ है और
सम्पूर्ण संस्कृत साहित्यमें इतिहास विषयकी बेजोड़ रचना है। इससे पता
चलता है कि कश्मीरका तत्कालीन इतिहास गृह पद्धत्या, हत्याओं और
दुराचारोंसे पूरित था।

नेपालमें प्रारम्भमें अनार्य लोगोंका निवास था। प्राचीनकालमें लिच्छवि
राज्यों ने यहाँ भारतीय राज्य स्थापित किया जो ७वीं शती ई० के मध्य
तक चलता रहा। समुद्रगुप्तके शिलालेखमें भी नेपाल राज्यका उल्लेख है।
इसके समयमें नेपाल राज्य हर्षके राज्य और तिब्बतके बीच स्थित था।
लिच्छवियोंके द्वारा ही इस देशमें आर्यसम्पत्ता और बौद्ध, जैन आदि धर्मों-
का प्रवेश हुआ। किन्तु तान्त्रिक बौद्धधर्मकी ही वहाँ प्रधानता हुई।
अभी हालमें ही स० ४९८की एक जैन प्रतिमा एवं शिलालेख नेपालमें प्राप्त
हुए हैं। ६४२ ई० में अश्वमेधने नेपालमें ठाकुरिबश नामक एक नवीन
राजवंशकी स्थापना की। ७२४ ई० में इग बशके राजा गुणकामदेवने
काठमाण्डु नगरका निर्माण किया और उसे राजधानी बनाया। ८७९ ई०
से नेपाली सभ्यताका प्रचलन हुआ। १३२४ ई० में हीरासिंहदेवके समयमें
नेपालमें बौद्धधर्मका अन्त हुआ और शैवधर्मकी स्थापना हुई। तबसे वही
इस देशका प्रधान धर्म चला आता है। जैन धर्मके भा कतिपय चिह्न
नेपालमें मिले हैं। जैनियोंका आवागमन इस देशमें प्राचीनकालमें था,
इसके कई प्रमाण मिलते हैं।

कुल्लुकी घाटी में कुल्लूत लोगोंका एक छोटा सा राज्य था। इसके
राजे बौद्ध थे। चम्पामें भी कुल्लूतोंका राज्य था किन्तु वे लोग शैव थे।

कलिंग आदि और घृहस्तर भारत

तिरुवत्तु राज्य बचार्थ था। बीड़बनना यह एक अनुभव यह बन गया था। जोन देपटी भारत आनेका प्रयाण धर्म तिरुवत्तु होकर ही था। तिरुवत्तु के राजाओंके बीचके सम्बन्धोंके साथ विवाद-महत्त्व भी हुए। नयी नयी विन्तु बहुत कम तिरुवत्तुवासीने उत्तर भारतीय राजनीतिमें भी हस्तक्षेप किया विन्तु तिरुवत्तुवासी अधिक सम्भव जोनके साथ ही रहा। तिरुवत्तुमें बीड़ नामासीका वर्तमान वर्तमान काल तक बसता रहा। नया जाया है कि तिरुवत्तुमें बीनबनके भी कुछ विद्वान् निधे हैं, जो तरता है नयी नयी कोई बीन विन्तु वर्तमान-प्रचारार्थ नहीं था नये हैं, विन्तु उन्हें विशेष उल्लेख नहीं किसी प्रतीत होती।

आध्यात्मिक जीवन प्रवर्धन सम्बन्ध राजकीय राजकीय सम्बन्धोंमें भी। मंत्रीओं और उनके प्रधानों निरु यह जाणकर धर्मिक द्वार था विन्तु बाह्य सम्बन्धोंमें इन द्वारों केवली धर्मिक उल्लेख रहा की। इस द्वारों सम्बन्ध बीड़बन, बालमाल और बीनबनके समुदायोंका ही प्रचार रहा। इसके अन्तर्गत नया राजा बालमालम्बन फर्माते बलिमासी था और इसमें निरु था। बीनके धर्मिक विद्वान् अपने इसकी ब्रह्मबता की की थी। उनके सम्बन्ध उनके बीच में था सम्भव रहा। नयी नयी धर्मिक धर्मिक इस द्वारों अधिकार कर किया। मुत्तमम्बोंकी ब्रह्म विद्वान् के सम्बन्ध १९१८ से १८९९ ई तक बालमालम्बन बाल बलिमासी बलीय बालमालम्बन सम्भव रहा। प्राचीन बालमालम्बन बालमालम्बन केव बालमालम्बन है और इसके निधानी किण्ड। बालमालम्बन यह नयी बीन बलीय बलीय थी।

ब्रह्मज्ञान—प्राचीन बालमालम्बन के बालमालम्बन ब्रह्मबता है यह प्राचीन का बालमालम्बन नामके बलिमासी था। बीच बीच और बीच बलिमासी ब्रह्म बालमालम्बन नामके साथ थे। सम्भव बलिमासी ब्रह्म धर्म बलिमासी, ब्रह्म-ब्रह्म और विद्वान् बलीय ब्रह्म नाम बीच बीच था, मुत्तु राजा (बलि) और मुत्तु नामके भी इनकी बलिमासी थी विद्वान् और बलिमासी बलिमासी

युक्त समतट भी इसीका एक भाग था। पुण्ड्रवर्धन, पुण्ड्रनगर या महास्थान-
गढ़, ताम्रलिप्ति (तामलुक), कोटिवर्ष, वर्धमान (वर्दवान) आदि इसकी
प्राचीन नगरियाँ थीं। जैन अनुश्रुतिके २५^३ आर्य देशों तथा १८ राज्योंमें
वगदेश और उसकी राजधानी ताम्रलिप्तिकी गणना है, किन्तु बौद्ध अनुश्रुति-
के सोलह महाजनपदोंमें इसका उल्लेख नहीं है। वेदोंके आर्य भी वगदेशसे
मर्चया अवस्थित थे। उत्तर वैदिक-कालीन साहित्यमें उसे अनाय-देश
बहा है, ५वीं-६ठी शती ई० पू० के धर्मसूत्रोंमें तो इस म्लेच्छ देशमें जाने-
वाला आर्य महापातकी समझा जाता था। ६^१० भण्डारकरका मत है कि
इस प्राच्य देशके लोग जैना-द्वारा ही सर्वप्रथम सम्प्र वनाये गये थे। अतः
मध्यदेशीय सम्प्रदाय और धर्मका वग देशमें प्रवेश धर्मण सन्कृति और
जैनधर्मके रूपमें ही सर्वप्रथम हुआ। प्रो० राखालदास बनर्जीके अनुसार भी
प्राचीन कालमें गंगाके दक्षिणी भागमें जैनधर्मका काफी प्रचार और प्रसार
था। दक्षिण बिहारके हजारोबाग जिल्लेमें स्थित सम्मेदगिरि पर्वत
जैनियाका सवमहान् सिद्धक्षेत्र है। इस तीर्थसे ही चौथीममें-से योस तीर्थकरा-
ने निर्वाण लाभ किया था। यह पर्वत पारसनाथ नामसे भी प्रसिद्ध है,
तीर्थकर पार्श्व इस स्थानसे मुक्ति लाभ करनेवाले अन्तिम तीर्थकर थे।
उन्होंने इस प्रदेशमें जैनधर्मका विशेष प्रचार किया था। आचाराग सूत्रके
अनुसार वर्द्धमान महावीर भी वज्रभूमि, सुम्हभूमि और राठदेशमें
धर्मप्रचारार्थ गये थे और वर्द्धमान (वर्दवान) नगरकी प्रसिद्धि भी
उहींके नामसे हुई। अन्तिम श्रुतकेवली मद्रवाहू पुण्ड्रवर्धनके निवासी थे।
जनस्यविरोधी गोदासगण शास्त्राके पौण्ड्रवर्धननियोगणका नाम भी इसी
नगरके नामपर रखा गया था। जैन साधुआकी कोटिवर्ष और ताम्रलिप्ति
शान्वाएँ भी वगदेशके तन्नाम नगरोंके नामसे ही प्रसिद्ध हुईं। बौद्धग्रन्थ
बोधिसत्वावदानके अन्तर्गत सुमगधावदानमें वर्णित अनायविण्णककी पुत्री
सुमागधाकी कथा प्रमाणित करती है कि ईसाके जन्मसे बहुत पहले ही, स्वयं
बुद्धके समयमें, पुण्ड्रवर्धन जैनधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र था। एक अन्य बौद्धग्रन्थ,

कलिंग आदि और गृह्यतर भारत

प्रियन्ता राउत कायार्थे वा । बीरबर्महा बहु एक कुमुद सह सन वया
वा । बीर देयके काउत कायेवा ब्रह्मन् मार्गप्रियन्त होवर ही वा । प्रियन्त
के राजाकाके बीरके राजपराके नाद विवद-महान् भी हुर । कनी-
कनी बिन्नु बहुर कम प्रियन्तवालेके कउत बास्टीव राजदेविनी भी
हस्योव रिवा बिन्नु प्रियन्तवा बरिह सम्पन् बीरके बाव ही रह ।
प्रियन्तमे बोद नावाबोवा बर्मराउत कउमान बाल एक बरुवा रहा । बडा
बरुवा है कि निरागमे बीरबर्मके भी कुछ बिहा बिने है हो नरुवा है कनी-
कनी कोई सन बिहान बर्म-उपाचार्य बडा वा बडैने हो, निम्न कनी बिदेव
कहला बडी बिनी उनीह हीनी ।

[illegible]

वर्तमान—आज के जमाने की आन्दोलन विहार-बंगाल काग्रेस है यह आत्मीयता का आग्रह है इसके मागों के अतिरिक्त यह । और बंगाल और बंगाल वर्तमान विहार आन्दोलन के माग है । सम्पूर्ण भारतीय वर्तमान पूर्ण वर्तमान बंगाल-विहार और विहार काग्रेस वर्तमान का बंग देश का, मुमुक्षु राजा (काग्रेस) और मुमुक्षु मागों की दृष्टि अतिरिक्त की विचार और वर्तमान के विचारों

युक्त समतट भी इसीका एक भाग था। पुण्ड्रवर्धन, पुण्ड्रनार या महास्यान-गढ़, ताम्रलिप्ति (तामलुक), कोटिवर्ष, वर्धमान (वर्दवान) आदि इसकी प्राचीन नगरियाँ थीं। जैन अनुश्रुतिके २५३ आर्य देशों तथा १८ राज्योंमें वगदेश और उसकी राजधानी ताम्रलिप्तिकी गणना है, किन्तु बौद्ध अनुश्रुतिके सोलह महाजनपदोंमें इसका उल्लेख नहीं है। वेदोंके आर्य भी वगदेशसे सर्वथा अपग्नित थे। उत्तर वैदिक-कालीन साहित्यमें उसे अनार्य-देश कहा है, ५वीं-६ठी शती ई० पू० के धर्मसूत्रोंमें तो इस म्लेच्छ देशमें जाने-वाला आर्य महापातकी ममझा जाता था। डॉ० भण्डारकरका मत है कि इस प्राच्य देशके लोग जैनों-द्वारा ही सर्वप्रथम सम्य वनाये गये थे। अतः मध्यदेशीय सम्प्रदाय और धर्मका वग देशमें प्रवेश श्रमण संस्कृति और जैनधर्मके रूपमें ही सर्वप्रथम हुआ। प्रो० राखालदास बनर्जीके अनुसार भी प्राचीन कालमें गंगाके दक्षिणी भागमें जैनधर्मका काफ़ी प्रचार और प्रसार था। दक्षिण बिहारके हजारीबाग जिलेमें स्थित सम्मेदशिवर पर्वत जैनियोंका सबमहान् सिद्धक्षेत्र है। इस तीर्थसे ही चौबीसमें-से बीस तीर्थंकरों-ने निर्वाण लाभ किया था। यह पर्वत पारसनाथ नामसे भी प्रसिद्ध है, तीर्थंकर पार्व इस स्थानसे मुक्ति लान करनेवाले अन्तिम तीर्थंकर थे। उन्होंने इस प्रदेशमें जैनधर्मका विशेष प्रचार किया था। आचार्यग सूत्रके अनुसार वर्द्धमान महावीर भी वज्रभूमि, सुम्हभूमि और राठदेशमें धर्मप्रचारार्थ गये थे और वर्द्धमान (वर्दवान) नगरकी प्रसिद्धि भी उन्हींके नामसे हुई। अन्तिम श्रुतकेवली नन्दवाहु पुण्ड्रवर्धनके निवासी थे। जैनस्यविरोधी गोदासगण शास्त्राके पौण्ड्रवर्धनियामणका नाम भी इसी नगरके नामपर रखा गया था। जैन साधुओंकी कोटिवर्ष और ताम्रलिप्ति शाखाएँ भी वगदेशके तन्नाम नगरोंके नामसे ही प्रसिद्ध हुईं। बौद्धग्रन्थ बोधिसत्त्वावदानके अन्तर्गत सुमगधावदानमें वर्णित अनाघपिण्डककी पुत्री सुमागधाकी कथा प्रमाणित करती है कि ईसाके जन्मसे बहुत पहले ही, स्वयं बुद्धके समयमें, पुण्ड्रवर्धन जैनधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र था। एक अथ बौद्धग्रन्थ,

समय पंचस्तूप शाखाके वाराणसी-निवासो आचार्य गुहनन्दोके शिष्य-प्रशिष्य उक्त विहारके अध्यक्ष थे। इस शाखाका प्रसार नदसौर, मथुरा, हस्तिनापुर, चित्रकूट (चित्तौड़), वाटनगर (महाराष्ट्रमें नासिकके निकट), कर्णाटक और तमिल देश पर्यन्त था। सम्भवतया हस्तिनापुरके पंचस्तूपोंसे इसका निकास हुआ था। वगालमें भी पंचयूपो नामक स्थान अपने मूलकी स्मृतिमें इस शाखा-द्वारा निमित स्मारककी याद दिलाता है। ७वीं शताब्दीमें चीनी यात्री ह्वेनसांगने वग देशके समतट या व्याघ्रतटी राज्यमें, पुण्ड्रवर्धन और ताम्रजिप्तिमें तथा अन्य स्थानोंमें अनेक जैन मन्दिर और निर्ग्रन्थ साधु देखे थे। वस्तुतः पुण्ड्रवर्धनसे प्राप्त प्राचीन खण्डित जैनमूर्ति, चटगाँव जिलेके सीताकुण्डके निकट चन्द्रनाथ और सम्भवनाथके प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर, टिपरा जिलेमें कमिल्लाके निकट स्थित मैनामतो और लालमाईकी पहाडियोंमें विद्यमान प्राचीन जैन मन्दिरोंके खण्डहर, बाँकुड़ा जिलेमें वर्दवान और आसनसोलके मध्य प्राचीन जैनस्तूपोंके ऊपर निमित ईंटोंके बने एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर जिसमें शिवके साथ तोयकर पाश्वकी प्राचीन मूर्ति अब भी विद्यमान है, छोटा नागपुरमें डुलमो, देवली, सुइसा, पकवोरा आदि स्थानोंमें और उनके आस-पास भी अनेक प्राचीन जैन मन्दिर, तोयकर प्रतिमाएँ, यक्ष-यक्षिणियोंकी मूर्तियाँ आदि अनेक जैन अवशेष मिले हैं। राखालदास बनर्जी, विमलचरण लाहा, अद्रोस बनर्जी आदि अनेक पुरातत्त्वज्ञों एवं इतिहासज्ञोंका मत है कि वगदेशके विभिन्न भागोंमें बिखरे हुए उपरोक्त जैन कलावशेष जो ईसवी सन्के प्रारम्भसे लेकर १०वीं-११वीं शताब्दी पर्यन्तके हैं प्राचीनकालमें इस देशमें जैनधर्मके व्यापक प्रभाव एवं प्रसारके द्योतक हैं।

६ठी शताब्दी ई० के अन्तमें, सम्भवतया गुप्त वंशमें ही उत्पन्न, समाचार नामका गुप्तोंका एक सामन्त उनकी ओरसे वग देशपर शासन करता था। गुप्त वंशकी अवनतिसे लाम उठाकर उसने अपनी शक्ति

हज़ारी। हमारा पुर या पीप मुसलिम बीकना बख़ाब था। यह सब
 हमने वर्षभरभर बढ़ावाकर ही था किन्तु बीकना ही यह स्वतन्त्र हो
 रहा और इनके करने परमेश्वर शिखार भावनासे हज़ीरा बर्नर कर
 दिया। हमने बढ़ावाकरमिशनकी बहावि भारत की बापनाही ठक
 बावै जिने और बंदोर (बंदर) के बीनोदरबरीहकी बने बर्नर
 दिया। बख़ाब बीकनाकर बंदूर बनुबाकी था और बीनोदरा बरन बनु
 बने बभावी मूरा और बीनोदरकी यह दिया एवं बीनोदर बने-बी
 बनेबावर जिने। इसके बख़ाब बीकना बीकना और माई परम-
 बर्नकी मनुबा की बड़ी बभाब भारत था। बख़ाब हमारा यह
 बरन बनु था। इसके बने बभाब बहुत बभाब किया किन्तु
 बिबेब बख़ाब नहीं निनी। बख़ाब-बीकनाके लकालीन राजकी
 की हमने लकालीके बिबेब बभाब बिब बभाब। १९१ ई के बभाब
 बख़ाबकी मनु बने और बभाबबभाब बने लार ही बने परमेश्वर
 की बभाब ही था। बीकना बर्नका बने बने बने बने बने
 ही ही था था किन्तु यह एक बीकना बिबिने ही बने बभाब था
 बख़ाबने बने की यह बनेका भाव बभाब बभाब किया। मुक्त-
 बाकी भावना बर्नका की बनेबने कुछ बभाब हुआ किन्तु यह बड़ी
 बख़ाब बभाब न था। बख़ाबके बभाबने बीकना की यह बीकना स्थापित
 हुआ। १९०० ई के लकाल बीकना बीकना बभाबने बभाबने बीकना
 बभाब और बीकना बभाब बभाबने बभाबने। बभाब बभाब ई कि
 बभाब बभाब बभाब और बभाब बभाबने बभाब है।

एवी बनेके बुरीबने बभाबने बीकना बभाबने ली। बभाबने ई
 बी बीकना भावना एक बभाबने यह बभाबबभाब बभाब बने बभाबने
 बभाबने की। बभाबने बभाबने बभाबने बभाबने ली और इनके
 भावना बभाब बीकना बीकना बी, बभाबने लकाल ही यह बीकना बीकना
 बभाब प्रकार बभाब-बभाब। बभाब बीकना बभाबने एक बिबेब बभाब।

इसी समय प्रज्ञा नामक एक बौद्ध विद्वान् हुआ जो कपिशाम जन्मा, नालन्दामें पढ़ा, उड़ीसामें बसा और यहाँ योगम्पास सिखाता रहा और फिर चान चला गया। वत्सराज प्रतिहारने गोपालको युद्धमें पराजित किया था। दूसरा राजा धर्मपाल था। उसने ६४ वर्ष राज्य किया। मगध उसके साम्राज्यका अंग था और उड़ीसाके भीमकर राजे उसके अधीन थे। राष्ट्रकूट ध्रुव और गोविन्द तृतीय तथा प्रतिहार वत्सराज, नागायलोक और भाज उसके प्रतिद्वन्द्वी थे। धर्मपालने कन्नौज विजय करके एक बार इन्द्रायुधको गद्दीसे उतारा और चक्रायुधको उसके स्थानमें बिठाया। इसी राजाने विक्रमशील विद्यापीठकी स्थापना की थी तथा सोमपुर (पहाड़पुर) के जैन अधिष्ठानको नष्ट करके उसके स्थानमें बौद्ध विहार और मन्दिर बनवाये थे। इसने अपने सिक्कोपर भी धर्मचक्र आदि बौद्ध चिह्न अंकित कराये। ८२४ ई० में उसकी मृत्यु हुई और उसका पुत्र देवपाल (८२४-८७२ ई०) राजा हुआ। यह पालवंशका सर्वाधिक शक्तिशाली नरेश था और कट्टर बौद्ध था। मुद्गगिरि (मुगेर) को उसने अपनी राजधानी बनाया। बौद्धेतर जैनादि धर्मोंके लगभग चालीस बड़े-बड़े केन्द्रोंको उसने नष्ट किया कहा जाता है। उसने अनेक बौद्धमन्दिर और विहार बनवाये। धीमन और बोलपाल नामके दित्पी उसके आश्रयभाजन थे। उसने आसाम और उड़ीसाकी भी विजय की और श्रीविजय एवं स्वर्णद्वीपके सुदूरपूर्वी राज्योसे सम्बन्ध बनाये। उसका नालन्दा साम्रशासन प्रसिद्ध है। इस वंशका आठवाँ राजा राज्यपाल था जिसने एक राष्ट्रकूट राज-कन्यासे विवाह किया था। १०वीं शतीके प्रारम्भसे पालवंश अवनत होने लगा था। ९५० ई० के पश्चात् काम्बोजोंने बंगालपर अधिकार कर लिया जिन्हें महीपाल (९७८-१०३० ई०) ने निकाल बाहर किया। किन्तु राजेन्द्र-चालने उसपर आक्रमण करके उसे पराजित किया। यह पाल-नरेश लोक-कथाओं और लोक गीतोंमें बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसका उत्तराधिकारी नयपाल था। इसने बौद्ध भिक्षु धर्मपालको और फिर अत्तिसको धर्म-प्रचा-

पार्श्व स्थित यह मेधा का चिह्नोक्ति बहुत बालक विराट देहाको चितने शीघ्रसे
बुझ गया। तदुपलक्ष्य विराहात्म्य राजराज कुमारराज इन्द्रायक
काहि झगड़ उठा हुए। मैं सब स्थित बालक से। इसी शरीरके अन्तर्
पादार्थक्य अन्त हो गया। पादोने शीघ्र-कथाको बहुत शीघ्रात्तर स्थि
भीर उदय अन्त तदुपलक्ष्य मैं भी नहीं।

[illegible]

सूक्ष्म मातृ—निवाकरके अत्यन्त बाह्यीय एप्युकी बीजक

देशको नैसर्गिक एवं प्राकृतिक सीमाओंसे बहुत अधिक सकुचित हो गयी हैं। अंगरेजों शासन-कालमें भारतने अपनी वैज्ञानिक सीमाएँ प्राप्त कर ली थी किन्तु उस समय भी अफ़ग़ानिस्तान और कुन्दहार भारतवर्षमें सम्मिलित नहीं थे, जब कि मध्यकालमें मुग़लोंके शासन-कालमें वे भारतीय साम्राज्यके ही अंग थे। उसके भी बहुत पूर्व यदि मौर्य युगसे लेकर गुप्तकाल पर्यन्तके भारतीय इतिहासपर दृष्टिपात किया जाये तो उस समय भी कपिशा (अफ़ग़ानिस्तान) और गांधार (कुन्दहार तथा ईरानका पूर्वभाग) भारतके ही अंग थे। इतना ही नहीं, प्राचीन कालमें बलूचिस्तान, सीमान्तदेश, कश्मीर, तिब्बत, नेपाल, भूटान, आसाम, अराकान तो भारत-वर्षके अंग समझे ही जाते थे, वर्मा (ब्रह्मदेश या सुवर्णभूमि) और लका (सिंहल) भी भारतके ही अंग थे। इनके अतिरिक्त मध्य एशियाके विभिन्न भागोंमें यथा काशगर, खोतान, गारकन्द आदिमें भारतीय राज्य एवं उपनिवेश स्थापित हुए थे। उसी प्रकार सुदूर पूर्वमें वर्मा, मलाया, स्याम, हिन्द-चीन, जावा, बाली, सोर्निओ आदि प्रदेशों एवं द्वीपोंमें भारतीय राज्य एवं उपनिवेश स्थापित थे। भारतीयों-द्वारा अनेक प्रदेशोंके आदिम निवासियों-का पूर्णतया भारतीयकरण हो गया था। भारतीयराज्यों और उपनिवेशोंके अतिरिक्त चीन, ईरान, अरब, मिस्र, यूनान, रोम आदि प्राचीन सम्य देशोंमें भारतीय धर्म और सस्कृतिका प्रकाश अभूतपूर्व रूपमें फैला था। समस्त ससारके लिए भारतवर्ष धर्म, सस्कृति, विद्या और ज्ञानका प्रकाश स्तम्भ था। दूर-दूर देशोंसे सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें विद्यार्थी भारतीय विश्वविद्यालयोंमें विद्या-प्राप्तिके लिए आते थे। अनेक विदेशी तीर्थयात्राके मिस आते थे और स्वयं भारतसे अनगिनत वणिक् व्यापारी, साहसी वीर विद्वान् और धर्मोपदेशक दूर-दूर विदेशोंको जल और थलके मार्गोंसे जाते थे। इस प्रकार उन्होंने भारतवर्षके व्यापार, व्यवसाय, धन समृद्धि, शक्ति और प्रभावको बढ़ाकर बृहत्तर भारतका निर्माण किया था।

बृहत्तर भारतका यह निर्माण प्रागैतिहासिक कालमें ही हो गया था।

असत्य मिथ्या एव धर्मः

मागान अन्तर्गत बौद्ध प्रसार हा सर्वाधिक लम्बित होना है किन्तु इसका कारण यही है कि यद्यपि बृहत्तर भारतक प्रारम्भिक निर्माणमें मध्य एशियाको अपवा जैन और शैव वैष्णवादि कुछ भाग ही थे, किन्तु पाल्नाम्बरम धार्मिक वधनोंका सङ्कुचित और अनुदार बना देनेके कारण उनका प्रयास इस दिशामें स्थितिल हो गया। गुप्तकालके उपरान्त जिन छह-सात सौ वर्षोंमें भारतीय शैव, वैष्णव और जैनधर्मोंम धर्मशास्त्रा, पुराणों आदिक कारण उपरोक्त धार्मिक प्रतिस्पर्धोसे समाजको जकड़ा जा रहा था उन्ही कालमें यही बौद्धधर्म द्रुतवेगम पतनशील था और बौद्ध लोग स्वदेशको छोड़ छाड़कर बृहत्तर भारतके उक्त प्रदेशोंमें जा-जाकर बस रहे थे। मध्य-कालके भारतीयोंन तो अपने देशक इन बाह्य अगोका सर्वथा भुला दिया। अतः बौद्धधर्मको हा वही सव्य प्रधानता हा गया तथा चीन, जापान आदि बौद्ध देशोंसे ही उनका सम्भव रह गया।

मध्य एशियाकी फ़रात नदीकी घाटीक उत्तरी भागमें एव भारतीय उपनिवेश २०वीं शती ई०पू० में ही विद्यमान था। लगभग ५०० वर्ष बाद पोप ग्रेगरीने भयानक आक्रमण करके इस उपनिवेशका ध्वंस किया था। एक अनुश्रुतिके अनुसार खोतानमें भारतीय उपनिवेश स्थापित करने का श्रेय अशोकके पुत्र और सम्प्रतिके पिता राजकुमार कुशात्का है। सम्भवतया मध्य एशियामें यही सर्वप्रथम भारतीय उपनिवेश था। ४थी शती ई० के प्राग्भूत तक काशगरसे लेकर चीनकी सीमा पर्यन्त समस्त पूर्वी तुर्किस्तानका पूर्णतया भारतीयकरण हो चुका था। उसके दक्षिणी भागमें शैलदेश (काशगर), चोकटुक (याक्कन्द), खोतन् (खोतान) और चरन्द (गानशान) नामके भारतीय राज्य थे। उत्तरी भागमें बरुक, कुचि, अग्नि-देश और काओचग नामके राज्य थे। इन सबमें उत्तरका कुचि और दक्षिणका खोतन् ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एव भारतीय मस्कृतिके सर्वमहान् प्रसारकेन्द्र थे। दक्षिणी राज्यामें भारतीयोंकी संख्या अधिक थी। इन उपनिवेशोंको प्रारम्भ करनेमें निम्न साधुओं और बौद्ध मिशुत्राका ही फलिंग आदि और बृहत्तर भारत

मध्यकाल तक रही प्रतीत होती हैं ।

सिंहलद्वीप और रत्नद्वीप—सिंहलद्वीप या लकामें विद्याधर-
वशकी ऋक्ष जाति का निवास था । भरत चक्रवर्तीने इस द्वीपको विजय
करके वहाँ जैनधर्म और श्रमण संस्कृतिका प्रवेश किया बताया जाता
है । एक अनुश्रुतिके अनुसार भारतके पूर्वी भागसे वरराज नामक
असुर सरदार ऋक्ष, यक्ष, नाग आदि विद्याधर जातियोंके व्यक्तियोंका
लेकर लका गया था और उसने उस द्वीपको बसाया था । रामायण कालमें
ऋक्षवशी रावण लकाका महापराक्रमी नरेश था । जैन अनुश्रुतिके अनु-
सार रावण और उसका वश जैनधर्मी था । महाभारत कालमें श्रीकृष्ण
सिंहल जाकर वहाँके राजा श्लक्ष्णरोमकी कन्या लक्ष्मणाको हर लाये
थे और उन्होंने उसे अपनी पत्नी बनाया था । पार्श्वनाथके तीर्थमें
करकण्ठुनरेशने भी सिंहलकी यात्रा की थी । महावीरके समयमें
उड़ीसाके सिंहपुरसे विजय नामक एक राजकुमार लका पहुँचा था और
वहाँ उसने एक नये राजवशकी स्थापना की थी । बौद्धग्रन्थ महावंशसे
पता चलता है कि ४थी शती ई० पू० में इसी वंशमें उत्पन्न सिंहलनरेश
पाण्डुकामयने अपनी राजधानी अनुराधापुरमें एक विशाल जैन विहार
और भव्य जैन मन्दिर बनवाया था । सम्राट् अशोकके समयमें लगभग
२३६ ई० पू० से लकामें बौद्धधर्मका प्रचार प्रारम्भ हुआ और प्रथम
शती ई० पू० से लका बौद्धधर्मका एक प्रमुख गढ़ हो गयी । इसका श्रेय
लकाके राजा वट्टगामिनीको है जिसने सन् ३८ ई० पू० में उपरोक्त
जैन मन्दिरों एवं विहारोंको, जो उसके पूर्ववर्ती २१ राजाओंके राज्यकालमें
अक्षुण्ण बने रहे थे, नष्ट करवाकर उनके स्थानमें बौद्ध मन्दिर और
विहार बनवाये । उसीके समयमें सिंहलमें बौद्ध त्रिपिटकके सकलन एवं
लिपिवद्ध करनेका सर्वप्रथम प्रयत्न किया गया । सिंहल द्वीपका भारतीय-
करण इस प्रकार अति प्राचीन कालमें हो चुका था और बादमें भी
निरन्तर भारतवासी वहाँ जा-जाकर बसते रहे । जैन पुराणों एवं कथा-

एन्कीमें बिहूक डीपीके उनके बिहूकवरी एन्कीपीके तथा इन डीपीमें तीन स्वागारियोके व्यागारके बिहू जाने-जानेके बिहूके कठिन्न पत्राओं एवं भारतीय पत्राओंके परस्पर सम्बन्धों बाहरके अनेक अनेक बरे बरे हैं । ७वी-८वी कठी ई के भी तीन बरे व वैमिबोन्न बनिन्न बिहूकडीपमें या इन बरके तरह निर्देश मिलते हैं । इसका ही गद्दी बम्बकाके शास्त्रव भी आचार्य क्व नीति-सम्बन्धी एक बिहूकेबाहे पत्रा बम्ब है कि बिहूके बलाकीय पत्राके वह वैनाचार्ये सम्बन्ध बाध किया ना । तथापि अन्तर्गत बम्बकाका बोद्धवनीयुक्तरी ही एका बीर अन्तरेकोके अनेके पूर्व एक उक्तरी स्वतन्त्र पम्बकता बनी एकी । बाह्यके तमिक एन्कीके बाध भी बिहूकएन्कीके सम्बन्ध बाधकर बरे एके ।

बर्मा—बर्मा का बहुरैषका जो प्राचीन कालमें मुगलभूमि बहूकता ना, बाह्यीकरण भी अति प्राचीन कालव हो चुका ना । बीम्बेय (रोम)इसका प्रथम बर ना । क्व अनेक बरकेके बाद बाह्यीय वे । इन ऐकरी ईकरी क्वके शास्त्रके बम्बव बोद्धवनीयुक्तरी अचार हुवा बीर वर्तमान वर्कत बनी इकका अन्तर्गत बरे बम्ब एकी है । किन्तु बर्मा क्व बाह्यीय स्वाध-रिजोका भी आमानवव बना एका बीर अन्तरी-नीटी तीन बनिन्ना भी बरी एकी ऐका १८वी कठी ई के एक बाध-विपरवने विधि होता है । इसी प्रकार ऐक-ईककापि भी बने एके । १९वी कठीमें अन्तरेकोके बम्बि एकाके बाधकित करके इन ऐकको बाह्यमें बिबा किया ना ।

मुगुर पूर्वके बम्ब (दीवान्तर, स्वाध (शास्त्री) द्विज बीनके अम्बोकिना (अम्बुज) बम्ब (अन्तर्गत) तथा अन्तरेय (मुगुरा) केहरि एवं बिहूकरी (बम्बीय ना बम्बा) मुगुरडीय, बाह्यकेडीय, इकडीय, कर्तुडीय बाह्य अन्तरी एवं डीपीके बाध बाह्यकी बाह्यकी बाह्य अन्तर्गत प्राचीन है । अम्बवतना बहूबाह्योत्तर बाह्यके बिहूकवरीकी बाध, बाध बम्ब बाह्य बाह्यीके अन्तर्गत बाह्यमें वैमिक बाह्यके बाह्यके बाह्य ऐकरी बोद्ध-बोद्धकर एकी बाधकर बहने क्व वे । किन्तु बम्बे बम्बीय

भारतवासियोंसे भी उनका सम्पर्क बना रहा। कालान्तरमें व्यापारके उद्देश्यसे भारतीय वणिक् जिनमें-से अनेक जैन भी थे इन देशों एवं द्वीपोंके साथ व्यापार करते थे और अपने अलपोतोंमें वहाँ जाते-आते थे। इस बातके अनेक उल्लेख जैन-साहित्यमें पाये जाते हैं। कुछ भारतीय साहसी वीर अपनी भाग्य परीक्षाके लिए भी वहाँ जा पहुँचते थे, इनमें राजवंशों या सामन्तवर्गोंके क्षत्रिय ही अधिक होते थे। कभी-कभी कोई ब्राह्मण-पण्डित या बौद्धमिक्षु अथवा जैन ग्रन्थचारी, श्रावक आदि भी वहाँ जा पहुँचते थे और अपने-अपने धर्म और सस्कृतिका वहाँ जाने-अनजाने प्रसार करते थे। सन् ईसवीके प्रारम्भके उपरान्त ही हम इन देशों एवं द्वीपोंमें नये-नये सुगमस्थित राज्य स्थापित होते पाते हैं और उन राजवंशोंके नरेशोंने जो अनुपम कलापूर्ण भवन, देवमन्दिर, नगर आदि बनाये, अपनी स्वयंकी तथा देवी देवताओंकी मूर्तियाँ निर्माण करायीं, शिलालेख अंकित करायें—उन सबके प्राप्त अवशेषोंसे और इन प्रदेशोंमें प्रचलित अनुश्रुतियोंसे बृहत्तर भारतके इन महत्त्वपूर्ण अंगोंके इतिहासका बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस बातमें तनिक भी मन्देह नहीं है कि इन प्रदेशोंका पूर्णतया भारतीय-करण हो गया था। व्यक्तियोंके नाम व उपाधियाँ, नगरों एवं पर्वों आदि-के नाम, वेष-भूषा, आचार-विचार, भाषा, लिपि, धर्म और सस्कार सब भारतीय थे। भारतीय विद्याओं और साहित्यका वहाँ पठन पाठन होता था। भारतीय पौराणिक अनुश्रुतियाँ ही उन देशोंकी पौराणिक अनुश्रुतियाँ थीं। वहाँको कला भारतीय कलासे ही प्रभावित थी। अस्तु, भारतके साथ इन देशोंका स्पष्ट राजनैतिक सम्बन्ध कोई न रहते हुए भी उनका उसके साथ सांस्कृतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध अबाध बना रहा। इन देशोंमें जो धर्म और सस्कृति प्रचलित हुई वऽ शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध चारोंका ही एक अद्भुत मिश्रण था। कालान्तरमें वहाँ सर्वत्र बौद्ध-धर्मकी प्रधानता हो गयी और अन्वेषकोंने इन स्थानोंके पुरातत्त्व एवं इतिहासका जो भी अध्ययन किया है वह बौद्ध अथवा हिन्दू दृष्टियोंसे ही

अध्याय ७

दक्षिण भारत [१]

भारतवर्ष प्राचीन कालसे ही उत्तरापथ और दक्षिणापथ नामक दो विभागोंमें विभक्त रहता आया है। उत्तरमें विन्ध्यपर्वतमालाकी सतपुड़ा, महादेश एव मेकल नामक पहाड़ियों तथा नर्मदा और महानदी नामक नदियोंके द्वारा उत्तरापथसे विभक्त एव दक्षिणमें तीन ओर भारतीय महासागरसे वेष्टित प्रायद्वीपका पठार दक्षिणापथ कहलाता है। प्राग-ऐतिहासिक कालमें ही मध्यकाल पर्यन्त भान्तका यह विशाल भू-भाग भौगोलिक ही नहीं, राजनैतिक एव कुछ अंशोंमें सांस्कृतिक दृष्टिसे भी उत्तर भारतसे प्रायः पृथक् रहता रहा। विदर्भ, महाराष्ट्र, कोंकण, आंध्र, कर्णाटक, तमिल, तेलुगु और मलयालम दक्षिणापथके प्रमुख भाग रहे हैं।

वैदिक आर्योंकी दृष्टिमें यह समस्त भू-भाग ईमवी सन्के प्रारम्भके भी बाद तक एक अनार्य अवैदिक देश रहा है जहाँ असुर एवं राक्षस आदिकोंका निवास था। किन्तु जैन अनुश्रुतिके अनुसार मानवी सभ्यताके प्रारम्भसे ही इस प्रदेशमें सभ्य विद्याधरोंकी नाग, ऋक्ष, धानर, किन्नर आदि जातियोंका निवास रहा है जो कि धर्मणः सस्कृतिकी उपासक थे। ब्राह्मणाय अनुश्रुतिके अनुसार अगस्त्य सप्तप्रथम आर्य ऋषि थे जो विन्ध्याचलको पार करके दक्षिण भारतमें पहुँचे थे, परशुराम भी वहाँ गये कहे जाते हैं। अपने वनवास-कालमें रामचन्द्र उधर गये थे और वानरोंकी सहायतासे लंकाके राक्षसराज रावणका अन्त करनेमें सफल हुए थे। इससे प्रतीत होता है कि रामायण-कालके लगभग वैदिक आर्योंके

दक्षिण भारत [१]

तोष्यंकर हरिष्टनेमिने दक्षिणापथमें स्वधर्मका विशेष प्रचार किया था। उनके भक्त हस्तिनापुरके कुरुवशी पचपाण्डव अन्ततः राज्यका परित्याग करके दक्षिणकी ओर चले गये थे और वहाँ जैन मुनियोंके रूपमें उन्होंने दुर्द्धर तपस्या की थी। उसी समयसे सुदूर दक्षिणके पाण्ड्य देश, पचपाण्डवमलय, मदुरा आदि स्थान प्रसिद्ध हुए। पार्श्वनाथके तोष्यमें प्रसिद्ध जिनभक्त करकण्डु दक्षिणापथके ही एक प्रमुख नरेश थे। तिरापुरकी गुफाओंमें प्राप्त पुरातात्विक अवशेषोंसे करकण्डु चरित्रकी बयाका समर्थन होता है जिनके कारण करकण्डुको एक ऐतिहासिक व्यक्ति माना जाने लगा है। महावीरने भी दक्षिण देशमें धर्म प्रचारार्थ विहार किया था और दक्षिणापथके हेमांगद देशका जीवधर नरेश उनका भक्त हुआ था। इसी प्रकार यशोधर, नागकुमार आदि भी प्रसिद्ध जैनधर्म भक्त दक्षिणी राजपुरुष थे। इन सत्पुरुषोंकी चरित्रगाथाओंका तमिल, कन्नड, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओंमें दक्षिणापथमें प्राचीन कालसे ही प्रचार रहता आया है।

महावीरकी दिव्य परम्परामें उनके प्रधान दिव्य गौतम गणधरके आठवें पट्टधर, अन्तिम श्रुतकेवल भद्रबाहु प्रथम थे। अपने समयमें वही जैनसभके अधिपति थे। उत्तरापथमें द्वादशवर्षीय भीषण दुर्मिल पहनेकी बात उन्होंने अपने निमित्तज्ञानसे दुर्मिलके पूव हो जान ली थी। अतः अपने बारह हजार शिष्य साथुओंके साथ उज्जैनी एव गिरिनगर होते हुए उन्होंने ई० पू० ३६६ में दक्षिण देशको विहार किया और कर्णाटक देशके कटवप्र नामक पर्वतपर म० स० १६२ (ई० पू० ३६५) में उन्होंने शरीर त्याग किया था। इसके लगभग ५० वर्ष पूर्व ही मगध-नरेश नन्दिवर्धनने दक्षिणदेशके इस भाग (नागरखण्ड) को विजय करके मगध साम्राज्यमें मिला लिया था। भद्रबाहुके इतने बड़े सभको लेकर वहाँ जानेसे यह बात स्वतः प्रमाणित है कि उक्त प्रदेशमें जैनधर्मकी प्रवृत्ति और जैनोंका निवास उसके पूर्वसे ही था। यदि ऐसा न होता तो इतने जैनमुनि एक साथ उस ओर

[illegible]

आम-पु. आनन्द' महावीर-राय कर्षे'द्वय द्वारायों अनुके पुर्ष
 आनी है। उनके समय तक गान्धर्व अथ और औरद पुर्षोंका सम्पूर्ण ज्ञान
 अज्ञान या किन्तु उनके पश्चात् कल ज्ञानमें प्राप्त होने लगा। किन्तु
 पालवी लिपिमें विम्वर आधु आधुओंके संकलन और माध्विज मुद्रणी
 आधुम्यका यही लक्षण है और इसके निम्न आधुम्य कायान्वय यीशु
 आधुम्य है अथे अपने निम्न अर्थ और परके लिए आधुम्य कायान्वय है
 पुष्प-विष्णु-पञ्चमार्थी यीशु आधुम्य है अथे अपने निम्न अर्थ और परके लिए आधुम्य कायान्वय है
 आधुम्य कायान्वय आधुम्यार्थ कायान्वयार्थ पुष्पकायार्थ अथार्थ
 आधुम्यार्थ-राय नी। किन्तु यह आधुम्यार्थ नी कायान्वयार्थ होनेका ज्ञान
 न तक था। महापुष्प विष्णुकायार्थ आधुम्यार्थ १९५४ ई. पू.
 १९५-१८४ ई. पू. के बीच हुए। उनके समयमें आधुम्यार्थ के १४ पुष्पोंमें-
 पुष्पोंका ज्ञान ही पुष्प था। और आधुम्यार्थ अथार्थ ही ज्ञान था। अथार्थ
 ५ आधुम्यार्थ १८४-५१ ई. पू. में हुए, उनके समयमें यही पुष्पोंका ज्ञान

एकदेश रह गया। भद्रबाहुको परम्पराके ये मुनि निम्न-य दिगम्बर थे और अपने मणको मूलमंत्र कहते थे। महानन्दित, चन्द्रगुप्त मौर्य, विन्दुसार और अशोकने साम्राज्यमें दक्षिण भारतका बहुत-सा भाग सम्मिलित था। इन नरेशोंने राजनैतिक या अथवा कारणोंसे दक्षिणकी यात्राएँ भी की प्रतीत होता है। चन्द्रगुप्तके विषयमें सा यह अनुश्रुति है की कि उसने अपने आम्नायगुरु भद्रबाहुके समाधि-स्थान—ध्रुवणवेलगालमें जाकर तपस्या की थी और आचार्यके रूपमें जैनसंघका नेतृत्व भी किया था। अशोकके शिला-लेख भी कर्णटिक दशरथ मस्की आदि स्थानोंमें मिले हैं। अशोकक समयमें ही कुछ बौद्ध प्रचारक दक्षिण देशोंमें सर्व प्रथम पहुँचे और तबसे वहाँ बौद्धधर्मका भी धीरे-धीरे प्रचार होने लगा। इसी समयके लगभग दक्षिणमें दौवधर्मका भा उदय हुआ प्रतीत होता है। सम्राट् खारवेलका दक्षिणक अनेक राज्यामें राजनैतिक सम्मिश्रण था। उसने दक्षिणापथका भी द्विविजय की थी और मूर्षिक, राष्ट्रिक, भोजक आदि राज्योंकी अपने अधीन किया था। पैठनके सातवाहन शातकर्णिकों को उसने हराया था और पाण्ड्य देशका राजा उसका मित्र था। खारवेलके समयमें ही दक्षिण भारतका आधुनिक राजनैतिक इतिहास वस्तुतः प्रारम्भ होता है और उसी समयसे उस देशका साहित्यिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास भी। इस इतिहासके प्रारम्भमें हम यही पाते हैं कि सम्पूर्ण दक्षिण भारतकी प्रधान सृष्टि श्रमण संस्कृति थी। तमिल भाषाका सर्व-प्राचीन साहित्य सगम साहित्य है, जिसके प्राथमिक सृजक अधिकतर जैन विद्वान् थे। उसीके साथ साथ, प्रथम शती ई० पू० से ही, मथुराके सरस्वती आन्दोलनसे प्रभावित होकर दक्षिणके ही जैनधर्मियोंने प्राकृत भाषामें भी आगमिक, आध्यात्मिक, धार्मिक एवं नैतिक साहित्यका सृजन करना प्रारम्भ कर दिया था। सुदूर दक्षिणके विभिन्न भागोंमें वित्तन-वासल (सिद्धोंका स्थान) आदि स्थानोंमें २री-३री शती ई० पू० के ब्राह्मी लेखोंसे युक्त प्राचीन जैन गुफाएँ जैन धर्मके उपरोक्त प्रकार एवं

प्राचीन ज्ञात लिखित कृतियोंमें-से है । तमिल भाषाके सगम साहित्यके भी ये प्राथमिक प्रेरकोमें-से थे । तमिल देशमें ये सम्भवतया एलाचार्यके नामसे प्रसिद्ध थे और तिरुवल्लुवर-द्वारा सकलित तमिल भाषाके विश्वविख्यात नैतिक ग्रन्थ कुरल काव्यके मूल प्रणेता थे । ये कर्णाटक देशके कोण्डकुण्ड नामक स्थानके मूल निवासी थे । गुण्टकल रेलवे स्टेशनसे ४-५ मीलकी दूरीपर स्थित इस नामका गाँव अभीतक विद्यमान है और उसके निकटकी पहाड़ियोंपर बनी प्राचीन जैन-गुफाओंमें इन्होंने तपस्या की थी, ऐसा अनुमान किया जाता है । नन्दी पर्वतकी गुफाओंमें इन आचार्यका निवास रहा प्रतीत होता है । इन आचार्यका मुनि-जीवन सन् ८ ई० पू० से ४४ ई० पर्यन्त ५२ वर्ष रहा । दिगम्बर आम्नायमें कुन्दकुन्दका नाम भगवान् महावीर और गौतम गणधरके साथ-साथ लिया जाता है । रामकृष्ण गोविन्द भण्डारकर, पीटर्सन आदि अनेक प्राच्यविदोंके मतसे ये आचार्य अत्यन्त प्राचीन एवं सर्व महान् जैनाचार्योंमें प्रमुख हैं । अपनी साहित्यिक कृतियों-द्वारा इन्होंने सरस्वती आन्दोलनको सफल किया । इन्हींके समकालीन आरातीय यति शिचार्यने 'भगवतो-आराधना' नामक महान् ग्रन्थकी रचना की, विमलसूरिने सन् ३ ई० में प्राकृत पट्टमचरित (जैन रामायण) की रचना की, सन् २५ ई० के लगभग आचार्य गुणधरने कसायपाहुड नामक आगम ग्रन्थका संहार, सकलन एवं लिपि-बद्धीकरण किया, इसी समय (४०-७५ ई०) में गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें आचार्य धरसेन निवास करते थे जिन्हें महाकर्मप्रकृतिपाहुड नामक आगमका पूर्ण ज्ञान था । इस समय मूलसधके विधिवत् अधिपति एवं पट्टधर आचार्य अर्हद्वलि अपरनाम गुप्ति-गुप्त (३८-६६ ई०) थे और सहारावशी महाराज नहपान उज्जैन एवं सुराष्ट्रका अधिपति था तथा गौतमीपुत्र शातकर्णी पैठनका सातवाहन नरेश था । ६५ ई० के लगभग युद्धमें गौतमीपुत्र शातकर्णीसे पराजित होकर नहपान जैन मुनि हो गये थे और भूतबलि नामसे प्रसिद्ध हुए । सन् ६६ ई० के लगभग सघनायक अर्हद्वलिने वेण्या नदीके तटपर

विषय मद्रिपानवरी (वार्त्तान कीमदार पामरका मद्रिपानव ?) में
 एक विद्याय मुनि-गामेकन किया और मुनिपानके लिए मुनिपानकी मद्रि-
 देव देव निर वाज मद्रि कल्पेपाने विवाजिन कर दिया । इसी मद्रिपान-
 के आचार्य वरनवके आचमनपार आचार्य पुनरान और मुनिपानकी कल्पे
 पान विरिन्कर जेमा मद्र और कल्पे देव विपानपानकी जो आचमन पान
 कल्पे वाजान् वा वरान दिया और कल्पे विरिन्कर कल्पेवा आचमन दिया ।
 इस प्रकार कल्पन ५ ई में उक्त दोनो मुनिपान-पार वरनपानपान
 विपानपानके कल्पे मद्राकीर-पार कल्पेविप आचमनके देव मद्रपानपान कल्पे
 भी उक्त देव कल्पन हो गया । ७१ ई में आचार्य वरनपाने लय
 कीमिपानपान नामक कल्पपानपाने रचना की थी । मुनिपानके विषय कल्प-
 पानपाने (४०—५० ई) कल्पन आचार्य मुनि पानकी लयपानपानपानपान
 नामक पान् कल्पे मुनिपान कल्पे रचना की । विपान देवपान मुनिपानके
 मुनिपानकी देव पानपानपान विपाने कल्पे कल्पे कल्पे और मुनिपानके
 विपान कल्पे कल्पेके विपान मुनिपानकी मुनि कल्पे और कल्पे कल्पे
 कल्पे कल्पे कल्पेके लिए की कल्पेपानपाने विपान कर दिया । कल्प ७१—८१
 ई में मुनिपानकी विपान-पानपानके नामकी कल्पेपाने की कल्पे कल्पे कल्पे
 कल्पेपाने के लिए के कल्पेपान कल्पेपानका कल्पे कल्पे कल्पे कल्पेपानकी मुनिपान-
 के कल्पे कर किया और देव कल्पे की कल्पेपान, कल्पेपान कल्पेपान का
 विपान कल्पेपान नाम दिया । ७८ ई में ही विपान पारपाने कल्पेपान
 कल्पेपाने कल्पेपान की कल्पे की और कल्पेपान कल्पेपाने कल्पेपाने विपान
 कल्पे कल्पेपान कल्पेपान कर दिया का । इसी कल्पेके कल्पेपान कल्पेपान
 कल्पेपान के लिए कल्पेपान कल्पेपान का कल्पेपान कल्पेपान कल्पेपान
 कल्पेपान । ९१ ई में कल्पेपान नामक कल्पेपाने की कि कल्पेपान
 आचार्य विपानकी विपान-पानपानके के कल्पेपान कल्पेपान कल्पेपान की ।
 विपान कल्पे कल्पे विपान कल्पेपान कल्पेपान विपान कल्पेके लिए
 कल्पेपानके कल्पे के और कल्पेपानके कल्पे के । कल्पेपान कल्पेपान

उनके अनुयायियोंने नया सम्प्रदाय स्थापित कर लिया । सन् १०० ई० के लगभग आचार्य कुन्दकोर्त्तिने सकलित आगमापर सर्व-प्रथम टीका लिखी । सम्भवतया इनके विद्यार्गुरु स्वयं आचार्य कुन्दकुन्द थे किन्तु, दीक्षागुरु माघ-नन्दिके पट्टवर जिनचन्द्र थे । इन कुन्दकोर्त्तिका ही अपरनाम पद्मनन्दि रखा प्रतीत होता है और ये ही नदिसाधकी पट्टात्रलिमें जिनचन्द्रक पदचात् उल्लिखित हुए हैं । उपरोक्त विवरण तथा उसमें उल्लिखित जैनगुरुओंके इतिहामसे यह स्पष्ट है कि ई० सन् के आगे-पीछेकी दो-तीन शताब्दियोंमें कर्लिंगसे गुजरात-सुराष्ट्र पयन्त और मध्य भारतसे लंका पयन्त सर्वथ जैनधर्म और जैनगुरुओंका प्रसार था । गिरिनगर, अकुलेश्वर (भडौच), महिमानगरी, वेण्पातट, वनवास देश, द्रविड देश, कर्णाटक आदि विभिन्न भौगोलिक नाम उस सम्बन्धमें बार-बार आते हैं ।

इन शताब्दियोंमें दक्षिणापथम सवमहान् शक्ति आन्ध्र सातवाहनोकी थी, पश्चिमी भागमें चण्डनवंशी शक क्षत्रपाका अम्बुदय था और सुदूर दक्षिणमें चोल, चेर, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरल आदि छोटे छोटे आदिम राज्य थे । तमिल-भाषाका प्रथम सगम (सघ) इसी कालमें हुआ और उसके प्रेरक द्रविडदेशके कुन्दकुन्द आदि जैनगुरु ही रहे प्रतीत होते हैं । ये तमिलराज्य समृद्ध और शान्तिपूर्ण थे, रोम आदि सुदूर देशोंके साथ भी उनका समुद्री व्यापार बढ़ा चढ़ा था । प्रथम शती ई० के उत्तरार्धमें एक पाण्ड्य नरेशने रोमन सम्राट् ऑगस्टसके दरबारमें राजदूत भेजा था । उसी कालमें चोल-राज्यमें पाण्ड्यचेरीके निकट एक रोमन व्यापारी कोठी भी स्थापित हुई थी । तमिल देशके राज्यवशोंमें नाग प्रभाव अधिक रहा प्रतीत होता है । दूसरी शतीमें सातवाहनोकी शक्ति का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया और दक्षिणापथके दक्षिणार्धमें सातवाहनोके प्रतिनिधि कतिपय नागमहारथी शासक थे, एव कुछ स्वतन्त्र नाग-सत्ताएँ थी । इन नागराज्योंने मिलकर एक फणिमण्डल (नागमण्डल)की स्थापना की थी । दक्षिणी नागराज्योंका यह शक्तिशाली संघ था । पेरिप्लसके समय (८० ई०) तक पूर्वोत्तरका नागराज्य अविभक्त

राजन् मयूरवर्मन हुआ। कदम्बोंकी अनुश्रुतिके अनुसार वे हारीतकी सन्तान मानव्य गोत्री ब्राह्मण थे। सम्भवतया नाग-ब्राह्मण मिश्रणसे उत्पन्न वे ब्रह्मशत्रिय थे। मयूरवर्मनके समयसे ही कदम्ब वंशका उत्कर्ष हुआ।

इस कालमें जैनसंघमें स्वामी समन्तभद्र (१२०-१८५ ई०) महान् वादी, वाग्मी, तपस्वी, योगी, धर्म-प्रचारक तथा ग्रन्थ प्रणेता थे। दक्षिणी फणिमण्डलमें स्थित उरगपुरके चोलवंशी नाग नरेशके वे पुत्र थे और काची-के नाग महारथी तथा प्रथम पल्लव राजे एवं करहाटकके प्रारम्भिक कदम्ब राजे उनके भक्त थे। ये आचार्य द्रविड़ संघके मूल प्रवर्तकोंमें-से थे। उन्होंने पुण्ड्रवर्धन, पाटलिपुत्र, वाराणसी, ठक्क, सिन्ध, मालवा, विदिशा, दशपुर, काची, करहाट आदि सम्पूर्ण भारतवर्षके तत्कालीन सभी ज्ञान-केन्द्रोंमें भ्रमण किया और अन्य धर्मोंके विभिन्न विद्वानोंके साथ सैंकड़ों सफल शास्त्रार्थ किये थे। बौद्धाचार्य नागार्जुन उनके समकालीन एवं प्रति-स्पर्धी थे। इन्हींके समकालीन मथुरा संघके प्रसिद्ध आचार्य नागहस्ति और उनके शिष्य वह यतिवृषभाचार्य थे जिन्होंने कसायपाटुड आगमपर चूर्णिसूत्र रचे और १७६ ई० में तिलोयपण्णत्ति नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थकी रचना की थी। इन्हींके जीवनमें सन् १५६ ई० में महावीरकी उस शिष्य-परम्पराका अन्त हुआ जो परम्परागमके साक्षात् ज्ञानकी मौखिक द्वारसे संरक्षित थी। समन्तभद्रके ही एक शिष्य आचार्य सिंहनन्दिको सन् १८८ ई० में दक्षिण और माघव नामक भ्रातृद्वयके हाथों कर्णाटकके प्रसिद्ध गगवश और गगवाडि राज्यकी स्थापनाका श्रेय है।

इस प्रकार दूसरी शताब्दीके अन्त तक दक्षिण भारतमें पाण्ड्य, चोल और चेर नामक प्राचीन छोटे छोटे तीन तमिल राज्योंके अतिरिक्त पूर्वी तटपर तोण्डेयमण्डलमें काचीका पल्लव राज्य, वनवास देशमें करहाट और तदनन्तर वैजयन्तीका कदम्ब राज्य और कर्णाटकमें गंगवाडिका गंग-राज्य—ये तीन प्रसिद्ध नये राजवंश स्थापित हो गये थे। इनके अतिरिक्त दक्षिणपथमें सातवाहन क्षत्रिके पतनसे लाभ उठाकर दक्षिणके विभिन्न

धमका प्रभाव रहा प्रसीत होता है । प्रारम्भिक पल्लव राजाओंके, विशेषकर शिवस्कन्दवर्मनके उत्तराधिकारी सिंहवर्मन प्रथमक प्राकृत अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं । शिवस्कन्दवर्मन स्वयं आगमंवि टीकाकार जैनगुरु वप्पदेवका शिष्य था । पल्लवाका राज्यचिह्न वृषभ था इसीलिए ये वृषध्वज भी कहलाये । सिंहवर्मनके उपरान्त बुद्धवर्मन और फिर कुमारविष्णु (३२५-५० ई०) राजा हुआ । तदनन्तर विष्णुगोप गद्दीपर बैठा जो समुद्र-गुप्तका समकालीन था और जिसका उल्लेख उभय गुप्त सम्राटकी प्रयाग प्रशस्तिमें काचेयक विष्णुगोप नामसे हुआ है । विष्णुगोपके उपरान्त इस यशका प्रसिद्ध नरेश सिंहवर्मन द्वितीय था जिसके राज्यके २२वें वर्षमें शक स० ३८० (सन् ४५८ ई०) में पाणराष्ट्रके पाटलिक ग्रामक जिनालयमें जैनाचार्य सर्वनन्दिने खाना प्राकृत लाकविभाग ग्रन्थ पूर्ण किया था । यही सर्वप्रथम सुनिश्चित सिद्धि है जो पल्लवोंके इतिहासमें अवसक्त मिली है । यह राजा जैनधर्म और जैनगुरुओंका आश्रयदाता था । उसके उपरान्त दो-तीन राजा और हुए और सन् ५५० ई० के लगभग कुमारविष्णुसे प्रारम्भ होनेवाली पल्लव वंशकी इस दूसरी शाखाका अन्त हुआ ।

सिंहविष्णु पल्लव (५५०-६०० ई०) से पल्लवोंकी तीसरी शाखाका प्रारम्भ हुआ और इस शाखाके समयमें ही पल्लव राज्यका चरम उत्कर्ष हुआ । सिंहविष्णुके आश्रयमें महाकवि भारविने अपने जीवनके कुछ अन्तिम वर्ष बिताये थे । सिंहविष्णुका उत्तराधिकारी महेन्द्रवर्मन प्रथम (६००-६३० ई०) था । वह जैनधर्मका अनुयायी था । कई जैनमन्दिर और सित्तनवास-लकी गुफाएँ उसने बनवायी थीं । सुदूर दक्षिणमें पावतीय गुफा मन्दिरोंका निर्माण करानेवाला वही प्रथम नरेश था । इन जैन-गुफाओंमें भित्तिचित्र भी मिले हैं । इन चत्त्यालयोंके निर्माणके कारण उस राजाको चैत्यकन्दर्प उपाधि प्राप्त हुई थी । शैवस त अप्परके, जो पहले स्वयं भी जैन ही था, प्रभावमें आकर यह राजा शैव हो गया था और तब इसने जैनोपर अत्याचार भी किये और कई जैन देवालयोंको भी शैवाल्योंमें परिवर्तित

किया। दोनोंके स्थानमें दीवजगताओंकी कबजे प्रोत्साहन किया। यह
 साहित्यारम्भिक भी था और मनुष्यस्य प्रवृत्तिका विकास था। उसके समयमें
 बाल्युभय युगकेही द्वितीयमें उत्कृष्ट राज्यार आरम्भण किया था। मूल्य
 समकाल उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मन ब्रह्म (११०-१८ ई.) प्रथमी नीच
 था। उसके केरल बोल राज्य बाल्युभय और सिद्धिके वरीशोको मुद्रा
 पराजित किया था किन्तु बाल्युभय विजयस्थितिके कहे दुरी राज्य पराजित
 किया। उसके बाद एक ब्राह्मी देहा भी था। यह राजा भी दीवज-
 गताओंका समकाल था। उसके शासनकालमें ब्राह्मीराजी हुस्नबाब ब्राह्मी
 भाषा था किन्तु बाल्युभय दीवजगताओंके उत्कृष्ट एवं राज्यारके एक
 समय भी नहीं रीत और बीछ दोनों ही ब्राह्मिक भाषा, शासन, यह और
 अनुवासी ब्राह्मिक ब्रह्माभी थे। यह राजा निर्वाण भी था और उसके राज्य-
 में व्यापार कच्छि लुप्त और शांति थी। उसके उत्तराधिकारी मूल्यवर्मन
 द्वितीयका राज्य उत्कृष्टराजी और बरगा-दुष्क था। उपलब्ध नरसिंहवर्मन
 द्वितीय (११०-११५ ई.) दीवजगता ब्रह्म समकाल हुआ बापायके कई और
 धर्मिर भी कबजे बगवाही। नरसिंहवर्मन ब्रह्म और द्वितीय इस राजाके
 अन्तिम वरीय थे। कृ. ५५ ई. के समय धर्मिवर्मन ललकमालके
 सिद्धिकल हुस्नवत किया और ७१५ ई. तक राज्य किया। यह राजा ब्रह्म
 पराजित था, बाल्युभयों पण्डितों और ब्राह्मिक कबजे ललक मुद्रा हुए।
 उसके समयमें दीवज कुछ ब्रह्मर हुआ राजा भी ब्रह्मा बाल्युभयों हुआ
 और दीवजगताओंके भाषा अब दीवज ब्रह्मर भी दीव और बीछब्राह्मिक
 प्रविष्टी कहे। इसीके शासनकालमें कृ. ७८८ ई. में पंचराज्यके
 प्रथमके ब्राह्मी ब्राह्मिके बीछीका ब्राह्मिके दीवरी ब्राह्मिके निर्वाण हुआ
 प्रविष्ट होता है। इस राजाके ब्राह्मीका सिद्धिकल बगवादा। यह
 निर्वाणीय भी ब्रह्मर करता था। उसके पुत्र धर्मिवर्मन ७१५ के
 ८८५ ई. तक राज्य किया। ब्रह्मी भाषा पण्डित पण्डितों
 दीव भी ब्रह्मिक उत्तराजी बीछी पण्डितोंका और धर्मिवर्मी बीछी

पाण्ड्य नरेशोंका दबाव उसे निरन्तर महाना पटा जिनमें उसके राज्यको पर्याप्त क्षति हुई। उसका उत्तराधिकारी नन्दिधर्मन तृतीय (८४४-६०६०) था। पाण्ड्य नरेशको मार धोवन्लमकं विरुद्ध उसने गंग, चोल, गण्डकूट और सिंहल नरेशोंसे मन्त्रीसमूह स्थापित किये और तेन्लारुके प्रसिद्ध युद्धमें वह पाण्ड्य राजाको हराकर उसके राज्यमें घुस गया किन्तु वृम्बकोनमके निर्यात स्वयं हारकर वापस लौट आया। इसकी नौ-मेना नौ पक्षितगाला थी। उसके पुत्र नृगुणधर्मनने, जो अमोघवर्ष प्रथमकी पुत्री शम्भासे उत्पन्न हुआ था पिताका बदला जेनेने लिए पाण्ड्य राजाको हराया। यह नरेश अपने नानाकी नीति जैनधर्मका समर्थक था। इस वंशका अन्तिम नरेश अषगजित था। १०वीं शताब्दीमें चोल सम्राटोंके अन्त्युत्थानने पल्लव राज्यका अन्त किया। परन्तु ११वीं ही एक शताब्दी नोलम्बवालीके नोलम्ब थे। नोलम्बधर्ममें जैन धर्मकी प्रवृत्ति प्रायः निरन्तर बनी रही।

पल्लववशके प्राय सभी नरेश विद्याओं और कलाओंके पोषक थे और विद्वानोंका आदर करते थे। उनकी राजधानी एक प्रसिद्ध ज्ञान-केन्द्रके रूपमें उत्तरापथकी काशीसे होठ करती थी। इस नगरीमें विभिन्न धर्मोंके विद्वान् परस्पर शास्त्रार्थ करते थे जिनमें राजा और प्रजा सभी रस लेते थे। प्राकृत, संस्कृत और समिल तीनों ही भाषाओंमें श्रेष्ठ धार्मिक एवं लौकिक साहित्यका पल्लव नरेशोंके आश्रयमें सृजन हुआ। ७वीं शताब्दी ई० के पूर्व पल्लव राज्यमें जैन और बौद्ध धर्मोंकी ही प्रधानता थी, तदुपरान्त शैव और वैष्णव धर्मोंका प्रसार हुआ। जैन, बौद्ध, शैव, और वैष्णव, चारों ही धर्म इस राज्यमें साथ ही-साथ फलते-फूलते रहे और इस वंशके कुछ-न-कुछ नरेश इनमेंसे प्रत्येक धर्मके अनुयायी रहे। ७वीं-८वीं शताब्दीस शैव और वैष्णवोंने जैनों और बौद्धोंपर भोषण कथाचार करने प्रारम्भ कर दिये। फलस्वरूप बौद्धधर्म तो इस देशसे शीघ्र ही विरोहित हो गया किन्तु दक्षिणके विद्वान् जैनगुरुओं, उनके

किया। जैकोई स्थानमें दीर्घमयवादीकी कहने श्रौलायन किया। यह
 नाट्यपरिचय भी था और मनुष्यमय श्रुतकला केवच था। कहने बहने
 वाचस्पय्य पुनरीष्टी द्वितीयके सम्भव पाठपर आशय था। मही
 सम्भवका उत्तराधिकारी वर्तमानमें प्रथम (११०-१८ ई.) मज्जी बोध
 था। इनमें वैद्यक बीज पाठपर वाचस्पय्य और द्वितीयके वीर्योद्दी मुन्य
 वर्तमान किया था किन्तु वाचस्पय्य विद्वत्परिचय के वही मुने वाचस्पय्य
 किया। इनमें तीन एक मज्जी वैद्यक भी था। यह राज्य की टैलर-
 कारीना बहने था। वैद्यके वाचस्पय्यमें बीजीवादी हृत्पथान बोधी
 मज्जी था किन्तु वाचस्पय्य दीर्घमयवादीके वाचस्पय्य एवं पम्पुवर्धके बह
 तमव की वही वैद्यक और मही दोनों ही बहने वाचस्पय्य, मही और
 अनुवादी वर्तमान मज्जी में। यह पत्रा विद्योता भी था और कहने पाठ-
 में व्यापार कर्मज्ञ मुन्य और वाचस्पय्य की। कहने उत्तराधिकारी श्रुतपरम
 द्वितीयका पाठ वाचस्पय्य की और बहने-मज्जी था। उत्तराधिकारी वर्तमानमें
 द्वितीय (११०-११५ ई.) दीर्घमयका बहने बहनेक हुआ वाचस्पय्ये कई एक-
 मज्जी की इनमें बहने। वाचस्पय्यपरम प्रथम और द्वितीय एक बहनेके
 वर्तमान बहने थे। मज्जी १०५ ई. के समय मज्जीपरम वाचस्पय्यमें
 विद्यायन हृत्पथान किया और ११५ ई. तक राज्य किया। यह पत्रा मज्जी
 वाचस्पय्य ना वाचस्पय्य, पम्पुवर्ध की बहने बहने केवच मुन्य हुए।
 कहने बहने वैद्यक मज्जी मज्जी हुआ राज्य की बहने अनुवादी हुआ
 और दीर्घमयवादीके वाचस्पय्य मज्जी मज्जी की वैद्यक और दीर्घमयके
 बहनेकी बहने। इन्हींके वाचस्पय्यमें मज्जी १८८ ई. में पम्पुवर्धके
 मज्जीके वाचस्पय्य मज्जीके वाचस्पय्य मज्जी केवच मज्जी विद्योता हुआ
 बहने हुआ है। यह राज्यने कीर्षीका विद्युत्परम मज्जी। यह
 विद्युत्परम की बहने बहने था। कहने मुन्य विद्युत्परममें ११५ ई.
 ८०५ ई. तक राज्य किया। मज्जी वाचस्पय्य पम्पुवर्ध पम्पुवर्ध
 वैद्यक की मज्जी उत्तराधिकारी मज्जी पम्पुवर्धका और विद्युत्परम की

की ओर मदुराको उक्त मघका केन्द्र बनाया। अस्तु ५वीं से ७वीं शती पर्यन्त पाण्ड्य देशमें जैनधर्मका अत्युत्कर्ष हुआ। वज्रनन्दि और उनके सहयोगी गुणनन्दि, वक्रग्रीव, पात्रकेसरि, सुमतिदेव, ध्रुवर्षदेव आदि जैनाचार्योंने उक्त द्रविड या द्रमिल सघको एक सजीव शक्ति बना दिया। इन विद्वानोंने अनेक ग्रन्थोका सस्कृत, प्राकृत और तमिल भाषाओंमें प्रणयन किया तथा अपने भक्तों और शिष्योंसे कराया। तमिल साहित्यके कई महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ इसी कालमें लिखे गये। प्रवृत्तियोंके फलस्वरूप ही ६ठीं शतीके अन्तके लगभग कडुंग नामक राजाने पाण्ड्य देशकी राज्य शक्तिका पुनरुत्थान किया, वह अपने पूर्वजोंकी भाँति ही जैनधर्मका अनुयायी था, उसके क्रमशः चार वंशज भी जैनों थे। इनमें-से अन्तिम नरेश नेन्दुमारन (कुन अथवा सुन्दर पाण्ड्य) के समय (६५०-६८० ई०) में गुणसम्बन्धर नामक व्यक्तित्वने जो स्वयं जैन था, जैनधर्मका परित्याग करके शैव धर्मको अपनाया और राजाको भी शैव बना लिया। सम्बन्धरके प्रभावसे उस राजाने पाण्ड्य देशके जैनियोंपर अमानुषिक अत्याचार किये वताये जाते हैं जिनके दृश्य मदुराके प्रसिद्ध मोनाक्षी मन्दिरकी दीवारोंके प्रस्तरांकनोंमें आज भी विद्यमान हैं। कडुंगसे लेकर नेन्दुमारनके समय तक पुनरुत्थापित पाण्ड्य राज्यकी शक्ति और प्रभाव बढ़ता आ रहा था किन्तु इन धार्मिक अत्याचारोंके कारण फिर लगभग एक शताब्दीके लिए उसकी उन्नति पिछड़ गयी।

९वीं शताब्दीमें श्रीमारन श्रीवल्लभ (८३०-६२ ई०) इस देशका प्रसिद्ध राजा हुआ। महावंशमें भी उसका उल्लेख है और सिंहलपर भी उसने आक्रमण किया था। पल्लव नरेश दन्तिवर्मन और नन्दिवर्मन दोनोंको उसने हराया और अपना राज्य बढ़ाया था। किन्तु उसके अन्तिम वर्षोंमें सिंहलके सेन द्वितीयने तथा काचोके नृपतुंगवर्मनने उसपर आक्रमण करके उसे बुरी तरह पराजित किया और मदुराको लूटा। श्रीमारनकी भी उसी समय आहत अवस्थामें मृत्यु हुई। उसके पुत्र वरगुणवर्मन द्वितीयको

जैन महाकवि घनपालके तिलकमजरी नामक काव्यमें समर्थसुखी समुद्रयात्रा-
 का वर्णन अनेक विद्वानोंके मतानुसार राजराजा चोलके ही सुदूरपुष्पके किसी
 द्वीप या देशपर किये गये समुद्री आक्रमणकी संघारोहा सजीव वर्णन हैं ।
 कवि घनपाल इसी कालमें हुए थे, मालवेके परमारों, यन्त्रीयोंके प्रतिहारों
 और कल्याणियोंके चालुक्योंमें उन्होंने सम्मान प्राप्त किया था, क्या आश्चर्य
 है कि वे राजराजा चोल-द्वारा भी सम्मानित हुए हों । राजराजा सामान्यतः
 धर्मधर्मका अनुयायी था किन्तु वह एक बहुत उदार और सहिष्णु नरेश
 था । उसके राज्यमें जैनोंके ऊपर कोई अत्याचार नहीं हुआ यन्त्र विद्वानों-
 का तो यह मत है कि उसके समयमें जैनियोंकी शैवोंके समान ही राज्याश्रय
 प्राप्त था और उसके साम्राज्यमें जैनधर्म उन्नत अवस्थामें था । उसका पुत्र
 राजेन्द्र चोल (१०१६-४२ ई०) सुयोग्य पिताका सुयोग्य पुत्र था । उसने
 अपनी विजयवाहिनीकी उत्तरमें गंगातट तक पहुँचा दिया और समुद्रपारके
 देशोंको भी विजय किया । किन्तु वह जैनधर्मका विद्वेषी था, मैसूर प्रान्तके
 अनेक जिन मन्दिरोंको उसने जलवा दिया था । उसका उत्तराधिकारी
 राजाधिराज (१०४५-५४ ई०) था । तदनन्तर अधिराजेन्द्र राजा हुआ
 वह भी शैव था । मन् १०७४ ई० में उसके भानजे कोलुत्तुग चालुक्यने उसे
 मारकर चोल और पूर्वी चालुक्य राज्योंको सम्मिलित कर लिया । उसने
 ११२३ ई० तक राज्य किया । यह राजा भी बड़ा पराक्रमी था और उसने
 कर्लिंग देशको पुनः विजय किया । इस विजय यात्राका सजीव वर्णन समिल-
 के प्रसिद्ध महाकाव्य कर्लिंगटट्टपरनिमें मिलता है । इस काव्यके लेखक
 कोलुत्तुग चोलके प्रधान राजकवि जयगोदप्त थे जो जैनो थे । यह सम्राट्
 जैनधर्मका अनुयायी था और उसके आश्रयमें अनेक धार्मिक एवं साहित्यिक
 कार्य हुए । उसने राजेन्द्र-द्वारा नष्ट किये गये जिन मन्दिरोंका भी जीर्णो-
 द्धार कराया । कोलुत्तुगके भयसे भागकर ही रामानुजाचार्यने होयसल नरेश
 विद्विश्वर्धनकी दारण ली थी । कोलुत्तुगके आश्रयमें अनेक जैन विद्वानोंने
 अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी । इस नरेशने अपने राज्यमें समस्त निषिद्ध

बिहारी देवायतिने गद्दीपर विराजता । बड़ लंछा-मौज और पल्लवों, टोपीके
 ही जखीव रहा । उनके बाद १४ धोर निर्मल भागवत हुए और कलमें
 १ बी छठीके आरम्भमें चौबीसे पाण्डव देवकी विजय करने करने
 बाधातर्क विजय किया । १९वीं छठीमें पाण्डवोंने फिरसे बलिष्ठ दण्डी
 और कुनछ पाण्डव साम्राज्य बरबर्न आया । इस काजमें पाण्डव बड़े
 व्यापारीन कुन्धेकर (१९१८-१९१९ ई) के बरबर्न म्पोंछी म्पक
 बैनिन विराटी बाकी इस देवमें आया था । उनके कुतापने यह भी
 विरिष्ठ होय है कि इस समय पाण्डव देवमें अनेक चीज यह और बेरी
 विरिष्ठ थे । बाबरकमें १९८४ ई में लंछाकी भी विजय की थी ।
 १९१ ई में बम्पहरीन कलमेंके आरम्भमें म्पुराके पाण्डव उम्परा
 कम्प कर दिया ।

धोहराउम्प—ईसवी कम्पी आरम्भिक कलमियोंमें बरबपुरका चीन
 राज्य एक बम्परा राज्य था । बाबोंके बम्परा उम्परा था और बरबर्नमें
 इस राज्यमें बम्परा थी । किन्तु १९वीं छठी ई के ही पल्लवोंके बरबर्नमें
 बरबर्न चीन उम्परा बर्न कई पल्लवोंके तक बल रहा और यह एक
 बल्लव चीनउम्पके कम्पी बम्परातथा कम्परा रहा । १९वीं छठी ई में
 चीन देवके लंछाकर बरबर्न विजयवाक्य चीनमें चीनराज्यका कुनराज्य
 और कम्पी बम्परी ल्परातथा थी । इसका बम्पराविकाटी बम्परा चीन का
 और फिर बम्पराक चीन (१७-४९ ई) उम्परा हुआ । इसमें बम्परा देव-
 की विजय करके राज्य विस्तार किया । इसके कल्लवबम्पराविकाटी बम्परा-
 बर्न नहीं थे । किन्तु उम्पराउम्प राज्यतथा चीन (१८९-१९१ ई) का
 बम्परा बरबर्न बर्न था यह बाटी विरिष्ठ था और उम्परा बम्पराविक
 बम्परा बम्पराका बम्पराविक हुआ । कम्परा (बम्परा) और बम्परा की
 कई भाग विजय करके बम्परा कम्पी राज्यमें मिला मिला । यह बाटी
 विरिष्ठ थी था—लंछाकरका बम्परा बम्पराविक बम्परी बम्परा था । इसके
 विरिष्ठके भी मिला है किन्तु बम्परी कुनराज्यके विरिष्ठ भी मिला है ।

तो दीक्षा लेकर जैनमुनि हो गया था—तमिल भाषाके सुप्रसिद्ध प्राचीन महाकाव्य शिलप्पदिकरम्को रचना इसी राजपूने की थी। ३री-४वीं शती ई० से चेरोंका अवनति होन लगी और चेरराज्य एक छोटा-सा गौण राज्य रह गया। इस प्राचीन चेरवंशका सस्थापक चेरमान पेदमल था। ८वीं शतीके अन्तमें इस वंशका अन्त हो गया। ९वीं शतीमें वैष्णव अलवर मतके अनुयायी कुलक्षेत्रने अपना वंश स्थापित किया और उसीके साथ साथ चेर प्रदेशमें जैनमतके स्थानमें वैष्णव मतकी प्रधानता हो गयी। इस प्रदेशके मलाबार तटपर धरणाधी यहूदियों और नवागत ईसाइयोंकी वस्तिर्या भी बहुत प्राचीन कालमें ही स्थापित हो गयी थीं। प्राचीन कालमें केरल भी चेर राज्यका ही अंग था। सन् १३१० ई० में मदुरापर मुसलमानोंके प्रथम आक्रमणके उपरान्त कुछ कालके लिए केरल राज्य एक स्वतन्त्र और शक्तिशाली राज्य हो गया था। चेर, केरल एवं सत्यपुत्र प्रदेशोंमें अनेक प्राचीन जैन पुगत्तस्वाश्रम पाये जाते हैं। चेरोंकी राजधानी कावेरीपट्टन थी। पाण्ड्य, चोल, चेर नामक प्राचीन अधिश आदिम तमिल राज्यों एवं पल्लव नामक नवस्थापित राज्यके साथ सुदूर दक्षिणके तमिल प्रदेशका इतिहास समाप्त हो जाता है। उपरोक्त विवरणसे यह भी विदित होता है कि ३री से ६ठी शती ई० पर्यन्त सम्पूर्ण तमिल देशका इतिहास अधिकाराच्छन्न रहा। इस बीचमें वर्द्ध कलभ्र (कलिअरसन=मम्पताके दाश्रु) नामक जातिका प्रभुत्व रहा प्रतीत होता है। अच्युत विक्रांत कलभ्र इस वंशका प्रसिद्ध राजा था और बौद्धधर्मका समर्थक था। किन्तु ६ठी शतीके अन्तमें पाण्ड्यों और पल्लवोंने कलभ्रोंका अन्त कर दिया था। १०वीं शतीके जेनाचार्य अमितसागरने भी आने तमिल व्याकरणमें उक्त कलभ्र नरेशके अत्याचारोंसे सम्बन्धित कुछ प्राचीन गीताको उद्धृत किया है।

कदम्ब वंश का सस्थापक कदम्ब आघ्र सातवाहनोंका सामन्त था जिसने कदम्ब नामक वृक्ष विशेषके नामपर अपने वंश और राज्यकी

गद्यबोध का अभाव बन्द कर दिया था। प्राचीन भाषाओं के परिचयानु ग्रीकों
 कठिनी बनना की बातों हैं। इनके बाद इनका अनुर्थ बुरा बर्तन (विद्वान्
 वा विद्वान्बुद्ध) विद्वान्बुद्ध बने। कलने की कलने विद्वान् की कलने
 तरल विद्वान् और कलने राजवन्ता की विद्वान् एवं बुद्धिबोध धारण
 रही। इस बर्तन बन्धित बन्धानु ग्रीक राजवन्ता दूनीय (१९१९-४८
 ई) था। इनके कलनात्त बोक बन्धितकी बन्धित होने लगी। बुद्ध-बुद्धों
 विद्वान् धारणों और ग्रीकोंके बन्धित ग्रीकोंके बन्धितकी बन्धित १९वीं
 पटीके कलने बुरा बोनकाबान्धित विद्वान्-विद्वान् हो गया। बोन काबान्धितकी
 धारण-बन्धितकी बन्धित सुन्दर की कलने बान्धितकी बन्धित और इनके बन्धित
 धारणके की विद्वान् धारण बुरा है के कलने बन्धितकी बन्धितकी बन्धित
 विद्वान् बन्धित है। विद्वान्धित और विद्वान् लकीय बन्धितकी की विद्वान् और
 कीकीधारणके बन्धित बन्धित कलने की बन्धित है। बोन काबान्धितकी बोन बन्धित
 कलने बन्धित कलने की और विद्वान्धितकी बान्धित बन्धितकी बन्धित
 बन्धितकी एत की। इस बान्धितकी बन्धितकी बन्धित की विद्वान् नहीं विद्वान्।

और राज्य—एकिक देशका तीव्रतम प्राचीन राज्य बेटोंका था।
 इनका बन्धितकी ई के और बन्धित बन्धित बन्धितके बन्धितके इस राज्यका बन्धित
 हुआ। कलने बन्धितकी बन्धित बन्धितकी बान्धित की की बन्धित और विद्वान्धित
 बन्धित बान्धित बन्धित था। प्राचीनिक बन्धित बन्धितकी इस राज्यकी बन्धित
 बन्धित बन्धित था। एत पटी ई के बन्धितकी बन्धितकी इस बन्धित बन्धित
 बन्धित एवं बन्धितकी धारण हुआ। कलने और राज्यकी बान्धितकी बन्धित
 विद्वान् बोन-विद्वान्धितके बन्धित कलने बन्धित की बन्धित बन्धित बन्धित
 बन्धितकी बन्धित बन्धित बान्धित था, समुद्री बन्धित-धारण कलने बन्धित-
 बन्धित बान्धित बन्धित और कलने बन्धित बन्धित। कलने बन्धितकी बन्धित
 बन्धित कलने विद्वान्धितकी बन्धितकी बन्धितकी और बन्धित एक बन्धितकी बन्धित
 बन्धितकी बन्धित कराया। इस बन्धित बन्धितकी बन्धितकी की बन्धित रही।
 बन्धित बन्धितकी बन्धित की और कलने बन्धित बन्धित बन्धितकी बन्धित

के आक्रमणका निवारण किया। उसने महपट्टिदेवके लिए एक दान भी दिया था। उसके पुत्र भगीरथके कुछ सिक्के मिले हैं। भगीरथका पुत्र रघु भारी योद्धा था। उसने पल्लवोंको पराजित करके अपने राज्यको निष्कण्टक किया। युवावस्थामें ही युद्धमें उसकी मृत्यु हो गयी और उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई काकुत्स्थवर्मन् भी छोटी अवस्थामें ही राजा हो गया, किन्तु वह एक सहान् नरेश, योग्य शासक, बड़ा नीति-निपुण और दीर्घजीवी था। उसने गग, गुप्त और वकाटक नरेशोंका अपनी कन्याओंके साथ विवाह करके तत्कालीन भारतके प्रसिद्ध राजवंशोंसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये। इस नरेशके हस्ती ताम्रशासनमें वर्षसंख्या ८० दी हुई है जो इस राजाकी ८०वीं वर्षगांठका सूचक प्रतीत होती है। इस अभिलेखकी तिथि सन् ४०० ई० निश्चित की जाती है और लेखसे स्पष्ट है कि यह राजा जैनधर्मका भारी पोषक था। जैनपण्डित श्रुतकीर्ति भोजकको इस ताम्रशासन-द्वारा राजधानीके जैनमन्दिरके लिए दान दिया गया था। काकुत्स्थवर्मन् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका समकालीन था और सम्भवतया राजकुमार कुमारगुप्तके साथ भी एक कदम्ब राजकुमारीका विवाह हुआ था। स्वयं कवि कालिदास इस विवाह सम्बन्धको स्थिर करनेके लिए उज्जैनसे वैजयन्ती आये बताये जाते हैं। काकुत्स्थकी दूसरी कन्या गगनरेश तदगल माधवको विवाही थी और इस प्रकार गग अविनीत इस कदम्ब नरेशका दोहित्र था। काकुत्स्थवर्मन्के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र शान्तिवर्मन् राजा हुआ। उसने कदम्ब राज्यके बन-वासी, त्रिपर्वत और उच्छगो नामक तीनों भागोंको संगठित करके केन्द्रीय शासनके भीतर ले लिया। शान्तिवर्मन् भी जैनधर्म और जैनगुरुओंका समादर करता था। उसका पुत्र मुगेशवर्मन् (४५०-४७८ ई०) जैनधर्मका अनुयायी था। उसके कई उपलब्ध ताम्रशासनोंमें इस नरेश-द्वारा जैन मन्दिरोंका निर्माण कराने, निर्ग्रन्थ जैनगुरुओं, श्वेतपट जैन साधुओं और जैनोंके कूर्चक नामक एक अन्य सम्प्रदायके साधुओंको दान देनेके उल्लेख है। स्वयं राजधानी पलाशिकामें उसने अपने पिता शान्तिवर्मन्की

के आक्रमणका निवारण किया। उसने महपट्टिदेवके लिए एक दान भी दिया था। उसके पुत्र भगीरथके कुछ सिक्के मिले हैं। भगीरथका पुत्र रघु भारो घोड़ा था। उसने पल्लवोंको पराजित करके अपने राज्यको निष्कण्टक किया। युवावस्थामें ही युद्धमें उसकी मृत्यु हो गयी और उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई वावुत्स्यवर्मन् भी छोटी अवस्थामें ही राजा हो गया, किन्तु वह एक महान् नरेश, योग्य शासक, बड़ा नीति-निपुण और दीर्घजीवी था। उसने गग, गुप्त और वकाटक नरेशोंका अपनी कन्याओंके साथ विवाह करके तत्कालीन भारतके प्रसिद्ध राजवंशोंसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये। इस नरेशके हल्सी ताम्रशासनमें वर्षसंख्या ८० दी हुई है जो इस राजाकी ८०वीं वर्षगांठका सूचक प्रतीत होती है। इस अभिलेखकी तिथि सन् ४०० ई० निश्चित की जाती है और लेखसे स्पष्ट है कि यह राजा जैनधर्मका भारी पोषक था। जैनपण्डित श्रुतकीर्ति भोजकको इस ताम्रशासन-द्वारा राजधानीके जैनमन्दिरके लिए दान दिया गया था। काकुत्स्थवर्मन् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका समकालीन था और सम्भवतया राजकुमार कुमारगुप्तके साथ भी एक कदम्ब राजकुमारीका विवाह हुआ था। स्वयं कवि कालिदास इस विवाह सम्बन्धको स्थिर करनेके लिए उज्जैनसे वैजयन्ती आये बताये जाते हैं। काकुत्स्थकी दूसरी कन्या गगनरेश सद्गल माघवको विवाही थी और इस प्रकार गग अविनीत इस कदम्ब नरेशका दोहित्र था। काकुत्स्थवर्मन्के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र शान्तिवर्मन् राजा हुआ। उसने कदम्ब राज्यके बन-वासी, त्रिपर्वत और उच्छगो नामक तीनों भागोंको संगठित करके केन्द्रीय शासनके भीतर ले लिया। शान्तिवर्मन् भी जैनधर्म और जैनगुरुओंका समादर करता था। उसका पुत्र भृगेश्वरवर्मन् (४५०-४७८ ई०) जैनधर्मका अनुयायी था। उसके कई उपलब्ध ताम्रशासनोंमें इस नरेश-द्वारा जैन मन्दिरका निर्माण कराने, निर्ग्रन्थ जैनगुरुओं, श्वेतपट जैन साधुओं और जैनोंके कूर्चक नामक एक अन्य सम्प्रदायके साधुओंको दान देनेके उल्लेख है। स्वयं राजधानी पलाशिकामें उसने अपने पिता शान्तिवर्मन्की

वर्मन्, सिंहवर्मन् और कृष्णवर्मन् द्वितीयका क्रमशः शासन इसके समयमें रहा। रविवर्मन्ने अपने इन सम्बन्धियोंको उभरने नहीं दिया और कृष्णवर्मन् द्वितीय तथा उसके सहायक चण्डदण्ड पल्लवको बुगै तरह पराजित किया। रविवर्मन्ने अपने भाई भानुवर्मन्को हल्दीमें अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। दुर्दिनोत्त गग पल्लवोंके विरुद्ध रविवर्मन्का मित्र था। इस प्रकार रविवर्मन्ने अपने पिताके समय हुए राज्य और वंशके विभाजनका अन्त करके पुनः एक कर लिया। कृष्ण द्वितीयके वंशज अजयवर्मन्, भोगि और विष्णुवर्मन् कुछ काल तक और विद्रोही बने रहे किन्तु उनका भी अन्त चालुक्य पुलकेशि प्रथमके पुत्र कीर्तिवर्मन्ने कर दिया। रविवर्मन् एक महान् प्रतापी एवं सुयोग्य नरेश था। यह जैनधर्मका भी परम भक्त था। हल्दी, कोरमग आदि स्थानोंसे उसके कई ताम्रशासन मिले हैं जो उसकी उत्कट जिनधर्म भक्ति, धार्मिक आवरण, जिनमन्दिराका निर्माण, जैनगुरुओं और विद्वानोंका सम्मान, धार्मिकी अष्टाह्निका आदि जैनधर्मों और उत्सवोंको मनाने, विविध दान देने आदिका धनन करते हैं।

रविवर्मन्के धर्मगुरु जैनमुनि कुमारदत्त तथा हरिदत्त ये और राजगुरु एवं प्रमुख दानपात्र बन्धुसेन भोजक ये जो दामकीर्ति भोजकके उत्तराधिकारी थे। महाराजके भाई भानुवर्मन्ने जो हल्दीका शासक था, प्रत्येक पूर्णिमाको जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक करनेके लिए पण्डर भोजकको दान दिया था। पण्डर सम्भवतया बन्धुसेन भोजकका उत्तराधिकारी था। इसमें सन्देह नहीं कि कदम्बर नरेश रविवर्मन् एक प्रतापी, धर्मार्थी एवं शक्तिशाली राजा था।

इसके उपरान्त इसका पुत्र हरिवर्मन् (५२०-५४० ई०) राजा हुआ। यह कदम्बरवंशका अन्तिम महान् नरेश और अपने पूर्वजोंकी ही भाँति जैनधर्मका भक्त था। उसके राज्यके चौथे और पाँचवें वर्षोंमें लिखे गये ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें इस राजाके द्वारा जैनमन्दिरों और गुरुओंको दान देने तथा जैनधर्ममें उपदेशित अन्य धार्मिक कार्योंके करानेकी

व्यवस्था करनेके इच्छुक हैं। पूर्वोक्त चर्चके बीनाचार्य दारिद्र्यवशात् यह कार्य बहुत आदर करता था। इस नरेन्द्रके बलिबेहोति यह भी बात होना है कि उड़का बाबा विवरण भी एम्बिन्सुय्य बूझत नहीं था तथा बूझते बाबाके कृप्य शिष्टीयके एक भाई और उनके पुत्र राजगुमार ऐश्वर्य्य यज्ञे कर्म्य राजगुम्बके बाल बनेक व्यक्ति भी बीनबर्मेके अनुयायी थे और यह कि कर्मन्वीका निज ईश्वर नरेन्द्र मानुषलित भी बीन था। इतिवर्त्यके प्रयात् इस संकल्प जात हो गया। १९१९ ई. एक कृप्य शिष्टीयके बंधव लम्बरराय बळते रहे, अन्तरात् राजगुम्ब पुल्नेकी प्रथम और कीर्तिवर्त्मने बळम्ब बलिष्ठमे कर्म्य करके बने। एकका विस्तार किया। कीं इस संकल्प बलिष्ठ बीन लम्बर करारोके चर्च १९वीं-१९वीं पड़ी है। एक बाबा बाळ है, निवेदकर इनके कर्म्य एवे ११वीं १२ वीं कठोमें बळी बलिष्ठबायी थे।

कर्मन्वीका राजगुम्ब पुत्रात् एवं सुम्भलित था। बळवि बंदी और लम्बरके बाप बळी विरल्लर कुछ करने गई और बाळ-बाळके नाम करारोमें भी बळते एका पक्ष तथावि बनेके एकमेव आन्तरिक बालि-अनुष्टि और व्यवस्था कयी पड़ी। व्यवहार-व्यवहाय निबन्धी-द्वारा कुतबलित थे। इन नरेन्द्रकी स्वर्णमुहारें बळि सेह हैं। बीनबर्मे बळद्वारों और बळगुरिबी-द्वारा कर्मबलित विस्तार प्रयात् था। बीनचंद और बंस्वर् पंथीय एवं प्रयतिहीन बी और राजा-प्रयत्नी औकि बळविमें बाळ एवं लम्बर कयी। कर्मन्वीके अनुष्ठ बालिष्ठमेव गया ईश्वर गुम्बर, बाप बाळि भी बीन-बर्मेके अनुयायी थे।

रणिवर्मा—१०ी कठी है बळिष्ठ बाळमे स्वाति होनेवाके कयी एम्बर्बोमे तीवरा बंस्वर था। बळिष्ठके कर्मूर्म बंधोमे यह कर्माधिक स्वायी एका और लम्बर, कर्म्य बाळुय एम्बर्बुड बाळि एकके बाल एक कर्म्य होनेवाकी कयी बळय राजबळिष्ठोका प्रयात् बळिष्ठकी गया एका। कर्म्ययन वैदूर प्रवेचके बाळिष्ठ बाळ तथा कर्मोटी कयीकी गुणे बाळीये

व्याप्त गगवाहि राज्य पश्चिमी गंगवशके नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

इस वंशके नरेशोंके शिलालेखों व ताम्रपत्रों, साहित्यिक आधारों तथा अनुश्रुतियोंसे ज्ञात होता है कि अयोध्यामें तीर्थंकर श्रमणके इक्ष्वाकुवंशमें राजा हरिश्चन्द्र हुए जिनके पुत्र भरतकी पत्नी विजयमहोदयीसे गगदत्त या गगेयका जन्म हुआ । उसीके नामसे यह वंश गगवश कहलाया । गगेयका एक वंशज विष्णुगुप्त अहिच्छत्रका राजा था और तीर्थंकर अरिष्ट-नेमिका भक्त था । उसका वंशज श्रोदत्त तीर्थंकर पार्श्वनायका उपासक था । श्रोदत्तके वंशमें अहिच्छत्रका राजा कम्प हुआ जिसका पुत्र पद्मनाभ था । इसके ऊपर उज्जैनीके राजाने आक्रमण किया अतएव पद्मनाभने सुरक्षाके लिए अपने दक्षिण और माघव नामक दोनों बालक-पुत्रोंको राजचिह्नों-सहित दूर विदेशमें भेज दिया । प्रवासमें ये राजकुमार धीरे धीरे बड़े हुए और धूमते धूमते दक्षिण भारतके कर्णाटक देशस्थ पेडूर नामक स्थानमें पहुँचे । नगरके बाहर स्थित चैत्यालयमें दोनों राजकुमार अपने कुलदेव जिनेन्द्रका दर्शन पूजन करनेके लिए गये । वहाँ आचार्य सिंहनन्दि अपने शिष्य-समूह-सहित विराजमान थे, यह उस काल और प्रदेशके एक प्रमुख जैनाचार्य थे । दोनों राजकुमारोंने जब उन्हें नमस्कार किया तो उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया, उन्हें अपने पास रखकर समस्त राज्योचित विद्याओंमें पारंगत किया, अन्तमें कर्णिकार-पुष्पोका मुकुट पहनाकर उन राजकुमारोंका राज्याभिषेक किया, अपनी मयूरपिच्छिका उन्हें राजध्वजके रूपमें प्रदान की और मत्तगयन्द उनका राजचिह्न निश्चित किया । उस समय उन्हें आचार्यने यह चेतावनी दी कि 'यदि तुम लोग कभी अपना वचन भंग करोगे, कभी जिन-शासनसे विमुख होगे, पर स्त्रियोंके ऊपर क्रुद्धि डालोगे, मद्य-मासका सेवन करोगे, नीच व्यक्तियोंकी सगति करोगे, याचक-जनोंको दान देनेसे मुँह मोड़ोगे और रणभूमिसे पीठ दिखाकर भागोगे तो तुम्हारे कुलका नाश हो जायेगा ।' राजकुमारोंने गुरुवचनोंकी शिरोधार्य क्रिया और गुरुकी मन्त्रणानुसार अद्भुत उत्साहके साथ राज्य निर्माणमें

संलग्न हो करे । बगुले बाग-उद्यानकी नियम करने संवत् ११ की नींव रखी । एक पिछलेबाके अनुसार इस प्रकार बहिष और बागाने पन्थिबिरिचो बनना पुर्न पुनःबाग (बोम्बे)की बननी राजनदरी ११ संलग्न देखने बनना पालन एकमुक्तिने नियमको बननी बिगडिनी जिनके की बनना इहोरेव जिनकेको बनना बर्म और बागाने गिहमनिको बनना पुन बनाकर इस पुष्पीका उत्तरने बननेके फर्मन् पुनने घोषेवनमन् एक बहिषने कीनु देख एक और पन्थिबनने बर देखकी बिचने ब्यापार फर्मन् चीन किया ।

ऐसा उठीत हीन है कि बहिषकी मुनु राज्यकिर्मानके बननेके बन ही ही बनो की बन बहिषके इस पन्थिबनी बर्मन्बनना बनन बागानिक नरीच और संवत् ११ राज्यका प्रथम स्थानी बनना उठीत बाई बागन कोमुनिबर्म प्रथम (१८९-१९ ई) बा । यह बनेक बाग बरान्नी एवं बननेका बा । बाईकि बाग बननेके निरन्तर पुन बनने रही । बर्म बाग केकोने बने 'बागनकी बननेके लिए बागानि' ब्या है । बनने बननेके राज्यने एक बन्ध निगान्न एवं बैकीक बननावा की बिठा और संलग्नना केन और निर्मन् पुनकोन बनान-बनान बा । यह बनने बागना बननावा बने बराना बराना है । बनने बननेके बनना पुन बिगिबनान बिगीन बाग हुना । बनने बनने बिगना बननुतरन किया । यह नीति-बागने निगान्न बा और बरान्नी बैकीक पुनोर बनने टीका बिगी की । इनके टीका पुन बै—हजिर्नन्, बाईबर्मन् और कुम्बनर्मन् । हरी बर्मन्को बिठाका बरान्नाबिकर किया । बनने कोबागना पन्थिबन करके बनना (राज्यबनुर बा राज्यबनुर) की राज्यनानी बनना । बनने बाई बाईबर्मन्को बनने बैकर बिगना बागन बनना बिगने बर्मन्को बैकर बागना राज्य हुई । पुनने बाई कुम्बनर्मन्को बैकर बिगना बागन बनना और बनने बनने बैकर बागना राज्य हुई । कुम्बने पुन बननेके बिग् बैकरनर की अधिकार कर किया किन्तु बनन बिगनर्मन् और बनना

त्र स्कन्दवर्मन् पेरुरके गंगोके सहायक रहे और उन्हें उन्होंने फिरसे अपने
 जयमें स्थापित कर दिया । मूलवंशमें हरिधर्मन् अपनी धनुर्विद्याके लिए
 सिद्ध था । युद्धमें उसने हाथियाका प्रयोग किया और राज्यको समृद्ध
 लाया । उसका पुत्र विष्णुगोप नारायणका विशेष भक्त था और जैन-
 धर्मकी ओरसे उदासीन था । उसका पुत्र पृथ्वीगग गीघ्र हो मर गया ।
 पृथ्वीगगका पुत्र तदगग माघव या माघव तृतीय एक महान् शासक था ।
 उसका विवाह कदम्बनरेश वाकुत्स्यवर्मन्की पुत्रीके साथ हुआ था । वह
 अम्बरक और जिनेन्द्रका समान रूपसे भक्त था । मन्त्र तालुकेके नोनमगल
 स्थानमें एक प्राचीन जैन धर्मदिके भग्नावशेषोंमें प्राप्त इस नरेशके १३वें
 वर्षमें लिखाये गये ताम्रशासनसे प्रकट है कि उसने परव्थोल्ल ग्रामके
 अहत् मन्दिरके लिए दिगम्बराचार्य वीरदेवको कुमारपुर ग्राम तथा बहुत-
 सी अन्य भूमि प्रदान की थी । लुइस गइसने इस दान-पत्रकी तिथि ३७०
 ई० निश्चित की है । सम्भवतया इन्हीं वीरदेवने विहारके राजगिरिपर
 स्थित सोनमण्डार गुफामें भी जिनमूर्तिर्वा प्रतिष्ठित करायी थीं जैसा कि
 उक्त गुफामें प्रायः उसी कालके एक शिलालेखसे सूचित होता है । इस
 राजाका एक दानपत्र ३५७ ई० का तथा दूसरा ३७९ ई० का प्राप्त
 हुआ है । अतः इसका शासनकाल लगभग ३५५ ई० से लेकर ४०० ई०
 तक चला ।

३री ४थी घाताब्दीमें गंगनरेशोंके शासनकालमें कई प्रसिद्ध जैनाचार्य
 हुए । उच्चारणाचार्यने कसायपाहुडके यतिवृषभ-वृत्त चूर्णिसूत्रोंपर वृत्ति
 लिखी, धामकुण्ड और वण्यदेवने भी आगमोंपर टीकाएँ लिखीं । कृचि-
 भट्टारक और नन्दिमुनिने पुराणग्रन्थ लिखे । ये नन्दि भट्टारक पेरुर
 त्रिपयके गंगराज आयधर्मन् आदिके गुह्य थे । इसी कालमें जैन विद्वान्
 शिवधर्मने कम्मपयडि और सत्तक नामक कर्मग्रन्थोंकी रचना की ।
 यथोभद्र, प्रभाचन्द्र और श्रीदत्त (जल्पनिर्णयका कर्त्ता) आदि विद्वान्
 भी इसी कालमें हुए । ४०० ई० के लगभग ही कविपरमेष्ठि या कवि

परवैस्वर धामके वीनाचार्य हुए जो कछह बाघाके प्रभव कवि बाने कहे हैं और जिन्होंने संस्कृत-कवय विविध बाल्याई वाक्यरचनार्थ वाक्य प्रणालि वैन म्हापुराण (विषादिकात्मकपुस्तकचरित) लिखा ।

तत्त्वक वाक्यका पुनः वर्तनीत कौमुदि म्हापुराणविषय जो कर्तु-तत्त्वार्थम् कवयका रीतिव और वास्तवार्थम् एवं कृष्णवर्णम् प्रवक्तव्य लिखानिवेद वा बाले विद्याकी मृत्युके प्रभव म्हापुराणो बोधने कौटुम्बिक विषय वाच्य वा । विद्यालेशोने कहे कठिनीकी कहा क्या है और कछह वाक्य बहुत रीतिरकाकीय वृत्ति लिखा क्या है । कवय ४ ५-४८९ ई. पर्यन्त उल्लेख प्राप्त किया । यह गरीब कहा पद्यकवी और वर्तिका वा । कछके पुनः वीनाचार्य विद्यवकीर्ति ने शिलपी देवदेवकी हन गरीबकी विद्या-वीणा हुई थी । कन् ४९ ई. में कछने कछने शीतलपत्रक शास्त्रवाक्य-शास्त्र हन विद्यवकीर्तिको मृच्छङ्गिके पत्रार्थक कारि पुनः-शास्त्र स्वादिष्ट रत्नको कर्त्तु अनिर और विद्याके लिखान दिया था । ४८९ ई. में कछने हनदेवी शास्त्रवाक्य-शास्त्र एक कव्य कर्त्तव्यवाक्यको दान दिया था । इस विद्येकमें कवयविषय विद्यवर्तनी कायाना भी कछेक है । यह वाक्य-गरीब वीनाचार्य कर्त्तव्यके कीक-विषय (४९८ ई.) में वर्तनीक विद्यवर्ण ही प्रतीय होता है । कन् ४९९ ई. में वर्तनीकने पत्रवाली वाक्यकवयकी रचित वैन कछके विद्य दान विषय था विद्यकी वृत्ति कछेक शास्त्रवर्तनी काटी है । कुरविष्ट विषयवाक्य देवकवी पुनः (४९४-५९४ ई.) जो कछने कछने पुनः पुनः वृत्तिरका विद्यक विषय लिखा था । वर्तनीकोंने वर्तनीकको विद्यवर्तनी कछने पुनः पुनः वृत्तिरका वैन कछके विद्य दान विषय था । एक स्वात्मने लिखा है कि इस गरीबके हनदेवी म्हापुराण विद्येकके वाक्य कवय देवके कवय लिखार ने ।' केकरके विद्याकव पुनः-का वैन वर्तनीकने उद्य कव्य विद्याकवीको भी कछने दान मिले थे । पत्रक और कवय

प्रतिस्पर्धकि बीच भी उसने अपने राज्यकी शक्ति और समृद्धिको अक्षुण्ण रखा । उसका शासन प्रबन्ध भी उत्तम था ।

उसका पुत्र दुर्विनीत कोगुणी (४८२-५२२ ई०) गगवदाया एक महान् नरेश था । वह बड़ा प्रतापी, महत्वाकांक्षी, बोर, विद्वान्, साहित्यरमिक और गुणियोका आदर करनेवाला था । स्वगुरु आचार्य पूज्यपादका पदानुसरण करनेमें वह अपने-आपको धन्य मानता था । महाकवि भारवि भी कुछ समय तक उसके दरबारमें रहे और उसने उनके किंगतार्जुनीयके १५वें सर्गपर एक टीका भी लिखी । गुरु-द्वारा रचित पाणिनि व्याकरणकी शब्दावसार टीकाका कानड अनुवाद और प्राकृत वृहत्कषाका संस्कृत अनुवाद भी उसने किये जाताये जाते हैं । कोगलि नामक स्थानमें उसने चैन्नपादर्वनाथ वसदिका निर्माण कराया था । उससे कई ताम्रपत्र मिले हैं, गुम्भरेडिपुर ताम्रशासन उसके राज्यके ४०वें और सम्भवतया अन्तिम वर्षका है । कन्नड भाषाके प्रारम्भिक लेखको और वक्तियोंमें भी दुर्विनीतकी गणना है । चालुक्यवोर विजयादित्यके साथ दुर्विनीतने अपनी कन्या विवाह दो थो किंतु चण्डदण्ड त्रिलोचन पल्लवके साथ युद्धमें विजयादित्यकी मृत्यु हो जानेपर दुर्विनीतने उक्त पल्लव-नरेशको बुरी तरह पराजित करके बदला लिया और अपने दोहित्र जयसिंह रणराग विष्णुवर्धनको उसके पिताके सिंहासनपर स्थापित किया । भुजग पुन्नाटकी पीथी और स्कन्द पुन्नाटकी पुत्रोंके साथ अपना विवाह करके दुर्विनीतने पुन्नाट प्रदेशको दहेजमें प्राप्त किया था । अपने पराक्रम और विजयोंके द्वारा उसने पूर्व पश्चिम दोनों दिशाओंमें राज्यका विस्तार करके साम्राज्यकी स्थापना की । वस्तुतः अपने समयमें दुर्विनीत गंग दक्षिणापथका सर्वाधिक दक्षिणशाली सम्राट् था । पुन्नाट देश जो उसके राज्यका अंग हो गया था, जैनधर्मका प्राचीन कालसे ही एक प्रमुख केन्द्र था । जैनाचार्योंका एक प्रसिद्ध सघ, जिसमें हरिवंशकार जिनसेन हुए हैं, पुन्नाट सघके नामसे ही प्रसिद्ध था । दुर्विनीतके प्रधान धर्म एव विद्यागुरु पूज्यपाद देवनन्दि जैनधर्मके सर्वमहान्

नवकाम शिष्टप्रिय पृथ्वीकोंगुणि हुआ । इसे वृद्धावस्थामें राज्य मिला था । यह राजा परम जैन था, सन् ६७० ई० में इसने जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया था और जैनगुरु चन्द्रसेनाचार्यको दान दिया था । ये आचार्य सम्भवतया पचस्तूपान्वय शास्त्राके थे और स्वामी धीरसेनके दादागुरु थे । सन् ७०० ई० का शिवमारका हीरेमय ताम्रशासन मिला है जिससे गगोंके पूर्व इतिहासपर प्रकाश पड़ता है और जिसमें गग दुर्विनोत्त और उसके गुरु देवनन्दो पूज्यपादका भी उल्लेख है । ७१३ ई० का उसका एक अय्य अभिलेख मिलता है । उसने उपरान्त उसके पुत्र राचमल्ल एरे गगका अल्पकालीन शासन रहा प्रतीत होता है, तदनन्तर शिवमारका पोत्र श्रोपुरुष (७२६-७७६ ई०) राजा हुआ ।

दुर्विनोत्तके उत्तराधिकारी और श्रोपुरुषके उपरोक्त पूर्वज गगनरेश चालुक्य नरेशोंके प्रायः अधीन रहे, किन्तु उनके राज्यविस्तार एवं राज्यकी शक्ति और समृद्धिको विशेष क्षति नहीं पहुँची । चालुक्य नरेश गंग राजाओंका बहुत आदर करते थे । यह युग शान्तिपूर्ण रहा, अनेक विद्वान् जैनाचार्योंने ६ठीं-७वीं शताब्दीमें जैनधर्मकी प्रभावना की और महत्त्वपूर्ण साहित्यका सृजन किया । गगराज्यमें निवास करनेवाले अथवा गगनरेशोंसे सम्मान और प्रश्रय पानेवाले इस कालके जैनगुरुओंमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं— पूज्यपादके शिष्य गुणनन्दि शास्त्रब्रह्म जिन्होंने जैनद्र प्रक्रियाकी रचना की (ल० ५५० ई०) नवशब्दवाच्यके कर्त्ता वक्रग्रीव (ल० ५७५ ई०), त्रिलक्षण कदघनके कर्त्ता पात्रकेशरि (५७५-६२५ ई०), नवस्तोत्रके रचयिता और मदुरामें द्रमिलसषके संस्थापक वज्रनन्दि (५८२-६०४ ई०), समतिसूत्रके टीकाकार सुमति देव (ल० ६०० ई०), कवि दण्डो द्वारा प्रदत्त तथा चूडामणि शास्त्रके कर्त्ता श्रीवधदेव (६००-६२५ ई०), ज्योतिषाचार्य गर्गाचार्य और श्रृपिपुत्र (६५० ई०), पचस्तूपान्वयके गुरु वृषभनन्दि (६५० ई०) तथा चन्द्रसेनाचार्य (६७० ई०) आदि । परमारमप्रकाश आदिके कर्त्ता अपभ्रंशके महाकवि जोइन्दु, सुशोचनाकृपाके

आदि कई स्थानोंके भग्न जैनमन्दिरोंका जीर्णोद्धार हुआ। गंगोंके अधीनस्थ
 वाणनरेश भी जैनधर्मके भारी भक्त थे। ७५० ई० के लगभग वल्लभलई-
 में जैनमुनि अज्जनन्दिने आचार्य भानुनन्दिके शिष्य और वाणनरेशके गुरु
 देवसेनकी मूर्ति स्थापित की थी। इस समयके लगभग थवणवेलगोल प्रदास्ति-
 के आचार्य प्रभाचन्द्र एक महान् धर्मप्रभावक एवं राजमान्य गुरु थे।
 विमलचन्द्र, वृद्धकुमार सेन, परयादिमल्ल, सोरणाचार्य, पुष्पसेन, अनन्त-
 कीर्ति प्रथम, वृद्ध अनन्तघोर्य, महान् नैयायिक स्वामी विद्यानन्दि आदि
 इस कालमें वर्णाटक देशके प्रसिद्ध जैनगुरु थे। नरमिहपुरा ताम्रघासनके
 द्वारा इस राजाने तोल्ल विषयके जिनमन्दिरको दान दिया था। ७७६ ई०
 में उसने श्रीपुरके पार्श्व जिनालयके लिए दान दिया, सम्भवतया इसी अव-
 सरपर उक्त जिनालयमें राजाके समक्ष ही स्वामी विद्यानन्दिने अपने प्रसिद्ध
 श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्रकी रचना की थी। इसी वर्ष इस नरेशने निर्गुण्ड प्रदेश-
 में स्थित पोण्णलिस्यानके लोकतिलक-जिनालयको कई ग्राम प्रदान किये।
 इस जिनमन्दिरका निर्माण कदच्चि नामक राजमहिलाने कराया था जो
 पल्लवाधिराजकी पुत्री थी और निर्गुण्डराज परमगुलकी रानी थी। इस
 निर्गुण्डराजक पिताके गुरु विमलचन्द्राचार्य थे जिन्होंने इसी गगनरेश श्रीपुरुष
 'शत्रुभयंकर' की राजसभाके द्वारपर परवादियोंके प्रति शास्त्रार्थका खुला
 चैलेंज लिखकर लगाया था। इन्हींके किसी शिष्य-प्रशिष्यको उपरोक्त दान
 दिया गया प्रतीत होता है। महान् तार्किक स्वामी विद्यानन्दिका साहित्यिक
 जीवन और आचार्य-काल भी इसी वर्षसे प्रारम्भ होता है। श्रीपुरको ही
 उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया था क्योंकि इसी समयके लगभग उस
 स्थानके निकट शृगेरीमें शंकराचार्य और उनके शिष्य सुरेश्वर अपने वेदान्त
 दर्शन एवं नवीन धार्मिक आन्दोलनकी प्रधान पीठ स्थापित कर रहे थे।
 विद्यानन्दिके प्रभाव, प्रतिभा, सहिष्णुता एवं सौजन्यके कारण ही शंकरा-
 चार्य और उनके सगठनका सारा कोप वीरोंको सहन करना पड़ा, जैनोंके
 साथ उनका सौहार्द बना रहा।

सन् ७३० ई. में ५ वर्षों के ऊपर राज्य करनेके उपरान्त योशुसे
 राज्यका परिष्कार करके और पुनः विजयार द्वितीय ईवीउकी विजय
 केर केन्नुदकीके निजट कछाडीय भागकेने करने बर्मकावमें देव देल
 विजय। राज्यवतया ७८८ ई. के समय कछाडी मृत्यु हुई। योशुसे
 और पुनः दे, विजयार द्वितीय ईवीउ दुम्भार एवरल और विजयारल।
 निजके उपरान्त विजयार द्वितीय ईवीउ (७३५-८१५ ई.) राज हुआ।
 वह इन समय मृदा हो गया था जिसे राज्यकालमें ७५४ ई. में ही
 वह दुम्भारका शाहीय पादक था। उसके विजयारल देवी ही राज्य-
 कृष्णों में मृद-मुद हुआ। मृकने करने चाई नीलि द्वितीयकी कारण
 राज्य हस्तगत किया। विजयार नीलि का सहमक था वह मृकने
 बर्मकावमें बाध्यता किया और ७८४ ई. में विजयारकी हस्तगत कटी
 कर दिया। उक्त अधिकारी और राज्य कछाडीके कछाडीमें ही गीता।
 राज्यमें ७८४-८८ ई. में मृकने पुनः राज्य बर्मकाविका कालक था,
 उपरान्त विजयारका पुनः पुनः राज्य बाध्यता करने जिसे और राज्य
 कछाडी रहा। उक्त राज्य दुम्भार एवरल कछाडी सहमक था। ७५४
 ई. में राज्य कालक केनेर उच्छृष्ट नीलि कृष्णों के विजयारकी मृदा कर
 दिया और वह कछाडी केनेर कालकेनेर उच्छृष्ट कालक और ईवीके
 निज-बर्मकी उपरिष्ठ किया। नीलि के निज नीलि की कछाडी की और
 कछाडीके राज्य निज कछाडी निज उच्छृष्टों के कछाडी कटी
 कला किया। ८१ ई. के समय वह फिर मृक हो गया। उसके
 नीलि-कछाडी केनेर पुनः पुनः राज्य बाध्यता और चाई दुम्भारकी कृष्ण
 ही कटी गीता हीती ई. और नीलि कछाडी कछाडी तीता चाई निज-
 निज एवरल कछाडी कछाडी था। सन् ८१५ ई. में विजयारकी
 मृकने कछाडी चाई निजकाविका राजा हुआ जिन्हे दुम्भार कछाडी मृक
 ही कटी और कछाडी पुनः राज्यकाल कछाडी समय (८१५-८५१ ई.)
 पुनः बर्मकाविका कछाडी हुआ। उसके बाद ही-काव विजयारका द्वितीय

पुत्र और मारसिंहका छोटा भाई पुष्पापति प्रथम अरराजित भी राज्यके कुछ भागपर अधिकृत हुआ और गंगवश फिर एक बार दो शाखाओंमें विभक्त हुआ ।

इसमें सन्देह नहीं कि शिवमार भारी योद्धा और पराक्रमी था, जैन-धर्मका भी वह महान् संरक्षक एवं भक्त था । वह स्वामी विद्यानन्दिका आश्रयदाता था, उसका पुत्र मारसिंह और मतीजा सत्यवाक्य भी उनके भक्त थे । इन गगनरेशोंके नाम-सकेत विद्यानन्दिके विभिन्न ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं । शिवमारने श्रवणवेलगोलके छोटे पर्वतपर एक सुन्दर जिनालय भी बनवाया था जिसे शिवमारन बसदि कहते हैं । ७९७ ई० में युवराज मारसिंह लोकत्रिनेत्रके सेनानायक श्रीविजयने श्रीविजय नामक सुन्दर जिनालय राजधानी मायपुरमें बनवाया था, उसके लिए युवराजने विपुल दान दिया था और कुन्दकुन्दान्वयके गुप्त प्रभाचन्द्रका सम्मान किया था । ८०० ई० में युवराज मारसिंह और उसके चाचा दुग्गमारने अजनेय नामक सुन्दर मन्दिर बनवाया था । गजम दान पत्रके द्वारा इसी समयके लगभग इस शासकने जैनगुरुओंको और भी बहुत-सा दान दिया था तथा नन्दि पर्वतपर आचार्य कुन्दकुन्दका स्मारक भी बनवाया था । शिवमारके प्रातीय शासक विट्टिस और विजयशक्तिरसने भी उसी कालमें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया और उनके लिए दान दिया था । ८०१ ई० में बसवट्टिके ईश्वर जिनालयका निर्माण हुआ । ८०२ ई० में राष्ट्रकूट सम्राट् गोविन्द तृतीयने गंगराज्यमें मायपुरकी उपरोक्त श्रीविजय बसदिके लिए मन्ने दान-पत्र-द्वारा दान दिया और उदारगणके जैनगुरुओंका सम्मान किया । ८०७ ई० में राष्ट्रकूट गोविन्दके भाई कम्भने चामराजनगर दानपत्र-द्वारा अपने पुत्र शक्रगणकी प्रार्थनापर तालवननगरकी श्रीविजयबसदिके लिए कुन्दकुन्दान्वयके कुमारनन्दिके प्रशिष्य और एमाचार्यके शिष्य वर्धमान गुरुको दान दिया था । गोविन्दके कदव दानपत्र (८१२ ई०) से विदित होता है कि उस समय गंगराज्यमें राष्ट्रकुर्गोंका प्रतिनिधि चाकिराज

या विषयों को कार्यवाहर पत्राग्रे बीजकामके बीक-मन्दिरके निम्न दर्जन
 संकेतके मुख कार्यकोटिमें बाल दिया था । विषयवार मारी निम्न नीर पुणे
 भी था वह पञ्चमयिके मन्त्रिपुत्रका प्रकरणका परिभाषा नीर पञ्चम
 मन्त्रका कर्तव्य भी था ।

[illegible][illegible]

पर्वतपर गुफाएँ निर्माण करायों और उनमें जिन-प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करायों ।
 उसके गुरु बालचन्द्रके शिष्य आर्यनन्दि थे । सम्भवतया यही पञ्चालमालिनो-
 कल्पके रचयिता थे । राचमल्लके बाद ऐरंग नौतिमार्ग प्रथम राजा हुआ ।
 उसकी बहन जयव्ने पल्लव नोलम्बरराजसे विवाही थी । अपने पुत्र युवराज
 बृहग (भुतुग) का विवाह राष्ट्रकूट अमोघवर्षको कन्या चन्द्रवेलम्बाके साथ
 करके उसने राष्ट्रकूटोंको भी मित्र बना लिया, यह मैत्री स्थायी हुई । बूड-
 सूर शिलालेखमें इस नरेशको 'परमपूज्य अर्हद्भट्टारकके चरणकमलोंका भ्रमर
 लिखा है, उसी शिलालेखमें युवराज भुतुगेन्द्र धुत्तरस गुणतुरंगको भी परम
 जैन लिखा है । उसी शिलालेखके निकट राजन् नौतिमार्गकी जैन सल्लेखना-
 का प्रस्तरांकन भी मिलता है जिसमें उनका विश्वासपात्र सेवक अगस्थ
 उन्हें सम्हाले हुए बैठा है और सम्मुख शोकमग्न युवराज खड़ा है । इस
 राजाने अनेक युद्धोंमें धीरताके साथ विजय भी प्राप्त की बतायी जाती है,
 सम्भवतया वे युद्ध इसने राष्ट्रकूटोंकी सहायताके लिए किये थे । नौतिमार्गने
 ८५३-८७० ई० तक राज्य किया । युवराज भुतुगेन्द्र सम्भवतया पिताके
 समाधिमरणको देखकर विरक्त हो गया था, अतः नौतिमार्गके पश्चात्
 उसका दूसरा पुत्र राचमल्ल सत्यवाक्य द्वितीय (८७०-९०७ ई०) राजा
 हुआ । यह भी सम्भव है कि भुतुगेन्द्र राचमल्लका छोटा भाई हो और क्यों
 कि वह स्वयं निस्सन्तान था अतः उसके समयमें ही वह युवराज कहलाया
 हो । राचमल्लके शासन-कालमें भुतुग कोगुनाड और पुन्नाडका शासक रहा
 प्रतीत होता है । इस राचमल्ल सत्यवाक्य द्वितीयने सन् ८८७ ई० में वेलूर
 साम्राज्य शासन-द्वारा पेन्नेकडगके स्वनिर्मित सत्यवाक्य जिनालयके लिए शिष्य-
 नन्दि सिद्धाभट्ट भट्टारकके शिष्य सर्वनन्दिको बारह ग्राम प्रदान किये थे ।
 इन दोनों ही भाइयोंने वेङ्गिके चालुक्यों, पाण्ड्यों, पल्लवों आदिके साथ
 अनेक युद्ध किये और प्रशसनीय विजय प्राप्त की । राचमल्लके जीवनमें ही
 भुतुगकी मृत्यु हो गयी अतः भुतुगका पुत्र एयरण्य ऐरेयग नौतिमार्ग द्वितीय
 सत्यवाक्य महेन्द्रान्तक युवराज हुआ और ताऊकी मृत्युके बाद (९०७ ई० में)

राजा हुआ। बनवा विवाह बाबुर-छत्रपुषी के बाल पुत्र
 का। बनवाके विवाह कुछ करके बनने लगेक पुर्न बोले थे। इन राजकी
 मुद्रास्ति और औरमुद्रा के विन-बनियेकी राज दिने थे। इनका पुत्र ही
 बनवाविवाह हीरकबेईन नरविद्र बनवापन का इनके बीने बन ही
 राज दिना, १२ ई के समय इनकी मुद्रा ही गरी। इनके पुत्र हीर-
 बोनी विनबनयापन थे। इन राजाके ही पुत्र थे, राजका बनवापन
 तुनीन और मुद्राबन बनै। राजका बनवापन तुनीन १९ के ११८ ई
 तक राजा था। इनके बीनेके बाबुरकीने मुद्रा न पछिति मिना। एही
 समय राजपुत्र हुन तुनीनने राजका पछितिकी मुद्रा काय और ही राजका-
 पर की जायका मिना। मुद्रा न राजका काय था। राजपुत्र राजपुत्र
 की मुद्राका ही बनवा बाई मुद्रा तुनीन बन बनै राजा हुआ। ११८-११९
 ई तक बनने राजा मिना। मुद्रा न विवाह राजपुत्र बनवापन तुनीनकी
 पुत्री और हुन तुनीनकी गरी बाइन राजाके काय हुआ था। राजका मुद्रा
 विवाह बनवापनकी नायक राजपुषीके हुआ था। राजपुत्र राजपुषीके
 काय इनके मुद्राकी, बैनकी, विद्रा न बन बाई विन राजाके राजा मिने
 थे। इन राजा की मुद्रा पछिति था। बनके मुद्रा न इनके विन राजा की
 थी। इन एक बनवापनकी राजा का और बनवापनका राजा काय था।
 बनवापनकी और मुद्राकीने बनने लगेक राज दिने थे। बनवापनकी
 इन राजा का और राजाविनेके राजा न करकेका की करे काय था।
 एक बीने विद्राके राजा इनके राजा न करके बनने मिने ई। इन ११८
 के इनके पुत्री राजा न करे पछिति ई कि बनकी एक बन एही
 विनविननने देवी इन बनवापनकीने मिने की बनवापन कीन की का
 काय बनविन मिना था। इनके बनवापन बाबुर न विनका काय राजाके
 बीनपुत्र काय-कनकीन की बनने ई। इनके एक बन-पुत्र बननेन
 बाविन थे। इन ११ ई के राजपुत्र राजा न मुद्रा-काय राजाकीने
 विन और इनके बनवापन की राजा न करकेका बनने ई।

इस लेखसे यह भी प्रतीत होता है कि सम्भव है अपने भाई राचमल्ल तृतीय-की मृत्युमें उसका भी हाथ रहा हो । उसके कुछलूर साम्रप्यसे प्रकट है कि उसके परिवारके अन्ध व्यक्ति भी जैनधर्मके भक्त थे । राजाकी बड़ी यहम पम्बने, जो बड़ी विदुषी थी एवं पौदियर दोरपय्यकी रानी थी और गुणचन्द्र भट्टारक तथा आर्यिका नाणव्वेरुन्तिकी शिष्या थी, तीस वर्ष पर्यन्त जैन आर्यिकाक रूपमें तपस्या की थी और अन्तमें समाधिमरण-द्वारा उसकी मृत्यु हुई थी । राजाके हृदयपर इस घटनाका प्रभाव पड़ा । बुतुगके स्वयंके तथा उससे सम्बन्धित अन्य भी कई अभिलेख मिलते हैं । बुतुग द्वितीयके पश्चात् राष्ट्रकूट-राजकुमारी रेवासे उत्पन्न उसका पुत्र मल्लदेव (९५३ - ९६१) राजा हुआ । उसके अभिलेखोंमें उसे 'जिनपदभ्रमर' लिखा है । इसका विवाह अपनी ममेरी बहन, राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीयकी बन्धा वोजव्वे-के साथ हुआ था और उसके उपलक्ष्यमें मल्लका एक राजच्छत्र भी प्राप्त हुआ था । उसकी बहन सोमिदेवीका विवाह राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीयके पुत्रसे हुआ था जिससे इन्द्र चतुर्थका जन्म हुआ । राष्ट्रकूटोंके साथ कई पीढ़ियोंसे चले आते इन विवाह-सम्बन्धोंकी शृंखलाने गगनदेशकी शक्ति काफ़ी बढ़ा दी थी और इसीसे गगनदेश बेंगिके चालुक्योंकी बार-बार छका सके, पल्लवोंको दबाये रख सके और चोलाकी बढ़ता हुई शक्तिका निवारण कर सके ।

मल्लके पश्चात् उसका सौतेला भाई मारसिंह पल्लवमल्ल मोलम्ब-कुलान्तक गुप्तिगग (९६१-९७४ ई०) राजा हुआ । उसका राज्य-विस्तार बहुत बड़ा था । यह इस वंशका अन्तिम महान् नरेश था । राष्ट्रकूट गगोको अपना अधीनस्थ सामन्त समझते थे किन्तु वास्तवमें इस कालमें गगनदेश ही राष्ट्रकूट-साम्राज्यके सरक्षक हो रहे थे । मारसिंहके गगकन्दर्प, गगविद्याधर आदि और भी अनेक विरुद्ध थे । उसने मालवापर आक्रमण करके सियक परमारको पराजित किया । श्रवणवेलगोलके कूगे प्रह्लादेवस्तम्भपर उत्कीर्ण इस नरेशकी प्रशस्तिसे पता चलता है कि उसने

त्यक्त शक्तियाँ थी, राष्ट्रकूट साम्राज्यने दम तोड़ दिया था और
 कोई योग्य व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ रहा था। गग पचलदेवने,
 मारसिंहके अधीन सेन्वी विषयका शासक था और सम्भवतया
 वशसे ही सम्बन्धित था, गगराज्यके बहुभागपर अधिकार कर लिया,
 कि उसके ९७५ ई० के मूलगुह शिलालेखसे विदित होता है,
 २३ वर्षके भीतर ही चालुक्य तैलके सेनापति नागदेवने उसे
 जित करके युद्धमें मार डाला। पचलदेव मारसिंहका न्याय्य
 अधिकारी नहीं था वरन् राज्य-अपहर्ता था। मारसिंहका वास्तविक
 अधिकारी उसका छोटा भाई राचमल्ल सत्यवाक्य चतुर्थ था, पचल
 ने उसे आच्छादित कर लिया था किन्तु पंचलकी मृत्यु (९७६-
 ७७ ई०) के बाद राचमल्ल ही वस्तुतः गगराज्यका अधिपति हुआ। सन्
 ९७७ ई० के उसके दो अभिलेख नजनगढ़ और मन्दयसे प्राप्त हुए हैं।
 १२२ ई० के सिद्धेश्वर शिलालेखमें इस राचमल्लको मारसिंहका पुत्र
 कहा है। राचमल्लके राजत्वका अन्त ९८४ ई० में हुआ। गग इतिहासके
 व्याकालमें अथर्वस्या एव विपत्तियोंसे भरा यह युग राचमल्लके अद्वितीय
 चामुण्डरायके कारण अमर हो गया। चामुण्डराय सम्भवतया गगवश-
 ही उत्पन्न हुआ था। वह एक महान् राजनोतिष्ठ, सुदक्ष सेनानी, धीर
 योद्धा, परम स्वामिभक्त, कष्टज्ञ, संस्कृत और प्राकृतका महान् विद्वान्, कवि
 और लेखक, विद्वानों और कलाकारोंका प्रश्रयदाता, अद्भुत निर्माणकर्त्ता
 और जैनधर्मके सर्वमहान् प्रभावकोंमें-से था किन्तु गगोको ऐसे व्यक्ति
 का लाभ उस समय हुआ जब कि उसका सूर्य अस्ताचलगामी था। ऐसी
 विरुद्ध विषम परिस्थितियोंमें भी इस द्रुत वेगसे पतनशील वशको रक्षा एव
 अभिभावकता चामुण्डरायने सफलतापूर्वक की और साथ ही दक्षिण भारतमें
 जैनधर्मकी स्थिति भी सुदृढ़ कर दी। चामुण्डराय राचमल्ल चतुर्थका ही
 नहीं बल्कि उसके पूर्वज मारसिंह और उत्तराधिकारी रावकस गंगका भी
 राजमन्त्री और सेनापति रहा प्रतीत होता है। अनेक युद्धोंमें सराहनीय

निम्न श्राव्य करके बहने बीरबार्तव्य कमरकेठरी लीकम्प-मुल्लवर्ग यही
 बनेक निम्न श्राव्य किन्ने वे । यह बड़ा कम्पारिण और बर्तव्य का लव
 बाकुलपत्र गुणव्य अतिशयार अ वि कर्मीका रचयिता, एक भावि कर्मी-
 का प्रथमपदा पुत्रकोका देवक और शिनेन्द्रदेवका वरम बन्त था ।
 बहनेकी स्वयंविमलित बन्तर्ग भी यह बाहुता ही स्वयं वंशपुल्लका बर्तव्य
 हो सकता था । बन्नी माठाभी इच्छा पूरी करकेके निम्न बहने वृ १२८
 ई में बन्नीकनीकनी वंशके ऊपर यह पुत्रविद्ध विद्याल बन्त व बर्तव्य
 कोम्पदेव्यार बह्मवर्गिणी श्रुतिमा विर्भाव कर्तव्य भी कन्-विन्न और श्रुति-
 विद्यालकी बर्तव्यीय कर्माकर्तृ ई और बन्नी शीकिकता बन्त-वीक,
 बुद्धिमत बीरपुल्लव्यनद्वय गुहा बन्नी और विद्याल्यार्थ बर्तव्य ई ।
 बाचार्य अविच्छेद बाकुलपत्रके पुत्र वे, बही बापविद्धके भी पुत्र वे ।
 बाकुलपत्रकी श्रेयस्वर बाचार्य वैविद्य विद्याल्यकन्वर्गिणी बन्ने वीक-
 वार, विद्योत्पार भावि पुत्रविद्ध विद्याल्य-कर्मीकी रचना की थी ।

१८१ ई में पञ्चमलके छोटे भाई मोक्षिन्ध बा बाकुलका पुत्र रामव
 वंश राजा हुआ । किन्तु यह भी विस्मयान था और बहने बन्नी के
 बर्तव्यीको और एक बहने विद्याल्यका पञ्चम-वोव्य किना था । बहने
 बन्ने वंश और पञ्चमको त्वार रचनेका बन्तव्यन शक्य किना । पञ्चम-
 वंश बर्तव्यीके पुत्र बाचार्य हुम्तरेके शिष्य वीविबर्तव्य वे । कन्न
 कन्वर्गरी और कन्वर्ग्युनि कर्मीके रचयिता कन्नके पुत्रविद्ध वंशकनि
 बाकुल्य इव पत्राके बाकित वे । इन पत्राले पत्रबाली पञ्चमल्य व कन्व
 वीकवर्गिण बन्तव्य वेकुरने एक पत्रेवर बन्तव्य और बन्त किने । पञ्चम
 वंशका पञ्चम बन्तव्य कन्न विविक्त वही कन्न था बन्तव्य । कन्वर्ग्य
 १ २४ ई एक यह वीकित रहा किन्तु १ ४ ई के कन्वय ही वीकनि
 बन्तव्य करके वंशवर्ग पञ्चमका श्राव्य कर विद्य का पत्रबाली पञ्चम-
 वर बाकित कर किना था और वंशवर्गको बन्ने कन्वर्ग्यका वंश बन्त
 किना था । कन्वर्ग वंशवर्गका बन्तव्य माव नहीं हुआ । वृत्तव्य एवं पञ्च

भी एक छोटे-से उपराज्यके रूपमें चलता रहा प्रतीत होता है । रावकसग के बाद नीतिमार्ग तृतीय रावमल्ल राजा रहा प्रतीत होता है । १०४० ई० के एक शिलालेखसे ज्ञात होता है कि इस राजाके गुरु मूलसघ द्रविडान्ध्र के वज्रपाणि पण्डित थे । १०२२ ई० के एक शिलालेखसे उस समय एक गंग परमानदिका राजा होना पाया जाता है जो सम्भवतया नीतिमार्गका पू्यवर्ती उक्त रावकसग ही होगा । एक गंग राजकुमारी चालुक्य सम्राट् सोमेश्वर प्रथमकी रानी और सुप्रसिद्ध विक्रमाकदेव (१०७६-११२६ ई०) की जननी थी । उक्त रावमल्ल नीतिमार्गके बाद रावकसग द्वितीय राजा हुआ । उसकी पुत्री ही चालुक्य सोमेश्वरसे विवाही प्रतीत होती है । इस रावकसगके गुरु जैनाचार्य अनन्तधीर्य सिद्धान्तदेव थे । उसका उत्तराधिकारी एव छोटा भाई कलिगंग भी परम जैन था । सम्भवतया इसी गंगनरेशने सन् १११६ ई० में मैसूर प्रदेशसे चोलोको निकाल बाहर करके अपने स्वामी होयसल नरेश विष्णुवर्धनका साम्राज्य स्थापित किया था । इस कलिगंगके ही शासनकालमें उसका प्रधान सामन्त भुजबल गंगपरमादि षम्मदेव था जो जैनाचार्य मुनिचन्द्रका शिष्य था जैसा कि सन् १११५ ई० के उसके एक अभिलेखसे ज्ञात होता है । भुजबलका पुत्र नम्रियगंग आचार्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तका शिष्य था । नम्रियगंगके सन् ११२२ ई० के शिमोगा-तालुकके सिद्धेश्वर बसदि शिलालेखसे गंगोके पूर्व इतिहासके सम्बन्धमें अनेक रोचक तथ्य प्राप्त होते हैं । शिलालेखसे यह भी ज्ञात होता है कि इस राजाने मण्डलि विषयके एहदोर तालुकके अन्तर्गत मण्डलि पर्वतपर स्थित उस प्राचीन जिनालयका क्षीर्णोद्धार कराया था जिसे गगर्धश-नस्थापक दक्षिण और माधवने बनवाया था, जिसके लिए सभी गंग-नरेश दान देते रहे और सरक्षण करते रहे थे, जिसे कालान्तरमें काष्ठसे निर्मित किया गया था और जिसे भुजबलके पिताने पुनः निर्मित कराया था तथा जिसे भुजबलने पट्टदह बसदि (राज्यमोलि मन्दिर) नाम देकर उसे राज्यके समस्त मन्दिरोंमें प्रधान पद दिया था, और यह कि उसी बसदिको अब भुजबलके

पाल तक एक महत्त्वपूर्ण एव बलवान् राज्यशक्ति तो यह बना ही रहा । उसकी पैरवि, कैरवि, पासिण्ड, पूर्वी या कलिंगी आदि अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ हुई, गगवंशमें उत्पन्न अनेक व्यक्ति स्वयं गगराज्यके तथा अन्य दक्षिणी राज्यवंशोंके सामन्त सरदार भी रहे और इस वंशका कुलधर्म एवं बहुधा राजधर्म भी जैनधर्म ही रहा जिसके संरक्षण और प्रभावनाके लिए गगवंशके पुरुषों, स्त्रियों सामन्त सरदारा, राज्यकर्मचारियों और जनताने निरन्तर यथाशक्य उद्योग किया । फलस्वरूप जैनाचार्योंने कन्नड, तमिल, संस्कृत, प्राकृत—विभिन्न भाषाओंमें विविधविषयक विपुल साहित्यका सृजन किया, लोक शिक्षामें प्रधान योग दिया और राजाओंका पय-प्रदर्शन किया, जनताके नैतिक स्तरको उन्नत बनाये रखा और अनेक लोकोपकारी कार्य किये । साथ ही देशमें रूप एव शिल्प-स्थापत्यकी अनेक सुन्दर कला-कृतियाँ निर्मित हुईं । लक्ष्मेश्वरकी रायरचमल्ल बमदि, गगपरमादि चैत्यालय, गगकन्दर्प चैत्यालय, तलकाड और मायपुरकी धोविजय बसदि, सत्यवाक्य जिनालय, श्रवणबेलगोलकी शिवमारन बसदि आदि अनेक भव्य मन्दिर इस वंशके प्रमाण हैं ।



अनुमार चालुक्योका मूलपुरुष अयोध्यासे दक्षिण भारतमें आया था ।
 चालुक्य लोग अपने-आपको सोमवंशी क्षत्रिय, मानव्यगोत्रों और हारीश्चके
 पुत्र बतलाते थे । वराहको इन्होंने अपना राज्य-चिह्न बनाया था । ५वीं
 शताब्दी ई० के उत्तरार्धमें विजयादित्य चालुक्य नामका एक साहसी सैनिक
 रहा प्रतीत होता है जो तल्यारके द्वारा अपने भाग्यका निर्माण करना
 चाहता था । कदप्पा जिलेके मुहिवेमि नामक ग्रामको जो उस समय
 पल्लवोंके राज्यके अन्तर्गत था, उसने अपना केन्द्र बनाया और अपनी दायित
 बढ़ानी प्रारम्भ की । किन्तु पल्लवोंके हाथों युद्धमें उसकी मृत्यु हो गयी ।
 उसका पुत्र जयसिंह पिताकी मृत्युके पश्चात् उत्पन्न हुआ था । विष्णुभट्ट
 नामक एक ब्राह्मणने उसका पालन पोषण किया इसलिए जयसिंहने विष्णु-
 वर्धन उपाधि ग्रहण की । वह भारी योद्धा था और सम्भवतया राजसिंह
 और रणपराक्रमाक भी कहलाता था । युवावस्थामें महाकवि भारवि
 यह मित्र और साथी रहा था । दुर्विनीत गगने जो उस समय युवराज ही
 था, जयसिंहकी वीरता और पराक्रमसे प्रसन्न होकर उसके साथ अपनी
 पुत्रीका विवाह कर दिया था । जयसिंह पल्लवोंसे अपने पैतृक राज्यको
 जीतनेका प्रयत्न करता रहा, साथ ही महाराष्ट्रके राष्ट्रिकोंका कुछ प्रदेश
 छीनकर उसने वातापी (वदामी) को अपनी राजधानी बनाया । ऐहोल
 और अल्लतकनगर (अस्तम) उसके छोटे-से राज्यके प्रमुख नगर थे ।
 पल्लव चण्डदण्ड त्रिलोचनके साथ युद्धमें जयसिंहकी मृत्यु हो गयी । इसपर
 दुर्विनीत गगने अपने दोहित्र रणराग एरेंयप्प सत्याश्रयको, जो जयसिंहका
 एकमात्र पुत्र था और अभी नवयुवक ही था, प्रथम दिया और उसकी
 ओरसे पल्लव-नरेशपर भीषण आक्रमण किया । चण्डदण्ड युद्धमें मारा गया
 और दुर्विनीतने अपने नातो रणरागको उसके पिताके सिंहासनपर बिठाया
 और उसके राज्य एवं स्थितिको सुदृढ़ किया । इस एरेंयप्प सत्याश्रय
 रणरागके भुजगसेन्द्रकवशी सामन्त कुन्दशक्तिके पुत्र दुर्गशक्तिने पुलिगेरे
 (लक्ष्मेश्वर) के शक्तितीर्थ जिनालयके लिए भूमिदान दिये थे । रणरागका

पुन एवं उत्तरार्धिकाटी कुम्हेछी इअन बहा नार इनापी बीर डोग बाअ
 या बीर बछर इअ बाअुराअछका कुम्पुरा निअरारिअ या लगि ल
 रपना इअन बाअरिअ नीअ बीर राअ-अल्लारक पुनछी बग
 (मुवगाअ) इअन ही या । उअके राअरई वैनवईका कनीअ इअर या
 वैन-मुवगौका निअर निअर होला या बीर इनके अरैक अल्ल बाअर
 बीर कर्मकारी वैन ये । उअ ल ४६४ (अम् ५४९ ई) ई इअल्ल
 काले राअरके ११वीं बरई बहने बरने वैनवईकी बाअल अरिअरले
 बहवौकने अल्लारकनर (अल्लार) ई एक निअल्लका निअर काल
 या बीर उअके लिअ बाअ-बाअ रिअ या बीर रिअरके अरिअ बाअ
 या रिअने वनअनन बाअरके वैनारार निअल्लरिअ, रिअल्लार वैन
 बीर रिअल्लरिअके नावेल्लेअ ई । राअरानी बहानीई बी उअके काले
 एक निअल्ल बहा इअर होला ई । बहानी बीर अल्लारकनरले
 अरिअरिअ ऐलीअ बी पुनछी इअनके बरनई ही अअ अल्ल वैन वैन
 बन बहा या ।

पुनछी इअनका काल ५१२ ई ५१५ ई के लअन उअ एअ
 इअर होला ई । इन राअरने अल्लरैअ बह बी रिअ बहला बाअ ।
 बहना अरिअरिअ बीअन अल्ली रिअरिअनी मुदुअ बहने, अल्ले एअरले
 बुररिअ रअने बीर अअ अल्लर रिअ राअरिअ कअरनी बीर अल्लरिअ
 अरैअनी बहा-बहाअर अल्ले राअरका रिअर करनई ही बीला । अअके
 अल्लर अल्लर अल्ल पुन अरिअरिअ इअन एअर हुआ बीर अ
 ५१५ ई ५१७ ई उअ बहने एअर रिअ । उअ राअरने अरैक मुअ
 रिअ बीर अल्लर एअरका रिअर रिअ । रिअरकर अल्लरिअके काले,
 कौनअके बीर, अल्लरिअके काले एअर वैन बीर अल्लरिअके बुररिअ करे
 अल्ले अरैअ बीर । अअ राअर बी वैनवईका अल्लरिअ या । अम् ५१७
 ई के अल्लर बहने वैन-अल्लरिअके अरिअरिअ एअर अल्ल पुन
 पुन वैन अरिअके अल्लरिअके पुनके लिअ अल्लर बल रिअ या । अल्ले

ज्यकालमें सन् ५८५ ई० में जनाचार्य रविकीर्तिने ऐहोलके निकट गुतोमें एक जिन-मन्दिर बनवाया था और एक विशाल जैन विद्यापीठकी स्थापना की थी। ऐहोल (ऐविल्ल या आर्यपुर) में स्वयं एक बड़ा जैन मन्दिर था जिसमें सहस्र फगयुक्त पार्श्व प्रतिमा स्थापित थी। ५९७ ई० कीर्तिवर्मन् प्रथमकी मृत्यु हुई। उस समय उसके पुत्रकेशिन्, विष्णुवर्धन और जयसिंह आदि पुत्र बालक थे अतएव उनके चाचा मगलीशने राज्य-संहासन हस्तगत कर लिया और ५९७-६०८ ई० तक राज्य किया। मगलीशने कलचुरी-नरेश शकरगणके पुत्र राजकुमार बुद्धको पराजित किया और रेवती द्वीपपर अधिकार किया। सम्भवतया इसी राजाके शासनकालमें महाराष्ट्र देशके अलस्तकनगर (अल्तेम) में चालुक्योंके लघुगुप्त नामक एक उपराजाकी पत्नीने सुप्रसिद्ध जैनाचार्य भट्टाकलंक देवकी जन्म दिया था। वदामोकी प्रसिद्ध गुफाओका निर्माण भी इसीके समयमें प्रारम्भ हुआ।

मगलीशके उपरान्त उसका भतीजा और कीर्तिवर्मन् प्रथमका ज्येष्ठ पुत्र पुलकेशिन् द्वितीय सत्याश्रय (६०८-६४२ ई०) चालुक्य राज्यका स्वामी हुआ। अपने चाचा मगलीश-द्वारा राज्यापहरण कर लिये जानेके कारण उसे व्यस्क होनेके बाद कुछ वर्ष राज्यसे निर्वासित रहकर बिताने पड़े थे। सन् ६०८ ई० के लगभग कुछ शक्ति संग्रह करके उसने मगलीश-को गद्दीसे उतार दिया और उसे तथा उसके पुत्रको राज्यसे निकाल दिया। सम्भवतया इसी समयके लगभग मगलीशकी मृत्यु भी हो गयी। राज्यको गृह-शत्रुओंसे निष्कण्टक करके और अपनी स्थितिको सुदृढ़ एवं सुरक्षित करके उसने अपना विधिवत् राज्याभिषेक कराया। तदुपरान्त उसने ब्राह्मण शत्रुओं तथा राज्य-विस्तारकी ओर ध्यान दिया। पूर्वमें महेन्द्रवर्मन् पल्लव कर्णाटककी ओर बढ़ रहा था और उत्तरकी ओरसे हर्ष शिलादित्य आक्रमण कर रहा था। पुलकेशने गंगों और अलूषोंको अपना मित्र और सहकारी बनाया, उसने वनवासीके अण्णायिक और गोविन्द नामक कदम्ब नरेशोंको पराजित करके कदम्बोंकी स्वतन्त्र सत्ताका अन्त किया,

सीमा रेखा नदीको स्पर्श करती थी और दक्षिणमें समुद्रसे समुद्र पर्यन्त उसका विस्तार था, समुद्र पारके अनेक द्वीपपर भी उसका अधिकार और प्रभाव था। सन् ६३४ ई० में राजधानीमें प्रवेश करनेसे उसका सम्प्राप्ति पुलकेशी द्वितीयका सर्वप्रथम कार्य अपने गुरु जैनाचार्य रविकीर्तिजी उनके द्वारा निमित्त ऐहालके जिनमन्दिर एवं अधिष्ठानके लिए उदार दान देकर सम्मानित करनेका था। इस समय सम्भवतया यहाँ जिनो ध्वनि जिनालयका भी निर्माण हुआ था। रविकीर्ति भागे विद्वान् एव महाकवि थे। उनकी काव्य-प्रतिभाकी तुलना महाकवि कालिदास और भारवि के साथ की जाती थी। इस दानके उपलक्ष्यमें स्वयं रविकीर्तिने ही ऐहालके जिनमन्दिरमें उत्कीर्ण सम्राट् पुलकेशीजी यह विस्तृत, भाष्य एवं कलापूर्ण संस्कृत प्रशस्ति रची थी जो उक्त सम्राट् के परित्र और कार्यकलापोंके लिए हमारा सर्वप्रधान ऐतिहासिक आधार है। इस कालके सर्वमहान् जैनाचार्य अकलंकदेव हैं जो स्वयं रविकीर्ति अपर नाम रविभद्रके ही शिष्य रहे प्रतीत होते हैं। सम्राट् पुलकेशीके आदरपूर्ण प्रथममें ही उनको प्रतिभा, विद्वत्ता, धार्मिकता इस समय चमकनी प्रारम्भ हुई थी। इसी कालमें वदामी और अजन्ताके उन प्रसिद्ध गुहामन्दिरोंका निर्माण हुआ जिनमें सम्राट् के प्रथममें जैन एव बौद्ध कलाकारोंने उन विद्वद्विश्रुत भित्तिचित्रोंका निर्माण किया जो अपने कलापूर्ण सौन्दर्यके लिए अद्वितीय हैं। इन चित्रोंमें कतिपय ऐतिहासिक दृश्य भी हैं। इसी वर्ष अदूर (घारयाड) में नगरसेठ-द्वारा निमित्त जैनमन्दिरको सम्राट्ने दान दिया। सन् ६३८-४० ई० के लगभग चीनी यात्री हुएन सागने पुलकेशीके राज्य और राजधानीकी यात्रा की थी। उनके विवरणोंसे भी पुलकेशीकी शक्ति और महत्ता, राज्यका धर्म, समृद्धि और शान्ति, राजा प्रजा दोनोंमें ही विद्याओं और कलाओंकी साधना आदिका पर्याप्त पता चल जाता है। इस चीनी यात्रीके ही विवरणोंसे इस बातमें भी सन्देह नहीं रहता कि चालुक्य-साम्राज्यमें बौद्धोंकी अपेक्षा जैनमन्दिरों, उनके निर्णय साधुओं और गृहस्थ अनुयायियोंकी संख्या कहीं अधिक थी।

[illegible][illegible]

प्रतिष्ठा पुनर्द्धार कर लिया और तभी (सन् ६५३ ई० के लगभग) अपना विधिवत राज्याभिषेक कराया । तदनन्तर भी उसे प्रायः पूरे जीवन-भर युद्धोंमें रत रहना पड़ा और नायद इसीलिए वह रणरसिक भी कहलाता था । पत्न्य ही उसके सबसे बड़े शत्रु थे । उनके विरुद्ध उसने पाण्डुपनरेश पराक्रुश मारवर्मन्को मित्र बनाया, गंग चालुक्योंके पुराने मैत्री सम्बन्धको दृढ़ किया । कलस्यरूप उसने पहलवोंको एकपै बाद एक युद्धमें पराजित किया । गंगोकी सहायतासे ही उसने पल्लव नरसिंहवर्मन् प्रथमको चालुक्य राज्यमें निवाल बाहर किया और उसके पुत्र महेन्द्र-वर्मन् द्वितीयको भी बुरी तरह पराजित किया । महेन्द्रवर्मन् द्वितीयके उत्तराधिकारी परमेश्वरवर्मन्को विलिङ्गके युद्धमें चालुक्य सम्राट्को औरसे भूयिष्क्रम गंगने बुरी तरह पराजित किया और उसमें उग्रोदय नामक प्रसिद्ध रत्नहार छोना । दक्षिणकी ओरसे पाण्डुपाने पल्लवोंपर घावा किया और स्वयं विक्रमादित्य पल्लव-नरेशका पीछा करते हुए कावेरी तटपर उरैयूर तक जा पहुँचा और वहाँ अपनी छावनी डाल दी । विक्रमादित्यने अपने आज्ञाकारी भाई जयसिंहको लाट देशका शासक बनाया । विक्रमादित्यको युद्धोंसे इतना विराम नहीं मिला जो वह विशेष शांतिसे कार्य कर सकता । किन्तु वह भी अपने पूर्वजोंकी भाँति जैनधर्मका पोषक था और पूज्यपाद अकलंकदेवको अपना गुरु मानता था ।

महाराष्ट्र देश और चालुक्य राज्यके अन्तर्गत अलप्तकनगरमें सम्भवतया चालुक्य वंशकी ही एक शाखाके नृपति लघुहर्षके पुत्र अकलंकदेवने ८ वर्षकी आयुमें ही ब्रह्मचर्य ग्रहण ल लिया था, तदनन्तर रविकीर्तिके ऐहोल विद्यापीठमें और कन्हैरीके बौद्ध विहारमें क्रमशः जैन एवं बौद्ध दर्शनोंका गम्भीर अध्ययन किया । लगभग बीस वर्षकी आयुमें उन्होंने मुनि दीक्षा ले ली । सम्राट् पुलकेशी और विक्रमादित्य प्रथमके आदरपूर्ण उदार प्रथममें उन्होंने अपने विशाल अध्ययन, अद्वितीय प्रतिभा एवं उद्भट विद्वत्ता-द्वारा भारतीय विद्वत्समाजमें शीघ्र स्थान प्राप्त कर लिया था । जैन

सिद्धान्त ब्रह्मन व्यावसायिक व्याकरण विविध भारतीय दर्शनों का विविध
 विषयों में से निष्कासित है। वेद व्यासके छोटे से इतने भारी प्रतिपादक से कि
 वह 'अनन्तक व्यास' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। उत्तारार्धरात्र्यातिथि ब्रह्मचरी,
 व्यासविनिर्वाचन विद्विषविनिर्वाचन कवीकृत्य प्रभावर्षाह् का वि विवेक
 प्रसिद्ध म्हात्मा ब-बीके से प्रमेया से। बीड्याचार्य वर्ममूर्ति भारतभूमीनगर
 कर्जुहरि और मीमांसा दर्शनके मुख्यकर्ता कुमारिकल्लू उनके समकालीन
 एवं प्रतिष्ठानी थे। अककक वैराज्यके आचार्य से और बहुतों 'वै' भारी
 की कला कलकल किया जाता था। विद्वान्मिरा काहकतुन कर्जु अन्त
 नुन नागदा था और बलने कर्जु पुष्पनाथ करारि ब्रह्म की थी। कल
 विद्वान्मिराके बंधन बाहुकन-नरेन्द्रके बन्धिकाओंमें अकककका कलक
 पुनकार समसे हुआ है। सम्भवतया १४१४ ई में जब पुनकीकी
 रत्नकीके साथ मुद्राओं बन्धना हुआ था और राज्यमें अधाति की अक-
 कककेव कल कर्जु विद्वान्मिराके बन्धन आचार्य करके और वैराज्यके
 कर्जु करके कर्जुके विवेकका अन्त कर रहे थे। कर्जु १४१ ई से से
 कर्जुकेके होकर कर्जुपर सिद्ध कल वैराज्य राज्यानी रत्नककनुरके
 कलकने कर्जु हुए थे। उत्तमकील विद्वान्मिराके विद्वान्मिराके बीड
 पुनकीकी पुनकीकी स्वीकार करके १ मास वर्षमें बीड विद्वान्मिराके साथ ग्हा
 अकककने आचार्य किया और कर्जु अर्थात् किया। कलकक विद्व-
 कील की हो गया और कर्जु इसी समय पुनकीकीके राज्यमें आचार्य
 की कर्जु कीन कर्जु था कर्जु कर्जुपर आक्रमण कर दिया। विद्वान्मिरा
 मुद्राओं म्हात्मा गया किन्तु विद्वान्मिराकी उत्तरदा और कलके ब्रह्मचरी
 वैराज्य बाहुकनके बारण्य ब्रह्म वैराज्यके विर प्रवीण न कर गया और बारण्य
 कील गया। कर्जुके बाद-विद्वान्मिरा के कलककने अककककी 'कर्जु' कर्जु
 प्राप्त हुई। कुछ वर्ष कर्जुकेव कल से अककके कर्जुके कीले ही कलके विद्व-
 बाहुकन ब्रह्म विद्वान्मिरा केव ब्रह्मचरीकी राज्यमें कर्जुके कलकी
 कर्जुके काकिने बाहुकनकीका विवरण हुआ। से इस कलके कर्जु-

महान् जैनाचार्य थे ।

६७८ या ६८० ई० में विक्रमादित्यकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र विनयादित्य (६८०-६९६ ई०) गद्दीपर बैठा । उसके राजगुरु देवगणके चपरोक्षत आधाय पूज्यपाद अकलकके गृही शिष्य निग्वद्य पण्डित थे जो भारी विद्वान् थे । रविकीर्तिके उपरान्त ऐहोलके विद्यापीठकी अध्यक्षता अकलकको प्राप्त हुई थी, उनके पश्चात् उनका शिष्य-समुदाय उन्नत ज्ञान-केन्द्रका सफलतापूर्वक संचालन करता रहा । विनयादित्यने पल्लव नरेश नरसिंहवर्मन् द्वितीयको युद्धमें पराजित किया, कावेर, पारसीक और सिहल-नरेशोंसे राज्य-कर वसूल किया और उत्तरापथके प्रभु, सम्भवतया कन्नौजके यशोवर्मन्को भी पराजित किया । अन्तिम विजयका प्रधान श्रेय युवराज विजयादित्यको है । गंग और अलूप राजे चालुक्य-सम्राट्के सहायक थे और उसे अपना अधिपति स्वीकार करते थे । तत्पश्चात् विजयादित्य द्वितीय (६९७-७३३ ई०) राजा हुआ । पल्लवोंके विरुद्ध किये गये युद्धोंमें उसने अपने पितामह और पिताकी ओरसे सहायनीय भाग लिया था । एक युद्धमें पाण्ड्य-नरेशने उसे बन्दी भी बना लिया था किन्तु वह निकल भागा और उसने अपने शत्रुओंका दमन किया । पूज्यपाद अकलककी परम्पराके उदयदेव पण्डित इस सम्राट्के राजगुरु थे । सन् ७०० ई० में इस नरेशने उन्नत गुरुकी शखजिनेद्र मन्दिरके लिए दान दिया था । इसी समयके लगभग राजधानी वातापीमें भी एक दानसूचक कल्लड़ी जन शिलालेख अंकित कराया गया । इस नरेशके हलुगिरि शिलालेखमें जैनतीर्थक्षेत्र कोप्पणका उल्लेख है । अकलकके सधर्मा पुण्यसेन और उनके शिष्य विमलचन्द्र तथा कुमारनन्दि और अकलकके प्रथम टीकाकार बृहत् अनन्तवीर्य भी इसी कालमें और सम्भवतया इसी नरेशके प्रश्रयमें हुए थे । ७२९ ई० में उत्कीर्ण लक्ष्मेश्वरके शिलालेखसे विदित होता है कि विजयादित्यने पूज्यपाद अकलककी शिष्य-परम्पराके गुरुओंको पुलिगेरेके जिनमन्दिरके लिए ग्रामदान दिया था । उसीके शासनकालमें

७२६ ई. में विक्टोरिया नामक एक राजमाता स्वस्थिने मुम्बईके एक
 जिलास्वकी पुण्यक राज रिया । राजाकी कौटी राज कुंजुस गहारेटीने की
 एक पुनर विनायक निर्वाज कराका था । इसी समयमें पुनराज विनायक
 ने कधीक बालक वरपेकरवमन् द्वितीयपर आक्रमण किया और बहते
 कर समूह किया । पिताकी मृत्युपर बड़ी आकुल-राज्यका अविधि हुआ ।
 विनायकविना द्वितीय (७३३-७४४ ई.) की अपने पूर्वजोंकी भाँति वन-
 बर्जका बल या और बलबर्जकी वरपराके नियम वरिष्ठ अपने राजपुत्र
 थे । वे जारी जारी और बिलाल थे । राजाने अंतर्विवाह्य भाँति वरिष्ठों-
 का बीजद्वार कराका और वनपुत्रोंकी राज रिया । बहते बहते
 विनायके बहतेने अंतर्विवाह्य आक्रमण करकेका बल किया किन्तु
 आकुल पुनरेकीने की एक कंधी काह राजाका उत्पन्नका राजक या
 और विनायकविनायका बालक या कर्तु बलबलपुनरेका बीजे करा रिया ।
 इसपर राजाकीने बहते 'अविनायकाय' कहाकि की । अपने काल वरिष्ठों-
 बर्जकी की पदाधिक किया एवं कधीके बहते किया और गहारे
 वरिष्ठोंकी राज रिया । इस आक्रमणमें बहते पुन बीजवर्जने की बल-
 नीय राज किया था । बीजवर्जन् द्वितीय (७४४-७५७ ई.) इस कंधक
 अविनायकरीक था । अपने समयमें आकुलके राजपुत्र आकुलकी भाँति
 बहुत बह की थी । ७५६ ई. में राजपुत्र वरिष्ठकी बीजवर्जकी
 पदाधिक करके आकुल-राज्यको विनायक कर रिया और ७५७ ई.
 में राजाकीने वरिष्ठकी आकुलके राज्यका बल हुआ । बीजवर्जन् विना-
 यक था । बहते थाका बीज वरपराकी अविधिमें बल- बीजवर्जन् द्वितीय,
 एक बल विनायकविनायक पुनीय अक्रमण बल और विनायकविनायक पुनरे
 राजपुत्रके बहते बीज बलपरी या बलपराकीकी भाँति बहते रहे ।
 अविनायके पुन एक द्वितीयने १०वीं राजाकीने बलपराकी राजपुत्रका अक्रमण
 करके आकुल-अविनायक पुनपराकर किया और अविनायके बलपराकी
 आकुल-बलपरी स्वाका की । राजाकीने आकुल बीजवर्जके द्वितीय राजपरी

हुए भी शैव वैष्णवादि धर्मोंके प्रति उदार और सहिष्णु थे। बौद्धधर्म कालमें पतनोन्मुख था।

वेंगिके पूर्वी चालुक्य—आध्र देशपर पहले इक्ष्वाकुओं फिर लकायनों और अन्तमें विष्णुकुण्डिनोंका शासन रहा था। सन् ६१५ ई० चालुक्य-सम्राट् पुलकेशी द्वितीयने आध्र देशकी विजय करके अपने पुत्र कुब्जविष्णुवर्धनको उसका प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था। वेंगि देशकी राजधानी थी। पुलकेशीके अन्तिम वर्षोंमें ही वेंगिके चालुक्य शासकोंसे प्रायः स्वतन्त्र हो गये थे। नाममात्रके लिए वे उसके उत्तराधिकारियोंके अधीन रहे किन्तु ८वीं शतीके प्रारम्भसे वे सर्वथा स्वतन्त्र हो गये। कुब्जविष्णुवर्धनसे प्रारम्भ होनेवाले इस वंशमें लगभग २७ राजे हुए और उन्होंने लगभग ५०० वर्ष तक आध्र देशपर राज्य किया। कुब्जविष्णुवर्धन स्वयं बहुत योग्य और चतुर शासक था, उसने ही अपने वंशकी विमली प्रकार सुदृढ़ कर दी थी। चालुक्योंकी इस पूर्वी शाखामें भी लवणकी भांति ही जैनधर्मकी प्रवृत्ति थी। कुब्जविष्णुवर्धनकी रानी अपने पतिसे भी अधिक जैनधर्मकी भक्त थी, इस धर्मकी प्रभावनाके लिए उसने कई ग्राम भेंट करवाये थे। कुब्जविष्णुवर्धनके पश्चात् जयसिंह प्रथम, विष्णुवर्धन द्वितीय, जयसिंह द्वितीय और विष्णुवर्धन तृतीय क्रमशः राजा हुए। अन्तिम नरेयाने जैनाचार्य कलिभद्रका सम्मान किया और उन्हें भूदान दिया था। उसके पुत्र विजयादित्य प्रथमकी महारानी अय्यन महारानीने ७६२ ई० में उक्त दानपत्रको पुनरावृत्ति की थी। तदुपरांत विष्णुवर्धन चतुर्थ (७६४-७९९ ई०) वेंगि राज्यका स्वामी हुआ। राष्ट्रकूटोंके साथ भी उसके युद्ध हुए किन्तु वह उनके अधीन नहीं हुआ। उसके वैरुद्ध आक्रमणमें सहायता करनेके लिए ही राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीयने गजनिमवार द्वितीयको बन्दीगृहसे मुक्त किया था। विष्णुवर्धन चतुर्थ जैनधर्मका बड़ा भक्त था। इस कालमें विजयापट्टम् (विशाखापत्तनम्) जिसे श्री रामतीर्थ या रामकोंड नामक पहाड़ियोंपर एक भारी जैन

कमलुटिच बैंगु विद्यालय था । विविध (बाध्य) देखके रॉडि ड्रोवनी
कमलुटिच नुमिने भित्त यः रात्रिबिरि पर्वत कनेक बैंगुहामनिरों, शिवायों
एवं कनेक बायिक हूटिनीधि नुपेवित्त था । कनेक मिडलु केनानुनि बाई
निवात बगठे थे । विविध विद्याया एवं विपबोकी कनेक पिछाके बिर यः
कनेकन एक मडालु विद्यापीठ था । बैंगिके बागुन-मरीपोंके तौरकन एवं
प्रपबोंके यः कनेकन कने-कनेक गडा था । इत कनेक केनाचन बीजनि
एवं विद्यापीठके प्रकाशार्थ थे । यः बागुनद बाधि विविध विपबोंके
निष्ठात के कनेक मडालु विपबुवन कनेक करवोंकी नुमा करनी थे । इन
बाधनके प्रकाश विपबु बाधित्वाचार्य थे जो बागुनद एवं विमिरिबाधनके
के कनेक विडलु थे । कनेक १९९ ई के कुछ नुर्ष ही कनेकन कने नुर्षविड
केककनेक कनेककनेककी रकन ही थी । कनेक-प्रकाशितके ताड ई कि
कुछ कनेककी बाधोने बैंगिकी विपबुवनके ही बाधनकने और कनेकने
रका था ।

तत्पुत्रराज्य विजयपतिराज द्वितीय कुम्भ (४९९-८४७ ई), कर्क-
विष्णुवर्धन चौथम विजयपतिराज द्वितीय (८४८-८९२ ई) इत्यादि राजा
हूय । तत्पुत्रकुम्भ त्रितीय और कलसे पुत्र बजादु अमोघवर्धने बाद-बाद
सैनिकर साम्राज्य करके पूर्वी बालुचखोको पराजित किया और कई राज्य
जाने बखील कर किया था । तत्पुत्रराज बालुच और बबभ (८९९-९९९
ई) राजा हुआ । यह तत्पुत्रकुम्भ द्वितीयका प्रसिद्धपुत्री था । जीनके
कलसप्रधिकारी विजयप्रतिराज बालुचकी कुम्भ ६ बखीलेने ही ही बनी अमर
बबभ बबभ (९२२-९९ ई) राजा हुआ । तत्पुत्रराज भीम द्वितीय और
द्विज बबभ द्वितीय राजा हुए । बबभ द्वितीय बजा प्रसारी और बखीया
बरीय था । १४९९-१५ ई तक इनने राज्य किया । जाने पुत्रबोली
ही बखी यह भी बखीबबभ। बौयक और तैरकक था बखीक इन विजय
बद राज्य पूर्वी बालुच-बरीयके कुछ जाने ही बजा हुआ था । उनके
साथबनानके हीम बखीकक राज्य हुए हैं भी यह बखीबखी करते हैं कि

१०वीं शती ई० में जैनधर्म आध्र देशमें अत्यधिक लोकप्रिय एवं उन्नत दशामें था । राजा स्वयं शिव और जिनेन्द्रका समान रूपसे भक्त था । एक लेखके अनुसार इस नरेशने पट्टवर्धक धरानेकी राजमहिला माचकाम्बेके निवेदनपर जैनगुरु सकलचन्द्र सिद्धान्तके प्रशिष्य और अय्यपोटिके शिष्य अर्हन्दीको 'सर्वलोकाश्रय जिनभवन' के लिए दान दिया था । अम्मका प्रधान सेनापति दुर्गराज था जा कटकाधिपति विजयादित्यका पुत्र था । चालुक्य-लक्ष्मीकी सुरक्षाके लिए उसकी तलवार सदैव म्यानसे बाहर रहती थी । वह पूर्वी चालुक्य राज्यका शक्ति-स्तम्भ कहा जाता था । उसके वंशने महादेश वेंगिके सरक्षणमें सदैव भारी योग दिया था । यह वंश जैनधर्मका अनुयायी था । स्वयं दुर्गराजने धर्मपुरीके निकट 'कटकाभरण' नामका भव्य जिनालय बनवाया था और उसे यापनीय सघके जैनगुरु जिन-नन्दिके प्रशिष्य एवं दिवाकरके शिष्य श्रीमन्दिरदेवको सौंप दिया था । स्वयं महाराज अम्म द्वितीयने मलियापूण्ड दान पत्र-द्वारा इस मन्दिरके लिए ग्राम भेंट किये थे । अम्मके पश्चात् दानार्णव, जटाचोडभीम और शक्ति-वर्मन् क्रमशः वेंगिके राजा हुए । तदनन्तर १०२२ ई० के लगभग विमला-दित्यका राज्य हुआ । यह राजा भी जैनधर्मका भारी भक्त था । देशीय-गणके आचार्य त्रिकालयोगी सिद्धान्तदेव उसके गुरु थे । अनेक जैनमन्दिरोंको इस राजाने दान दिये । उपरोक्त रामतीर्थ (रामगिरि) भी ११वीं शताब्दीके मध्य तक प्रसिद्ध एवं उन्नत जैन सांस्कृतिक-केन्द्र बना रहा, जैसा कि वहाँके एक शिलालेखसे प्रमाणित होता है । विमलादित्यके भी एक कन्नड़ी शिलालेखमें ज्ञात होता है कि उसके गुरु त्रिकालयोगी सिद्धान्तदेव तथा सम्भवतया स्वयं राजा भी जैन तीर्थके रूपमें रामगिरिकी वन्दना करने गये थे ।

विमलादित्यके उत्तराधिकारी राजराजनरेन्द्रके समयसे आध्रदेशमें जैनधर्मका ह्रास होने लगा । वस्तुतः ११वीं शतीके अन्त तक वेंगिके पूर्वी चालुक्योकी सत्ताका भी अन्त हो गया । इस प्रकार लगभग ५०० वर्ष

पर्वत बल्लभेबाहे इव पूर्वी बाकुल बंधके बाह्यमें आग्रावेधने वीरवर्मे फौज बल्लभि थी । अर्थात् वे तरेह बल्लभे-बातकी कृपा परमपौरुष विराते थे तथापि वे ज्ञान एव ही वीरवर्मके प्रति बलि बहार और बहिष्णु एव और वीरवर्म और वीरबुद्धोंका आचर करते थे । अनेक वीर ही वीरवर्मे ही अनुगामी थे । ज्ञान ही राज्यबंधके ज्ञान अनेक ली-मुक्त, अनेक उपजने सामान्य-बराबर, ज्ञानरत्न परमवर्मवादी वीरवर्मके अनुगामी थे । पूर्वी बाकुल वीरोंके समय और संछात्रने राजकीय-वीर्य ज्ञान विद्यार्थि एव सामुदायिक बहिष्करण अनुगत हुआ और कलने बहा-विष-वीर्य ज्ञान वीर एव ज्ञानधारकी बल्लभ विद्या । ११वीं शताब्दीमें आग्रावेधने वीरवर्मके कृतका अथ विरजवायके परिष्कारि अनुगामी राजकी-की तथा कोट और काकाजीय राजाओंकी है जो हिन्दुवर्मके अनुगामी ही नहीं थे बल्कि वीरवर्मके अनुगामी ही होते थे ।

राष्ट्रकूट वंश—८वीं शती ई. में राजाजीके राजाओंके ज्ञानरत्न विरज भारतीय साम्राज्यका उत्तराधिकार राष्ट्रकूट वंशकी प्राप्त हुआ । वे राष्ट्रकूट राजाओंके राष्ट्रीय राजाओं (राजाओं) के वंशज थे । और अपने-आपकी राजाजी बलि बल्लभि थे । अनेकके वंशज एक बलिबल्ल राष्ट्रकूटका ५३ ई. के ज्ञानरत्न का ज्ञान है । एक राजा राजाजी पूर्ण राज्यका वंशज मुहम्मद ज्ञान ५३९ ई. के ज्ञानरत्न का । एक ज्ञान राजाके ज्ञानरत्नकी राजाजी कल्लभके वंशज अर्थात् विरजवी की बल्लभे पुत्र राज्य-राजकी ज्ञानी राजावेधी की एक राष्ट्रकूट ज्ञाना ही थी । इन राष्ट्रकूटोंकी एक ज्ञाना मुहम्मद ज्ञानिनी थी । ५५५ ई. के ज्ञानरत्न मुहम्मदके राष्ट्रकूट बराबर ज्ञानके बलिबल्लरत्न का बलि । अर्थात् इन राजाओंका ज्ञानरत्न ज्ञान हुआ । इन राजाओंका ज्ञान ज्ञान राजा ज्ञानिनी का कल्लभे उत्तराधिकारी ज्ञानरत्न एक ज्ञानरत्न विरज ज्ञानरत्न और कल्लभे थे । वे इन राजाओंके राजाओंके करारवायव्य थे । अनेक ज्ञान पुत्र इन ज्ञानिनीका विरज राजा राजाजी-की ज्ञान हुआ था । इन राजाओंकी थी और राजाओंकी विरज राजाजी

कर हमने दक्षिणमण्डप करना आरम्भ किया। उसका पुत्र दन्तिदुर्ग
 ण्डावलीक वैरमेघ ८वें शतीके प्रथम पादके लगभग अपने पिताका
 उत्तराधिकारी हुआ। यह अत्यन्त चतुर, साहसी और महत्वाकांक्षी था।
 ४२ ई० के लगभग उसने एलोरा (एलवर या ऐलपुर) पर अधिकार
 किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। एलारा जैन, शैव, वैष्णव और
 बौद्ध धारो ही धर्मों और सस्कृतियोंका सन्धिस्थल था। उसने धर्मोपे
 शधर्मधित इग स्यान्के पापाणस्त्रनित गुहा-मन्दिर भारतीय बनाके अद्वितीय
 उदाहरण है। सन् ८५८ ई० में रचित धर्मोपदेशमालामें एक और अधिक
 पुरानी घटनाका उल्लेख है कि एक समय समयश नामक मुनि ब्रूगुकच्छमें
 चलकर एलवर नगर आये थे और यहाँकी प्रसिद्ध दिगम्बर बसही
 (बसदि) में ठहरे थे। इससे विदित होता है कि राष्ट्रकूटोंके शासनके
 आरम्भसे ही एलोरा दिगम्बर जैनधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र था। और इसका
 कारण यही है कि राष्ट्रकूट-नरेश आरम्भसे ही सर्वधर्मसमदर्शी थे और
 उनका व्यक्तिगत या कुलधर्म शैव वैष्णवादि होते हुए भी वे जैनधर्मके
 विशेष पक्षपाती और संरक्षक रहे थे। दन्तिदुर्गने एलोराकी राजधानी
 बनाकर नासिक विषयके मयूरखण्डी दुर्गको अपनी प्रधान छावनी बनाया।
 ७५२ ई० में उसने चालुक्य-नरेश कोत्तिवर्मन्को पूर्णतया पराजित करके
 महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक पृथ्वीवल्लभ सण्ढायलीक वैरमेघ
 आदि उपाधियाँ धारण कीं और अपने-आपको सम्राट् घोषित किया।
 अपनी मृत्युसे पूर्व, ७५७ ई० तक उसने वातापीकी चालुक्य सत्ताका
 प्रायः अन्त कर दिया था और अब वही दक्षिणापयका सम्राट् था।
 इसके अतिरिक्त उसने सिन्धुमूप, श्रीशैलके चोड, पल्लव नन्दिवर्मन्, पाण्ड्य
 नेदुजलियन, परान्तक, श्रीहप, तथा परमार, वज्जार, कोसल, मालवा,
 लाट, टक आदि देशोंके राजाओंको पराजित किया था। इसने पल्लवमल्ल-
 के साथ अपनी पुत्री रेखाका विवाह करके उसे मित्र बना लिया था।
 विश्वकूटपुरके श्रीवल्लभ राहप्पदेवको पराजित करके उसकी उपाधि और

कृष्णराज प्रथम-द्वारा सम्मानित हुए थे। कृष्णके उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र गोविन्द द्वितीय प्रभूतवर्ष विक्रमावलोक (७७३-७७९) राजा हुआ। वह दुराचारी और अयोग्य था। उसने गग शिवमारको उसके भाई दुर्गमार एयरण्णके विरुद्ध राज्य प्राप्त करनेमें सहायता दी थी अतः शिवमार उसका मित्र था किन्तु गोविन्दके भाई ध्रुवने, जो अत्यन्त महत्वाकांक्षी था, गोविन्द-का उच्छेद करके राज्य हस्तगत करनेका पड्यन्त्र किया। पल्लव, गग, पूर्वी चातुर्व्य और मालवनरेश गोविन्दके सहायक थे किन्तु ध्रुवने अपने पुत्राको सहायतासे युद्धमें इन सबको परास्त किया। सम्भवतया गोविन्दकी भी युद्धमें ही मृत्यु हो गयी। इस प्रकार ७७९ ई० में धारावर्ष, निरुपम, कलिवल्लभ, आवल्लभ, धोर, धवलइय, वोद्दणराय (वल्लहराय) आदि उपाधियोंसे युक्त ध्रुव राष्ट्रकूट राज्यका स्वामी हुआ। ७९३ ई० तक उसने राज्य किया। यह महापराक्रमी और वीर योद्धा था। राज्य प्राप्त करते ही उसने गोविन्द द्वितीयके सहायकोंका दमन करना प्रारम्भ किया। गग शिवमार द्वितीयको बन्दी बनवाया, नन्दिवमन् पल्लवको पराजित करके उससे हाथियोंके रूपमें कर वसूल किया, वेंगिके विष्णुवर्धन चतुर्थको हराया और उससे कुछ प्रदेश तथा उसका पुत्री शीलभट्टारिकाको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। तदनन्तर विष्णुचलको पार करके वह गंगा यमुनाके मध्यदेश तक जा पहुँचा। वहाँ गुर्जर प्रतिहार वत्सराजको पराजित करके उसे मरुदेशकी ओर भगाया और गौडके धर्मपालको पराजित करके उसे बगाल वापस पठाया। कन्नौजमें इन्द्रायुधको उभय दोनों शत्रुओंसे कुछ समयके लिए सुरक्षित करके वह वापस दक्षिण लौट आया। ध्रुवने इस प्रकार राष्ट्रकूट शक्तिको सम्पूर्ण भारतवर्षमें सर्वोपरि बना दिया। वह विद्वानोंका भी बड़ा सम्मान करता था। उसकी रानी चातुर्व्य राजकुमारी शीलभट्टारिका जैन धर्मकी भक्त थी और एक प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ कवयित्री थी। उत्तरापथकी विजय-यात्रामें ध्रुव सम्भवतया कन्नौजसे अपभ्रंश भापाके जैन महाकवि स्वयम्भूको अपने साथ सपरिवार लिवा लाया था। स्वयम्भूने अपनी

एसासन हरिर्बन्ध नाम्नुवार वरिष्ठ स्वराधु कन्ध बाहि वरिष्ठ कर्णोप
रचना इती नरीकके बाधयमे एम्पुम्पु एम्पुम्पुलीमे की कीर मुम्पुम्पु वरिष्ठ
नाम्पुमे वरिष्ठ इव नाम्पुम्पुम्पुम्पु कर्णोप किया । स्वराधुकी एती
बाधियम्पु की वरिष्ठ विपुली की कीर वरिष्ठमे कर्णोप एम्पुम्पुम्पुली किया
केकेके किम्पु वरिष्ठ विपुली किया वा । विपुली मुम्पुम्पुलीमे ७८१ ई में
कर्णोप हरिर्बन्धपुराणकी रचना करी हुए इव नरीकके कर्णोप 'इम्पुम्पुम्पु
मुम्पु वरिष्ठमे की वरिष्ठमेपुम्पुम्पु एम्पुली वा' इव कर्णोप किया है । एम्पुम्पु
एम्पुम्पुलीमे किम्पु ही वरिष्ठमेपु (वारिष्ठमेपु) के वरिष्ठमेपुली एम्पुली
वीरमेपुकी मुम्पुम्पु वरिष्ठमेपु वा । वरिष्ठ एम्पु ही इव वरिष्ठ वरिष्ठ
वरिष्ठमेपु मुम्पु एम्पु वरिष्ठमेपु कर्णोप ७८ ई में कर्णोप वरिष्ठ कर्ण
वीरमेपुकी मुम्पु किया वा कीर वरिष्ठमेपु वरिष्ठमेपुम्पु एव विपुली वरिष्ठ
वरिष्ठ एव वरिष्ठमेपुकी कर्णोप वरिष्ठ की की । विपुलीमे वरिष्ठ कर्ण
कर्ण की कर्णोप एव मे । इव विपुली विपुलीमे कर्णोप कर्णोप एव कर्ण
कर्णोप वरिष्ठ कर्ण रचना की की । विपुली वरिष्ठ कर्णोप वरिष्ठमेपु
एव कर्णोप वरिष्ठमेपु वरिष्ठमेपु वरिष्ठमेपु वरिष्ठमेपु वरिष्ठमेपु वरिष्ठमेपु
कर्णोप विपुलीमे इव विपुली मुम्पुम्पुम्पु वा—वरिष्ठ वरिष्ठ वरिष्ठ
वरिष्ठ कर्ण वरिष्ठमेपु वरिष्ठमेपु कर्ण वरिष्ठ वा । वरिष्ठ विपुली-वरिष्ठमेपु वरिष्ठ
वरिष्ठमेपु वा । कर्ण ९ ई के कर्णोप एम्पुली वीरमेपुकी मुम्पु वरिष्ठ । एम्पु
वरिष्ठमेपु एम्पुली विपुलीमे, वरिष्ठमेपुम्पुम्पु कीर मुम्पुम्पुम्पु कर्ण कर्णोप
एम्पुम्पु एम्पुमे वरिष्ठ वरिष्ठमेपु मे ।

[illegible]

सहायक था। अतः राज्य-सिंहासनपर बैठते ही ध्रुवने गोविन्दको युवराज घोषित कर दिया था और फलस्वरूप मयूरखण्डोकी प्रधान छावनीका अध्यक्ष तथा उसके अन्तर्गत प्रदेश (नासिकदेश) का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया था। वाटनगर विषय उसीके शासनमें था अतः स्वामी वीरसेन-ने धवलाकी प्रशस्तिमें बल्लहराय (ध्रुव) नरेन्द्रचूडामणिके साथ राजन जगत्तुगदेवका भी उल्लेख किया। गोविन्द तृतीयने गद्दीपर बैठनेके उपरान्त गग शिवमारको मुक्त कर दिया क्योंकि अपने शत्रुओंके दमनमें वह उस वीर योद्धाकी सहायता चाहता था किन्तु शिवमारने फिर विद्रोह किया और ७९९ ई० में फिरसे बन्दी बनाया गया। गोविन्दने अपने भाई कम्मदेव-को गगवाडिका राज्यपाल नियुक्त किया। वस्तुतः कम्मने ही शिवमार तथा अन्य दस-बारह राजाओंकी सहायतासे गोविन्दके विरुद्ध विद्रोह किया था क्योंकि वह स्वयं ध्रुवका ज्येष्ठ पुत्र था। परन्तु गोविन्दका राज्याभिषेक भी ध्रुवने अपने ही जीवन-कालमें कर दिया था अतः उसका अधिकार न्याय्य था। उसने अकेले ही बारह नरेशोंके उक्त शत्रु-सघका दमन किया, गग राजको बन्दी करके भाई कम्मको सन्तुष्ट करनेके लिए गंगदेशका शासन उसे सौंप दिया। तदनन्तर उसने लाटकी विजय करके अपने आज्ञाकारी छोटे भाई इन्द्रको गुजरातका शासक बनाया और मालवाकी विजय करके उसे भी गुर्जर राज्यमें सम्मिलित कर दिया। पल्लव दन्तिवर्मन्को पराजित करके उसने उससे कर लिया। विन्ध्याचलके निकटवर्ती प्रदेशके राजा मार-शर्वको अपना करद बनाया। वेंगिनरेश उसका आज्ञाकारी बना रहा और उसीने राष्ट्रकूटोंकी नव-स्थापित राजधानी मान्यखेट (मलखेट) की बाहरी प्राचीरका निर्माण कराया बताया जाता है। गोविन्दने ही प्राचीन राज-धानीको एलोरा और मयूरखण्डोसे हटाकर नवीन राजधानी मान्यखेटका एक विशाल सुन्दर एवं सुदृढ़ महानगरीके रूपमें निर्माण किया। उसने गुर्जरप्रतिहार नागमट्ट द्वितीयको पराजित किया तथा कन्नौजके चक्रायुध और बगालके धर्मपालसे अधीनता स्वीकार करायी। सिंहल नरेशने भी

कबड़े दरबारमें एकदुल जेठ्य और हलै कल्ला बनिबनि लीकार मिया था ।
 कलपनबड़े एक बनिबलनै बोटले हूद बर ८ ३-४ ई मैं बोलिब बरब
 एठपडी बीबबब बामक स्थानमें कालवी शाले बहा था । कबड़े दुब बबीब
 बरबा बाम हूडा । किन्तु बल्लब शल्लबबल्ले कलपनके बारब दुब-बली-
 लबब बबल्लेका बी कबे बबबब न मिया और कबड़े गुरल्ल बालर बबुल्ल
 बबल्ल बिया । ८ ८ ई मैं बलीर बलीरबले बिल्लबल्ल बलीर बबल्ल
 यी बी एक बाली बीडा था बिर कल्लेका बबल्ल मिया किन्तु बरु बी
 बल्ल हूडा ।

सन् ८११-१४ ई. में बौद्धिक तृतीयकी कृष्ण हो गयी। यह एक
बैद्यके समयकाल्म बौद्धोंके-से था। बादकर्षकी कथान्त एक-धर्मिणी कथना
कोया बालनी की। अपने समयका यह निबन्ध ही बर्णय्यन्तु बौद्ध था।
साथ ही निबन्धा बाली तथा विद्वानों और बुद्धिपूर्ण बाहर करनेवाला
था। बौद्धोंके प्रति जो बड़ा अत्यन्त अहिम्न और कथार था। अन्य एक-
नव-द्वारा ८ २ ई. में कथने बौद्धधर्माधी बाल्मन्तकी बौद्धिक नामक
कैल बन्धि (बन्धि) के लिए कथारकके कैल-मुद्राओंको राज दिष्ट था।
८ ३ ई. में बाल्मन्तक बाल्मन्त-द्वारा कथने बाई एवं प्रविष्टि कथ-
केलै एककलमकके कैल बन्धिके लिए कलै पुन एककलमकी प्रविष्टि
मुन्यमुन्यकके मुन्यककके प्रविष्टि और कथारके विन्य बर्णय्यन्तु मुन्य
कथ बौद्ध किये थे। ८१२ ई. में नरक एककलके द्वारा जो कथारकीके
मुन्ये कथारिष्ट विन्य कथ था। तथै कथार बौद्धिक तृतीयकी बौद्धिक
कैलकीके लिए बुद्धिककके प्रविष्टि और विन्यकीके विन्य कलै-
कीलकी कलै बौद्ध कथार बर्णय्यन्तु की बौद्धिक कथार कथार कथार
बौद्धिक कथार मुन्ये बर्णय्यन्तु कलै बाल्मन्तकी विन्यकलके कथार
बन्धिकी मुन्यिक कथार विन्य था। कथारकके कैल बन्धिके
तो कथारके कथारके ही कथार कथार था। वही कथार कथार
बौद्धिक के बौद्धिक कथार कथार कथार कथार कथार कथार कथार

गये कार्यकी पूर्तिके लिए प्रयत्नशील थे। उनके सधर्मा दशरथ गुरु, धिनयसेन, पद्मसेन और वृद्धकुमारसेन तथा स्वामी विद्यानन्दि, अनन्तकीर्ति, रविमद्र शिष्य अनन्तवीर्य, परवादिमल्ल आदि अनेक जैनगुरु राष्ट्रकूट राज्यको सुशोभित कर रहे थे। महाकवि स्वयम्भू भी मुनि हो गये थे और सम्भवतया धीपाल नामसे प्रसिद्ध हुए। वे आचार्य जिनसेन-द्वारा जयधवलकी पूर्तिमें उनके परम सहायक सिद्ध हुए। उनके पुत्र त्रिभुवन-स्वयम्भू भी महाकवि थे। पिताके मुनि हो जानेपर उनके रामायण आदि महाग्रन्थोंका सम्पादन, संशोधन, परिवर्धन आदि इन्होंने ही किया। सम्राट गोविन्द तृतीयके ये विशेष कृपापात्र थे। उपरोक्त समस्त गुरु सम्राटसे आश्रय एवं सुरक्षण प्राप्त कर रहे थे। जैनधर्म उसके शासनमें खूब फल-फूल रहा था।

सम्राट् अमोघवर्ष नृपतुंग महाराजशण्ड वीरनारायण अतिशयधवल शर्ववर्म बल्लभराय (८१४-८७८ ई०) जिस समय सिंहासनपर बैठा ९-१० वर्षका बालक मात्र था। अतः उसके चाचा इन्द्रका पुत्र कर्कराज, जो गुर्जर देशका शासक था, अमोघवर्षका अभिभावक एवं सुरक्षक बना। अमोघकी बाल्यावस्थाका लाभ उठाकर साम्राज्यमें जगह-जगह विद्रोह हो गये। गंग, पल्लव, पाण्ड्य, पूर्वी चालुक्य आदि अधीन राजे भी विरुद्ध उठ खड़े हुए। ८१७ ई० में वेगिके विजयादित्य द्वितीय और गगवाहिके राक्षमल्ल प्रथमके प्रोत्साहनसे साम्राज्यके दक्षिणी भागके अनेक सामन्तोंने भयकर विद्रोह कर दिया। किन्तु कर्ककी स्वामिभक्ति, वीरता, बुद्धिमत्ता एवं तत्परताके कारण इन सब विद्रोहोंका दमन हुआ और ८२१ ई० तक स्थिति क्वाबूमें आ गयी तथा शान्ति स्थापित हो गयी। नवीन राजधानी मान्यखेटका निर्माण गोविन्द तृतीयने ही प्रारम्भ कर दिया था किन्तु उसे राजधानीको पूरी तरह स्थानान्तर करनेका समय नहीं मिला था। अब अमोघवर्ष वयस्क हो गया था, उसकी स्थिति भी अपेक्षाकृत सुरक्षित हो गयी थी अतएव ८२१ ई० में गुर्जराधिप कर्कराजने नवीन राजधानी

नदनंतर सेनापति वदेवके पराक्रमसे समस्त ग्रन्थुओका सत्परताके साथ
 दमन होता रहा और माम्राज्यकी समृद्धि एवं शान्तिमें कोई उल्लेखनीय
 विघ्न नहीं हुआ। वस्तुतः स्वयं अमोघवर्ष एक शान्तिप्रिय एवं धर्मात्मा
 नरेश था। युद्ध-कार्य उनके स्वामिभवन सेनापति और सामन्त मरदार ही
 सफलतापूर्वक सञ्चालित करते रहे। फल-स्वरूप उनकी शक्ति, वैभवं
 एवं प्रतापम उत्तरोत्तर वृद्धि ही हुई।

८५१ ई० में अरब सौदागर मुलेमान भारत आया था उगने 'दीर्घायु
 बलहरा (बल्लभराय)' नामसे अमोघवर्षका वर्णन किया है और लिखा
 है कि उस समय ससार-भरमें जो सर्वमहान् चार सम्राट् थे वे भारतका
 बल्लभराय (अमोघवर्ष), चीनका सम्राट्, बगदादका खलीफा और
 रूम (क़ुस्तुन्तुनिया) का सम्राट् थे। अलइद्रिसि, मसूदी, एब्नहोफल
 आदि अन्य अरब सौदागरोंने भी अमोघवर्षके प्रताप और वैभवं तथा
 माम्राज्यकी शक्ति एवं समृद्धिकी भरपूर प्रशंसा की है। उनका शासन
 भी सुचारु रूपसे सुव्यवस्थित था। इसके अतिरिक्त यह नरेश विद्वाना
 और गुणियोका प्रेमी, स्वयं भी भारी विद्वान् और कवि था। संस्कृत,
 प्राकृत, कन्नड़ी एवं तमिलके विविधविषयक साहित्यके सृजनमें उसने
 भारी प्रोत्साहन दिया था। उसकी राजमभा विद्वानोंसे भरी रहती थी।

सम्राट् अमोघवर्ष जैनधर्मका अनुयायी और एक आदर्श जैन-श्रावक
 था, इस विषयमें प्रायः कोई मतभेद नहीं है। धीरसेन श्रामीके पट्ट शिष्य
 सेनसधी आचार्य जिनसेन स्वामी उसके राजगुरु और धर्मगुरु थे। ये विभिन्न
 भाषाभिन्न एवं विविध विषयपटु दिग्गज विद्वान् थे। लडकपनसे ही उनके
 साथ अमोघवर्षका सम्पर्क रहा था और वह उनकी बड़ी विनय करता
 था। जिनसेनके सम्मुख सर्वप्रथम कार्य अपने गुरुद्वारा अधूरे छोड़े गये
 जयध्वज महाग्रन्थकी पूर्ति करना था। सन् ८३७ ई० में अमोघवर्षके
 आश्रयमें तथा उसके प्रधानामात्य गुर्जराधिप कर्कगजके सरक्षणमें गुरुद्वारा
 स्थापित वाटनगरके ही अधिष्ठानमें उन्होंने ६०००० श्लोक प्रमाण उद्यत

[illegible]

कपरीला बिजली-झाड़ अपने कर्णों में ही सभी सुषमाओं में बसाइये कर्ण-
मात्र बसाकर एक सौदर्य परिणत सम्मान में बहुत कुछ बात ही बतला है ।
यह ही-बीच में बहुतों राज्य-कार्य में अवकाश लेकर सुषमाओं में सम्मानों
काटकाओं में अपने अधिकार हीकर सर्व-सर्व दिव्य करता था, स्वाध्याय-

द्याका रसिक था और अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें तो पुत्रको राज्यकार्य
 संपन्न कर एक आदर्श त्यागी जैन श्रावकके रूपमें उसने जीवन व्यतीत किया
 । सन् ८२१ ई० में ही अमोघवर्षका राज्याभिषेक करके और उसकी
 स्थिति सुरक्षित करके उसके प्रधान सामन्त, अभिभावक एवं चचेरे भाई
 जैराधिप कर्कराजने जो स्वयं जिनभक्त था सूरत दानपत्रके-द्वारा जैन-
 धर्म परवादिमत्त्वके प्रशिष्यको नवसारी (नवसारिका) के जैन विद्यापीठके
 लिए भूमि प्रदान की थी । ८५९ ई० के एक शिलालेखमें राज्य-द्वारा एक
 जैन वमदिके लिए सिंहवरगणके आचार्य नागनन्दिको दान देनेका उल्लेख
 है । ८६० ई० में स्वयं सम्राट् अमोघवर्षने सेनापति वकेयरसकी प्रार्थनापर
 मान्यश्वेट राजधानीमें त्रैकालयोगीके शिष्य देवेन्द्र मुनीश्वरको दान दिया
 था । अब भी अनेक दान उसने दिये ।

उसके सामन्त सरदारोंमें लाट (गुजरात) के राष्ट्रकूट, नोलम्ब वाही-
 के नोलम्ब, सोन्दतिके रट्ट, हुम्मचके सान्तार राजे, गगनरेश, पूर्वी चालुक्य
 आदि अनेक जैनधर्मावलम्बी थे । उसका प्रधान सेनापति एवं राज्यका
 वास्तविक रक्षक चेल्लकेतन वीर वकेय (वंकेश या वंकेयरस) महान् वीर,
 भीषण योद्धा, कुशल सेनाध्यक्ष और परम स्वामिभक्त था, साथ ही परम
 जैन भी था । उसके प्रपितामह वीर मुकुल राष्ट्रकूट कृष्ण प्रथमके, पितामह
 एरकोरि ध्रुवधारा वर्षके और पिता वीर सम्राट् गोविन्द तृतीय जगत्तुगके
 राजमन्त्रि एवं सेनानायक रहे थे । प्रारम्भसे ही वकेयका वंश जैनधर्मका
 अनुयायी था । उनकी माता विजयाम्बा भी बड़ी धर्मप्रिया थी । वंकेय
 सम्राट् अमोघवर्षका अत्यन्त कृपापात्र एवं प्रिय अनुचर था । उसकी
 सेवाओंसे प्रसन्न होकर सम्राट्ने उसे विशाल वनवासी प्रान्तका एकाधिपति
 सामन्त बना दिया था और वहाँ वकेयने वकापुर नगरका निर्माण करके
 उसे अपनी राजधानी बनाया था । अमोघवर्षका कोशूर शिलालेख
 (८६० ई०) सेनापति वकेयकी प्रार्थनापर ही लिखा गया था और
 उसीके द्वारा निर्मित जिनमन्दिरके लिए राष्ट्रपति जयात्वंके उत्त्वावधानमें

शासनमें ले लिया । कृष्णकी पट्टरानी चेदिनरेश कोषकल प्रथमकी कन्या थी और उसने अपनी पुत्रीका विवाह आदित्य चोलके साथ किया था । कृष्णने वेंगिके गुणग विजयादित्यपर आक्रमण किया किन्तु अमफल रहा । उसके बाद चालुक्य भीमके विरुद्ध भी वह उसी प्रकार असफल रहा । अपने पिताकी भाँति कृष्ण भी जैनधर्मका भक्त था । जिनसेनके पट्टशिष्य गुणभद्राचार्य उसके गुरु थे । ८९८ ई० में गुणभद्रके शिष्य लोकसेनने उनकी उत्तरपुराणकी प्रशस्तिका संवर्धन करके वीर वकेयके पुत्र और वकापुरके स्वामी लोकादित्यकी राजसभामें उक्त महापुराणका पूजोत्सव एवं वाचन किया था । लोकादित्य अपने पूर्वजोंकी भाँति ही राष्ट्रकूट-सम्राट्का स्वामिभक्त सामन्त एवं उच्चपदाधिकारी था । ८७५ ई० में कृष्णके सामन्त सौन्दत्तिके पृथ्वीरामने जैनमन्दिरोंके लिए भूमि प्रदान की थी । एक अन्य प्रमुख सामन्त तोलपुरुष विक्रम सान्तरने हुमच्च-में पलियवका नामक वसति तथा कुन्दकुन्दान्वयके मौनी सिद्धान्त भट्टारकके लिए एक अन्य वसति (८९७ ई० में) निर्माण करायी थी । सम्भवतया इसी राजाने हुमच्चमें गुहड नामक वसति बनवाकर उसमें भगवान् वाहु-बलिकी मूर्ति प्रतिष्ठित की थी । विक्रमवरगुण नामक एक अन्य सामन्तने पेरियकुडीके अरिष्टनेमि भट्टारकके शिष्यको दान दिया था । कृष्णके ही राज्यकालमें कोप्पण तीर्थपर (८८१ ई० में) एक चटु-गदुभट्टारकके शिष्य आचार्य सवनन्दिका समाधिमरण हुआ था । उस कालमें कोप्पण एक उन्नत तीर्थ एवं जैन-केन्द्र था । स्वयं कृष्ण द्वितीयने मूलगुण्ड, वदनिके आदि स्थानोंके जैनमन्दिरोंको दान दिये थे । उसका सन् ९१४ ई० का वेगुमारा साम्रशासन एक जैन दान-पत्र ही है । इसी नरेशके आश्रयमें कन्नडी भाषाके जैन महाकवि गुणवर्मने अपने हरिवंशपुराणकी रचना की थी । एक अन्य जैन महाकवि हरिश्चन्द्र कायम्पने भी अपने धर्मशर्माभ्युदय काव्यकी रचना सम्भवतया इसी कालमें की थी । ९०० ई० के विष्कहनसोगे जैन वसतिके शिलालेखसे ज्ञात होता है कि कृष्णकी जषिकयन्त्रे नामक एक

सैन्यबलबल बाबल मद्रिबा बाबल कुबल बाबल भी ।

कुबल द्वितीयको प्रायः कुडाबलामें ही राज्य प्राप्त हुआ था और उसके पुत्र बलबलकी जगहें बीकनमें ही आते थे वहीं भी बल-बलका उत्तर-विकासी बलबल बीकन इन्द्र मृगीय विजयर्षि मृग्यर्षि (११४-११ ई) हुआ । इनमें बलबलके उत्तरको बलबल करके बलबल बलीय, बीकन बाबलबलको भी बलबल बलीयका स्वीकार करनेपर बलबल बलबल । बलीयके बलीयबलके बलबल बलीय भी बल बलबल बलबल । बलबल दुर्गम बलबल बलबल और बीकनबल बीकन ही बलबलके बलबल बलीय थे । बलबल बलीयबल 'बलबलबलीय और बलबल बलीय भी बलबलका था । बल बलबल और बलबल बीकन ही बलबलमें बलबलका था । बीकनके बलबल बाबलमें बलबलका स्थापन करने बलबल बलीयबल ही बलबल । बल बलीय (इन्द्र मृगीय) बलीय बलीय बलीय था कि ११५ ई । में बलबल बाबल बलीयमें बल बलबल बलबलबलीय बलीय बलीय ही बलीय बलीयबली, बलीयबली और बलबल बलीय ४ बाबल बलीय बलीय थे । बलीय बलीयकी बलीय बलीय भी बलीयका बलबल था । बलीय बलीयकी बलीयकी बलीयके बलीय बलीय बलीयबलीय बलीयबलीय बलीय बलीयका था । बलबलके बलीय बलीयबलीय बलीय बलीय बलीय बलीयका था । बलीयबलीय बलीय बलीय बलीय बलीयका था ।

बलीय बलीयबलीय बलीय बलीयबलीय द्वितीय (११५-११ ई) बलीय हुआ बलीय बलीय बलीय बीकन बलीय बलीयबलीय बलीय बलीय बलीय बलीय बलीय । बलीय बलीय बलीय बलीयबलीय (११५ ११ ई) भी बलीय बलीय बलीय बलीय बलीय करके बलीय बलीय का बल बलीयबलीय और बलीय बलीय बलीय हुआ । बलीय बलीयमें ११५ ई । में बलीयबलीय बलीयबलीय की बलीय की थी । बलीय बलीयबलीय बलीयबलीय बलीय बलीय बलीय बलीय बलीय बलीय (११५ ११ ई) बलीयबलीय बलीय बलीयबलीय बलीय बलीय । बलीय बलीयबलीय बलीय था । बलीय बलीय बलीय बलीय बलीय

गगनरेश राक्षमल्ल सत्यवाक्य द्वितीयके विरुद्ध उसके भाई भूतुग द्वितीय-का पक्षपानी और सहायक था, अतः अमोघवर्षने भूतुगके साथ अपनी पुत्री रेवाका विवाह कर दिया ।

कृष्णराज तृतीय अकालवर्ष (१३९-६७ ई०) राष्ट्रकूट वंशके अन्तिम नरेशोंमें सर्वमहान् था । अपने वहनोई भूतुग गगकी सहायतासे लल्लेयको पराजित करके वह पिताके सिंहासनपर बैठा । बदलेमें उसने भूतुगको अपने भाई राक्षमल्लका अंत करके सिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता दी, भूतुगको गगवाडि और वनवासीका राजा घोषित किया, उसके पुत्र तथा अपने भानजे मल्लदेवके माथ अपनी पुत्री विजम्बाका विवाह किया और उसकी पुत्रीके साथ अपने पुत्रका । इन विवाह-सम्बन्धों एवं मैत्री-व्यवहारोंके कारण गगनरेश भूतुग द्वितीय, मल्लदेव, मारसिंह आदि कृष्ण और उसके उत्तराधिकारियोंके सबसे बड़े हितू और सहायक बन गये । उसे अपना अधिपति स्वीकार करनेमें उन्होंने अपना सम्मान ही समझा । कृष्णके लिए इन गगोंने अनेक युद्ध किये । भूतुगने उत्तरमें चित्रकूट और कालिंजर तक विजय की, दक्षिणमें कृष्णके साथ चोलों-पर आक्रमण किया और परान्तक चोलके पुत्र राजादित्यको हाथीपर बैठे-बैठे ही वाणसे वेध दिया । गगनरेशकी सहायतासे कृष्णने चोल, पाण्ड्य, केरल, कलभ्र, औच एवं सिंहलके राजाओंको पराजित किया तथा रामेश्वरम्में अपना विजय स्तम्भ स्थापित किया । उसकी ओरसे गग मारसिंह और उसके घोर सेनापति चामुण्डरायने वनवासी देशको विजय किया, नोलम्बों, गुर्जरो और किरातोंको पराजित किया, उच्छली-जैसे सुदृढ़ दुर्गोंको हस्तगत किया, अल्लण, वज्जवल, मुडुराचय्य आदि सामन्तों एवं उपराजाआका दमन किया । उसने मालवापर आक्रमण किया और परमार हर्षमियकने उसकी अधीनता स्वीकार की । कृष्ण एक घोर योद्धा, दक्ष सेनानी, मित्रोंके प्रति अति उदार, धर्मात्मा और पराक्रमी नरेश था । उसने राष्ट्रकूट साम्राज्यकी प्रतिष्ठाको गिरते-गिरते बचाया । किन्तु दो-एक राजनैतिक

[illegible]

हृषिकेश कपारी बापूके तीन श्याकवि रोजकी कथायागज्जन्मीकी कथावि रीकर सम्पादित किया था । बीसवीसने बापूकेमक एवं कीटिवागम-
मृगकी रचना हृषिकेश बापूके काकणके काकणमें १५१ ई. में संसार-
मकरमें की थी । हृषिकेश कथाग जन्मी कथा है । मैं भी बीसवीसने कथाग
में बीस बापूके श्याकवि पुनःकथके काकणका है । कथाग के रीकथार
करिने कथने कथाग कथागकी रचना की थी । कथाग कथागके पुन
कथा की कथागकी है । बीस कथागकी बीस पुनःकथवि कथागमें एवं
कथिमें कथागका है ।

हमने कृष्णदेवी मुन्मुके का घर बहारा डोटा बाई कोट्टिय दिवाकर
(१९४-७२ ई) राया हुआ । जिस समय उनके प्रधान व्यापक वन
व्यापक और उनके कैपटानि बाकुम्बल्लम जलम मुन्मुके काटो हुए वे
वाल्मवीके दिवस वर्ष परम्पराके तरदवाकि का गृहस्थिपर आक्रमण कर दिया
और १ २ ई में स्वयं वाल्मवीके राजवासीको मृत्यु और बल्य किया ।
कम्पल्लम काटो मुन्मुके कोट्टिय की मारा गया । वाल्मवीके मुन्मुके समय
महाकवि मुन्मुका बाई ने और कट्टोले काट मुन्मुका मदीके दिवाकरा बाई

कृष्ण विजय किया है। समाचार सुनकर गंग मारसिंह राष्ट्रकूटोंकी सहायताको पहुँचा, परमार सेना तुरन्त वापस लौट गयी और खोद्विगका पुत्र कर्क द्वितीय (९७२-७३ ई०) राजा हुआ। यह भारी योद्धा था और थोड़े ही समयमें इसने पल्लवों, गुर्जरो, हूणों और पाण्ड्योको युद्धमें पराजित किया। इन युद्धोंके कारण राजधानी फिर अरक्षित हो गयी और ९७३ ई० में चालुक्य सरदार तैलपने उसपर अधिकार करके कर्कको राज्यच्युत किया और सम्भवतया युद्धमें मार भी दिया। राष्ट्रकूट वंशका अन्तिम राजा इन्द्र चतुर्थ था जो कृष्ण तृतीयका पोता तथा गंग मारसिंहका भानजा था। वह भारी वीर और योद्धा था तथा चौगान (पोलो) के खेलमें निपुण था। मारसिंहने उसे अपने पूर्वजोंका राज्य प्राप्त करनेमें भरसक सहायता दी। एक बारको मान्यखेटमें उसका राज्याभिषेक भी कर दिया। दोनोंने वीरतापूर्वक अनेक युद्ध किये किन्तु स्थायी सफलता न मिली। ९७४ ई० में मारसिंहकी स्वगुरुचरणोंमें सल्लेखनापूर्वक मृत्यु हो गयी। अतः निस्सहाय इन्द्रराज भी कुछ वर्षों तक प्रयत्न करनेके बाद संसारसे विरक्त हो गया और श्रवणवेलगोल चला गया। हेमावतीके तथा श्रवणवेलगोलकी चन्द्रगिरिके शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि अन्तमें वह जैनमुनि हो गया था और ९८२ ई० में इस 'विश्वविख्यात इन्द्रराजने शान्त-चित्तसे सल्लेखना व्रत धारण करके देवराज इन्द्रके पदको प्राप्त किया।' इस प्रकार इन्द्र चतुर्थकी मृत्युके साथ दक्षिण भारतके महान् राष्ट्रकूट वंश और साम्राज्यका अन्त हुआ।

लगभग २५० वर्षके उपरोक्त राष्ट्रकूट युगमें जैनधर्म और विशेषकर उसका दिगम्बर सम्प्रदाय सम्पूर्ण दक्षिणापथमें सर्व-प्रधान धर्म था। डॉ० अस्तेकरके अनुसार साम्राज्यकी लगभग दो तिहाई जनता तथा राष्ट्रकूट नरेशों एवं उनके परिवारोंके विभिन्न स्त्री-पुरुषों, अधीनस्थ राजाओं, उपराजाओं, सामन्त-सरदारों, उच्च-पदाधिकारियों, राज्यकर्मचारियों, महाजनों और श्रेष्ठियों सभीमें अधिकतर लोग इसी धर्मके अनुयायी थे।

[illegible]

कल्याणीको उत्तरावर्ती बाहुकन—१०वीं शती ई के पूर्वी
 पक्षके बनिम बर्ष बाण्डौय रीत्युअर्षे कल्याणिक कल्याणुर्षे मे । अनेक
 राजाईये कल-नेर हई, कई नरेबोकी बाहु, कबीलके राज्याधिके, कई
 स्थानोमे राज्य एवं कय-तीरिअन हए कलुन बीक-बाल्यके कलुन
 यह गुन गुनरे कल्याणिके कल्याण सुनक मे । अनेक कई राजन बाण्डौ
 इस कल्याणै कय कल्याण राज्यअर्षि हई । १६७ ई के पण्डुपुत्र कल्याण
 राज्य पूर्वीय नरेबोके बनिमकती कल्याण कल्याण राज्य कल्याण कल्याण

किन्तु दिसम्बर ९७३ ई० में उसका सम्पूर्ण राज्य उसके भतीजे कर्क द्वितीयके हाथोंसे अकस्मात् छिन गया और २५० वर्षसे चला आया विंशाल एवं शक्तिशाली राष्ट्रकूट साम्राज्य एक स्मृतिमात्र रह गया। उसके स्थानमें वातापीके प्राचीन पश्चिमी चालुक्य वंशका चमत्कारी पुनरुत्थान हुआ और इसका श्रेय चालुक्य वीर तैलपको है।

तैलपके पूर्वज कहीं रहते थे या राज्य करते थे इसका कुछ पता नहीं चलता। पीछेके चालुक्य अभिलेखोंमें उसका सम्बन्ध वातापीके पश्चिमी चालुक्य सम्राट् विजयादित्य द्वितीयके साथ जुड़ा मिलता है जिसका पौत्र कीर्तिवर्मन् द्वितीय ७५७ ई० में इस वंशका अन्तिम नरेश था। उसके चाचा भीमपराक्रमकी सन्ततिमें कीर्तिवर्मन् तृतीय, तैल प्रथम, विक्रमादित्य तृतीय, अम्यन प्रथम और विक्रमादित्य चतुर्थ क्रमशः हुए। अन्तिमका पुत्र यह तैल द्वितीय था। कुछ विद्वान् इस वंशक्रममें मन्देह करते हैं। ९५७ ई० में यह तैल या तैलप राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीयके अधीन तरद्वादी १००० प्रान्तका एक साधारण श्रेणीका अज्ञात कुल एवं निरुपाधि शासक था। किन्तु ९६५ ई० में वही उसी प्रान्तको एक अणुगजीवि (जागीरदार सामन्त एवं सेनानायक) के रूपमें भोगता हुआ सत्याश्रय वशी महा-सामन्तात्रिपति चालुक्यराम आहवमल्ल तैलपरस बना मिलता है। मम्मवतया अपनी महत्त्वपूर्ण युद्ध सेवाओंके कारण कृष्ण तृतीयका कृपापात्र बनकर मात्र ८ वर्षोंमें ही उसने ऐसी अद्भुत उन्नति कर ली थी। उसकी माँ वोधादेवी चेदिनरेश लक्ष्मणकी पुत्री थी। उसने स्वयं अपना विवाह राष्ट्रकूट सरदार वम्महाट्टकी कन्या जम्बवे अपर नाम रुद्रमीके साथ किया था। चेदियोंको कृष्णने अपने विरुद्ध कर लिया था। इस प्रकार अपने मामा चेदिनरेश युवराज द्वितीय, अपने स्वसुर वम्महाट्ट, वेंगिके पूर्वी चालुक्य वट्टिग द्वितीय, सुयेनदेशके यादवराज भिल्लम द्वितीय आदिकी मित्रता एवं सहायतासे तैलपने अपनी शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ की। राष्ट्रकूटोंका सामन्त और सेनानायक बनकर उसने उनकी आन्तरिक दुर्बलताओंको लक्ष्य किया

भीर बचतारी ठाकुरें एह । बालक नामक एक बाल्या बरदार हुअके
बिछा हो गया बा अउ बच बाईबुने बहना बसल बिछा बा । बच बा
बी ठेकने बा बिछा ।

बाबीबंघना बाहु बाल्या बाल एक बहल बीछा एवं बिछाव पाल-
बीछि बा । ठेकने कहे बरने बाहुने बाबका बप्पका मिनुन बिछा बीर
'बहागन बहागनक बकिपति' बर बिछा । बालको बचबिछि बिबेक
बहुनपति, बकिबीछन बाबि बकिपति पालावे प्रान्त हुर । बालुन बल
ही ठेकना बहागना बा ही गया बा, पाल-बहागना एवं पालक-बार
बहके सुदीन हुरबि ओहुन ठेकन बच पनुबीके बल बीर पाल-
बिछारमे बिकल हुआ । बालका बच बहागनाबक बचबेव बी बहल
बीछा एवं बुरक बहागनाक बा ।

ठेकना ठेकपति बलन बी बालन बीच एवं बच-बुरक बा ।
लोबनरक बालबल बाबि पनुबुटीके कई बाल बालन बरदार एवं
बचबिछिबीर बी ठेकने बीर बिछा बा । बहके लोबनरके १ २ ई
मे बिबक पालावे बालबीछन बिबेक बीर बीछीबकी हुआ बहके पनु-
बुट पालिबी बरबर कर बिछा बा । बालनर बाहु बहल पालबी बीबन
बुरकबका बिचार हुर । ऐबी बिबिबी १ २ ई बी ठेकने बालबीछन
बीबन बाबा बीछा । पनुबुट कई बिबन बी बाबी बीछा बा, बरबर
बुड हुआ बिबि कई बाब गया बीर ठेकने पनुबुट पालबीर
बकिचार कर बिछा । बच बाईबुने बुरक बचके बिब बालबीर बिबि
बीब बिछा बीर बच बचबीके पनुबुट बिबबलनर बिबि बिछा, मिनु
बुड ही बीबी बाब बीछने बचकी बिबबलनर बालबीर बच पाल-
बिबेक बिछा ।

बचनर बीबन (१७१-७४ ई) ठेकन पालका बचन बर बा ।
बचनन कहे बचि ओहु बच बा । बाईबु बीर बहके बिबपति
बचबुटबके बिबि बहके बुरबे बचन-बच बा बिनु बी बीबी बहके बाब

राष्ट्रकूट राज्यका अपहरण भी सहन नहीं कर सकते थे। अतः परस्पर युद्ध चलते रहे। मारसिंहने तो विरक्त होकर समाधिमरण कर लिया। तैलपने पचलदेव, गोविन्द, मुद्रराचय्य आदि गग सरदारोंका दमन करनेमें चामुण्ड-रायकी सहायता की और गग सिंहासनपर राचमल्ल चतुर्थको तथा तदनन्तर राक्कसगगको बैठानेमें साधक हुआ, अतएव ये दोनों गग नरेश और उनके महामन्त्री चामुण्डरायसे उसकी मैत्री हुई और वह उनकी ओरसे निश्चक हुआ। तदनन्तर तैलपकी सेनाओंने करहाट, वोंकण, पल्लिकोट, भद्रक आदि प्रदेशोंपर आक्रमण किया और राष्ट्रकूट साम्राज्यके अन्तर्गत जितना प्रदेश था उस सबपर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने गुर्जरदेशको भी विजय किया और मालवा नरेशसे युद्ध किये। मुज परमारने छह बार तैलपके राज्यमें आक्रमण किया और प्रत्येक बार पोछे हटा, अन्तिम धावेमें स्वयं बन्दी हुआ। कहा जाता है कि तैलपकी बहन मृणालवतीसे उसका प्रेम हो गया था और फलस्वरूप वह भाग निकला किन्तु तैलपने उसे युद्धमें फिर पराजित किया और उसी युद्धमें मुजकी मृत्यु हुई। तैलपने शिलाहार, रट्ट और नोलम्ब नरेशोंका दमन करके उन्हें अपने अधीन किया। गग भी अब उसके अधीन राजे ही थे। केवल चोल सम्राट् उसके प्रथम प्रतिद्वन्द्वी थे, उनका ध्यान बढ़ानेके लिए उसने वेङ्गिपर आक्रमण किये, उसे पराजित किया और उसकी राजनोतिमें हस्तक्षेप करता रहा। ९९७ ई०में तैलप द्वितीयकी मृत्यु हुई। मा-मखेटका त्याग करके कल्याणीको उसने अपनी राजधानी बनाया था।

वस्तुतः, जैसा कि उसके वंशजोंके अभिलेखोंमें कथन किया गया है। तैलपने प्राचीन चालुक्योंके राज्यका अपहरण करनेवाले राष्ट्रकूटोंको पराजित एवं निष्कासित करके चालुक्य वंशकी साम्राज्य-शक्तिको पुनः प्राप्त किया और प्रतिष्ठित किया। निस्सन्देह वह एक महान् पराक्रमी और योग्य नरेश था। विद्वान् और गुणो पुरुषोंका वह आदर करता था। सेनापति मल्लप, मन्त्री घल्ल, दण्डनायक नागदेव, वीर सेनानायक

बुद्धिमान विद्वान् : एव एव

मन्दिरोंमें स्थापित की थीं, अनेक मन्दिरोंका निर्माण एवं जीर्णोद्धार कराया था और आहार, औषध, भ्रमण एवं विद्यारूप चार प्रकारके अनवरत दान-द्वारा वह दानचिन्तामणि कहलायी । ऐसा प्रसिद्ध है कि उसके सतीत्वके प्रभावसे गोदावरीका प्रवाह रुक गया था । उसका पति नागदेव युवराज-का अनन्य मित्र और सम्राट्का अतिमाय अनुचर था । अतः इस देवीके धर्मकार्योंमें सम्राट्की अनुमति, सहायता एवं प्रसन्नता थी इसमें कोई सन्देह नहीं । किसी भी धर्मवीर महिलाके लिए आदर्श नारी रत्न अतिमन्त्रसे तुलना किया जाना परम सौभाग्य माना जाता था ।

तैलप द्वितीयका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सत्याश्रय इरिव वेदेग (९९७-१००९ ई०) था । उसने अपने पिताकी आक्रमणकारी नीति चालू रखी । उसका प्रधान शत्रु राजराजा चोल था । राजराजा चोलने चालुक्य राज्यपर आक्रमण किया, सत्याश्रयने उसका मुकाबला छटकर किया, साथ ही वेंगिपर आक्रमण कर दिया और भीमको पराजित करके शक्तिवर्मनको राजा बनाया । चोलोकी शक्ति इस समय द्रुत वेगसे बढ़ रही थी अतः सत्याश्रयने उनसे सन्धि कर ली । यह नरेश भी जैनधर्मका भक्त था । उसके गुरु सम्भवतया कुन्दकुन्दान्वय पुस्तकगच्छके द्रमिलसधी भट्टारक कनकसेन वादिराज और श्रीविजय ओडेयदेव थे । सत्याश्रयने एक जैनगुरुकी स्मृतिमें अगदि नामक स्थानमें एक भव्य निपट्टा निर्माण करायी थी । उसका प्रधान राजकर्मचारी उसके मित्र नागदेव और अतिमन्त्रका पुत्र पटुवेल तैल था, वह भी जैनधर्मका परमभक्त और कवि रत्नका आश्रयदाता था ।

सत्याश्रयके पश्चात् उसका पुत्र कुन्दमरस राजा न हो सका, उसके भाई दशवर्माका पुत्र विक्रमादित्य पचम (१००९-१३ ई०) राजा हुआ । सद्युपरान्त इसके भाई अय्यन द्वितीयने लगभग एक वर्ष राज्य किया और फिर तीसरा भाई जयमिह द्वितीय जगदेकमल्ल चालुक्यचक्रो (१०१४-१०४२ ई०) राजा हुआ । इसके समय भोज परमारने अपने चाचा मुजका

विद्यापीठ बनो हुई थी। सोमेश्वर प्रथमने जैनाचार्य अजितसेनका सम्मान किया और उन्हें शब्दचतुर्मुख उपाधि प्रदान की। इस नरेशका माहामात्य लक्ष्म 'राय दण्डगोपाल' जो उसका दाहिना हाथ था तथा वीर सेनापति (दण्डनाथ) शान्तिनाथ भी परम जैन थे। इन्होंने कई जैनमन्दिर बनवाये और उनके लिए दान दिये। सोमेश्वरकी पट्टरानी वेतलदेवीने भी अपने सचिव चाकिराज-द्वारा सेनगण पोगरिगच्छके गुरु ब्रह्मसेनके प्रशिष्य और आर्यसेनके शिष्य महासेनको १०५४ ई० में दान दिया था। इस राजाने राजधानी कल्याणोको विस्तृत एवं अलंकृत किया। अभीतक मान्यखेट भी कल्याणोके साथ साथ राजधानी बनो हुई थी, किन्तु अबसे कल्याणी हो चालुक्योकी पूणतया राजधानी हो गयी। १०६८ ई० में एक भयानक रोगसे पीडित होनेके कारण इस राजाने तुगभद्रामें जल समाधि ले ली। यह राजा इस वशके सर्वमहान् नरेशोंमें से था। वह जितना योद्धा था उससे अधिक कूटनीतिज्ञ था।

उसका पुत्र सोमेश्वर द्वितीय भुवनैकमल्ल (१०६८-७६ ई०) भी चोलोंके साथ युद्ध करता रहा। अपने भाइयोके साथ भी उसका द्वन्द्व चला और राज्यके दो टुकड़े होते होते बचे। सोमेश्वरने कदम्बोका दमन किया और चोलोंपर भी विजय प्राप्त की। अपने पूर्वजोकी भाँति वह भी जैन रहा प्रतीत होता है। उसने मूलसघके आचार्य कुलचन्द्रदेवको शांतिनाथ बसदिके लिए नागरस्रग्ध प्रदेशमें भूमि प्रदान की थी और उषत मन्दिरमें एक नवीन मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी तथा श्रोनन्दि पण्डितको भी दान दिया था।

१०७६ ई० में उसका छोटा भाई विक्रम उसे यन्दी करके स्वयं राजा बना। यह विक्रमादित्य पष्ठ त्रिभुवनमल्ल साहस-तुग (१०७६-११२८ ई०) इस वशके अन्तिम नरेशोंमें सर्वमहान् था। उसके दीर्घकालीन राज्यकालमें चोलो, मालवाके परमारों और बँगिके पूर्वी चालुक्योके साथ उसके निरन्तर युद्ध चलते रहे। गौड, कामरूप, केरल, लाट, चेदि तथा अपने साम्राज्यके

कलबीर छोड़े-बाँधे बायलेंहि भी मुड़ चलते छे । यह बात निवेन कहे
 चालुक्यो कीर चोखोले बीच मुड़ा एवं कूटवीर्यक राज-नैचहि बरनूर बा ।
 चोखोको पराजित करके बारम्बई ही कबने चोख राजकुमारीके छाय
 बिबाह कर किया बा किन्तु संवर्ष फिर भी चलता छे । इसी राजाके
 किए म्हात्महि सिद्धकने 'विज्याम्बेव परित' की रचना की थी । इस
 राजाकी विचारविम्वलायी स्वाति सुनकर ही यह कवि कम्पीरके नयनिक
 बाला बा । निताकर त्यागकर दुरल्लभतां सिद्धावैस्वर पी पड़ीके तबयहे
 हुआ । इस बीरकने अपने राज्याधिकारीके स्थिति चालुक्य सिद्ध कने
 नामका करना संकट भी बचावित किया । इसी बीनाचार्य नागरकप्रका
 सम्मान करके उन्हें 'राजतरंगिणी' कथाहि प्रकाश की थी । राज्य प्राप्त
 करनेके पूर्व ही जब यह एक भारतीय शासक बाब बा कबने सम्पादी
 शासके समिकरने कबरेके चालुक्य-वंश-नायकहि विजयकर नामका सुनार
 बनिर बचवाया बा । सिद्धात्म प्राप्त करनेके कबरात्त अपने राजकप्रका
 मन्ने देवकी शार्ङ्गनागर राजने बड़ी बनिरके किए बीरबुध राजसेनकी छप
 दिया बा । मुळकर्ता शिकेये स्थित कथाकटी-पार्श्वनाथ विजयकरके विजय-
 केकले बड़ी नरीक कष्ट बनिरका भी निर्वाता सिद्ध होता है । चालुक्य
 स्वायत्त बिलकी प्रविष्ट चालुक्य बीरकी विजयकर नेव इसी नरीककी
 बचाल्लता है । कथाबीरकी राजबाणी कपलित शक्तिनने जब कम्बई अनुच
 शास-देव भी कबकी विधिब कबविरी एवं बहने विनिर बाछीय बरी
 एवं बर्ननीकी सिद्ध शास-नाथ की बारी थी । इस राजाके समयमें बाछीय
 बंस्तुशिक बहनुकी संवर्षन हुआ । यह बीरक बर्नबई-बहिनू बा कीर
 जब ही बर्नका प्रतिपादन करता बा कदापि कबका निवी एवं मुळबई
 केवबध बा । बीनाचार्य बहंनिर भी अपने विजय-संयम एवं बचबचके
 किए शक्ति है विजयनित्यके बर्नबुध ने ।

इसकी मूलके कबबत्त कबका पुत्र बीरदेवर पृथीव मुनीक-मन्त्र
 ११२८-११९) राजा हुआ । बर्नर कबका विवर बा समिकविताई

चिन्तामणि अपरनाम राजमानसोल्लास नामक ग्रन्थका वह रचयिता था । इसका शासनकाल शान्तिपूर्ण रहा, वह स्वयं युद्धप्रिय नहीं था वरन् साहित्य-रसिक था । फलस्वरूप उसके होयसल आदि सामन्त स्वतन्त्र होने लगे । उसके पुत्र जयसिंह तृतीय जगदेकमल्ल (११३९-११५१ ई०) के समयमें होयसलोंने चालुक्य राज्यका बहुभाग दबा लिया और उसके छोटे भाई एव उत्तराधिकारी तैल तृतीय (११५१-११६३ ई०) के समयमें स्वयं राजधानी कल्याणीपर विज्जल कलचुरिने अधिकार कर लिया । कलचुरि, होयसल और ककातियोंके बीच चालुक्य-साम्राज्यके तीन टुकड़े हो गये । और तैल तृतीयका पुत्र सोमेश्वर चतुर्थ (११६३-८४ ई०) नाम-मात्रका ही राजा रह गया ।

कल्याणीके कलचुरि—कलचुरि भारतका एक प्राचीन राजवंश था । इसका सम्बन्ध मूलतः चेदि (बुन्देलखण्ड) प्रान्तसे था अतः यह चेदि वंश भी कहलाता है । चेदि सवत्के प्रवर्तनकाल सन् २४९ ई० से इस वंशका उदय माना जाता है । मध्यभारत, विदर्भ महाकोसल तथा सरयूपार आदिके कलचुरि वंशोंका वर्णन पिछले एक अध्यायमें किया जा चुका है । १२वीं शताब्दीमें इस वंशकी एक शाखाका उदय दक्षिण भारतके कर्णाटक प्रदेशमें हुआ । ११२८ ई० में कल्याणीके चालुक्य-सम्राट् सोमेश्वर तृतीयने कृष्णके वंशज परम्मदि कलचुरिको बीजापुर विषयका शासक नियुक्त किया था । उसका पुत्र विज्जल कलचुरि उसी पदपर उसका उत्तराधिकारी हुआ ।

विज्जल बहावीर और महत्वाकांक्षी था । चालुक्य जयसिंह तृतीयने उसे महामण्डलेश्वर बना दिया और अपना सेनाध्यक्ष नियुक्त किया । चालुक्य तैल तृतीयकी अयोग्यतामें लाभ उठाकर साम्राज्यके सामन्त सरदार स्वतन्त्र होने लगे । विज्जलने इस विद्रोही सामन्तोंका सघ वनाया और उसका स्वयं नेतृत्व किया । ११५१ ई० में उसने इस प्रकार सहज ही राज्यशक्ति अपने हाथमें कर ली । अन्य सामन्त लोग उसकी बढती

हुई चकिति प्रथम बड़ी दूर। जहाँ कबने कबने महाराज डीक तुटीली
 कली कर किया और बिजोड़ी कागजोंका बन्धन बरके ११५९ ई में
 बान्ने-बातकी राज्यापीका लघुम्ह बीषित कर दिया और जगदा लंछु बी
 बनया। बड़ी बरके एक दिनादेशमें बल्लभ लल्लभ 'बल्लभुरि बुरबल-
 बल्लभ' में विमुक्तमल्ल' विवरके नाच हुआ है। ११५७ ई. वर्षल जगद्व
 १२ वर्ष बल्लभ राज्य दिया और इनने बल्लभमें ही बल्लभे इवाधित कर
 दिया कि वह एक बीर बोझा बाटी विवेक और लल्लु बरीय था।
 बल्लभे बुद्धकी प्रकृतिके अनुसार वह लैल्लभका अनुयायी था। राज्य-इति
 एवं बीरल्लभमें विजयल्लभ बल्लभ लल्लभक कल्लका बल्लभल्ल एवं बल्लभ
 लैल्लभल्ल विविधल्ल था। बल्लभल्लल्लल्लल्ल बल्लभ विवर था और वह लल्ल-
 बल्लभ लल्लभल्लक बल्लभल्ल था। कर लल्ल लल्लल्लकारी बल्लभे बल्लभ
 बरके करके थे। वह लल्ल एवं बील्लिबुल्ल, बीर बोझा बल्ल लैल्लकी
 बल्लभल्ल और बल्लभ कली था, बल्लभल्लमें लल्लभल्लके बल्लकी बुल्लभ की
 बली थी। बल्लभल्ल विजयल्लके इल्ल होकर लले बाबल्लल्ल इल्ल लली-
 में बल्लभ किया था। विविधल्ल बल्ल लल्ल था और बीरल्लभकी बल्लभल्लके
 लिए बल्लभे लल्लक बरके किये।

विजयल्लका एक लल्ल लल्ल बली बल्लभ लल्लभ था, बल्लभ बल्लभ
 बल्लभ ली लल्ल था। बल्लभल्लकी बल्लभके लल्लभ लल्ल लल्ल लल्लभकी
 विमुक्ति हुई। वह लल्लके लल्ले लल्लभके बल्लभलीके लल्ले लल्ल कर रहा
 था। लल्लु बाबल्ल बल्ल लल्लल्लल्लली था। लल्ले बुद्धल्लमें लले लल्ले
 बील्लिक लल्लभकी बुल्लभल्ल लल्लल्ल लली थी। लल्लभ-लल्लभ और लल्लभली
 लले लुला थी। जहाँ बल्लभे एक लली लल्लका बल्लभ करल्ले लल्लभ
 किया बल्लभे लैल्लभके बल्लल्ल लील्लभली एवं बल्लभ लल्ल लल्लभ
 लल्लभल्लकी लल्ल बीरल्लभकी लल्लभ लल्लभल्लली एवं लल्लभल्ललीका लल्लभ
 बरके और इन लल्लभकी लल्ले ललील्लुल्ल लल्लु लल्ले लल्लभल्ल ल
 बीरल्लभ लल्लकी लल्लल्ल ली। लैली लल्लल्लली है कि लल्ले लल्लकी विविध

लिए उसने राजाका ध्यान अपनी अतीव सुन्दरी भगिनी पद्मावतीकी ओर आकृष्ट किया और राजाकी इच्छाका आभास पाते ही उसके माथे राजाका विवाह कर दिया । पद्मावती अपने भाईकी इच्छानुसार विज्जलको अपने धर्मसे विमुख और वामवके मतका पोषक तो न बना सकी किन्तु उसके मोहपाशमें बँधा राजा राज्यकार्यकी ओरसे असावधान हो गया । इसका लाभ उठाकर वासवने अपने मतके प्रचारमें सम्पूर्ण राजकोष खाली कर दिया और राज्यके विभिन्न पदोंसे जैन राज्य कर्मचारियों और पदाधिकारियोंको अलग करके अपने माथे और सहायकोंको नियुक्त करना आरम्भ कर दिया । अन्ततः राजाकी मोहनिद्रा टूटी और वासवकी कुचेष्टाओंपर उसका ध्यान गया, वह बहुत क्रोधित हुआ । अतएव वासवने राजाको विपाकत आम खिलाकर छलसे उसकी हत्या कर दी । एक मतके अनुसार विज्जलने राज्य अपने पुत्रको सौंपकर शेष जीवन धर्म-साधनमें बिताया था ।

विज्जलके पुत्र सोमेश्वर (११६७-७५ ई०)ने, जो वासवके कुकृत्योंके कारण उससे अत्यन्त रुष्ट था, गद्दीपर बैठते ही उसे धर्म और राज्यका धनु घोषित कर दिया । वासव भाग निकला, किन्तु सोमेश्वरके सिपाहियोंने उसका पीछा न छोड़ा, अन्ततः थककर वासवने एक कूँएमें डूबकर आत्म-हत्या कर ली । उसके अनुयायियोंने उसे शहीद घोषित किया और उसके अन्तके सम्बन्धमें अनेक चमत्कार एवं किवदंतियाँ प्रचलित कर दीं । विज्जल और उसके उत्तराधिकारियोंने वासवसे चिढ़कर त्रिगायतोंका क्रूरताके साथ दमन किया बताया जाता है । वीरशैव लोग ब्राह्मणोंके भी विरोधी थे, वे जाति-व्यवस्था, यज्ञोपवीत, वेद और बाल-विवाहको अमाय करते थे तथा विषवा विवाहके पक्षपाती थे । गुरु, लिग और जगम (साधर्म्य) इन तीन पदार्थोंको सर्वोपरि श्रद्धाका पात्र मानते थे । वासव-पुराण और चैत्र वासवपुराण उनके प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ हैं । वासवके एक शिष्य पाशुपतिने इस धर्मको खूब फैलाया । १३वीं से १७वीं शती तक

राष्ट्रिय आन्दोलन के विभिन्न चरणों में इस वर्गका बहुत अन्तर रहा और इन बीरवीरों का क्रियाकलाप क्रांतिकारी और विद्रोही जीवन और जीवनर रच। यह चरण इनके व्यक्तिगत रूप से बीरवीर इनके जीवन आकाश पर निरखे विमर्श से आजीव और नवचारों और वैयक्तिक आकाशों से भी जाने बढ़ गये। कस्तुरी राष्ट्रियतायम मध्य भारत में जीवनरके हस्त और अन्तरालिक अन्तराल से क्रियाकलाप-कार्य किन्हीं कर्तव्य आकाशों की है। विचारित कर्तव्य कर्तव्य और आकाशों की अन्तराल १९ ई के एक जीवन विचारों तथा विचारों के राष्ट्रिय आकाश का अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर है।

विजयनगरे का राज्य उसके तीन पुत्रों सोमेश्वर वा रामदुपारी श्रीभिलेय (११६७-७९ ई) लक्ष्मण वा राम (११७९-८८ ई) और बाल्ल-
नाथ (११७८-८९ ई) में बँटकर राज्य किया । इन तीनोंके एक बन्धु
बाल्लका पुत्र कन्नर इस संघका अधिपति बनाया गया था। इन
तीनोंके बाल्लका बन्धु श्रीभिलेयके बाल्लों और रामदुपारीके श्रीभिलेयके
बाल्लनाथके कन्नुरि-धर्मिका राज्य होता था। ११८९ ई में बाल्लनाथ
सोमेश्वर बलुचिने कन्नकापीनर फिरसे अधिपति बन गया और १२१ ई
तक श्रीभिलेयके प्रदेसपर कन्नका राज्य बल्लनाथ ही रहा । कन्नका श्रीभिलेयकी और
बाल्लनाथकी बल्लका भी बना कर दिया ।



अध्याय ९

दक्षिण भारत [३]

दक्षिण भारतके इतिहासमें चोलो और कल्याणीके चालुक्य-सम्राटोंके उपरांत देवगिरिके यादव, वारंगलके ककातीय और द्वारसमुद्रके होयसल प्रसिद्ध हैं। ११वीं शताब्दीमें इन वंशोंका उदय हुआ और १२वीं, १३वीं शताब्दियोंमें सम्पूर्ण दक्षिण देश उन्होंने तीन राज्यशक्तियोंके बीच बाँटा हुआ था, इन्हींसे मुसलमानोंने उसे अन्ततः छीना। होयसलोंके अन्तके थोड़े समय उपरान्त ही त्रिजयनगर राज्यकी स्थापना हुई जो १६वीं शतीके अन्त तक चला। उपरोक्त प्रमुख राज्यवंशोंके साथ-ही-साथ कुछ छोटे-छोटे राज्यवंश प्रमुख सामन्तों और उपराजाओंके रूपमें चलते रहे। इन सभीने देशके सांस्कृतिक इतिहासके निर्माणमें भाग लिया। अतः प्रमुख राज्यवंशोंका विवरण देनेके पूर्व पूर्वमध्यकालके उपराजवंशोंके विषयमें संक्षेपसे जान लेना उचित होगा।

पूर्वमध्यकालके प्रमुख उपराजवंश—(१) पोम्बच्चपुर (हुमच्च) के सान्तर उपवंशी क्षत्रिय थे और सान्तलिगे १००० प्रदेशके शासक थे। ७०० ई० के लगभग पश्चिमी चालुक्य विजयादित्यके शासनकालमें इस वंशकी स्थापना हुई थी। इस वंशके अम्पुदयका श्रेय हमके वास्तविक सम्पापक जिनदत्तराय (लगभग ८०० ई०) को है। वह जैनधर्मका परम भक्त था, हुमच्चको जैन यक्षी पद्मावती उसकी इष्टदेवी एवं कुलदेवी थी। इस देवीकी साधनास जिनदत्तको अद्भुत मन्त्रसिद्धि हुई थी। वह और उसके वंशज गण्टकूटोंके और तदनन्तर चालुक्योंके प्रमुख सामन्तोंमें-से थे।

राज-महिलाओंमें पम्पादेवी, वाछलदेवी आदि भी अपनी धार्मिकता और दानशीलताके लिए प्रसिद्ध हैं। १०८१ ई० के एक लेखके अनुसार वीर सान्तरका मन्त्री नगुलरस जैनधर्मका भारी संरक्षक था। ११०३ ई० में त्रिभुवनमल्ल सान्तरने राजधानीमें पचकूट वसदिके सामने ही एक नवीन बमदि बनवायी। ११७३ ई० में एक अन्य वीर सान्तरका विरुद्ध 'जिनपाद भ्रमर' था। इसके उपरान्त सान्तरोंपर लिगायत मतका प्रभाव हुआ। १३वीं शतीमें उन्होंने अपनी राजधानीको हुमचचसे बदलकर कलश नामक स्थानमें बनाया। तदनन्तर वे तुलुदेशस्थ कार्कलमें जाकर राज्य करने लगे प्रतीत होते हैं। यं उत्तरवर्ती सान्तर यद्यपि बहुधा लिगायत मतके अनुयायी हुए तथापि जैनधर्म और जैन-गुरुओंके प्रति पूर्ववत् उदार बने रहे।

(२) सौन्दत्तिके रट्ट राष्ट्रकूटोंके प्रमुख सामन्त थे और सम्भवतया राष्ट्रकूट वंशको ही किसी शाखासे सम्बन्धित थे। इस वंशमें भी प्रारम्भसे लेकर अन्त तक जैन धर्मकी प्रवृत्ति रही। रट्टवाड़ीके ये शासक थे और सौन्दत्ति इनकी राजधानी थी, ये महामण्डलेश्वर कहलाते थे। ८७५ ई० में राष्ट्रकूट अमोघवर्षके सामन्त मेरद्वके पुत्र पृथ्वीराम रट्टने सौन्दत्तिमें जिन-मन्दिर निर्माण कराके उसके लिए दान दिया था। उसके गुरु इन्द्रकीर्ति थे। यह राजा सम्राट् कृष्ण द्वितीयका दाहिना हाथ था-। उसके पुत्र शान्तिवर्मा की रानी चन्द्रकल्ये बड़ी धर्मात्मा थी, अपने पतिसे उसने एक सुन्दर जिनालय निर्माण कराया था। तदुपरान्त कलसेन, वन्नकेर, तीन कार्त्तवीर्य, कलसेन द्वितीय आदि राजा हुए। ११६५ ई० में इसी वंशका रट्ट महासामन्त महाराज कार्त्तवीर्य चतुर्थ दिलाहार-नरेशके राज्यमें स्थित एकसाम्बोके नेमोश्वर जिनालयकी प्रसिद्धि सुनकर दानार्थ वहाँ गया और महामण्डला-चार्य गुरु विजयकीर्तिको उक्त मन्दिरकी पूजा, सगीतवाद्य, साधुके भोजन, भवनके संरक्षण आदिके लिए उदार दान दिया। ये गुरु यापनीय सधके पुन्नागवृक्ष-मूलगणके साधु थे। इस सुंदर जिनालयका निर्माण

विभागत वैजायि वाक्यके अने एव दूसाईजिमि वी एदके एतेदके
 बगता वा । बालीहीन चतुर्गके मन्की एवं बीर वैजायान्त बुविगात्र बीर
 मी एताईर भी न अ जीव मे । बु बगताके वैजायकी एन्वितावा बरछय
 वा भी । मी बगता के बुद बगतायके मीयनिके अने विभागी मीयनिके
 मी बगतायन्वितायक बगतावा वा । मनि चतुर्ग एव एदू ताताके एन्विता
 बीर एनके न तावके हिलक ही । ही के चतुर्ग ताताय मीयनिके
 कम्पाने इकाय मन्कीका एव कदम बिजा बीर एवभीके इकाय निरु अन्व
 भी वाक्य विवे । अन्वका मिर्लिके वाद वी हिल चतुर्ग ही मने । वे
 चतुर्ग-कम्पाने एव मनि मे । मने कम्प मन्की वैजायकी एवं वाक्यका
 भी वीन वी विनय मीयनिके वाक्यके अन्विता वाक्य कम्पेकनीच है । बाली
 की चतुर्गके वाद एवभीके हिलीय ताता दूसा १२५ ई के कम्पन
 एव ३ बगता अन्व दूसा

(३) कोहकछे गिलाहार विद्यालयकी छविर मे । वे कम्पे-
 वादकी एवचतुर्ग-मीय मीयनिके वाक्यके मीयनिके वी बीर एवं मिक कम्पे मीय
 एवचतुर्गकीयार बगता एवभीक काली वी । कम्पन कम्पे एतेदके वैजाय
 बीर चतुर्ग-हिलीय बगता कम्पन वा । कम्पे आरम्भिक ताताकी
 कम्पन वी बीर वादके एवचतुर्ग (मीयनिके) की कम्पे ताताकी
 कम्पन । चतुर्ग-दूसा कम्पन के कम्पन वी विनयार कम्पे एदके अविदिगी
 कम्पन दूसा । कम्पे कीयनकी विनय कम्पे कम्पने कम्पन वाक्य कम्पे
 एव विनयार वाक्य ३ कम्पन वा । बीरे-बीरे विनयार कम्पन
 कम्पनकी ही कम्पे बीर कम्पनकेवाक्य कम्पने कम्पे । चतुर्गकी
 कम्पन कम्पनकी वैजायकी कम्पनक वाक्यकी कम्पे वी विनयार
 कोहकछे कम्पन कम्पे है ।

१ २-१ १ ई वी एवचतुर्ग विनयार एव अविदि एव बीर वाद
 वीन वा । १२वी कम्पे कम्पन (१११-११४ ई) एव कम्पन
 कम्पे मनेक दूसा । एव वाक्य कम्पे वी चतुर्गकी कम्पे वा । कम्पे

अनेक युद्ध किये, विजय प्राप्त की और शत्रुओंसे अपने राज्यको सुरक्षित रखा। वह भारी दानों और सर्व-धर्म समदर्शी था। कोल्हापुरके निकट प्रयागमें उसने एक महत्त ब्राह्मणोंको भोजन कराया और उसके निकट ही अजरेना नामक स्थानमें एक सुन्दर जिनालय बनवाया। उसने एक विशाल सरोवरके मध्य एक ऐसा देवालय भी बनवाया था जिसमें जिनेन्द्र, शिव और बुद्ध तीनों देवताओंकी मूर्तियाँ साथ-साथ स्थापित की थीं। इस प्रकारके धार्मिक समन्वयके प्रयत्नका यह पहला ही अग्रवा अकेला ही उदाहरण नहीं है, पूर्वमध्यकालमें अन्य कई देव मन्दिर इस प्रकार जैन, शैव, वैष्णव, बौद्ध देवी-देवताओंकी साथ-साथ मूर्तियोंसे युक्त बने थे। ये उस कालके भारतीयोंकी उदारशयता और विवेकके प्रतीक हैं।

गण्डरादित्यका प्रधान मामन्त और सेनापति वीर निम्बदेव था। गण्डरादित्यके उत्तराधिकारी विजयादित्यके राज्यकालमें भी वह उस पदपर आरुढ़ रहा बलिक शिलाहार-नरेशका दाहिना हाथ बन गया था। शिलालेखोंमें निम्बदेवकी बड़ी प्रशंसा पायी जाती है। उसे 'विजयसुन्दरी-वल्लभ', 'सामन्तशिरोमणि', शत्रुसामन्तोंके सहायमें प्रचण्ड पवनके समान, मण्डजनोंके लिए चिन्तामणि, गण्डरादित्य-महावक्ष-दक्षिण भुजदण्ड आदि कहा गया है। राजाने उसकी सेवाओंमें प्रमत्त होकर उसके नामपर निम्बसिरगांव नामका नगर बसाया था। यह वीर इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसके कई सौ वर्ष बाद कन्नड कवि पार्श्वदेवने निम्बदेवचरित्र बनाकर उसकी यशोगाथा गायी। साथ ही वह बड़ा धर्मात्मा था और उसके जिनेन्द्र-मणित्त अमीम थी, जिसके कारण सम्यक्त्वरत्नाकर और जिनचरण सरसिद्धमधुकर-जैसे विशेषण उसने प्राप्त किये थे। वह मन्त्रशास्त्रक भी ज्ञाता था और शासनदेवी पद्मावतीका उसे दृष्ट था। वह धर्मशास्त्रक भी ज्ञाता था और श्रावकोंको धर्मानुकूल आचरण करनेके लिए सदैव प्रेरित एवं उत्साहित करता रहता था। कोल्हापुरके आस-पास कोई वसति ऐसी न थी जिसने निम्बदेवकी दानशीलतासे लाभ न उठाया हो

स्वयं कोरहापुरमें मुसनिष्ठ म्हात्मनी-मन्दिरके विषय ही कहने वाला
मुल्कर एक कबालूम बेनिमिनात्मक बनवाया था। इस मन्दिरके
दिवारकी नजिकार तीर्थकारीकी कर म्हात्मन मूर्तियाँ बसित
हैं। वर्तमानमें यह मन्दिर दीवलोके हाथमें है और बेनिमिनाली मूर्तियाँ
रखानके सिन्धुमूर्ति स्थापित कर दी गयी हैं।

बम्बराविलके स्वराज्य बनना पुन विजयादित्य विजयाहार (११४८-
११५५ ई) राजा हुआ। इसने चालुक्योंकी बराबरीका बुरा कर
केला और यह विजयक नकचुरिके चालुक्योंका जग करके और बम्बरा-
का राजा बननेमें प्रभाव उत्पन्न हुआ। किन्तु यह विजयक विजयाहार
नरीचको भी मर्दान करवा चढ़ा थे सोचोने मजदूर कुछ हुआ। विजयाहरी-
की ओरके भी बेमार्गति निम्नलेर कुछका संवाजन कर रहा था। कभी
मुझमें यह बात पया किन्तु मरते-मरते भी नकचुरिकोके इत्ना मर्दान
कर गया कि वे मर्दान छोड़ भाग गये। विजयादित्य स्वयं बड़ा बराबरी
था। अपने कबुलोके किहू यह बराबर कहा गया है। बेनिमिना विजय-
विल बनका निम्न था। अपने चालुक्य कबालुके कारण यह मर्दानुक्ति के
कहाया था। यह चालुक्यके कर्तव्य वाजन करता था और अपने के-
पुन नाजिकमन्दि नमिष्ठकेमकी मर्दी निम्न करता था। कोरहापुर एक
जग स्थानीय केनमन्दिरको बल्ले जलक राज मिले थे। कलके प्रमिष्ठ
वीन बेमार्गति बोल्नके बम्बराविले कोरहापुर विजयकेमने किया है कि
यह विजयादित्यके किहू बीदा ही था बीदा कि हरिके किहू मर्दान उनके
किहू मर्दान और कालके किहू बल्ल। मुझमूर्तिमें कबुलोका बहार करनेमें
यह मर्दान था। राजाके किहू एक विजयक विजयात्म विजय
करवानेका बार्थ कहने हाथमें किया था किन्तु कले पुन करनेके पुन ही
कलकी मूर्त ही गयी। विजयादित्यका एक अन्य अनुच केन-कली एवं
केनमात्रक कलकीवर था कलकीवैव था। यह कलकीव पुन विजयके
पुनर्गति मोर्धकका पुन और अन्य कलकीकाटी बोल्नका वाजाया था।

लक्ष्मीदेव राज्य प्रबन्धमें कुशल और युद्धभूमिमें निपुण नैन्यसचालक था। वह साहित्यरसिक और धर्मात्मा भी था और सम्यक्त्वभण्डार कहलाता था। नेमिनाथपुराणके कर्त्ता कन्नडके जैनकवि वण्णप्पायका वह आश्रयदाता था और उसके घमगुरु नेमिचन्द्र मुनि थे। विजयादित्यके समयमें ही उसके एक अन्य धर्मात्मा सामन्त कालनने एकसम्ब्रीनगरमें सन् ११६५ ई० में नेमीश्वर वसदि नामका सुन्दर एवं विशाल जिनालय निर्माण कराया और उसके लिए प्रभूत दान दिया था। उसके गुरु यापनीय सघके पुत्रागवृक्ष-मूलगणके कुमारकीर्तिके शिष्य महामण्डलाचार्य विजयकीर्ति थे। रट्ट नरेश कार्तवीर्यने भी चन्न मन्दिरके दर्शनाथ वहाँ आकर उसके लिए उक्त गुरुको दान दिया था। यह घटना रट्टों और शिलाहारोंकी मैथ्रीकी भी सूचक है। इस वसदिमें चारों दानोंकी नियमित व्यवस्था थी। उसका निर्माता सामन्त कालन धर्मात्मा और दानी ही नहीं था धरन् शास्त्रज्ञ, विद्वान् और कलाममज्ञ निर्माता भी था।

विजयादित्यके उपरान्त भोज द्वितीय (११६५-१२०५ ई०) शिलाहार राजा हुआ। विज्जल कलचुरि और उसके उत्तराधिकारियोंने भोजको अपने अधीन करनेका भरसक प्रयत्न किया किन्तु असफल रहे। अन्ततः दोनोंके बीच सन्धि हो गयी। भोजके जीवनमें ही कलचुरियोंका अन्त भी हुआ। यह राजा भी अपने पूर्वजोंकी भाँति जैनधर्मका परम भक्त था। विशालकीर्ति पण्डितदेव उसके गुरु थे। इसी और भोजदेवके शासनकालमें १२०५ ई० में आचार्य सोमदेवने जैनेन्द्र-व्याकरणकी शब्दार्णवचन्द्रिका नामक प्रसिद्ध टीका रची थी। यह टीका गण्डरादित्यके वनवाये हुए अर्जुङ्गिका ग्रामके त्रिभुवनतिलक नेमिनाथ जिनालयेमें उक्त विशालकीर्ति सहयोगसे लिखी गयी थी। राजधानी क्षुल्लकपुर (कोल्हापुर) में भी इस राजाने अनेक सुन्दर जिनालयोंसे अलंकृत किया। भोज उपरान्त इस वंशका कोई इतिहास प्राप्त नहीं होता। शिलाहारों

प्रभाचन्द्रदेवको एक गाँव दान दिया था । १११५ ई० के लगभग वीर कोगात्वदय देशीगण-पुस्तकगच्छके माघचन्द्र त्रैविद्यके शिष्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेवका शिष्य था । इस राजाने सत्यवायव नामक जिनालय निर्माण कराने उसके लिए अपने गुरुको एक ग्राम दान दिया था । इसके उपरांत कोगात्वोंका कुछ इतिहास नहीं मिलता ।

(५) चगाल्व वंश—इस वंशके राजे मैसूर कुर्ग प्रदेशके अन्तर्गत चगनादके शासक थे और कोगात्वोंका भाँति ही चोलोंके और फिर होयसलोंके सामन्त थे । इस वंशमें कुछ राजे जैन रहे और छेप दीव रहे प्रतीत होते हैं । १०९१ ई० में चगाल्व राज मण्यिपेरगढे पिन्डुव्यने पिल्हु ईश्वरदेवको मुनिआहारदानके लिए क्षेत्र प्रदान किया था । इनके प्रदेशमें हनसोगे प्रसिद्ध जैन वेद्र था । लगभग ११०० ई० के एक शिलालेखसे प्रकट होता है कि उस समय इस नगरमें ६४ प्राचीन जिन-मन्दिर थे जो इक्ष्वाकुवशी दाशरथी-शीतापति राम-द्वारा निर्मित कराये गये बताये जाते थे । इन्हींमेंसे बन्दतीर्थ नामक वसदिको गंगनरेशोने दान दिये थे और उसी मन्दिरके लिए राजेद्र चोल नम्रि चगाल्वने पूर्वोक्त दानोंकी पुनरावृत्ति की । इन वसदियोंका प्रयत्न मूलसध-देशीगण-गुस्त-कावय-होत्तगगच्छके गुरुओंके हाथमें था । इस राजाने उक्त शाखाके तत्कालीन गुरु अयकीर्तिको उपरोक्त दान दिया था । ये गुरु व्रत-उपवासों, विशेषकर चान्द्रायण व्रतके लिए विख्यात थे । इसी होत्तगगच्छके गुरुओंके अधिकारमें तलकावेरीकी वसदियाँ और पनसोगेकी ४ वसदियाँ भी थीं । उपरोक्त चगाल्व नरेशने स्वयं भी १०२५ ई० और १०६० ई० के मध्य कई जिनमन्दिर निर्माण कराये थे ।

(६) अलुप या अलुव वंश भी इस कालका एक प्रसिद्ध सामन्त वंश था । ये तुलुवनाडुके शासक थे । १०वीं शतीमें इस वंशका उदय हुआ, किन्तु उनके आगमनके बहुत पहलेसे ही यह प्रदेश जैनधर्मका गढ़ रहता आया था । मूडविद्री, गेरुसप्पे, भट्टकल, कार्कल, विलिंग, सोदे,

सागनमें बरछर कोन्हापुर, कनगमी खादि अदिउ बीनकेनू मे ।

(४) कोन्हापुर बरछ—एन बंछके बागल छमे मुर्बके बरछ और हुल्ल दिनेके छिछनमें तिकन कोन्हापुर ८ प्रान्तके छात्र मे । ८८ ई के सवजन र्बन राउदुवार एवरलने बरछ प्रान्तमें एन बंछके उवन ललित-को ल्पारिग रिवा बा तिल्लु कोन्हापुरका बागलविठ बागुदर । ४ ई के हुला बर छत्राद् राउदुद् बीनमे इव बंछके बंवन म्पुछनको बरछी केबाडीमे प्रवज होकर अविबदिवागवि कोन्हापुर तिकन रिवा, अगलि होव रिवा और बागल अमुक बागल म्पुछा । कोन्हापुर-नरीव, इनके लालन और राउदुवछाधिकारी अविबदिठ-बीन मे और इनके राउदुव म्पुछी उवल बरब बा ।

मिवाकेमीने पठा बरछा ई कि १ ५ ई के सवजन कोन्हापुरि एक बरछर मुर्बकाइके ल्पामी और मिर्दिनेके बागल अगले बाउ दिनेके ल्पामेबाउगपुर्बक बंवलन बरछिमें बगविबलन रिवा बा, बीनमे केही बागल बरी ल्पामीने की मुक-बरामीने बगविबलन रिवा बा । १ ५८ ई मे राउदु कोन्हापुर म्पुछादिने ल्पामे अगले ल्पामे-गुल मिबिल बाउगल बरछिने किर् नई बाउगली मुमि र्बेट की बी । इव राउदुके मुक ल्पामे अगुलन ल्पामे ल्पामे बरछके बगविमुक डिउल्लोमे मे । अगले अगले बागल अगुलल्लोमे बीनल्लोमे बागल एक बीनल्लोमे ल्पामे बी बागल बा और इनके मिर् बगविमुकल्लोमे अगविवागी मुमि अगल्लो डिउल्लोकी मुमिदल रिवा बा । इव राउदुकी बाउ राउी बीनल्लोमे बी बरछा बगल्लोमे बी । इनके मुक बागल्लोमे इवमुकल्लोमे ल्पामेनेके दिव ल्पामेने बागल मे । ई राउी बीनल्लोमे मे १ ५४ ई मे इनकी मुमु हुई । एन राउीमे की एक बरछि बरछामी की मिर्ब अगले मुकमी मुमि भी अगिल्लो की की और बाग रिवा बा । बीनके बागल कोन्हापुर-नरीव होवबकीने अगल हो बरी । ११ ई मे कोन्हापुराउ मुकल्लोमे एक मिवाकके मिर्बि और ल्पामेने किर्

गोन्वदेयका शासक तूनवधन्दिशर्माजी नरेण या जिनका नाम सम्मदाया भूपाल था । किमी कारणसे संसारागे धिरयत होकर वह राजा जैन मुनि हो गया था और गोन्माचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ । प्रसिद्ध नृपायवगुर्विंशति स्तोत्रका रचयिता सम्मयतया यही था ।

(९) प्राचीन वदम्बोंकी एक उत्तरपालीय जात्या इस जालमें कर्णाटकके कुछ भागपर शासन करती रही थी । उसके गोविंदव आदि राजे जैनधर्मके अनुयायी थे । नागरगण्ड उनके प्रदेशका प्रधान भाग था और यह जैनधर्मका केन्द्र था । वदम्बरराज कीर्तिदेयकी पट्टगती माल्यदेवोंने १०७७ ई० में मृगपट्टरमें पादयदेव चौथ्यालय बनवाया, आचार्य पद्मनन्दि सिद्धान्तकी उमका शिष्यता बनाया, राजासे ज्ञान लीया और वहाँके अषट्कार ब्राह्मणसे मान्य करवाकर उमका ब्रह्मजिनालय नाम रखा । इस प्रदेशके अनेक ग्रामस्त जैनधर्मानुयायी थे । इन सबमें उल्लेखनीय तैवरतेप्पका नाछप्रनु लोकगावुण्ड था । ११७१ ई० में उमने अपने स्वामी वदम्बरनरेण सोविदेवके राज्यकालमें एक सुन्दर जिनालयका निर्माण कराया और उसमें 'रत्नत्रय' की मूर्ति प्रतिष्ठित की और उसमें मन्दिरके साथ ही एक संगेवर और एक कुप बनवाया तथा प्वाळ और मयकी ध्वजम्भा की । मन्दिरमें त्रितय अष्टदश पूजनके लिए भूमि प्रदान की । उसके गुरु मूलमध-क्राणुराण-तिथिणीगच्छके जैनाचार्य मुनि चन्द्रदेवके शिष्य भानुकीर्ति सिद्धातदेव थे ।

(१०) गंगधाराका चालुक्य वंश—यह प्राचीन चालुक्य वंशकी एक लघु शाखा थी, गंगधारा इसका राजधानी थी । आर० नरसिंहाचार्यके मतानुसार इस वंशकी राजधानी पुलिगेरे [(लदेमदयर) थी, सम्भव है इसीका अपरनाम गंगधारा भी हो । यह एक प्राचीन जैनतीर्थ भी था । इस वंशके राजे राष्ट्रकूटोंके महामण्डलेस्वर थे, और प्राय वे सब ही जैनधर्मानुयायी थे । ९६६ ई० में इस वंशके राजा अरिकेसरी तृतीयने अपने गुरु सोमदेवकी अपने पिता-द्वारा बनवाये हुए राजधानी लेंबुपाटकके

छात्रार्थिक होश्यावर आदि दृष्ट करेछने प्रसिद्ध कर ने जो दृष्ट ही बीनर-
के मुद्रा वर ने । १२वीं छठमि मुद्राक अमुनेत्र (१११४-१५६) ए
वमक प्रसिद्ध राजा वा । ११५१ ई ने राजकुमार मुद्रापरने केरने
नामक स्थानने जो बीनरनेका केन वा, एक विमर्शिके अछनेने
महाका हो नी मुद्रापर अमुनेत्रदेर वम (अमर ११७५-११
ई) के अमरने मुद्रापरने जिनवमकी राजनीय बाह्यका जस्त नी । ए
राजाल ममकारिदेर ममरकाज अमात्रा आदि बीन-मुद्राका अमर
किया वा । राजपरने अमुनेत्रने ११५५ ई ने ममरकी केन अछनेने
मिद राज दिया वा । मुद्रापर अमुनेत्र तृतीय (११८४ ई) ए
बीनरकाकी राजा वा वा रत्नविद्वज्जनर ईका वा । वा वरने केन नी
वा नीर मुद्रापरने नामकापरनेका जस्त वा । अछने नी नीरुद्धीकर
(१८४४ ई) के जस्त दृष्ट वरने नामका ने मुद्रा नीर एका नी
जस्त ।

(७) ए वरने विम अछिद अम बाह्य ए राज-वराकाकी
का विमारेकने वम जस्त ई अमने दृष्ट मुद्रापरनेका बाह्य केनेर
वा । अछने एका एकाके इका अछर नीर वमनी नी कि बीन हीने
दृष्ट नी वा विमका अछने अछिद ममरकाज अमरकाज नीर
बीनरने अछने मुद्रा नी बीनर ए बीनरकाकी नी अमर करने
ममर अमर करनी नी । अछने मुद्रा बीनरनेके बीनरने अमरने नी ।
११५ ई ने अम एकाके नीरनी ममरनेका ममरनेका मुद्रा नी नी
राजी एकाके नीरने नीनरने अछिका विमर कछा नीर ए
अछनेने मुद्रा-ममर ए बाह्यकाके मिद अछने मुद्रा विमरने मुद्रा नी
राजका मुद्रा अम बाह्य किया । एकाके ममर नामारेकने नी ए
अछनेने मिद राज दिया । विमरने मुद्रा अमरने बाह्यकाके मिद-
रने नी ।

(८) ११५५ ई के दृष्ट विमारेकने राजा जस्त ई कि अम अम

गोल्लदेगका शासक नूतनचन्दिलवणी नरेश था जिसका नाम सम्भवतया भूपाल था । किसी कारणसे मंगारसे विरक्त होकर यह राजा जैन मुनि हो गया था और गोल्लाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ । प्रसिद्ध भूपालचतुर्विंशति स्तोत्रका रचयिता सम्भवतया यही था ।

(९) प्राचीन कदम्बोंकी एक उत्तरकालीन शाखा इस बान्ना कर्णाटकके कुछ भागपर शासन करती रही थी । उसका सोविदेव और राजे जैनधर्मके अनुयायी थे । नागरम्पण्ड उनके प्रदेशका प्रधान भाग था और वह जैनधर्मका केन्द्र था । कदम्बराराज कीर्तिदेवकी पट्टगती माला देवीने १०७७ ई० में कुप्पटूरमें पादवेदेव चैत्यालय बनवाया, थाचा पञ्चनन्दि सिद्धान्तकी उसका अध्ययन बनाया, राजासे दान दिलाया और वहाँके अग्रहार ग्राहणोंमें मान्य कराकर उसका ब्रह्मजिनालय नाम रखा इस प्रदेशके अनेक सामन्त जैनधर्मानुयायी थे । इन सबमें उल्लेखनीय तेश्वरतेप्पका नाडप्रभु लोकगावुण्ड था । ११७१ ई० में उसने अपने स्वामी कदम्बरनरेश सोविदेवके राज्यकालमें एक सुन्दर जिनालयका निर्माण करा और उसमें 'रत्नत्रय' की मूर्ति प्रतिष्ठित की और उस मन्दिरके साथ एक सरोवर और एक कूप बनवाया तथा प्याऊ और सत्रकी व्यवस्था कर मन्दिरमें नित्य अष्टद्रव्य पूजनके लिए भूमि प्रदान की । उसके गुरु मूलर क्राणूरगण-तिथिणीगण्डके जैनाचार्य मुनि चन्द्रदेवके शिष्य भानुकी सिद्धान्तदेव थे ।

(१०) गंगधाराका चालुक्य वंश—यह प्राचीन चालुक्य वंश एक लघु शाखा थी, गंगधारा इसको राजधानी थी । आर० नरसिंहाचार्य मतानुसार इस वंशकी राजधानी पुलिगेरे [(लक्ष्मेश्वर) थी, सम्भवतया इसका अपरनाम गंगधारा भी हो । यह एक प्राचीन जैनतीर्थ भी । इस वंशके राजे राष्ट्रकूटोंके महामण्डलेश्वर थे, और प्रायः वे सब जैनधर्मानुयायी थे । ९६६ ई० में इस वंशके राजा अरिकेसरी तृतीय अपने गुरु सोमदेवको अपने पिता-द्वारा बनवाये हुए राजधानी लेंद्रुपा

[illegible]

(११) हुसैनखेदमें बंगलादिक का बंगलेश—यह बंग बालिसे
कप्त एक बंगबालीनुवाची राजा । भारतीयक बंगलेश बंगलादिक बंगलेशकी
ही एक बंगबालीके निकले गरीब होते हैं और वे अपने राज्यभूमीके और
उपनगर बंगबालीके बाहुलीके बागल रहें गरीब होते हैं । यह बंगल
बाहुलीकर बंग बंगबाली बिल्लुबंगल होयबंगले ११४ ई के कप्त बंग
बिल करके मुजने बार बागल का और बंगले राज्यकी हुसैन कर दिया
का । बंगले बंगबालिस्त पुरीहित मंगी बंगले बंगले बागल पुन और
बंगलिकी मंगेबागले कियाकर रखा । होयबंगल बंगलिकी बंगलिकी राज
राजकुमार की बंगल हो गया और बंगले बंगला राज्य पुन बागल कर
दिया । ११५०-१९ ८ ई एक बंगले राज्य दिया । उपनगर बंगले
और पुन बंगलिकी बंग बंगलिकी १९ ८ ई १९९५ ई एक बंगलिकी पुन
बागलिकी बंगले १९९५ ई १९९९ ई एक और पुन बंगलिकी १९९५ ई
१९९९ एक राज्य दिया । यह बंगी बंगलिकी और बंगलिकी बागलिकी
बंगले पुन बंग बंगलिकी बंगलिकी बंगलिकी बंगलिकी

१२७५ ई० लगभग) को इजने समुचित शिक्षा दी थी। कामिराय बड़ा विचारसिद्ध था। आचार्य अजितसेन उसके गुरु थे। इसी राजाके लिए उन्होंने शृंगारमंजरी और अलंकार-वितामणि नामक संस्कृत ग्रंथोंकी रचना की थी। उसीके लिए विजयवर्णोत्तम शृंगागणवर्णनिका रचो थी। १६वीं शताब्दीके अन्तमें विवाह-सम्बन्धोंके द्वारा यह वंश फारसके नैरसत बंशमें सम्मिलित हो गया। उससे उपरान्त भी सम्भवतया इसका कुछ अस्तित्व १८वीं शताब्दी तक बना रहा।

(१२) बेजवाडाके परिच्छदि पादुपति राजे और घायकटके कोत राजे आद्य देशक प्रमुख सामन्त बंश थे। ये लोग दौंव थे और जैनधर्ममें भारी विद्वेष रखते थे। आद्य देशमें जैनधर्मक पतनका अधिक श्रेय इहाँ सामन्त बंशाको है।

वारंगलके ककातीय—११वीं शताब्दीके मध्यके लगभगतेलगानेमें ककातीय वंशका उदय हुआ। वारंगलको राजधानी बनाकर इन्होंने शीघ्र ही अपनी शक्ति बढ़ायी और एक अच्छा स्थिर राज्य स्थापित कर लिया। १३वीं शताब्दीमें इस राज्यका अन्त्युदय रहा। रुद्रका उत्तराधिकारी राजा गणपतिदेव (११९९-१२६० ई०) इस वंशका प्रसिद्ध और शक्तिशाली नरेश था। उसके समयमें तैलेगु महाभारतके रचयिता टिपकन सोमय्य नामक हिन्दू विद्वान्ने क्षाम्त्रार्थमें जैनियोंको पराजित किया बताया जाता है। उसी समयसे इस राज्यमें जैनधर्मका पतन प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है। राजा कट्टर शैव बन गया और जैनियोंपर समने भारी अत्याचार किये। उसके उपरान्त वारंगलमें रानी रुद्रम्मा (१२६१-१२९१ ई०) का राज्य हुआ। यह इस वंशकी अन्तिम शक्तिशाली एवं महान् शासक थी, उसका उत्तराधिकारी रुद्रदेव (१२९१-१३२१ ई०) था। १३२१ ई० में मुहम्मद तुगलकने वारंगलके अन्तिम ककातीयनरेशको पराजित करके तेलगानेके इस हिन्दू राज्यका अन्त किया। वारंगलका प्राचीन नाम एकपौलनगर था। इस प्रान्तसे सम्बन्धित कैफ़ियतोंके आधारपर प्रो०

संस्थापक सैलप द्वितीयका मित्र और सहायक था और जिन्होंने सैन्य तथा उससे पुत्र मत्स्यायय चातुर्वयकी ओरसे पारके परभागों (मुन्न और भोज) के साथ युद्ध किये थे । मुन्की मृत्यु इसी भिल्लमके हाथसे हुई बताया जाती है । उसका पौत्र भिल्लम तृतीय चातुर्वय-सम्राट् सोमेश्वर प्रथमका महासामन्त था और उसका विवाह भी सोमेश्वरकी बहनके साथ हुआ था । इसी समयसे इन सुएन यादवोंकी शक्ति बढ़नी प्रारम्भ हुई । भिल्लम तृतीयकी बीवी पोटोमी सुएन द्वितीय विक्रम पण्ठका उसके भाईके विरुद्ध सिंहासन प्राप्तिमें सहायक हुआ था । चातुर्वयकी अवनतिसे राज ठठाकर यादव शक्तिशाली हो गये ।

सुएन द्वितीयका प्रपौत्र भिल्लम पचम (११८७-९१ ई०) देवगिरि-के स्वतंत्र यादव राज्यका वास्तविक संस्थापक था । उसने पन्नाणीपर भी अधिकार कर लिया था किन्तु देवगिरिकी ही अपनी राजधानी बनाया । ११९० ई० में होयमल-नरेण धीरवल्लाल द्वितीयने सोरतूरके युद्धमें भिल्लमको पराजित किया और उसे कृष्णाके पार भगा दिया । भिल्लमके पुत्र जैतुगि (११९१-१२१० ई०) ने वारणलके ककातीय राजा यदुकी युद्धमें मारकर गणपति देवकी ककातीयोंके सिंहासनपर बैठाया । जैतुगिका पुत्र मिहान (१२१०-४७ ई०) इस वंशका सर्वमहान् और अपने समय-का सर्वाधिक शक्तिशाली नरेश था । उसने होयमल वन्मालकी भी पराजित किया और १२२२ ई० तक धनबासी प्रान्तकी अपने अधिकारमें रखा । उसने गुजरातपर भी आक्रमण किया, फलस्वरूप गुजरातके राजा लावण्यप्रमादने १२३१ ई० में उसके साथ संधि कर ली । मिहानने अजुन, लक्ष्मीधर, मम्मागिरिके सिंह तथा जज्जल, फक्कल, हम्मीर आदि राजाओं और सामन्तोंकी भी पराजित करके अपने अधीन किया बताया जाता है । उसका पुत्र जैतुगि उसके जीवनमें ही मर गया था अतः उसके बाद उसका पौत्र कृष्ण (१२४७-६० ई०) राजा हुआ । उसने भी मालवा, गुजरात कोंकण और चोल देशोंकी विजय की थी । कृष्णका छोटा भाई महादेवरा

[illegible]

वैद्यगिरिचे यादव—एक बंधन मुलगा मुला या शिवाय पुत्र पुत्राद्वारे वा । एकाच पुत्र मुलगाचा वा । बहु मुलगा असत ही एक बंधन सामाजिक संस्थाच आहे । जमीने यादव बहु बंधन मुलगाबंध की बांधणी ही । मुलगा बांधण्याचा राजपूत बांधणीच्या बंधन एक छोटा-सा सामाजिक वा । जमीन ही बंधन बांधणीची जिल्हा वा बंधन गाव की मुलगाबंध बंधन । बंधन गाव जिल्हा असत वा शिवाय बंधन जिल्हा जिल्हा ही मुलगाबंधन बहु बंधन यादव वा की बंधनबंधन बांधणी बंधन

सर्वोपेक तैलप द्वितीयका मित्र और सहायक था और जिसने तैल तथा उसके पुत्र सत्याश्रय चालुक्यकी ओरसे धारके परमारों (मुज और भोज) के साथ युद्ध किये थे । मुजकी मृत्यु इसी भिल्लमके हाथसे हुई बतायी जाती है । उसका पौत्र भिल्लम तृतीय चालुक्य-सम्राट् सोमेश्वर प्रथमका महासामन्त था और उसका विवाह भी सोमेश्वरकी वहनके साथ हुआ था । इसी समयसे इन सुएन यादवोंकी शक्ति बढ़नी प्रारम्भ हुई । भिल्लम तृतीयकी चौथी पीढ़ीमें सुएन द्वितीय विक्रम पण्ठका उसके भाईके विरुद्ध सिंहासन प्राप्तिमें सहायक हुआ था । चालुक्योंकी अवनतिसे लाभ उठाकर यादव शक्तिशाली हो गये ।

सुएन द्वितीयका प्रपौत्र भिल्लम पचम (११८७-९१ ई०) देवगिरि-के स्वतंत्र यादव राज्यका वास्तविक संस्थापक था । उसने फल्गुणीपर भी अधिकार कर लिया था किन्तु देवगिरिको ही अपनी राजधानी बनाया । ११९० ई० में होयसल-नरेष वीरवल्लाल द्वितीयने सोरतूरके युद्धमें भिल्लमको पराजित किया और उसे कृष्णाके पार भगा दिया । भिल्लमके पुत्र जैतुगि (११९१-१२१० ई०) ने वारंगलके ककातीय राजा रुद्रको युद्धमें मारकर गणपति देवकी ककातीयोंके सिंहासनपर बैठाया । जैतुगिका पुत्र मिह्न (१२१०-४७ ई०) इस वंशका सर्वमहान् और अपने समय-का सर्वाधिक शक्तिशाली नरेश था । उसने होयसल वल्लालको भी पराजित किया और १२२२ ई० तक धनवासी प्रान्तको अपने अधिकारमें रखा । उसने गुजरातपर भी आक्रमण किया, फलस्वरूप गुजरातके राजा लावण्यप्रसादने १२३१ ई० में उसके साथ सन्धि कर ली । सिंहने अर्जुन, लक्ष्मीधर, भम्भागिरिके सिंह तथा जज्जल, कषकल, हम्मौर आदि राजाओं और सामन्तोंको भी पराजित करके अपने अधीन किया बताया जाता है । उसका पुत्र जैतुगि उसके जीवनमें ही मर गया था अतः उसके बाद उसका पौत्र कृष्ण (१२४७-६० ई०) राजा हुआ । उसने भी मालवा, गुजरात, कोंकण और चोल देशोंकी विजय की थी । कृष्णका छोटा भाई महादेवरा

उन्होंने हमको ही राज्यकार्य सहायन करने तथा वा अन्तःपुरी मनुष्यो पराजित करने पुनः राज्यकार्यो गरी न देकर वह स्वयं राजा बन गये और उन्होने १२६०-७ ई में राज्य किया। १२६८ ई में अजयना हीमचल वारिहने को मनुष्यो पराजित किया। अजयना जाने पुनः राज्यको करना उत्तराधिकारी अजयना मनुष्यो पर विजय करने गयीं राज्यकार्यो अजयना कर दिया और अजयनाको मनुष्यो पराजित गरी स्वयं राजा हुआ।

राजपूत राज (१२३०-१३९६ ई) के समयके इन संस्थाएँ बन
आरम्भ हुआ : १२९६ ई में इस्लामक शासिकने भारतीयों केिर नाईका
दिया किन्तु उनके ही वर्ष राजपूतने होकरकोंको पराजित करके इनकी
राजधानी आनसुगर आक्रमण कर दिया । कश्मिरक सेनोंमें बल्लि ही
गयी : १२९९ ई में अफगानीक शासकीने अफगान देशधिरिपर आक्रमण
कर दिया । राजपूत पराजित हुआ इनने अफगिनोंकी बलीकाम सेठवार
की और कर देनेका वचन दिया । किन्तु कुछ समय तक देनेके बाद इन
कर दिया अतएव १३०६ ई में बल्लि काटने राजपूतकी पराजित
करी कर दिया और १३०६ तक बली-बुद्धन रहा : राजपूतके पुन
धर (१३१२-१३९६ ई) में भी दिल्लीके सुल्तानकी कर देनेके उपकार
कर दिया अतएव बल्लि काटने बली बुद्धन बाद शान्त । धरके अन्तिम
कमरा बहमोद इल्तुत (१३९२-१४०६ ई) देशधिरिका राजा हुआ : इनने
मुल्तमानोंकी आने राज्यमें निवास बाहर किया उबार मुबारकबाई
अफगानीने देशधिरिपर पराजित आक्रमण किया और इल्तुतकी शान्त किया
ली : इन प्रकार देशधिरिके शासन-राज्यका अन्त हुआ ।

[illegible]

अथवा उसके पोषक रहे प्रतीत होते हैं किन्तु उनके वंशज देवगिरिके यादव नरेश प्रायः सब ही हिन्दूधर्मके अनुयायी थे। किन्तु साथ ही वे जैनधर्मके प्रति भी सहिष्णु थे और साहित्य एवं कलाके भी रसिक थे। सिंहन यादवके आश्रयमें ही ज्योतिषाचार्य भास्करभट्टने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सिद्धान्त-शिरोमणिकी रचना की थी। इस आचार्यकी ज्योतिषविद्याके शिक्षणके लिए उस नरेशने एक विद्यालय भी स्थापित किया था। यह राजा संगीत-विद्याका भी मर्मज्ञ था और उसने सारंगधर नामक संगीताचार्यसे संगीत-रत्नाकर नामक ग्रन्थकी रचना करायी थी। कर्णाटकीय संगीतके सैद्धांतिक पक्षपर यह सर्वप्रथम ग्रन्थ माना जाता है। इसी समयके लगभग जैनाचार्य पाश्वदेवने भी सम्भवतया इसी नरेशके आश्रयमें अपना संगीत-समयसार नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचा था। पाश्वदेव श्रीकान्तजातीय आदिदेव और गोरीके पुत्र तथा महादेवाचार्यके शिष्य थे और श्रुतिज्ञानचक्रवर्ती एवं संगीता-कर उनकी उपाधियाँ थीं। आधुनिक विद्वान् उन्हें संगीतशास्त्रका प्रकाण्ड विद्वान् और उनके ग्रन्थको संगीत विषयकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति मानते हैं। यादव नरेश महादेवराय एवं रामचन्द्ररायका एक प्रमुख सामन्त कूचिराज था, इसे पाण्ड्यदेशके मध्यमें वेतूर प्रदेशका शासक नियुक्त किया गया था। कूचिराजके गुरु मूलसद्य-सेनगण-पोगलिंगञ्चके पश्यसेन भट्टारक थे। उनके उपदेशसे कूचिराजने वेतूरमें लक्ष्मी-जिनालयका निर्माण कराया था और उसके सरक्षणके लिए कुछ भूमि, एक दूकान और कई उद्यानोंकी आय दान की थी। अपने उत्कर्षकालमें उत्तरमें गुजरातसे लेकर दक्षिणमें तुंग-मद्रा तक यादव-राज्यका विस्तार था।

द्वारसमुद्रका होयसल वंश—पूर्वमध्यकालमें दक्षिण भारतका यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली राज्यवंश था। पूर्व दक्षिणमें मैसूरसे लेकर उत्तरमें तुंगमद्रा नदी पर्यन्त सम्पूर्ण प्रदेशपर होयसल-नरेशोंका अधिकार था। द्वारावती (द्वारसमुद्र या दोरसमुद्र) इनकी राजधानी थी और ये द्वारावतीपुरवराधोश्वर कहलाते थे। ये लोग अपने-आपकी

नीलकुन्ने वसुधकी करिव बनगो वे । होमबलीका मूल विद्यालय
पश्चिमीबादर मुरवेरे तानकेने नियत अंशवि बनर बाब बरकपुर बन
बा । एर स्थान मुरवेरे हो पैनबर्बका एर इकुन बेन एता मरक बा ।
होमबलीक मुरर अलिम राणकुटी एवं बतरबनी बापुपुटीके बाबाब
बेबीके नामन बाब वे और मरकबनम अंशविरे हो नामक वे ।

११वीं मरी ई क शारममें इन बंधन मुनिम एक बाबक एक ही
मरकबक बा । एर बरुत्तालीकी और बरुत्ताही बा किनु मरुत्ता
एवं तानक-विहीन बा । १२५ ई के बनमर अंशविमें हो मुनकुन्ने
इविबनक-मुनबनकके बोली बरुत्ताके विषय विमरकन पश्चिमीके
मन्त्रालयक विवा बा और इन बनमरमें बंनरीय इरिबरीके बनी इरर
मुदका मरकक स्थापित विवा बा । बनमरका इली विमरकनकी विमर
विमरकनमाममें मुनीम मुदक बरबनक अंशवि बीन केनके बनमर मुर वे ।
बनरके बरुत्ता १५-१८वीं मरुत्तालीकी कई मुनर विम-बरुत्ताकी बी मरि
मरुत्तामरक और इलीके विमर बीन वेनी बाबमरका (१५८वीं) मर
विमरक बरुत्ता बा । इली मरुत्ताक बीनबाब मुदक बरबनका विमर
विमरक बा विमरमें मरकक मुदक, मरुत्ता और मुनि विमर एवं
करते वे ।

एक विम मरुत्ताक बरुत्ता बाबमरुत्ताके मरुत्ताके विमर एवं मुन
मुदकके मरुत्ता हो विमर विमरका बरुत्ताक मरुत्ता बा । इलीमें एवं
बनमरक विमर बनरुत्ताके विमरकक मुरके बनर बनमर । मुदक बनमर एवं
(मरुत्तामरक) बनरुत्ता और बीनकक मरुत्ता 'बीनकक' (ई बन,
इली मर) । बीन बनरुत्ता मुरकक एवं मरुत्ताके मरुत्तावि हो विमरुत्ता और
विमर । मरुत्ता मरुत्ता ई वि मुदक बनरुत्ता और बीनकी मरुत्ता
मरुत्ताके विमर हो बनमरके बन विमरुत्ता मुदक की बी । ओ बी हो मरुत्ता
इरु मरुत्ता मुन बरुत्ता बनरुत्ता मुर, बनरुत्ता एवं बाबीमरि विमर, एवं बनरुत्ता
विमर मरुत्ता एवं मरुत्ताक बनरुत्ता मरुत्ता विमर और विमर हो बनमर

विजय-चिह्न निश्चित किया। इस घटनासे सल, पोयसल कहलाने लगा जो कालान्तरमें होयसल शब्दमें परिवर्तित हो गया और सल-द्वारा स्थापित राज्यवशका नाम हुआ। उपरोक्त घटना लगभग १००६ ई० की है।

पोयसल (१००७-१००२ ई०) ने गुरु सुगतके उपदेश और पथ-प्रदर्शनमें अपनी राज्यशक्तिको नींव डालनी प्रारम्भ की। पोयसल कर्णाटककी एक पार्वतीय जातिसे सम्बन्धित था और उसको जननी सम्मन्त्रतया एक गग राजकुमारी थी। इस कालमें चोलो-द्वारा गगवाडि राज्यका अन्त कर दिये जानेसे कर्णाटक देशकी स्थिति सङ्कटापन्न थी अतः पोयसल अपनी वीरता एवं योग्यतासे चालुक्योंका एक महत्त्वपूर्ण सामन्त हो गया और चोलों तथा उनके कोगाल्वर्धनी सामन्तोंसे युद्धों-द्वारा धन-धान्य प्रदेश छीनकर वह अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। उसके पुत्र विनयादित्य प्रथम (१०२२-१०४७ ई०) और पौत्र नृपकाम होयसल (१०४७-१०६० ई०) ने पोयसल-द्वारा प्रारम्भ किये कार्यको चालू रखा और वे अपनी शक्ति बढ़ाते रहे। गुरु सुगत वर्धमान हो उनके भ्रमर्षगुरु एवं राजगुरु थे और शासन-प्रबंध एवं राज्य-संचालनमें उनका सक्रिय भाग-दर्शन करते थे।

नृपकामके उत्तराधिकारी विनयादित्य द्वितीय (१०६०-११०१ ई०) के गुरु शान्तिदेव थे। श्रवणबेलगोलकी पादर्वनाथ वसति ११२९ ई०। शिलालेखसे प्रकट है कि 'गुरु शान्तिदेवकी पादपूजाके प्रसादसे पोयसल नरेश विनयादित्यने अपने राज्यको श्रीसम्पन्न किया था।' १०६२ ई० अगदिमें ही शान्तिदेवने समाधिमरण किया और उस उपलक्ष्यमें रात तथा उसके समस्त नागरिक जनोंने वहाँ उनका स्मारक स्थापित किया था 'इस राज-गुरुके उपदेशसे महाराज विनयादित्यने प्रसन्नतापूर्वक अने जिनमन्दिर, देवानय, सरोवर, ग्राम और नगर निर्माण किये।' 'निर्माण कायमें वह बलीन्द्रसे भी आगे बढ़ गया।' उत्तरायण सङ्क्रमण अवसरपर १०६२ ई० में ही इस नरेशने मेघचन्द्रके शिष्य बेलबेके जैन

[illegible]

कर रही थी, वह स्वयं एक असाध्य रोगसे पीड़ित हो गया। उस अवसर-
पर गुरु चारुकीर्तिने उसे अपने अद्भुत औषधि प्रयोगसे घोर ही बीमोग
एवं स्वस्थ कर दिया था। ११०३ ई० में वल्लाल प्रथमने मरयन्ने दण्ड-
नायककी तीन सुन्दरी बन्ध्याओंका विवाह सुयोग्य वरोंके साथ स्वयं कराया
था। ११०४ ई० में उसने चंगान्व राजाओंको पराजित करके अपने
अधीन किया। जगदय मान्तरन स्वयं वल्लालको राजधानीपर आक्रमण
किया तो उगने उमे बुरी तरह पराजित करके भगा दिया और साथ ही
उमके कोप और प्रमिद रत्नहारको भी हस्तगत कर लिया। इस राजाने
वेलूरको अपनी राजधानी बनाया था।

उसका उत्तराधिकारी उमका अनुज सुप्रसिद्ध विट्टिदेव (विष्णुवर्धन)
होयसल (११०६-११४१ ई०) था। यह हम वंशका सव-प्रसिद्ध नरेश,
भारी योद्धा महान् विजेता और अत्यन्त शक्तिशाली राजा था। द्वार-
समुद्रकी उमने अपनी राजधानी बनाया। उसने चालुक्योंकी अधीनतामें
अपने आपको प्रायः मुक्त कर लिया और चोलोंको देशसे निकाल भगाया।
स्वतन्त्र होयसल-राज्यका यह वास्तविक संस्थापक था और होयसल-
साम्राज्यकी नींव डालनेवाला था। उत्तरकालीन वैष्णव ग्रन्थों एवं अनु-
श्रुतियोंके आधारपर आधुनिक इतिहास पुस्तकोंमें प्रायः यह लिखा पाया
जाता है कि इस राजाके समयमें वैष्णवाचार्य रामानुजने जैनियोंको
शास्त्राथमें पराजित किया फलस्वरूप राजाने जैनधर्मका परित्याग कर
दिया, वैष्णवधर्म अंगीकार कर लिया, अपना नाम बदलकर विष्णुवर्धन
रखा, जैनियोंपर अत्याचार किये, यहाँतक कि जैनगुरुओंकी धानीमें पिलवा
दिया, श्रवणवेलगोलके बाहुबलिकी मूर्ति और अन्य जैन मन्दिर तुहवाये,
वैष्णव मन्दिर बनवाये और वैष्णवधर्मके प्रचारका अपना प्रधान लक्ष्य
बनाया। किन्तु वास्तवमें ये कथन मिथ्या और अमपूर्ण हैं। रामानु-
जाचार्य तिरुचिरापल्लीके निकट थारगम्के निवासी थे, काचीमें उन्होंने
शिक्षा पायी थी, शंकराचार्यके अद्वैत वेदान्तके विरोधमें वे विशिष्टाद्वैत

बर्धन और आर्चनर मठके गुरुदत्ता थे। योरेनू उक्त राजने अधिपति
 श्रीराम के राजने का। यह राजा मन्द सेव का श्रीराम तथा देव
 बर्धन समस्त वनके विरोधी का। मैत्रु प्रदेवके अनेक वनवर्धन वने
 मन्द करवा रिने व और स्वयं राजानुमने वनके जलाचारके विरुद्ध होकर
 एव साथ बचाकर वनवर्धनके साथ की थी। वनका वनवर्धन
 श्रीगुरुजी भी राजानुमने वनवर्धन का। मन्द वन-वनर वन-वनर
 ११११ ई के समयन कर्णने श्रीराम-नरेश विरुद्धन विरुद्धन
 विरुद्धनकी राजधानी हारद्वारने मकर १३ राजका ज्ञान विरुद्ध
 मर्दित होता है।

यह वनका वनवर्धन विरुद्धन और वनवर्धन का। वनने राजानुमने
 वनवर्धन और वनवर्धन का। मन्द है वनकी राजधानी वन विरुद्धन
 का राजानुमने के राजधानी की मन्द हो और वनवर्धन राजा ल
 वनवर्धनकी विरुद्धन को मन्दित हुआ हो तथा वनने वनने वनने वनने
 का मन्द वनने राजने करनेकी मन्द है की ही। वनने कानने वनने
 विरुद्धनकी भी हारद्वारने वने और वनवर्धन है कि राजने की वने
 विरुद्धनके वन मन्दित वनवर्धन की ही। राजानुमने राजा एव अधिपति
 श्रीरामके मन्द १ ४ ई के ही वनी की और वन राजने वनका वनवर्धन
 विरुद्धन राजने मन्द (१ वन ११११ ई) राजने वन
 का। राजानुम विरुद्धनके वनवर्धन ११११ ई के वने। वनने मन्द
 होता है कि राजने मन्दित भी वन वनवर्धन मन्द ही राजानुम और
 वनने वनवर्धन वन का और श्रीराम-नरेशके वनवर्धन वनेके वन राजानुम
 वनवर्धन मन्द वने।

विरुद्धन राजानुमकी विरुद्धन मन्दित होने और वनका मन्द वनवर्धन
 की विरुद्धनके वन वन वनवर्धन वनवर्धन की मन्द व वनने कानने
 राजने राजने और वनवर्धन वनवर्धन और वन वनवर्धन वनवर्धन वनवर्धन
 मन्दित है। वनने राज विरुद्धनकी की कोई वनवर्धन वनने वनने

परिवर्तनसे नहीं है, यह नाम उसका पहलेसे ही था, अन्यथा स्वयं जैन शिलालेखोंमें इस नामसे उसका उल्लेख न होता। वस्तुतः कर्णाटकके राजा लोग बहुधा अपने मूल कन्नडिग नाम (यथा विट्टिग या विट्टिदेव) के साथ-साथ विनयादित्य, विष्णुवर्धन आदि जैसे संस्कृत उपनाम भी रख लेते थे। प्राचीन चालुक्यों, राष्ट्रकूटों आदिमें बराबर ऐसा होता था, स्वयं होयसळ वंशमें दोनों प्रकारके नाम पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ११२१ ई० में महाराज विष्णुवर्धनने अपने प्रधान सेनापति गगराजके अनुज सोवणके हितार्थ हादिरवागिलु जैन वमदिको दान दिया। ११२५ ई० में इस नरेशने जैनगुरु श्रीपाल त्रैविद्यप्रतीका सम्मान किया। चामराजपट्टन तालुकेके शाल्य नामक स्थानसे प्राप्त उसी वर्षके शिलालेखके अनुसार अदियम, पल्लव नरसिंहवर्म, कोग, कल्पाल, अगर आदि राजाओंके विजेता इस होयसळ-नरेशने भक्तिपूर्वक शाल्यनगरमें एक जैन विहार बनवाया और उस वसदिके लिए तथा उसमें जैन ऋषियोंके संरक्षणके लिए वादोमसिंह, वादिकोसाहल, ताकिकचक्रवर्ती आदि विरुद्रप्राप्त स्वर्णनायक विद्वान् जैनगुरु श्रीपालदेशको वही ग्राम तथा अन्य समुचित दानादि प्रदान किये। ११२९ ई० में इस राजाने बेलूरके मल्लि जिनालयके लिए दान दिया। ११३० ई० में इसके सेनापति गगराजके पुत्र बोप्पने रुवारि द्रोहघरट्टाचारि कश्चे-द्वारा राज्याश्रयमें शान्तीेश्वर वसदिका निर्माण कराया। इस कालमें दण्डनायक मरियाने और भरत नामक भय्नेने पाँच वसदियाँ बनवायीं, जिनमेंसे चार देशीगणके लिए और एक काणूरगणके लिए थीं, तथा काणूरगण त्रिंश्रिणी-गच्छके गुरु मुनिमद्रके शिष्य मेघचन्द्र सिद्धान्तोको दान दिया। राजधानी द्वारसमुद्र (हलेबिड) के निकट वस्तिहल्लिकी प्रसिद्ध पाश्वनाथ वसदिका सन् ११३३ ई० का शिलालेख भी इस राजाको परम धार्मिक भय्ण सूचित करता है। इस लेखमें यह भी उल्लेख है कि स्वयं राजधानी द्वारसमुद्रमें महाराजके एक महान् जैन दण्डाधिपति विजयपाश्वदेव नामका सुप्रसिद्ध जिनालय बनवाया था और महाराज विष्णुवर्धनने उक्त जिनालयके मूल

विवरसि भी, जो सिंह सामन्तसे विवाही थी, बड़ी धर्मात्मा थी।
 ११२९ ई० में हन्तियूरमें इस
 कुमारीने गोपुर आदिसे मण्डित एक उत्तुंग सुन्दर जिनालय बनवाया
 और उसके लिए अपने पिता महाराजसे निःशुल्क भूमि प्राप्त करके
 रुको दान दी थी। महाराज विष्णुवर्धनके मन्त्रिया, सेनानायको,
 न्त सरदारों एवं राज्य-कर्मचारियोंमें-से भी अधिकांश जनधर्मानुयायी
 वस्तुतः विष्णुवर्धन होयसलकी महत्ता, शक्ति, समृद्धि और विजयोका
 क श्रेय उसके प्रचण्डवीर जैन सेनापतियोंको है। उन्होंने ही होयसलों-
 क्षिण, दक्षिणपूर्व, पूर्व और पश्चिमवर्ती समस्त दुर्द्धर शत्रुओंका संहार
 ा था और द्वांसमुद्रक नरेशोंको एक शक्तिशाली साम्राज्यका अधिपति
 दिया था।

इन जैन-वीरोंमें सर्वप्रमुख महाराज विष्णुवर्धनका प्रधान सेनापति
 राम था। यह कौण्डिन्यगोत्री द्विज था। इसका वंश पहलेसे ही जैनधर्मका
 अनुयायी रहता आया था। गंगराजका पिता एचिगक या बुद्धिमित्र
 सल नृपकामका मन्त्री और सेनानायक था और मल्लूरके कनकनन्दि
 का शिष्य था। उसकी माता पौषिकव्वे भी बड़ी धर्मात्मा थी,
 २० ई० में श्रवणवेलगोलमें इस साध्वीने सन्यासमरण किया था।
 नी वीरता, पराक्रम, राज्य-सेवाओं एवं धर्मभक्तिके कारण गंगराजने
 सामन्ताधिपति, महाप्रधान महाप्रचण्ड, द्रोहघरट्ट, दण्डनायक, होय-
 नरेशको राज्याभिषिक्त करनेके लिए पूर्णकुम्भ चार दानमें सत्पत्र,
 स्निग्ध आदि अनेक विरुद प्राप्त किये थे। शिलालेखोंसे प्रतीत होता है
 अपने बड़े भाई बल्लाल प्रथमको मृत्युके उपरान्त एक अल्प भाई
 यादित्यके विरोध और पाण्ड्य एवं मातङ्गकी शत्रुताके कारण विष्णुवर्धन-
 स्थिति बड़ी दुर्वाहाल थी और यह गंगराजका ही पराक्रम था कि
 ने उन सब शत्रुओंका दमन करके विष्णुवर्धनके लिए मिहासन निष्कण्टक
 या और उसका राज्याभिषेक कर दिया। वह महाराज विष्णुवर्धनका

बाहिना हाथ ही बना था। म्यूरायके सम्मुख सर्वप्रथम म्यून् समस्त
 सम्पत्तियों को निष्काश बाहर करनेकी को और वह सभी अपने
 संभरावको चीना की १११७ ई. में इसमें पूर्ण करवा दिया। अपने
 कर्मचारीमें स्थित राजेन्द्र चौकके टीनों सामन्ती-अधिवस दबीर और
 बरतिहृवर्गका पुनर्स्थापन कर दिया और संभरावकी राहको
 सम्पत्तिका अधिकार कर लिया। म्यूराय विष्णुवर्गको प्रणय होकर
 सबसे बुरेस्कार मांगनेके लिए कहा तो कहने संभरावके देखकी चीना को
 वह प्रान्तमें अनेक प्राचीन वीरगौरव और कलाकृतियों की जिनमेंसे अनेकोने
 राजेन्द्र और बरिदाकेन्द्र चौकने बहा करवा लिया था। संभरावको समस्त
 बीबीदार और संरक्षण करवाया था जो इसमें बड़ी बराकातपूर्ण किया।
 संभरावने कोनूरुच और बैरिक्की विजय की और कई अन्य दुर्ग बालको-
 का बहा किया। होस्तगोले बाबुल विजय बहाके समस्त बालक
 विष्णुवर्गके बाबुलकी पराजित करके कलकत्ताके प्रविष्ट पूर्ण होय किया
 था। इसका बहा केनेके लिए बाबुल-बराह्मन् सर्व बाह्य दुर्ग
 सामन्ती-अधिवस होमबहा-राज्यपर बाबुल कर दिया। विष्णुवर्गको
 पुनः संभरावको बलिबन्धे मुक्तकर बाबुलकी विजय कलकत्ते में बना और
 इस और केनालीने बाबुल-बराह्मन् और कलके सामन्तीको १११८ ई.
 में पूरी तरह पराजित किया। संभरावको इस बाबुलकी विजयकी
 मूर्त बलीय था इसने होमबहाको लज्जा ही नहीं बलक बली
 बली को बना दिया, इसी कारण कलकत्तेकी बहा विष्णुवर्ग वीरगौरव
 म्यूरायका राजात्वकर्तव्य बहा बना ई। वैदिक बुरेस्कारको
 पुनः पुनः कलकत्तेके विजय सर्वसम्पत्ति बुरेस्कारके संभरावको
 बुद्ध की १११८ ई. में इस मुक्तकी संभरावमें एक नाम बंद दिया और एक
 बली बालकमुक्तकी बाबुल-बराह्मन् कलकत्ते बहा अनेक बलि-बलिबारे बलिबहा
 कलकत्ते संभराव ११ प्रान्त की बली बुरेस्कारमें प्रान्त बना था
 कलकी समस्त नाम कलके संभरावकी बलि टीनोंकी बलि बली

वमदियोंके जीर्णोद्धार एवं सरक्षण, नवीनोंके निर्माण और विविध स्तूपोंमें
 जिनधर्मको प्रभावनाके हित व्यपकी। दिलालेस्वामें उगकी मुलना
 गोमटप्रतिष्ठापक गग-सेनापति चामुण्डरायसे की गयी है। किन्तु ऐसा
 धर्मान्मा एव जिनभक्त होते हुए भी गगराजके सम्मुख राजनीति पहले
 और धर्म पीछे था, उसका धर्म उसकी राजनीतिमें सहायक एव साधक
 था, साधक नहीं। वह अनन्य स्वामिभक्त था। गगराजका पुत्र और
 पत्नी भी परम जिनभक्त थे। उसके पुत्र बोध और गतोजे एचिराज
 उसके जीवनमें ही प्रसिद्ध दण्डनायक थे। ११३३ ई० में गगराजकी
 मृत्यु हो जानेपर एचिराजने राजधानी द्वारममुद्रमें ही अपने पिताकी
 स्मृतिमें द्रोहधरट्ट-जिनालयका निर्माण कराया जो अत्यन्त विशाल, सुन्दर
 और कलापूर्ण था। यही जिनालय विजय-याश्वदेवके नामसे प्रसिद्ध हुआ।
 इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा होनेपर जब पुजारी जिनेन्द्रके अमिषेकका पवित्र
 ग-घोदक लेकर राजाके सम्मुख पहुँचा तो विष्णुवर्धन उस समय चंकापुरमें
 छावनी डाले पड़ा था और वह मसण कदम्ब नामक एक दुर्द्धर शत्रु
 सामन्तका सहार करके निवृत्त हुआ था और तभी उसकी रानी लक्ष्मी
 महादेवीने पुत्र प्रसव किया था। राजाने अत्यन्त आनन्दित होकर पुजारी-
 का स्वागत किया, खड़े होकर करबद्ध उसे नमस्कार किया और ग-घोदक-
 को भवितपूर्वक मस्तकपर चढ़ाया तथा कहा कि 'भगवान् विजय-याश्वदेवकी
 प्रतिष्ठाके पुण्य फलसे ही मैंने आज यह विजय और पुत्र प्राप्त किये
 हैं।' तदनुसार ही उसने नवजात शिशुका नामकरण किया और मन्दिर-
 को ग्राम भेंट किया। सेनापति बोध अपने पिता गगराजकी भाँति उदार
 और वीर था। उसने शान्तोद्भर वसदि और प्रलोक्षपरजन अपर नाम
 बोधन चैत्यालयका निर्माण कराया। वह भारी विद्वान् भी था। उसके
 गुरु नयकीर्ति सिद्धान्तचक्रवर्ती थे। बोधकी माता और गगराजकी पत्नी
 लक्ष्मले या लक्ष्मीमती दण्डनायकित्ति गुरु शुभचन्द्रकी शिष्या थी, वह
 अपने पतिके युद्ध एवं राज्य-कार्यमें भी उसकी सक्रिय सहायक रही थी,

भारद्वाजगोत्री मरियाने प्रथमके पौत्र और दावरसके पुत्र भ्रातृद्वय मरियाने और भरतेस्वर भी महाराज विष्णुवर्धनके दण्डनायक थे। मरियाने दण्डनायकको तीन पुत्रियाँ का विवाह राजा बल्लाल प्रथमने स्वयं कराया था और यह स्वयं गगराजके जामाता थे। ये दोनों भाई महाराज विष्णुके समयमें सर्वाधिकारी, माणिकभण्डारी और प्राणाधिकारी पदापर आसक्त रहे। इनका सम्पूर्ण परिवार जिनमन्त था, अनेक जिनमन्दिरोका इन्होंने निर्माण कराया। इनके गुरु माघनदिवे शिष्य गण्डविमुक्तदेव थे।

गगराजका भतीजा और दण्डनाया बम्मका पुत्र एच भी विष्णुवर्धनके समयमें ही दण्डार्थीगवा हो गया था। यह भी बहा धार्मिक और धीर था किन्तु उनकी मृत्यु थोड़ी ही आयुमें ही गयी प्रतीत होती है।

होयगल एयरगके राजमन्त्री चित्रराज दण्डार्थीगवा पुत्र इम्मडि दण्डनायक विट्टिमय्य महाराज विष्णुका एक अग्रज और सेनानी था। बाल्यावस्थामें ही इसके माता-पिताकी मृत्यु हो गयी थी अतः स्वयं महाराजको उसका पालन-पोषण किया था। यह बालक इतना न्युत्साह था कि थोड़ी ही आयुमें अस्त्र-शस्त्र तथा अथ विविध-विद्याओंमें पारंगत हो गया। एक राक्षस-भोत्री पुत्रोंके साथ राजाने उसका विवाह कर दिया। युवा होनेके पूर्व ही यह बालवीर महाप्रबुद्ध दण्डनायक, सर्वाधिकारी, भवन-संभालकारी आदि पदवियोंमें विभूषित हो गया था। एक पक्षके भीतर ही इस बाल-राजापतिने सींगुदेगपर नीपन आक्रमण करके दास्यों युगे नष्ट पंगवित करके अर्पण किया था, अतः समस्त विजयोंके कारण चाहें ही आयुमें यह धीर महाराजका दाहिना हाथ ही गया था। साथ ही यह परम धार्मिक भी था। श्रीपाद वैदित्देव उसके गुरु थे और स्वयं राजपात्रों द्वारा मृत्युमें उठने विष्णुवर्धन राजालयका निर्माण कराया था, और वा प्रातः उक्त शासन पुरस्कार-रत्न रूप मिले थे उक्त उमने उक्त मन्दिरके निरूपण मुम्तिने आशय-दानके लिए समर्पित कर दिया था।

इस प्रकार अनेक अष्ट प्रधान जैन राजमन्त्रियों और धार्मिक सेनापतियोंके

काव्यपूर्ण एवं सुशोभ्य दृश्योत्पत्ति के लिये विष्णुवर्धन होमब्रह्मे व वैष्णव मतों के बीच की दृष्टि-भेद की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। विष्णुवर्धन होमब्रह्मे व वैष्णव मतों के बीच की दृष्टि-भेद की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। विष्णुवर्धन होमब्रह्मे व वैष्णव मतों के बीच की दृष्टि-भेद की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

अपनी मृत्युके कारण् कारीरद्वारेवीके बलप्र कन्का पुन रिम
नरिन्द्रेन प्रप (१९४१-१९४२ ई) राजा हुआ । राज्य-व्यवस्था ही
उसका राज्यविषयक कर दिया गया था । पिताकी मृत्युके समय वह केवल
८ वर्षका बालक था । वह राज्य करनेपर भी बहुत कारीर-अभिरुचि अधिक
प्राप्त हुआ था । उसके समयमें होमब्रह्म-साम्राज्यकी प्रथा और
प्रतिष्ठाकी राजा उसके अपने गुड-कौशल, विद्वत्प्राज्ञा व राजकीय
चतुर्पक्षि लड़ी हुई वरन् उसके प्रत्येक निष्ठके राज्यके प्रयोजन और उसके
राज्यविषयक सुयोग्य एवं और भी अधिक और ईमानदारीके साथ ही
ही लगी । परिणामे, बहुत बरिद कुछ न्यायिकारी को उसके पिताके
व्यवस्था ही ने । हीराज्यके रीत-राज्य प्रथा, व्यवस्था और ईश्वर राज्यके
चार अन्य व्यवस्थागत सुपक्ष एवं और केवल इसे सर्व प्राप्त ही लगी ।
हेमराज कोपिबन्धनीय व कलके पुन वीर्यवर्धन मुनिप्रसाद मगारण ने ।
शिव-वसिष्ठ हेमराजकी दुष्का वापुस्वराज और वंशराजके साथ की
जाती थी । राजाके इसे 'मुष्मद्भि' साथ मुखकारने दिया, जिसे अपने
वहाँ एक वीर्यवर्धन वनप्रसाद अपने मुखके वापनर वसिष्ठ कर दिया ।
राजा वरिष्ठने वीर्यवर्धनके वंश करके एक राज्यका नाम वर्धनुर व
दिया । व्यापार वरिष्ठके वीर्यवर्धनके वंशप्रसाद एवं वर्धनुर प्रथा
व । यह वरिष्ठकी कलक हुआ था । उसके पिताका नाम वरिष्ठ

माताका लोकाम्बिके और पत्नीका पद्मावती था। लक्ष्मण और अमर
 नामके उसके दो भाई थे। यह पूरा परिवार जैनधर्मका परम भक्त था।
 स्वयं हुल्ल न केवल सदारचेता, दानशाल, मन्दिरोंका निर्माता और धर्मत्मा
 जैन था वरन् वह व्यवहारकुशल, राजनीतिज्ञ, योग्य प्रशासक और
 अपने समयका सर्वमहान् सैन्य-सचालक एवं धीर योद्धा भी था।
 राज्यकी सेवामें वह महाराज विष्णुवर्धनके समयसे ही चला आ रहा था
 और अब नरसिंहके समयमें महाप्रधान, प्रधान कोषाध्यक्ष, सर्वाधिकारी
 एवं महाप्रचण्ड दण्डनायक आदि पदोंपर आरुढ़ था। अपने युद्धों, विजयों
 और सुशासनसे उसने नरसिंहदेवके साम्राज्यकी अक्षुण्ण एवं सुरक्षित
 रक्षा। उसकी तुलना चामुण्डराय और गगराजसे की जाती थी। हुल्लके
 व्रतगुरु कृष्णकुटासन मलधारीदेव थे। देवकीर्ति मण्डलाचार्यका भी वह
 भक्त था और उसके स्वगुरु नयकीर्ति सिद्धातदेव थे। हुल्लने श्रवणवेल-
 गोलपर चतुर्विंशति-वसदि नामका अत्यन्त सुन्दर एवं कलापूर्ण जिनालय
 निर्माण कराया था। ११५९ ई० में स्वयं महाराज नरसिंहदेव जब दिग्वि-
 जयके लिए निकले तो इस जिनालयका दर्शन करनेके लिए गये और प्रसन्न
 होकर हुल्लकी उपाधि 'सम्पत्त्वचूडामणि' के कारण इस वसदिका नाम
 'मण्यचूडामणि' रखा तथा उसके लिए एक ग्राम दान दिया। राजाने
 उक्त स्थानकी वसदियोंकी जिनेन्द्र प्रतिमाओं, गोम्मटेश्वर और पार्श्वनाथ-
 की भक्तिपूर्वक वन्दना एवं पूजा की। सेनापति हुल्लने केल्लगेरे वंकापुर
 और कोप्पण तीर्थके अनेक जिन-मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया, नवीन
 मन्दिर निर्माण कराये, मन्दिरोंके संरक्षणके लिए दान दिये और कई दान-
 शालाएँ स्थापित कें। नरसिंहका तीसरा प्रसिद्ध सेनापति शान्तियण्ण
 था। उसका पिता पारिपण्ण भी एक पराक्रमी योद्धा और राज्य कोषाध्यक्ष
 था। आहुषमल्लको उसने पराजित किया था और उसी युद्धमें उसकी
 मृत्यु हुई थी। शान्तियण्णकी माता वम्मलदेवी मरियाने दण्डनायककी पुत्री
 थी और वही धर्मत्मा थी। उसके पिताकी मृत्युके बाद नरसिंहने शान्ति-

बेलगोलपर निर्मापित चतुर्विंशति वसदिके लिए दो गांव दान दिये थे ।
 ११७६ ई० में राजधानीके देवीसेट्टी नामक घनी सेठने वहाँ वीर बल्लाल-
 जिनालय नामका सुंदर मन्दिर राज्याश्रयसे निर्माण कराया और उसके
 लिए स्वगुरु बालचन्द्र मुनिको दान दिया था । स्वयं राजाने भी कई गांव
 उसके लिए प्रदान किये थे । ११९२ ई० में राजधानीके अन्य चार प्रमुख
 सेठोंने समस्त नागरिका एवं अन्य नगरोंके व्यापारियोंके सहयोगसे वहाँ
 नगर-जिनालय नामका विशाल एवं सुंदर मन्दिर निर्माण कराया था ।
 इस मन्दिरका नाम अभिनव शान्तिदेव भी था । राज्यश्रेष्ठिके साथ महाराज
 'प्रतापचक्रवर्ती वीरबल्लालदेव' स्वयं मन्दिरमें दर्शनार्थ गया और उसने
 उसके लिए गुरु वज्रनन्दि सिद्धान्तको कई ग्राम दान दिये । सदैवकी भाँति
 इस समय भी होयसल राजधानी द्वारसमुद्र जैन धर्मका गढ़ और भव्यों
 (जैन) का प्रधान केन्द्र थी । जैनाचार्य श्रीपाल देव और उनके शिष्य
 इस कालमें होयसलोंके राजगुरु थे । बल्लाल द्वितीयके समयमें भी होय-
 सलोंके शौर्य और पराक्रमकी प्रतिष्ठाके आधार उसके जैन सेनापति और
 मन्त्री ही थे । वृद्ध सेनापति हल्लके अतिरिक्त वसुधैकवाधव रेचिमय्य
 बल्लालका अन्य प्रसिद्ध सेनानी था । इसके पूर्व वह विज्जल कलचुरिका
 प्रधान सेनापति था, कलचुरियोंके पतनके पश्चात् वह बल्लालकी सेवामें
 आया । वह दुर्द्धर योद्धा और कुशल सेनानी था, बल्लालकी अनेक विजयो-
 का श्रेय उसे ही है । साथ ही वह बड़ा जिनमन्त्र था । उसने भागुदिके
 रत्नत्रय जिनालयके लिए मुनि मानुकीर्तिको दान दिया, नागरक्ष्ण्ड देशकी
 अपनी राजधानीमें एक अति सुन्दर सहस्रकूट चैत्यालयका निर्माण कराया,
 १२०० ई० में इस मन्दिरके लिए अपने गुरु सागरनन्दिको दान दिया और
 महाराज बल्लालने भी उस अवसरपर उन्हें एक ग्राम दान दिया । उसी
 वर्ष श्रवणबेलगोलमें भी उसने एक शान्तिनाथ वसदि बनवायी । मरियाने
 दण्डनायकके पुत्र भरत और बाहुवलि भी बल्लालके स्वामिभक्त जैन
 सेनानायक थे । बल्लालका एक अन्य सेनानायक वूचिराज था, वह राजाका

[illegible]

रको, तैलव्यापारियो और स्वयं महामण्डलेश्वरने भी इस मन्दिरके दान दिये । १२०० ई० में राज्यके एक अन्य सर्वाधिकारी मम्मट प्यने अपने स्वसुर वल्लभके साथ परवादिमल्ल-जिनालयके लिए एक को समस्त तैलमिलोका कर प्रदान किया था । राजाका एक दूसरा अधिकारी 'महापायसम-विरुद-नामोत्तदिष्टायकम' आदि पदारूढ नायक अमृत भी नयकीर्तिका शिष्य था और वल्लालकी उपराजधानी कुंडोका निवासी था तथा जाति एव कुलसे शूद्र था । अपने तीन लोके साथ १२०३ ई० में उस स्थानमें उसने एक्कोटि-जिनालयका ण कराया था और समस्त नगर-निवासियो एव कृपकोंके नायकोंके न भगवान् शान्तिनाथकी पूजा और मुनियोके आहारके लिए भूमिदान था । सेनापति अमृत इतना उदारचेता था कि उसने ब्राह्मणोंके एक अग्रहार भी स्थापित किया था एवं एक शिवालय भी बनवाया । वल्लालके राज्याभिषेकके अवसरपर उसके एक अन्य पदाधिकारी चराजने ११७३ ई० में बोगवदिक श्रोकरण-जिनालयके पार्श्वदेवके ए गुरु अकलंकसिंहासन पद्मप्रभस्वामीको एक गाँव दान दिया था ।

वल्लाल द्वितीयने विद्वानोंका भी आदर किया और साहित्यको साहज दिया । उसके पूर्वजोंके प्रश्रयमें श्रीधरने जातकतिलक और चन्द्र-चरित (१०४९ ई०) की, नागवर्म प्रथमने चन्द्रचूडामणिसातक १०७० ई०) की, नागचन्द्र 'अभिनवपद्म' (११०५ ई०) ने मल्लिनाथ रत एव रामचन्द्रचरित नामक चम्पुओंकी, ब्रह्मशिवने समयपरीक्षाकी, त्रिवर्मेने गोवैद्यकी और नागवर्म द्वितीयने काव्यालोकन, कर्णाटकभाषा-रण तथा वस्तुकोषकी रचना की थी । स्वयं वल्लाल द्वितीयके राजकवि मेचन्द्र ये जिन्होंने लीलावती नामक प्रेमगाथा लिखी थी, राजादित्य ११९० ई०) ने व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित और लीलावती नामक गणित य रचे, महाकवि जगन्नाथ (१२०९ ई०) ने यशोधरचरित, जगदल्लसोमनाथ-कदम्ब-कल्याणशरक नामक वैद्यक ग्रन्थ, बाधुवर्म वैश्यने हरिवंशाम्बु-

यस और जीवनव्यवस्था विद्युत्कारणसे संस्थापित और विद्युत्कारण
कारणसे करणविद्युत् और बाह्यके बाई प्रतिस्पर्धापूर्ण नृत्तिनृत्त
(१९२५ ई) की रचना की थी । उपरोक्त विद्युत् कार्य कर ही से वे
और कलकत्ता स्थितिके पुरस्कर्ता थे । उनके समयके विद्युत्कारण हीन
कर्मका विद्युत् और नृत्तिकार्यके बोझ समूचे हैं । और बाह्यलोक के समूचे
हीनकर्म-कार्यकार्यकी विद्युत्-नृत्ति की हुई विद्युत्कारण कलकत्ता
१९२२ ई में वैद्युतिक विद्युत्कारण विद्युत् कार्य करके उन्ने हीन
कर्मकी कलकत्ता की विद्युत्कारण करणविद्युत् विद्युत्कारण हीन
विद्युत् कार्य ।

[illegible]

पुरको अपनी राजधानी बनाया ।

ये दोनों ही राजे जिनधर्मभक्त रहे प्रतीत होते हैं । १२५४ ई० में नरसिंह राजधानीके प्रसिद्ध विजय-पाद्व-जिनालयमें दर्शनार्थ गया, देव-पूजन किया, मन्दिरके पूर्ववर्ती श्वासनों (फ़र्मानों) को देखा, उन्हें स्वीकृत किया और कुछ और भूमिदान दिया । १२५५ ई० में अपने उपनयन सस्कारके अवसरपर भी इस पचदशवर्षीय राजाने भगवान् विजय पादर्वकी पूजाके लिए दान दिये । इस राजाके गुरु वलात्कारगणके कुमुदेन्दु योगीके शिष्य और कुमुदचन्द्र पण्डितके गुरु माघनन्दि सिद्धान्त थे जो मारचतुष्टयके रचयिता और भागी विद्वान् थे । १२६५ ई० में राजाने राजधानीके कलि होयसल-जिनालयमें उपस्थित होकर अपने महाप्रधान सोमेय दण्डनायककी सहायतासे त्रिकूट-रत्नश्रम-शान्तिनाथ जिनालयके संरक्षणके लिए स्वगुरुको १५ ग्राम दान दिये थे । इसी उपलक्ष्यमें वह जिनालय नर्गिअ-जिनालयके नामसे भी प्रसिद्ध हुआ । १२५७ ई० में राजधानीके जैन नागरिकोंने भी द्रव्य एकत्रित करके शान्तिनाथका एक नवीन मन्दिर बनवाया था और राजान उसके लिए दान दिया था । १२७१ ई० में नरसिंहके उसी सोमय्य दण्डनायकने राजधानीके निकट एक प्राचीन वमदिका पुनरुद्धार किया । १२८२ ई० के एक शिलालेखमें उपरोक्त मण्डलाचार्य माघनन्दिको स्पष्टतया होयसलनरेशका राजगुरु कहा है । उस वर्ष भी राजाने गुरुको दान दिया था । १२८३ ई० में नरसिंहके माघव नामक एक अग्र दण्डनायकने कोप्पण तीर्थकी चतुर्विंशति-तीर्थकर-वसतिमें एक नवीन जित-प्रतिमा प्रतिष्ठित की और अपने गुरु उहीं माघनन्दिको दान दिया । इसी राजाके प्रथममें मल्लिकार्जुनके पुत्र वेशिगज (१२६० ई०) ने शब्दमणिदण्ड नामका प्रामाणिक कन्नड व्याकरण लिखा और कुमुदेन्दु (१२७५ ई०) ने कन्नड जैन-रामायणकी रचना की ।

नरसिंह तृतीयका प्रतिद्वन्द्वी रामनाथ होयसल भी जितभक्त था । उसने कोगलिमें क्षेत्र-पार्श्व-रामनाथ-वसदिका १२७६ ई० में निर्माण

कराया था जिसके लिए उनके राजदेह नवाबु देहिनेदुने बुनियाद रिया
 था। की निर्वाहिन बिनालेख इन्तु बिनालमके कि सार रास एलक
 हास इकन-रान रिने कालेरा कालेख करते हैं। कीराने केनुर
 बकवाकालेरा की इनके बकाल बिना था, कीर रोजगुरके कल
 बिनालमकी की इसी कालने दल दिया गया। किन्तु इन बकाले दल
 दियाकल ही काले कीर बकाली कीर बुनकालकि बकालक लल लने
 हास देवनि के बकालेकी कलकलकलका बकल हीनेके बकाल होलक
 दलककी दल की लीकनीक की।

बाबिद बुनिकन बुन कीर बकालेबकाली कीरबकाल बुन
 (१९९१-१९९३ ई) इस बकाला कलिक बकालेबकीय रास था। बकाल
 बीनकालके इति बकालीय दल कलीन होला हैं। कलका बकालकल कलिकलके
 केतेर बकालकल बकाल ही बीन था। १९९२ ई के इस कालने देह-
 की कीलुनक-बकाल नामक बिनालकके लिए की बकालीय दलकलकल
 किया था। १९ ई के दलकली हासबकाली बकालुकि ललक-
 ललकालीदेवने बकालेबकाल किया था। इस बकालकल बकालने दल कल
 किया कीर बुनकी बुनिकी बकालकल कलिकल की थी। इसी बने की
 बिनाल बुनकलिके बकालेबकालकल बुनकल वा बुनकल बकाल कल किया
 था। किन्तु इन बकाले हीनकल-बकालकी बकाल बिनिक होली वा एही
 थी। १९१ ई के बकालेदल कलकीके देवकलिक ललिक बकाल कीर
 कलका हाकीने हीनकल-बकालकल बीनकल बकालकल किया कीर दलकली
 हासबकालकी बुन एव बकालकल किया। बकाले किया होकर बकालकल
 लीकल कर ली कीर कर देने कल किन्तु कीर ही कल बकालु कल कर
 दिया। १९२५-२ ई के बुनकल बुनकलके हीनकल दलकल बकाल
 बकालकल किया कीर इस दलकलका बकाल कल ही कर किया। बकाल
 इस कीर बकालकल वा बीने बकाल बीनकल कलकलकी दलकल बुनकलकीने
 कलके-कलके ही बीन कीर इसी बकालने कलकल १९२५ ई के कलकल

उसकी मृत्यु हो गयी । किन्तु मरनेसे पूर्व वह ऐसी व्यवस्था कर गया और राज्य एवं स्वदेशकी सीमारक्षाका भार कुछ ऐसे व्यक्तिपोंको सौंप गया कि जिन्होंने उगके स्वप्नकी उसकी आशाओंसे कहीं अधिक चरितार्थ कर दिखाया । अपने राज्य एवं यशकी रक्षा अन्तिम होयसल घोरधल्लाल भले ही न कर सका किन्तु भावी विजयनगर साम्राज्यके बीज वह ही बो गया था, इस तथ्यमें विशेष सन्देह नहीं है ।

अधिक हो उठता है। उनके प्रतिद्वन्द्वी उनके स्वदेशवासी, सजातीय, साधर्म्यी पड़ोसी राजे-महाराजे नहीं थे वरन् वे विदेशी विषमों क्रूर आक्रान्ता थे जो न केवल तत्कालीन भारतकी स्वतन्त्रता और धनका एक अपहरण करनेवाले राजनैतिक शत्रु थे बल्कि भारतीयोंके धर्म, संस्कृति, आचार-विचार और जीवनके भी भयानक शत्रु बने हुए थे।

इस भारत-भोरव साम्राज्यके मूल संस्थापक सगम नामक एक छोटे-से सरदारके पाँच वीर पुत्र थे। १३८५ ई० के एक जैन विलालेत्तमें इन्हें यादवराजवशोद्भूत कहा है अतः देवगिरिके सुएन और द्वारसमुद्रके होयसलोंकी भाँति सगमके पुत्र भी यदुवशी क्षत्रिय थे। सगम और उसके पुत्र यद्यपि होयसलोंके अति साधारण श्रेणीके छोटे-से मामन्त और उसकी सीमान्त चौकियोंके रक्षक थे, किन्तु साथ ही वे स्वदेश भक्त, स्वतन्त्रता-प्रेमी, वीर, साहसी और महत्त्वाकांक्षी भी थे। मुसलमानोंके आक्रमण न होते तो स्यात् ये गुण सुपुष्ट ही रह जाते या वे कोई होयसल आदि जैसा राज्य स्थापित भी कर लेते। किन्तु देखते-देखते ही एक दशकके भीतर दक्षिण भारतकी तीनों महान् राज्य-शक्तियोंका अन्त हो गया। इन वीरोंका रक्त उबल उठा, ये सचेष्ट हो गये और पाँचों भाई मुसलमानोंके आक्रमणकी भोषण बाढ़को स्तम्भित करनेके लिए जुट पड़े। इसमें सन्देह नहीं कि उनका यह उपक्रम विशेष रूपसे द्वारसमुद्र और सम्भवतया वारंगलके भी मुसलमानों-द्वारा पतन किये जानेको प्रतिक्रिया था। इन पाँचा भाइयोंने दक्षिण देशके विभिन्न सामन्त सरदारोंका, जो उत्तर दिशासे आनेवाला इस सवमहारक ववण्डरसे क्षुब्ध थे, अपने नेतृत्वमें मगठन किया और देशसे मुसलमानोंको निकाल बाहर करनेमें जुट गये। इस प्रयत्नमें यह मुसलमानोंके हाथो वन्दी हुए, मुसलमान भी बना लिये गये, किन्तु छूट निकले, और फिर स्वधर्ममें दोषित होकर दुगुने उत्साहसे कार्य सिद्धिमें जुट गये। किन्तु कार्य सरल न था, दिल्लीक सुलतान शक्तिशाली और स्थान-स्थानमें उनके मुसलमान सूत्रदार अधःस्वतंत्र

अध्याय १०

विजयनगर-साम्राज्य

विजयी विजेयी मुसलमानोंने बरकर बाइनगी और निर्दयतुर्ब
बारम्बारी-हाथ प्रगत बत-एनकर बविकार कर केके बनएत मुस-
एतके बवैकी देशविरुद्धे बारगी बारकके कफातीकी और बनरे हार-
बपुरके होकरबोकी राज्य-वसितका भी बत कर विद्या बा सिन्धु वै राज्य-
नव विधीकर कथयिक के सितासिरीकी देशवसित और ल्हाज्ज-केकर
बत नहीं कर केके । होकरक-एनकी बवसित होके भी नहीं वाली की
कि विजयनगर राज्यके करके बह ल्हाज्ज-केकर नवीन बत और ल्हाज्जके
बाव ल्हाज्जके हो बत । बल्लभल्लभ विजयनगर-साम्राज्य बाएकी एके
वीरकी बल्लभल्लभ एवं बल्लभ लुहि भी । बल्लभके प्राचीन बल्लभल्लभ,
ताव एवं बल्लभ पल्लभकी बल्लभल्लभ एकेबूट, बल्लभकी बल्लभल्लभ और
होमल्लभ बल्लभ राज्यकी बल्लभल्लभ होकी बल्लभल्लभ बल्लभ विजय-
नगरके एकेबल्लभे करके-बल्लभो बत बल्लभल्लभ सुधीन बल्लभल्लभकी
बल्लभ किया । बल्लभल्लभ बल्लभ-बल्लभल्लभ बीकन और बल्लभल्लभे बल्लभकी
बीकनकी बल्लभल्लभ करके बल्लभल्लभ राज्यकी बल्लभल्लभ बल्लभल्लभे बल्लभ
बीकी हो बल्लभल्लभ लल्लभल्लभ एवं बल्लभल्लभका बल्लभल्लभ किया और
बल्लभल्लभे बल्लभल्लभ कल्लभ लल्लभल्लभ बल्लभ बल्लभल्लभ बल्लभल्लभ किया बीक-
बल्लभे बल्लभल्लभ एवं बल्लभल्लभल्लभ बीकन एवं बल्लभल्लभ किया । बल्लभ बल्लभ
बल्लभल्लभल्लभे बीकन विजयनगर-साम्राज्यकी लल्लभल्लभ विजयनगर और बल्लभल्लभ
बल्लभ बल्लभल्लभ केके बल्लभे बल्लभकी कार्य और बल्लभल्लभ बल्लभल्लभ और

प्रजामें अधिकांश भाग जैन, उनके पश्चात् श्रीवैष्णव और फिर लिंगायत या वोरशैव और कुछ सद्शैव थे। किन्तु विजयनगर-नरेश प्रारम्भसे ही सिद्धान्तसभो धर्मोंके प्रति सहिष्णु, समदर्शी और उदार थे। स्वयं राजधानी विजयनगर (हम्पी या प्राचीन पम्पा) के वर्तमान खण्डहरोंमें वहाँके जैन-मन्दिर ही सर्वप्राचीन हैं, वे नगरके सर्व-श्रेष्ठ केन्द्रीय स्थानमें स्थित हैं और अनेक विज्ञ विद्वानोंके मतसे उनमें से अनेक ऐसे हैं जो वहाँ विजयनगरकी स्थापनाके पूर्व ही विद्यमान थे। इससे स्पष्ट है कि यह स्थान बहुत पहलेसे ही एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। हरिहरके शासनकालमें ही १३५५ ई० में भोगराज नामक एक प्रतिष्ठित राजपुरुषने रायदुर्गमें अनन्त जिनालयकी स्थापना करके अपने गुरु नन्दिसंघ बलात्कारगण-सरम्भती-गच्छके अमर-कीर्तिके शिष्य माघनान्द सिद्धान्तको समर्पित किया था। इस राजाके अन्तिम वर्ष १३६५ ई० में कम्पाके जैन-गुरु मल्लिनाथको दान दिया गया था। हरिहरका पुत्र राजकुमार विरूपाक्ष ओडेयर १३६३ ई० में मालेराज प्रान्तका शासक था। उस समय उसकी राजधानी अरगमें पार्श्वनाथ वसदि नामक एक प्राचीन जिनमन्दिरसे सम्बन्धित भूमिकी सोमाके प्रश्नपर जैनो और वैष्णवोंमें विवाद हुआ। राज्यकी ओरसे प्रान्तीय सभाभवनमें महाप्रधान नागन्न तथा प्रान्तके प्रमुख सामन्त सरदारों, जननेताओं और जैन एवं वैष्णव मुखियाओंके समक्ष राजकुमारने सर्व-सम्मतिसे जैनोंके पक्षको न्यायपूर्ण घोषित किया, प्राचीन शासनोंमें जो सोमाएँ निर्धारित थीं वे ही स्थिर रखी गयी और एक शिलालेखमें अंकित करवा दी गयीं। इस कालके प्रमुख जैन विद्वान् महान् वादा सिहकीर्ति, धर्मनाथपुराणके कर्ता उभयभाषाचक्रवर्ती बाहुबलि पण्डित, गोमटसारवृत्तिके कर्ता केशववर्णी और धर्मभूषण भट्टारक थे। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ खगेन्द्रमणि-दर्पणके प्रणेता मगरस प्रथम भी इसी राज्यकालमें हुए हैं।

हरिहर प्रथमके बाद उसका छोटा भाई बुवकाराय प्रथम (१३६५-१३७७ ई०) राजा हुआ। इसके समयमें भी बहमनी सुल्तान मुहम्मद और

गा वह राजद्रोही, सघद्रोही और समुदायद्रोही समझा जायेगा। जैन
 र वैष्णव दोनों सम्प्रदायोंने मिलकर जैन सेठ वृमुविसेट्टोको अपना
 मूहिक संधनायक बनाया और उपरोक्त राजाजाको राज्यकी समस्त
 उदियोमें अर्पित करा दिया। वृषकारायका यह महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक
 कार्य उसके वंशजोंकी धार्मिक नीतिका आधार बना। दोनों ही धर्मोंके
 नुयायियोंको धर्म-स्वानन्ध और राज्यसंरक्षण समान रूपसे प्राप्त हुआ,
 तब ही उनमें परस्पर सद्भाव उत्पन्न किया गया।

वृषकाराय प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीय (१३७७-
 १४०४ ई०) एक प्रतापी सम्राट् था। उसका प्रतिद्वन्द्वी बहमनी सुलतान
 भी शान्तिप्रिय था अतः मुसलमानोंकी ओरसे उसे निश्चिन्तता रही और
 उसने इससे लाभ उठाकर सुदूर दक्षिणके सम्पूर्ण समिल देशपर, त्रिचना-
 पल्ली और काचीपर भी अधिकार कर लिया। शासन-व्यवस्था और अधिक
 सुचारु करके उसने अपने साम्राज्यका संगठन किया और विविध उपा-
 यियोंसे विभूषित सम्राट् पद धारण किया। इसके प्रमुख मन्त्रियों और
 सेनापतियोंमें उसके पूर्वजोंके महाप्रधान बैचका पुत्र दण्डेश इरुग, जो
 क्षितीश और धरणीश भी कहलाता था, और उसके भाई मगप्प एव
 युवकन थे। दण्डेश इरुगने जो भारी धनुर्धर भी था, १३८५ ई० में विजय-
 नगरमें कृन्धुनाथ जिनैन्द्रका सुन्दर पाषाण-निर्मित मन्दिर बनवाया था।
 मन्दिरके सम्मुख दीपस्तम्भपर इस अभिप्रायका लेख उत्कीर्ण है। कालान्तर-
 में यह मन्दिर गाणित्ति-वसदि (तेलिनका मन्दिर) नामसे प्रसिद्ध
 हुआ, सम्भव है पीछे किसी समय किसी तेलिनने इसका जीर्णोद्धार कराया
 हो। इरुगके गुरु आचार्य सिंहनन्दि थे। १३६७ ई० में भी इरुगने एक
 मन्दिर चेलुमल्लूरमें बनवाया था। उसका बड़ा भाई मगप्प भी जैनागमका
 परम भक्त और जिन-धर्मका स्तम्भ कहलाता था। इरुगका नामधारी
 और भतीजा तथा मगप्पका पुत्र दण्डाधिनायकेश इरुगप्प अपने पूर्वजोंसे

कबके कल पाविवासी मुवाहिरके साथ कुछ हुए। मुवाहिरका भी बड़ा-
 इमान था। अमाकेवासी ईसाई कल पाविवाक हों का समर्थ, जिनके
 और बरबोस मनकी कल पाविवासी थी। मुवाहिर और बरबोस काटीके बरबोस
 बरबोस बरबोस मुवाहिरका कल पाविवासी था। ११ ४ ई ई इन पाविवासी
 चीनके निवासियों बरबोस नाहान्के दरबारके आता राजपुत्र भेजा था।
 इन राजाका नाम बीन बरबोसकाके साथ बीन कुछ बरबोस थी। इन
 मुवाहिर कबके बरबोस बीन और कल पाविवाक बीन कल बीनके ठीक हुए
 बरबोस बरबोस, बरबोसक बरबोस और कल पाविवाक मुवाहिर हों बरबोस थे। बीन
 आने काहुन बीनका बरबोस बिनुता और बरबोसके बिनुता बीनके बिनु
 बिनुता था। कबके हुए बरबोस १११ ई ई एक जिनबनिर बरबोस
 आन दिया था १११८ ई ई बरबोस मुवाहिरके बरबोस एक बरबोस
 कल नाहान्के बरबोस कल पाविवासी हों। राजाके बरबोस नाहान् (बिनु)
 के बरबोस (बीन) के कबके बिनु बरबोस (बरबोस)-आता बिनु बरबोस
 बरबोसका बिनुता बरबोसके बिनु राजाकी बीनके एक बीनका-नन बीन।
 पाविवासी बरबोस काहुनके बरबोस, कबके बरबोस मुवाहिर, मुवाहिरों मुवा-
 हिरोंका कल आने बरबोस बरबोसोंके कल करके बीनका हाव बीनकाके
 हावके बिनु और बीनका की बिनु हावके बीनका और बीनकाके
 के बीन बिनु बरबोसके बीन बरबोस है। बीनका मुवाहिर बरबोस बरबोस
 बीनका आने ही बरबोस हाव का मुवाहिर बरबोस। बीन और बीनका एक
 है कबके बीन कोई बरबोस करबोस ही हों बरबोस। बरबोसबीनका बीन-
 की रबोस बीनका बरबोस बीनके १ [बीनका-बरबोस बिनुता बरबोस।
 राजाके बीन एक बरबोस बिनुता बिनुता एक बरबोसके बिनु बरबोस
 बरबोस। रबोसके बीनके बिनुता बरबोस बरबोस जिनबनिरोंकी बिनुता-
 मुवाहिर-बरबोस बिनुता बिनुता आता। बरबोस बरबोस एक मुवाहिरों
 बरबोसके बरबोस करबोस और बरबोस करबोस का बीन बरबोस और राजा-

भी इसी कालमें हुए ।

हरिहर द्वितीयके पदचात् उत्तरा ज्येष्ठ पुत्र देवराय द्वितीय (१४०४-६ ई०) और तदनन्तर द्वितीय पुत्र देवराय प्रथम (१४०६-१० ई०) और फिर देवरायका पुत्र विजय या वीरविजय (१४१०-१९ ई०) राजा हुए । इन राजाओंके समयमें बहमनी मुलतानोंके साथ घरायश युद्ध चलते रहे । १४०६ ई० में तो बहमनी क़िरोजने विजयनगरपर ही आक्रमण किया । चार मास तक वह राजधानीका घेरा छोड़े पड़ा रहा और एक बार नगरमें भी घुस आया, किन्तु निष्काल बाहर किया गया । अन्ततः मन्वि हो गयी और वह वापस लौट गया । कहा जाता है कि देवराय प्रथमने अपनी कन्याका विवाह उसके साथ करनेका वचन दे दिया था, किन्तु मुसलमान बादशाहका देवरायने सम्मान नहीं किया, इसीसे शत्रुताका अन्त न हुआ ।

कुछ इतिहासकारोंने इस कालमें विजयनगर राज्यमें दक्षिणभुजा और वामभुजा नामक दो जातियोंका उल्लेख किया है और उन्हें राज्यके दो प्रधान वर्ग बताये हैं । घस्तुतः ये जातियाँ या वर्ग 'भग्य' और 'भक्त' शब्दोंसे सूचित जैन और वैष्णव ही थे जिन्हें विजयनगरके राजागण अपनी दक्षिण और वाम भुजाएँ समझते और मानते थे । राज्यकी अधिकांश जनता एवं सम्भ्रान्त जन इन्हीं दो समकक्ष और प्रायः समसंख्यक वर्गोंमें बँटे हुए थे । हरिहर और बुक्काको आदर्श नीतिका प्रभाव उनके वंशजोंपर भी हुआ, फलस्वरूप इस वंशके राजे, रानियाँ, राजकुमार और अन्य व्यक्ति तथा सामन्त सरदार राजकर्मचारी और प्रजाजन सभीने जिनधर्मको उन्मुक्त प्रथम दिया । राजा लोग व्यक्तिगत रूपसे अधिकतर शिवविरूपाक्षके उपासक थे किन्तु राज्यधर्म जैन और वैष्णव दोनों ही धर्म थे, और साथ ही विभिन्न धर्मोंमें परस्पर सद्भाव और सहयोग था । १३९७ ई० के एक शिलालेखमें सेनापति इरुगपके साथी गुण्ड दण्डनाथने लिखाया था कि 'जिसकी उपासना शेष लोग शिवके रूपमें, वेदान्ती ब्रह्माके, बौद्ध बुद्धके,

तलक आदि कई अन्य जैन वसदियोको भी भूमिदान दिये थे । १४३१-१४३२ ई० में देवरायके एक उपराजे कार्कल नरेश भैरवरायके पुत्र एवं उत्तराधिकारी धीरपाण्डवने कार्कलमें जो लोकविश्रुत बाहुवलिकी उत्तुंग मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी उसके समारोहमें महाराज देवराय स्वयं सम्मिलित हुए थे । जैनाचार्य नेमिचन्द्रने राजसभामें अन्य विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ करके इस राजासे विजय-पत्र प्राप्त किया था । इस राजाके जैन होनेमें प्रायः कोई सन्देह नहीं है, अपने राज्यके प्रथम वर्ष (१४२० ई०) में ही इसने वेलगोलके गोमटस्वामीकी पूजाके लिए एक गाँव दिया था और अपने जैन महाप्रधान वैचप दण्डनायकको, जो सेनापति इरुगपका बड़ा भाई था, उसका उत्तरदायित्व सौंपा था । ये दोनों भाई राजा हरिहर द्वितीयके समयसे ही राज्यके महत्त्वपूर्ण स्तम्भ रहते आये थे । १४२२ ई० में महासेनापति इरुगपने भी वेलगोलके गोमटेशकी पूजाके लिए गुरु श्रुतमुनिके उपदेशसे एक गाँव प्रदान किया था । १४४२ ई० में इरुगप गोआ प्रान्तका शासक बना दिया गया था । इस प्रकार इस वीर, विद्वान्, विविध विषय पटु कुशल प्रशासक एवं प्रसिद्ध सेनानीने लगभग ६० वर्ष पर्यन्त राज्यकी सेवा की । राज्यका एक अन्य तत्कालीन सेवक महाप्रधान गोप चमूप या गोप महाप्रभु भी परम जैन था । १४०८ ई० के पूर्वसे ही वह राज्यका एक उच्च पदाधिकारी था । उसके पूर्वज भी राज्यमें उच्च पदों पर रहे थे । गोपने स्वगुरुके उपदेशसः कई मन्दिर बनवाये, दान दिये और अतः समयमें घर-बार छोड़ त्यागी बनकर धर्मसाधन किया था । उसके अभिलेखोंमें उसका उत्कट देश प्रेम भी स्पष्ट झलकता है । मसनहल्लिका कम्पन गौड एक अन्य तत्कालीन उल्लेखनीय जैन सामन्त था । १४२४ ई० में उसने स्वगुरु पण्डितदेवकी गोमट पूजाके लिए दान दिया था । इस राज्यकालके अन्य अनेक अभिलेख उस कालमें जैनधर्मकी प्रभावना, राज्याश्रय एवं प्रतिष्ठित पुरुष स्त्रियों तथा जनताकी जिनभक्ति और जैनगुरुओंके लोकोपकारी कार्योंके उल्लेखोंसे भरे पड़े हैं । जैन विद्वानोंमें

तिलक आदि कई अन्य जैन वसदियोको भी भूमिदान दिये थे । १४३१-३२ ई० में देवरायके एक उपराजे कार्कल नरेश भैरवरायके पुत्र एव उत्तराधिकारी वीरपाण्ड्यने कार्कलमें जो लोकविश्रुत बाहुवलिकी उत्तुग मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी उसके समारोहमें महाराज देवराय स्वयं सम्मिलित हुए थे । जैनाचार्य नेमिचन्द्रने राजसभामें अन्य विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ करके इस राजासे विजय-पत्र प्राप्त किया था । इस राजाके जैन होनेमें प्रायः कोई सन्देह नहीं है, अपने राज्यके प्रथम वर्ष (१४२० ई०) में ही इसने वेल्लगोलके गोमटस्वामीको पूजाके लिए एक गाँव दिया था और अपने जैन महाप्रधान वैद्यप दण्डनायकको, जो सेनापति इरुगपका बड़ा भाई था, उसका उत्तरदायित्व सौंपा था । ये दोनों भाई राजा हरिहर द्वितीयके समयसे ही राज्यके महत्त्वपूर्ण स्तम्भ रहते आये थे । १४२२ ई० में महासेनापति इरुगपने भी वेल्लगोलके गोमटेशकी पूजाके लिए गुरु श्रुतमुनिके उपदेशसे एक गाँव प्रदान किया था । १४४२ ई० में इरुगप गोळा प्रान्तका शासक बना दिया गया था । इस प्रकार इस वीर, विद्वान्, विविध विषय पटु कुशल प्रशासक एवं प्रसिद्ध सेनानीने लगभग ६० वर्ष पर्यन्त राज्यकी सेवा की । राज्यका एक अन्य तत्कालीन सेवक महाप्रधान गोप चमूप या गोप महाप्रभु भी परम जैन था । १४०८ ई० के पूर्वसे ही वह राज्यका एक उच्च पदाधिकारी था । उसके पूर्वज भी राज्यमें उच्च पदों पर रहे थे । गोपने स्वगुरुके उपदेशसे कई मन्दिर बनवाये, दान दिये और अन्त समयमें घर-बार छोड़ त्यागी बनकर धर्मसाधन किया था । उसके अभिलेखोंमें उसका उत्कट देश प्रेम भी स्पष्ट झलकता है । मसनहल्लिका कम्पन गौड एक अग्र्य तत्कालीन उल्लेखनीय जैन सामन्त था । १४२४ ई० में उसने स्वगुरु पण्डितदेवकी गोम्मत पूजाके लिए दान दिया था । इस राज्यकालके अग्र्य अनेक अभिलेख उस कालमें जैनधर्मकी प्रभावना, राज्याश्रय एवं प्रतिष्ठित पुरुष-स्त्रियों तथा जनताकी जिनमयि और जैनगुरुओंके लोकोपकारी कार्योंके उल्लेखोंसे भरे पड़े हैं । जैन विद्वानोंमें

जीवाश्मरचरितके कर्ता बादर (१४२४ ई) आलकगाम्बुरव नामक
 बड़े अनुग्रहे विमलभूति और हत्यमेराहृष्टके कर्ता बम्बावरौति (१४३९
 ई) अचिरचरितके कर्ता विमदेव (१४४४ ई) आम्बानुवेकाके
 कर्ता निम्ब बराल्वासी विमलभूति आदि कल्पेगनीय हैं । इनके अति-
 रिक्त सम्बन्धनीय हत्यकारोही कीक-अष्टिष्ठ मल्लिनादभूरि कोलकम को
 व्यावधि वाग्मिवात आदि प्राचीन हांगुल-वर्धितके बर्दे-अष्टिष्ठ टीराकार
 हैं इन्हीं समस्त औरप्रताप प्रौढ़-वैवरावके आश्रित थे । इनके कल्पेके
 कल्पेमें वैद्य-वैद्यभुवार्चव नामक एक बहुभु कल्पे हत्य निर्वाच किञ्च
 था । मल्लिनाथ कुछ अवानिक्त वा अवाग्यवाचिक शैष्टिक आश्रितके कल्पे-
 मल्लान् जीव प्रवेता थे मल्लिनाथके पुत्र-द्वारा भी वैद्यभु नामि काव्योरी
 कुछ टीराई किन्हीं बालेका कता बना है । १४४९ ई में वैद्यभु विहीन-
 की मृत्युका कल्पेका भी कर्ता बर्दे अवधैकरीके ही विद्याकेहीमें
 निजका है ।

वैद्यभु विहीनका अष्टिष्ठनी विरोध बहुवनी व्यावर्धकर एवं पुर्ण
 हत्याप था । किञ्च दिन अष्टिष्ठ बह्मभु कल्पाके ९ हटी-भुक्त
 और वातकीक बहु बल कर कैठा टीव दिन एक अवलव लाता । १४९९
 ई में बारैकके दिनु राज्यका पुर्ण अवा कर्त्तों किया । कल्पे निम्ब-
 नवरवर भी कई बार व्यावर्ध किन्हीं । कल्पे हत्याधिकारी कल्पेकीके
 काव भी वैद्यभुके कुछ बर्दे । इनमें अनुभव किया कि मुनकामोय
 कल्पारोही एक और अनुर्धर एक अधिक निम्ब हैं । कल्पे कल्पे कल्पी
 केकाकी हल बुद्धिहीनी पूर्ति करनेका प्रयत्न किया मुनकामोयकी भी कैव-
 में लगी किया और कल्पे प्रयत्न करनेके निरु कृपाकी एक अष्टि बर्दे
 विद्यावर्धके निम्ब रचवायी । इनके बर्दे-कल्पी अष्टिष्ठ केके निरु
 इनमें कुछ कल्पके निरु बहुवर्धियोंकर भी कैठा लीवार किया । निरु
 भी बहु कल्पे कल्पका वापका एक कल्पधिक अष्टिष्ठकी और कल्पे
 अधिक वैद्यभुकी गरीब था । कल्पाके कल्पानुमापी कल्पे कल्पे कल्पका

विस्तार था। इटलीवासी पर्यटक निकोलो कोण्टो और ईरानी राजदूत अब्दुरेजाक इसीके शासन-कालमें विजयनगर आये और उन्होंने राज्य एवं राजधानीके प्रताप, सौंदर्य एवं वैभवकी तूरि-नूरि प्रशंसा की है।

देवरायके उपरान्त मगमवन्तकी अवसिति होने लगी। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी मल्लिकार्जुन इम्मडिदेवराय (१८४७-६७ ई०) के समयमें १४५५ ई० से सालुव नरसिंह राज्यका प्रधानमन्त्री हो गया। इम्मडि-देवरायके उपरान्त विरूपाक्षराय (१४६७-७८ ई०) और फिर पदियाराय (१४७९-८६ ई०) राजा हुए। ये शासक निर्बल थे और ये बाहरसे बहमनियोंके आक्रमणों तथा भीतर गृहकलह एवं पक्ष्यन्त्रोंसे ग्रस्त रहे। अतएव १४८६ ई० में मन्त्री नरसिंह सालुवने जो अत्यन्त शक्तिशाली हो गया था और उस समय चन्द्रगिरिका प्रायः स्वतन्त्र शासक भी था, अन्तिम नरेश पदियारायको गद्दीसे उतार दिया और स्वयं विजयनगरका राजा बन बैठा। नरसिंह सालुव (१४८६-९२ ई०) ने थोड़ेसे समयमें ही दक्षिणके सम्पूर्ण तमिल देशकी फिर विजय करके राज्यकी प्रतिष्ठाका उद्धार किया और अपने सुशासनसे साम्राज्यकी जनताके हृदयपर ऐसी छाप बैठा दी कि युरोपवासियोंने बहुधा विजयनगर राज्यका 'नरसिंहका राज्य' कहकर उल्लेख किया। मुसलमानोंके साथ भी उसके निरन्तर युद्ध चलते रहे। इस कालमें बहमनी राज्यका मन्त्री महमूदगवाँ अत्यन्त योग्य था किन्तु १४८२ ई० में पक्ष्यन्त्र-द्वारा उसका वध हुआ और उसके मरनेके थोड़े वर्ष बाद ही बहमनी राज्य पाँच टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। इनमेंसे बीजापुरके सुलतान ही विजयनगर राज्यके निकट पड़ोसी और आगेसे उसके प्रधान शत्रु हुए। शत्रु राज्यकी इस क्रान्तिके कारण नरसिंहको अपनी स्थिति सुदृढ़ करने और शक्ति बढ़ानेका अच्छा अवसर मिल गया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इम्मडि नरसिंह (१४९२-१५०५ ई०) ने भी प्रायः शांति-पूर्वक राज्य किया, किन्तु उसके समयमें अरसनायक नामक एक सुलुव सामन्त शक्तिशाली हो उठा और

सगीतपुर नरेश सगमके आश्रित कोटीश्वर (१५०० ई०), धर्मशर्मा-
भ्युदय-टीकाके कर्त्ता यश कोत्ति, नरपिंगलीके कर्त्ता शुभचन्द्र आदि इस
कालके अन्य जैन विद्वान् और ग्रन्थकार थे ।

१५०५ ई० में अपने स्वामीकी हत्या करके अरसनायक राजा हुआ
था किंतु उसके इस कृत्यसे राज्यमें एक व्यापक विद्रोह भडक उठा और
एक वर्षके भीतर ही वीर नरसिंह भुजवल (१५०६-९ ई०) राजा हुआ ।
तदुपरान्त कृष्ण देवराय (१५०९-३० ई०) विजयनगरके सिंहासनपर
आरुढ़ हुआ । विजयनगरके नरेशोंमें यह सर्वाधिक प्रसिद्ध, प्रतापी, शक्ति-
शाली और महान् था । इसके राज्यकालमें विजयनगर साम्राज्य अपने
चरमोत्कर्षको प्राप्त हुआ । राज्याभिषेकके उपरान्त लगभग डेढ़ वर्ष
तक राजाने राजधानीमें ही रहकर अपनी स्थिति सुदृढ़ की, अपने
कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्व और समस्याओंका सूक्ष्म अध्ययन किया तथा
राज्यकी अभिवृद्धिकी योजनाएँ बनायीं । तदनन्तर निश्चित कार्य-क्रमके
अनुसार उसने कौशलसे अपनी विजय-यात्रा प्रारम्भ की और थोड़े ही
समयमें नेल्लोर जिलेके सुदृढ़ उदयगिरि दुर्गको हस्तगत कर लिया और
फिर अथ अनेक दुर्ग विजय किये । उसका सर्व-प्रसिद्ध युद्ध १५२० ई०
का रायचूरका युद्ध था जिसमें उसने बीजापुरके सुलतान इस्माइल
आदिलशाहके ऊपर बड़ी शानदार विजय प्राप्त की । उसने वह दुर्ग तो
छोना ही, स्वयं बीजापुरपर भी अधिकार कर लिया । इस युद्धमें उसके
सोलह हजार सैनिक काम आये । उसने घटमनियोंको प्राचीन राजधानी
कुल्बर्गको भी भूमिसत् कर दिया । उसके सैनिकोंने बीजापुरको लूटा
और क्षत-विक्षत किया । किन्तु सम्राट् कृष्णराय एक उदार चेता दूरवीर
नरेश था । उसने अपनी विजयका भी मानवता एव दयाके साथ उपयोग
किया । उसने शत्रुकी प्रजाको नहीं सताया, निहत्थे और आत्म समर्पण
करनेवाले शत्रु सैनिकोंको भी अमर्य दिया, मुसलमानों-जैसी क्रूरता और
वर्चरताका उसने किसी अंशमें भी प्रदर्शन नहीं किया । पुतगाली इतिहास-

विजयनगर साम्राज्य

किये थे। १५१९ ई० में फिर उसी मन्दिरको और दान दिया था। १५२८ ई० में वेलारी जिलेको एक अन्य वसतिको प्रभूत दान दिया था और शिलालेख अंकित कराया था, उसने मूढविद्वीकी गुरु-वसतिको भी स्थायी वृत्ति दी थी। १५३० ई० के एक जैन-शिलालेखमें स्थाद्वादमत और त्रिनेन्द्रके साथ-साथ आदि वराह और शम्भुको नमस्कार करना इस नरेश-द्वारा राज्यकी परम्परा नीतिके अनुसरणका परिचायक है। १५०९ ई० में उसके सामन्त चगात्व नरेशके राजमन्त्री चैन्न-बोम्मरसने वेलगोलपर एक सुन्दर मण्डप बनवाया था। इसी कालमें चगात्व-नरेशका सुप्रसिद्ध सेनापति मंगरस था। वह बड़ा वीर और पराक्रमी था तथा अपने पिता महाप्रभु विजयपालकी ही भाँति परम जैन था, साथ ही विद्वान् और कवि भी था। उसने सम्राट्के कई युद्धोंमें वीरता दिखायी थी, कई जिनमन्दिर और सरोवर निर्माण कराये थे तथा जयनृपकाव्य, प्रभजन-चरित, नेमिजिनेशमगति, सम्यक्त्वकौमुदी (१५०९ ई०), सूपशास्त्र आदि ग्रन्थोंको कन्नडोमें रचना करके कन्नड साहित्यमें अपना नाम अमर किया था। कृष्णदेवके सामन्त संगोतपुरके सालुव-नरेश भी बड़े जिनभक्त थे, इसी प्रकार काकलके भैरसर-नरेश थे। एक अन्य महिला सामन्त एव प्रान्तीय शासक काललदेवी (१५३० ई०) भी बड़ी जिनभक्त थी। १५१७ ई० में चामराज नगरके शासक वीरय्य नायकने वहाँ एक जिनमन्दिर बनवाकर दान दिया था। गेरुसप्पेके ओडेयर शासक भी परम जैन थे, १५२३ ई० में इन्होंने कई मन्दिर बनवाये और दान दिये। जैनगुरु वादी विद्यानन्द इस कालमें सर्व प्रसिद्ध थे। महाराज कृष्णदेवकी राजसभामें विभिन्न दर्शनो एव मतोंके विद्वानोंके साथ कई बार शास्त्रार्थ करके वे ससार-प्रसिद्ध हो गये थे। महाराज स्वयं उनका बड़ा आदर करते थे। अनेक राज-सभाओंमें इस गुरुने बाद विजय की थी। इस राज्यकालके प्रसिद्ध कन्नडो जैन ग्रन्थकारोंमें भारत, शाग्दाविलास,

विजयनगर-साम्राज्य

बेसीसरबतित और बीच-बायलके कर्ता बाबू बन्धुबुधरिउके कर्ता
 होय्य अरबबुधके कर्ता बाबरन बादि कालेकलीर ई बिगुलि एम्मा-
 मन्ने बाहिलि निर्माण किया । इन बिस्तरसीर बद्दाबू बीरके बाबरन-
 बाबूने बाबरनसीर बाबरीन नन्धुलिओ बर्बहोबुपी उबरी हुई ।

हन्धरीकी मुन्धुके बाबरन बनका बाई बन्धुगण (१५१०-५१
 ई) एम्मा हुआ । एह बुधक बाबरन बाबर एह बाबरबापी बद्दा बाबर
 ई । मुन्धुके बीर एम्माबुके बुध बिगुलि हन्धरीबने कठिपानि प्रान्त किया
 बा, बनके बाबरने जिन बने । बाबरने स्वयं बाबरनिक बद्दम्मा बनने
 कने, एह बनके बीरबुधके मुन्धुगणकी बाबरनलीने ही ठकीन बुध किया ।
 बिगुल इन्धु बेकर ही कने बाबरन बीरमा बा बका । बन्धुगणकी मुन्धु-
 गर बनका कपीमा बाबरनिक (१५४१ १५४३ ई) ओ एह हुनरी
 बाईका बुध बा एम्मा हुआ । एह बाबरनका ही बाबर युवा । एम्मा-
 की बनका पानि बनके बाबरनकी एह बैराजि एम्मा-बाबु (एम्मा-
 बाबर) के बाबरने कपी कपी ।

एम्माका हन्धरीके मुन्धुके कपी निम्माका बाबरनका बुध बा बीर
 निम्मा बाबरनका बाबर बी बाबरनके बाबरनिक बा । बाबर बद्द कपी-कपी-
 बाबरनिक बाबरन बाबर बी । १५४१ ई में एम्माका ने बाबरनिक बीर
 बीरबुधके मुन्धुगणके बाबर बद्द बाबरन की कि बीरों निम्माका बीरबुध
 बाबरनिक करे, जिन्नु बीरबुधके मुन्धुके कपी बाबरनिक बीरनकी बा
 बीरन निम्माका हुई । १५५८ ई में एम्माका ने बीरबुधकी कपी और
 निम्माका बीर बाबरनिक बाबर बाबरनिक । निम्माकाकी बैराजि
 बीरबुध बाबरने निर्माणात्मीक बुध-बाबर बी । स्वयं एम्माका कपी
 बाबरनकी मुन्धुगण मुन्धुगणके बुध कने बुध कया बा । बीर की
 बाबरनिक बुध बाबरनिक बाबरन ई । बाबरन बाबर मुन्धुगणने बद्द निम्माका
 किया कि निम्माका बुध पानि कया ई बीर निम्माकाका कने कर ने
 कपी कपी एम्मा ई कपी निम्माकाका कठिपके बाबर मुन्धुगणकी

राजधानी हटाय जायेंगे। १५६४ ई० में यह समझौता पक्का हुआ।
 केवल बरारका सुलतान इसमें सम्मिलित नहीं हुआ। उसी वर्षके
 अन्तमें अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा और बीदरके सुलतान अपनी
 सेनाओंके साथ विजयनगरकी ओर चल पड़े, और जनवरी १५६५ ई० में
 कृष्णा नदीके उत्तरमें बीजापुरकी हदमें ही स्थित तालिकोटा नगरमें
 वे सब एकत्रित हुए। विजयनगरवाले आत्म-विश्वस्त और अभावधान थे।
 वे समझते थे कि मुसलमान उनका कभी कुछ न बिगाड़ सके, अब भी
 कुछ न कर सकेंगे। राजधानी और राज्यमें सब कार्य पूर्ववत् शान्तिसे
 चल रहे थे। विजयनगरकी सैन्य शक्ति भी सर्वोपरि थी। जहाँ मुसल-
 मानोंके लिए युद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण था, हिन्दू इसे खेल समझ रहे थे।
 किन्तु विश्वासघात, जासूसी और पड़्यत्र भीतर ही-भीतर उनकी शक्तको
 खोखला कर रहे थे। रामराजा विशाल सेनाके साथ रणक्षेत्रमें उतरा,
 कृष्णाके दक्षिण और तालिकोटासे २५-३० मीलकी दूरीपर सग्राम छिड़ा।
 रामराजा बीरताके साथ लड़ा, एक बार तो मुसलमानोंके पैर छड़ गये
 किन्तु वे सँभले और प्राण हथेलीपर लेकर पिल पड़े। रामराजा पकड़ा
 गया। अहमदनगरके सुलतानने अपने हाथसे तुरन्त उसका वध कर दिया।
 विजयनगरकी सेनाके पैर छड़ गये। मुसलमानोंकी घन आयी और वे
 राजधानीके ऊपर दौड़ चले। विजयनगरके एक लाख नैनिक खेत रहे और
 राजधानी विजयनगरकी मुसलमानोंने इस बुरी तरह लूटा और विध्वंस
 किया कि जिनका अन्य उदाहरण नहीं है। देव-प्रतिमाओंकी पवित्रता,
 शिल्पकृतियोंकी कलात्मकता, स्त्रियोंके सतीत्व, बच्चोंकी मासूमियत, वृद्धोंकी
 असहायता, ग्रन्थ-भण्डारोंके महत्त्व, किसीकी भी रक्षा न हुई। उनकी
 धर्माध्वरता, नृशंसता और क्रूरता पैशाचिक थी। प्रत्येक मुसलमान
 सिपाही इस खुली लूटसे मालदार होकर लौटा। पाँच महीने तक विजय-
 नगरकी यह लूट-मार जारी रही। अलकापुरी-सदृश इस नगरीके घन-जन-
 भवन और प्रत्येक वस्तुका सर्वथा नाश करके ही दम लेनेपर आततायी

साहित्य, कला आदिको और ग्यान देना राजाओं और उनके सामन्तों को कोई अवकाश न था। अतः उस कालके जैनग्रन्थक इतिहासमें कतिपय ऊन छोटे मोटे सामन्तों या उपराजाओं और मेड़-व्यापारी आदि प्रमाजनाके ही कतिपय धार्मिक कार्योंका उल्लेख मिलता है। इस चीजके निहाय एव साहित्यिक रचनाएँ भी विरल ही हैं। महाराज अच्युतरायके समयमें १५३१ ई० में मुदगिरिकी जैन वसुदिका और १५३३-३४ ई० में समिल देवकी कुछ अथ वसुदिकाको दान दिये गये थे। वसुदिकारायके सामन्त-ग्रन्थमें, १५४२-४३ ई० में, सुलूय दसकी कुछ वसुदियोंका दान दिये जानेका उल्लेख मिलता है। १५६० ई० में गेरुसण्येके जैन राजा सालुव वसुदिकारायके आश्रयमें समये राजसेठ तथा अथ धनो व्यापारियोंने उस नगरमें कई सुन्दर जिनालयोंका निर्माण कराया था और अथ धार्मिक कार्य किये थे। इस कालमें श्रवणवेलगोल तीर्थका प्रबन्ध भी गेरुसण्येके जैनमेठोंके ही हाथमें रहा प्रतीत होता है, और समया प्रारम्भ उपरोक्त सालुवराज-द्वारा १५३९ ई० के लगभग गोम्मटेश्वरका महामन्तकामिषेय महोत्सव मनाये जानेसे हुआ प्रतीत होता है। इस कालमें मूदगिरी और शृंगेरीकी जैन-वसुदियोंको भी दान दिये जानेके कुछ उल्लेख मिलते हैं। इसी युगमें अनेक राजाओंसे सम्मानित महान् वाद-विजेता, वादो-विद्या नन्दिने यत्र-तत्र जैन-शासनका उत्कर्ष किया। श्रीरंगपट्टनमें ईसा पादगियोंको भी शास्त्रार्थमें इन्होंने पराजित किया था। ये पूर्वकालमें प्रसिद्ध वादी विशालकीर्तिके शिष्य थे। काव्यसार नामक ग्रन्थ इन्हींकी कृति बताया जाता है। १५५७ ई० में रत्नाकरनन्दिने त्रिलोकशतक नाम का दस हजार श्लोक प्रमाण ग्रन्थ ९ मासमें रचकर तैयार किया था भरतेश्वरचरित और पदजाति इनकी अथ रचनाएँ हैं। १५५९ ई० में मन्त्रने ज्ञानभास्करचरित्र और वाह्वलिने १५६० ई० में नागकुमार चरित्रकी रचना की थी। इस कालमें भी जैनोंने अपनी साहित्यिक और सहन शीलताके कारण शैवों और वैष्णवोंके साथ सद्भाव बनाये रखा

भगवान् आदीश्वर, शान्तिनाथ और चन्द्रनाथकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करायी थीं। विजयनगर-नरेश वेंकटराय प्रथम (१५८६-१६१७ ई०) की राजसभामें जैनगुरु भट्टाकलकने सारथ्य और अलंकार-त्रयका व्याख्यान करके कीर्ति समर्जित की थी। कर्णाटक शब्दानुशासन नामक प्रसिद्ध वद्वहो व्याकरण भी इन्हींकी कृति है। १५८६ ई० में कार्कल नरेश इम्मडि भैरवेन्द्र ओडेयरने कार्कलमें सुप्रसिद्ध चतुर्मुख वसदिक निर्माण कराया था और १५९८ ई० में उसी तथा अन्य वसदियोंको दान दिये थे। इसी वर्षका एक अन्य शिलालेख जिन शासनकी प्रशंसा और वीतरागदेवके साथ-साथ शम्भुको नमस्कार करनेसे तत्कालीन जैनोँक सहिष्णुताका परिचायक है। १६०४ ई० में पाण्ड्य-नरेशके भाई तिमिरा जने वेंगूरमें वेलगोलके मठाधीश चारुकीर्ति पण्डितदेवके उपदेशसे गोम्मटो बाटुवलिकी उत्तुग विशालकाय प्रतिमा निर्मित करायी थी। यह मूर्ति दक्षिणकी सुप्रसिद्ध विशालकाय गोम्मट मूर्तियोंमें तीसरी है। मूर्ति-प्रतिष्ठापक तिमिराज गंगकालीन प्रसिद्ध चामुण्डरायका वंशज था। १६१० ई० में महाराज वेंकटरायके प्रान्तीय शासक एव राज प्रतिनिधि वोम्मन हेगडे मेलिगेमें अनन्त-जिनालयकी स्थापना की थी। १६१२ ई० में श्रवण वेलगोलके गोम्मटेशका महामस्तकाभिषेक हुआ था। १६३८ ई० के एलेखसे ज्ञात होता है कि इस कालमें प्रसिद्ध जैन-केन्द्रोंमें भी लिंगाय आदि अजैन मतावलम्बी जैनमन्दिरोंमें अपनी मूर्तियाँ या चिह्न आस्थापित करके उनपर अधिकार कर लेनेका प्रयत्न यदा-कदा करते रहते थे, किन्तु उनके मुखिया और उत्तरदायी नेता ऐसी प्रवृत्तियोंका अनुमोदन नहीं करते थे, यहाँतक कि उन्होंने सर्वसम्मतिसे यह विज्ञप्ति प्रचारित की कि 'जो कोई जिनधर्मका विरोध या अनादर करेगा वह महापद (वीरशैवधर्मके सबसे बड़े अध्यापक) के चरणोंसे बहिष्कृत कर दिया जायेगा, शिव और जंगमका बोही माना जायेगा और विभूति, रुद्र तथा काशी एवं रामेश्वर तीर्थोंके लिंगके प्रति अभक्त समझा जायेगा'

[illegible][illegible]

विजयनगरके इतिहासके प्रधान आधार इटलीवासी पर्यटक निकोलो कोण्टो (१४२० ई०), हिरातके सुलतान शाहखानके विद्वान् राजदूत अब्दुर्रजाक (१४४३ ई०), पुर्तगाली लेखक डोमिंगो पाइझ (१५२२ ई०) और नूनिज (१५३५ ई०) आदि कई विदेशी यात्रियों-द्वारा लिखे गये आँखों देखे वर्णन, फरिश्ता आदि मध्यकालीन मुसलमान इतिहासकारा-द्वारा दिये गये विवरण, तत्कालीन दिलालेख जिनमें जैन शिलालेखोंकी ही अधिकता है, तत्कालीन साहित्य ग्रन्थ—इनमें भी कन्नड़ी भाषाकी जैन धार्मिक एवं लौकिक रचनाओंकी ही बहुलता है, स्वयं राजधानी विजयनगर और उसके आस-पास दूर-दूर तक फैले हुए भग्नावशेष, मुसलमानोंके प्रकोपसे बच रहनेवाले कन्नड, तुलु, तमिल प्रदेशोंके जैन, शैव, वैष्णव तीर्थ एवं मन्दिर आदि और इनके आधारपर वर्तमान शतीके प्रारम्भमें लिखे गये राबर्ट मिचेलकी पुस्तक तथा एच० कृष्णा श्यामीके लेख हैं । तदुपरान्त भी अध्ययन और अनुसन्धान चलता रहा है और अनेक विद्वानोंने इस सम्वन्धमें कार्य किया है ।

उपरोक्त साधनोंसे पता चलता है कि राजधानी विद्यानगरी (विजयनगर) अपने समयके सम्पूर्ण विश्वमें अद्वितीय नगरी थी । ६० मीलके घेरेमें फैली हुई, एकके भीतर एक मात परकोटोंसे घिरी हुई, अनेक सरोवरो, बापों, कूप, तड़ाग एवं जलप्रणालियों, उपवनों, उद्यानों, उत्तुंग कलापूर्ण जैन, शैव, वैष्णव-देवालयों, अत्यन्त दर्शनीय राजप्रासादों (एक भवन निरे हाथी दाँतका ही बना हुआ था), सामन्त सरदारों एवं धनी नागरिकोंके सुन्दर भवनों, पचासों हाट-बाजारों और धीधियों आदिसे समलंकृत एक लाख घरों और लगभग दस लाखकी जन-सङ्ख्यावाली इस अलकापुरी-सदृश महानगरीमें मणि मुक्ता और सोने-चाँदीसे लेकर छोटीसे छोटी प्रत्येक वस्तुका खुला व्यापार होता था । लोग ईमानदार थे, चोरी-छाकेका भय नहीं था, प्रजा प्रसन्न, सम्पन्न, सुखी और शीक्रान्ति थी । धर्म, कला और साहित्यमें विद्यानगरी अपने नामको चरितार्थ करती

रामस्वामी मन्दिर (१५१३ ई०) अपने प्रस्तराकर्मोंके लिए प्रसिद्ध है । तत्कालीन विदेशी यात्रियोंने विजयनगरके शिल्पियों, रूपकारों, चित्रकारों तथा अन्य कलाकारोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है । इस सबके अतिरिक्त ये सम्राट् स्वदेशभक्त, सर्वधर्म सहिष्णु, उदारशय और प्रजावत्सल भी थे, अतः प्रजाके सभी वर्गोंने साम्राज्यके बहुमुखी उत्कर्षमें योग दिया ।

मध्यकालीन भारतीय राजनीतिकी यह अद्वितीय सृष्टि विजयनगर और उसका साम्राज्य तालिकोटाके युद्धमें भस्मसात् हो गये । लगभग सो-सवासी वर्ष तक चन्द्रगिरिके महाराजाओंने उसकी स्मृतिको सजीव बनाये रखा । १७वीं शतीके अन्तमें वह स्मृति भी निर्जीव हो गयी । किन्तु निर्जीव होनेसे पूर्व ही वह मराठा वीर शिवाजीको राष्ट्रोद्धारकी प्रेरण देनेमें सफल हो चुकी थी । महाराष्ट्रमें जब शिवाजी दक्षिण और उत्तरमें मुसलमान नरेशोंके विरुद्ध विद्रोह एवं सघट्ट करके स्वदेशी स्वधर्मो राज्यस्थापनाका उपक्रम कर रहे थे तो चन्द्रगिरिका छोटा-सा अवशिष्ट विजयनगर-साम्राज्य भी विस्तारकर तमिल, तैलेगु और दक्षिणी कन्नड़ प्रान्तोंमें अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्योंमें परिणत हो गया था । इस काल राजनैतिक पतनके फलस्वरूप नैतिक पतन भी हुआ जो इन सामन्त सरदारोंके व्यवहारमें चरितार्थ हुआ । इन छोटे-छोटे राजाओंमें अधि-तर वीर शैव, सद्शैव या श्रीवैष्णव थे और तत्कालीन शैव वैष्णव ग्रन्थोंसे ही पता चलता है कि इन्होंने जैनधर्म और उसके अनुयायियों पर अमानुषिक अत्याचार किये, धातुकुरु, मादुडिगे, कल्याण आदि नगरों एक एक दिनमें सैकड़ों जैन-मन्दिरों, मूर्तियों, ग्रन्थ-भण्डारों, विद्यालयों, दानशालाओं आदिमें युक्त जैन-धर्मदियोंका ध्वंस कर दिया गया, जैनो-बरबस धर्मत्याग कराया गया, उनका वध कर दिया गया, धातुकुरु जैसे अनेक सुन्दर जैन-केन्द्र उजाड़ हो गये । समर्थ आश्रयदाता केन्द्रों राज्य-शक्तिका अभाव हो गया था और जैन गुरुओंमें युगान्तरका

राजवंशोंमें प्रमुख थे—

(१) सगीतपुरके सालुव या कदम्बराजे—भट्टकल इनको राजधानी थी, मोतियोंके व्यापारके कारण यह मोतीभट्टकल भी कहलाता था। सगीतपुर, भट्टकल, गेरुमप्ये जिसे उत्तरकाशी भी कहते थे, मूढविद्री जिसे दक्षिणकाशी भी कहते थे और जहाँ १७वीं-१८वीं शतीमें भी सात-सौ चेत्यालय और सात सौ सतहत्तर घर जैनियोंके थे, और मगलूर प्रसिद्ध जैन-केन्द्र थे। इस वंशमें पुत्रियाको भी राज्यका उत्तराधिकार मिलता था। १६वीं शतीमें तत्कालीन कदम्ब-नरेशकी मृत्युपर यह राज्य उसकी सात कुमारी कन्याओके बीच सात भागोंमें बँट गया था और १७वीं शतीके प्रारम्भमें उन सातोंने योग्यतापूर्वक शासन किया।

(२) कार्कलके भैरवराजे—मयूराके राजकुमार जिनदत्त रायकी सन्ततिमेंसे थे और वड़े धर्मभक्त थे।

(३) वेणूरका अजिलवश—इसीकी एक शाखा वगवाडिपर वग वंशके नामसे राज्य करती थी और एक नन्दावरमें राज्य करती थी। यह वंश विजयनगर नरेशोंसे भी सम्बन्धित था, और अबतक वर्तमान रहा है।

(४) उल्लालका चौटवश—१२वीं शतीके मध्यसे लेकर १८वीं शतीके अन्त तक चलता रहा।

(५) विलिकेरिका अरसुवश—१९वीं शताब्दीके अन्त तक चलता रहा। इस वंशके राजा देवराज (मृत्यु १८७७ ई०) वड़े वीर योद्धा और आत्मतत्त्वपरीक्षण नामक ग्रन्थके कर्त्ता थे तथा मैसूर-नरेशके प्रधान अंगरक्षक थे।

(६) वारुकुरुके पाण्ड्य राजे—इस वंशके कई राजे प्रसिद्ध सैन्य-कार भी हुए हैं। इनकी राजधानी वारुकुरु वड़ी समृद्धिशाली सुन्दर नगरी थी। इसकेरि वड़ी वैक्कप नायकने, जो शैव था, इस नगर और वहाँके जैनोका १६१९ ई० में विध्वंस किया था।

(७) मैसूरके छोडेपर राजे—अबमहेबरीज तीर्थके प्रयाग संरक्षण में ही रहे । १८वीं शताब्दी ईसवीकी और हीनु गुल्शनमें इन्हें बंद किया था । बीरबोलि इस बीच एवं राज्याना बहार किया और वह वर्तमान तक बन्द है ।

(८) नगरीके आग्नेयशी राजे ।

(९) कर्तपुर (बिहारी) के क्षेत्र राजे ।

(१०) बेईमजिहके मुख ।

(११) मुस्लिमके सार्वभौम इत्यादि ।

इन एक वर्तमानके कमबख बीर-राज्याने लक्ष्मीय तीर्थों एवं वैज्याय संरक्षण किया बहारियोंका बीरबोलार किया और राजा की आधिकार्य रचना कथकी मिश्री और मुम्बईका बाहर किया और पञ्चकन बीरबर्तनी कम देखें बीकन राजा ।

खण्ड २

विदेशी-शासनमे भारत

[मुसलमान और अंगरेजी-शासन

अध्याय १

इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुलतान

१३वीं शतीके प्रारम्भसे लेकर १८वीं शतीके अन्त पर्यन्त, लगभग ५०० वर्षके, इस मध्यकालकी सबसे बड़ी ऐतिहासिक विशेषता इस देशमें उत्तर-पश्चिमी सीमान्तको पार करके मध्य एशियाई मुसलमानोंके आक्रमण, यहाँ उनके राज्योंका प्रारम्भ और विकास और फलस्वरूप स्वदेशी राज्य-सत्ताओंका धीरे-धीरे अन्त अथवा पराधीनताकी बेहियोंमें जकड़ जाना है। भारतीय राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और समाजमें एक प्रबल, नवीन, अपरिचित, विरोधी अथवा प्रतिकूल तत्त्व प्रवेशने विविध प्रकारकी उथल-पुथल, क्रान्तियों और आन्दोलनोंको जन्म दिया। देशका स्वरूप ही बहुत कुछ बदल गया।

गुप्तकालके अन्त तक मध्य-एशियाके बहुभागपर भारतीय संस्कृतिका प्रभाव था, वहाँ हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि भारतीय धर्मोंका प्रसार था और उसके कई भाग बृहत्तर भारतके अंग थे। किन्तु पिछली दो-एक शताब्दियोंसे भारतकी ओरसे उन्नत भारतीय प्रभावका पोषण होना रुक गया था। आर्यजनोंको म्लेच्छ देशों और जातियोंसे सम्पर्क रखना पाप है, ऐसी भावना हिन्दुओं और जैनोंमें बल पकड़ती जा रही थी। परिणामस्वरूप बृहत्तर भारतके मध्य एशियाई भागकी सम्पूर्ण भारतीयता शनै-शनै बौद्ध रूपमें ही अवशिष्ट रह बली। वह भी स्थानीय तथा अवशिष्ट हिन्दू जैन आदि प्रभावोंके अत्यधिक मिश्रणके कारण बौद्ध संस्कृतिके भी अत्यन्त

इस्लामका भारत प्रवेश और दिल्लीके सुलतान

संश्लिष्ट एवं विस्तृत रूपों की भाँति ही रही थी ।

५४१ वाणी है मैं मन्त्र-एविवर्ति नव वैद्योंमें करव देव ही अधिक पिछा हुआ था। बढ़ाके बीच बसिष्ठ गौतमी बुद्ध-जिन और ब्रह्म-स्वामी ही वे हिन्दु धर्म ही बहुत बड़ीय वे अनेक जगहोंमें बड़े हुए थे और बरबर लड़ते रहते हैं ही उल्टा थे। अनेक मन्त्र-विद्याओंके वे दास थे। ऐसे मन्त्रमें ५३ ई मैं ब्रह्मके मन्त्र नामक स्थानमें मुद्गग्लर ब्रह्मवक्त्र नाम हुआ। शीघ्र लंबकनीयर लड़ने देव और ब्रह्मकी ब्यापन बनका रिता दु को हुआ मैं स्वयं एक जगहोंमें देठा हुए और देवकी रक्षा मुद्गग्लरके किन्तु जगहोंमें ब्रह्मविद्य ब्रह्मविद्या-विद्याओंके ब्रह्म-वर्तनीको मुनकर और बनकर अपनी बुद्धिमा इरीय करके जाने बनकर देव-बाइकी रक्षा करनेमें जाने लायक एक ब्रह्म ब्रह्मविद्य मनीय बनका प्रचार किया। इन ब्रह्मवर्तनी (विद्या) और ब्रह्मवर्तनी (ब्रह्मविद्या) का ब्रह्मविद्या, ब्रह्मकी रक्षा करनेवाला और ब्रह्म विद्यावाला मुद्गग्लर एक है और मुद्गग्लर ब्रह्म ही उनके एकमात्र ब्रह्म रमूक का नाम है। इन दोस्त-मन्त्रर ब्रह्म मुनकर ईशान मन्त्री किन्तु बीच ब्रह्म मन्त्रर ब्रह्म रमूकमन्त्र मन्त्रीमें रोका (ब्रह्म) रक्षा ब्रह्मकी ब्रह्मका एक ब्रह्म रमूकमन्त्रोंके किन्तु ब्रह्म (ब्रह्म) ही ब्रह्मविद्या बनका मन्त्रीकी हय (बाबा) कटी। मुद्गग्लर मुद्गग्लरके द्वारा ही ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्मविद्या ब्रह्म है की ईशानमन्त्र ब्रह्म। ब्रह्म ब्रह्मवर्तनी है ब्रह्मर ब्रह्म विद्या ब्रह्मविद्या ब्रह्मविद्या ब्रह्मविद्या ब्रह्म है किन्तु है वे ब्रह्म ब्रह्मके ब्रह्म है एक है ब्रह्ममें कोई किसी ब्रह्मविद्या ब्रह्मविद्या नहीं है और वे ब्रह्मके ब्रह्म ब्रह्म (ब्रह्म) ब्रह्म करके। जो देव नहीं करती वे ब्रह्मविद्या है ब्रह्मविद्या (ब्रह्म) की ब्रह्ममें ब्रह्म है, ब्रह्मर किसी ब्रह्मविद्या की रक्षा करनेकी ब्रह्मविद्या नहीं। ब्रह्म ब्रह्म, ब्रह्मकी छोटे-छोटे मन्त्र-विद्याओंका ब्रह्म करके ब्रह्मके ब्रह्ममें ब्रह्म ब्रह्मविद्या-विद्यापर और ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म विद्यावाली विद्यापर ब्रह्मविद्या

राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक, तीनों सत्ताओंको एकत्र (मयुक्त) करके अपने धर्म-राज्यकी स्थापना की, वे स्वयं उसके पूर्णतया स्वच्छाचारी और सबशक्ति एव सत्ताधारी नेता बने और उन्होंने अपने अनुयायियोंको एक हाथमें कुरान और दूसरेमें तलवार लेकर इस धर्मके प्रचारार्थ निकल पडने की आज्ञा दी। इस मतमें द्विवेक और तर्कको विशेष गुजायश नहीं थी, पैगम्बरकी आज्ञा ही प्रमाण थी। जैसा प्राय होता है, मुहम्मदका विरोध भी बहुत हुआ और फलस्वरूप ६०९ ई० में उन्हें मक्का छोड़कर मदीनेको पलायन कर जाना पड़ा। तभीसे हिजरी सन्की प्रवृत्ति हुई। अन्ततः इस्लाम जोगेके साथ फैलने लगा। मुहम्मद (मृत्यु ६२५ ई०) के उत्तराधिकारी खलीफा कहलाये। अरबोंमें नवीन जीवन और उत्साहका संचार हुआ। नवीन धर्मोन्मादसे मत्त होकर वे देश-देशान्तर्गके काफ़िरोको बग़वस मुसलमान बनानेपर तुल पड़े। खलीफाओंकी शक्ति, धन, राज्य-विस्तार और अनुयायियोंकी मर्यादा दिन दूनो रात चौगुनी बढ़ने लगी। थोड़े-से समयमें ही इस्लाम विश्वकी एक प्रबल शक्ति बन गया। अलममूर, हार्न-अलरशीद आदि कुछ खलीफा नेक, उदार और विद्याप्रेमी भी हुए और विभिन्न देशोंके ज्ञान-विज्ञानका साम चठाकर अरब सस्कृति एव साहित्यका भा अच्छा विकास हुआ। किन्तु उनके धर्मकी नीरम एकागी कठोरता और उनकी धर्मांध कट्टरता दशान, न्याय, तत्त्वचिन्तन तथा स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, संगीत, काव्य आदि ललित-कलाओंके क्षेत्रमें अनिवार्य रुकावट बनी रही।

हज़रत मुहम्मदकी मृत्युके कुछ ही वर्ष बाद, ६४४ ई० में, मकरान और बिलोचिस्तानके मार्गसे अरबोंने भारतके सिन्धु देशपर सर्व-प्रथम आक्रमण किया। तत्कालीन सिन्धु-नरेश सिहरसराय युद्धमें मारा गया। ६४६ ई० में फिर आक्रमण हुआ उसमें सिहरसरायके पुत्रकी भी वही गति हुई। दोनों बार मुसलमान आये और चले गये। ७१२ ई० में जुन्नैदके सेनानी मुहम्मद बिन कासिमने एक प्रबल आक्रमण किया। सिन्धका ग्राह्यण राजा दाहिर वीरता-पूर्वक लड़ा किन्तु मारा गया और

दुर्ग और कुछ हाथी अमोरको देकर उसने सन्धि कर ली और तुरन्त उसे तोड़ भी दिया। फल-स्वरूप मुसलमानोंने गोमान्त देशके जलालाबाद जिलेको तहम-नहस कर दिया। ९९१ ई० में जयपालने राजपाल प्रतिहार और घग चन्देल आदि नरेशोंका एक मुसलिमरिनेषी सघ बनाकर गजनीवालाके माय कुर्रम घाटोमें भयंकर युद्ध किया और मुसलमानोको पेशावरसे आगे न बढ़ने दिया। ९९७ ई० में मुयुनगीनका चेठा महमूद गजनीका सुलतान हुआ। मध्य-एशियामें अपने राज्य विस्तारसे उसने बहुत धनिक बढ़ा ली थी और वह अपने समयका सर्वाधिक शक्तिशाली मुसलमान सुलतान समझा जाता था। भारतके धन-वैभवंकी कहानियोंने उस अत्यन्त लालचो बना दिया था। किन्तु यीर-योद्धाओंने इस महान् देशमें घुसने और लूट-मार करनेके लिए अपने नैनिकोंमें पर्याप्त साहम पैदा करनेके लिए केवल अतुल लूटका लोभ दिखाया पर्याप्त न था, अतः उसने उनके घमों-मादको भटकाया, वृत्तपरम्तोषि युतोको सीढ़कर, उनके कल्पनातीत दौलतसे भरे मन्दिरोंको लूटकर और बाफिरोंको मुसलमान बनाकर या तलवारसे घाट उतारकर गाजी बन इस जीवनमें धन, विजय और धर्मभक्ति तथा मरनेके बाद जन्नत मिलनेकी सहज आशा दिलायी। ९९९ से १००७ ई० के बीच महमूदने भारतपर लगभग १७ आक्रमण किये। भटिण्डेके बीर साही गजे प्राणपणसे उसका प्रतिरोध करते रहे और इसी प्रयत्नमें होम हो गये। १००१ ई० में जयपाल पेशावरके निकट युद्धमें पराजित होकर बन्दो हुआ, महमूदने उसे मुक्त भी कर दिया किन्तु उस अपमानशुब्ध नरेशने चितामें प्रवेश करके जीवनका अन्त कर लिया। उसके पुत्र आनन्दपालने महमूदका प्रतिरोध करनेके लिए अजमेरके चौमलदेव चौहानके नेतृत्वमें मालवा, खजराहो, कन्नौज, शाकम्भरी आदिसे भारतीय नरेशोंका एक प्रबल सघ संगठित किया। पेशावरके निकट ४० दिन तक दोनों सेनाएँ आमने-सामने पड़ी रहीं। पेशावरके खोम्बरोने भी भारतीय सघको सहयोग दिया। सुलतानकी सुदृढ़ मुरझित

इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुलतान

भारतके इन आक्रमणोंमें अपार धन उसके हाथ लगा था जिसके कारण भारत-वाह्य समस्त ससारमें वह सर्वाधिक धनशक्ति-सम्पन्न नरेश हो गया था । भारतके लिए उसके आक्रमण प्रलयकर किन्तु अस्यायी बवण्डर थे । देशके असंख्य जन-धन, मन्दिर, मूर्तियों एवं अनुपम कला-कृतियोंका विध्वंस इस नृशंस लुटेरेके हाथो हुआ, किन्तु देशके साधन ऐसे असीम थे कि थोड़े समय पश्चात् ही उसकी दशा पूर्ववत् हो गयी और इन भयंकर आक्रमणो एवं लूट-मारका चिह्न भी न रहा । इसमें भी सन्देह नहीं कि तत्कालीन राजपूत राजाओंका दुरभिमान और उनमें परस्पर सहयोग, सगठन और एकताका अभाव तथा अश्वारोही सेनाकी अपेक्षा गजदलपर अधिक भरोसा रखना ऐसे तथ्य थे जो मुसलमानोंकी सफलताके उस समय भी और आगे भी प्रधान कारण हुए ।

व्यक्तिगत रूपसे महमूदमें राजनैतिक और धार्मिक उदारता भी थी । तिलक नामक एक हिन्दूके नायकत्वमें उसकी सेनामें एक हिन्दू सैनिक दल भी था और उन्हें मुसलमान छावनी तथा ग़ज़नीमें भी अपने धर्म-पालनकी स्वतन्त्रता थी । महमूदने साहित्य और कलाको भी प्रश्रय दिया, ग़ज़नीमें सुन्दर महल और मसजिदें बनवायीं और फ़ारसीके फ़िरदौसी आदि कवियोंको प्रश्रय दिया । उसके एक महान् विद्वान् अनुचर अल्बेस्तीने, जो उसके साथ कई बार भारत आया और कुछ समय यहाँ रहा भी, भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, ज्ञान-विज्ञान आदिका प्रशंसापूर्ण विवरण दिया है । इस विद्वान्ने संस्कृत-भाषा भी सीखी और भारतीय धर्मशास्त्रोंका भी अध्ययन किया था । फिर भी भारतीय इतिहासकी दृष्टिसे तो महमूद ग़ज़नवी एक धर्मान्ध विध्वंसक एवं बर्बर लुटेरा ही था । पंजाबके कुछ भागपर उसका अधिकार भी स्थायी हो गया ।

इस भारतीय प्रान्तके सुरक्षणके लिए उसके पुत्र और उत्तराधिकारी मसूदके समयमें भी भारतपर कई आक्रमण हुए । किन्तु जब पंजाबसे आगे बढ़कर पूर्वी-उत्तर प्रदेशमें उसकी सेना घुसी तो बहराइशके युद्धमें

आपसुनिके तीन-चरण मुद्रिकरके-द्वारा चरित्रित हुई और चरित्र विना-
लाभार कइये जाय गया । यह चरित्र-आधार ही सम्भवतः सुन्दर आचार
सुन्दर वाणीके आधार प्रसिद्ध है । १ ८ ई के लगभग सुन्दरके चरित्र-
विषयी इंग्रजीमें आरम्भ आरम्भ किया । इनके लगभग १ वर्ष
बाद एक अमेरिकी-द्वारा बीजापर मुद्रण-मालिके उपर आरम्भ हुई और
कोई अन्त्य-वादी आरम्भ नहीं हुआ । बीजा-लगभग ही उनके अन्ति-
म-आरम्भ रहा ।

१९वीं सदी के पूर्वार्ध में शीरी संघका परम हुका । म्बुपुर इज्जती के संघ म्बुपल्ले से शीरी पाल्हाली की हत्या करवा दी थी । ११ ई. में शीरी मुज्जान बाबाइतीव हुकेने इज्जतीपर बाब्रमम किया, जने कुटी ठाढ़ लंब किया और मुता । म्बुपल्ले कल्लालियारी मुज्जाल्हे बलकर संघमें करम की और बाब्रोरकी बल्ली राजधानी बनवा सिनु केरक संघके मुक मल्लर ही कल्ला पाल्हा पड़ । ११७ ई. में शीरी मुज्जान इज्जतीव मल्ल-एडिवाका बाबा बैरा ही पाल्हाली करीद वा बैरा कि बल्ले कल्ले म्बुपुर इज्जती वा । कटी बर करने बल्ले राज-का गुरी मल्ल जिनुमें कल्ले और बाबुल बाब्रिमम के कल्ले बाई म्बुपल्ले सिन बाबा बिहामुलीव मुज्जतीव शीरीके के किया । म्बु म्बुपल्ले शीरी म्बुद, इज्जती और म्बुपल्लेकी वा । म्बुपल्ले सिन करके दूध रिपल्ले म्बुपल्ले पाल्हा-मल्लर कल्लेकी इज्जती बाबाका की कल्ले रिपल्लेमें कल्ले बिद मुज्जान की व की । ११७-१ ई. में कल्ले मुज्जानपर बाब्रमम करके इज्जती बाब्रिमम किया । कल्लर कल्लेकी राजकी सिनपल्ले कल्लेके पुर्वर बाब्रिमम किया । इम इज्जती सिनपल्ले बाब्रिमम करके ११६ ई. में कल्ले मुज्जानपर बाब्रमम किया । कल्लेबाबाका ठाकातीव राजा जीव रिपल्ले बाब्रली बाब्रमम वा सिनु कल्ले कल्लेकी दूध कल्लेकी कल्लेके बाब्रली कल्लेकी के मुज्जतीव मुज्जान शीरीकी कुटी बाब्र राजपल्ले करके दूधले कल्ला किया । दूध रिपल्ले म्बुपल्ले की बरके

लिए गुजरातको मुसलमानों आक्रमणोंसे प्रायः सुरक्षित कर दिया। ११८७ ई० में मुहम्मद गोरीने खुशरूशाह गज्जनवीको, जो उस वंशका अन्तिम प्रतिनिधि था, पदच्युत करके पंजाबपर अधिकार किया। पंजाब और सिन्धपर अपना शासन सुदृढ़ कर लेनेके उपरान्त ११९१ ई० में उसने एक भारी सेनाके साथ उत्तर-भारतके मध्य भागमें प्रवेश किया। शत्रुको उसकी इस घृष्टताके लिए दण्डित करनेके लिए दिल्ली और अजमेरके समुक्त नरेश वीर पृथ्वीराज चौहानके नेतृत्वमें उत्तर-भारतके विभिन्न राजे आपसी वैर-भाव भुलाकर एक हो गये और मुसलमानोंको देशसे निकाल बाहर करनेके लिए यह समुक्त सैन्यदल द्रुत वेगसे चल पड़ा। कर्नाल और घानेस्वरके मध्य तराइन या तलावढीके मैदानमें दोनों दलोंकी मुठभेड़ एवं भयंकर युद्ध हुआ। पृथ्वीराजके वीर भाईने स्वयं मुहम्मद गोरीको द्वन्द्व युद्धमें उलझाया। गोरी सुल्तान वुरी तरह जखमी होकर रण-क्षेत्रको छोड़ प्राण बचाकर भाग निकला, उसके सैनिक भी पराभूत एवं सितर-बितर होकर भाग निकले। भारतीय शूरोंने भागते हुए शत्रुको पीछा भी न किया और उन्हें सुरक्षित वापस लौटने और नवीन आक्रमणके लिए शक्ति संग्रह करनेके लिए छोड़ दिया। अगले वर्ष (११९२ ई० में) ही और अधिक सेना, बल एवं उत्साहके साथ गोरीने फिर आक्रमण किया। पृथ्वीराजने इस बार भी पूर्ण उत्साहके साथ तलावढीके मैदानमें उसका मुकाबला किया। किन्तु जहाँ इस बार मुसलमानोंका बल और सकल्प द्विगुणित था, कन्नौज-नरेश जयचन्दके असहयोगके कारण पृथ्वीराजको बन्धु नरेशोंकी पिछले वर्ष जितनी और जैसी सहायता प्राप्त न हुई। फिर भी वह वीर और उसके सूरमा अत्यन्त वीरताके साथ लड़े। पृथ्वीराज आहत होकर बन्दी हुआ और मार डाला गया। भारतीय सेनाके पैर उखड़ गये और विजय मुसलमानोंके हाथ रही। तलावढीके इस युद्धने भारतके भाग्यका निर्णय कर दिया।

पंजाबको पार करते ही दिल्लीके उत्तर-पश्चिमकी ओर फैली हुई

या। ये राजा लोग अपने या अपने राज्यके लिए लड़ते थे, समग्र देशके लिए लड़नेकी भावना उनमें न थी। बौद्धधर्मके प्रायः सर्वथा अभाव और जैन प्रभावके अपेक्षाकृत मंद पड़ जानेके कारण ब्राह्मण-पण्डितोंकी कृपासे इस कालमें जाति-पाँतिका भेद कुछ ऐसा पुष्ट हो चला था कि राजपूत जातिके अलावा अन्य कोई व्यक्ति मैनिक् ही नहीं हो पाता था जिसमें देशके सैन्य साधन एकागी और सीमित हो गये, और अन्ततः देश पराधीन हुआ।

शोघ्र ही गौरीकी सेनाने जयचंद्रको भी पराजित किया जो स्वयं मुसलमानोंकी क्रान्तिकारी विजयका एक प्रधान यद्यपि परोक्ष साधक बन चुका था। ११९३ ई० में ही मुहम्मद गौरीके सेनानी कुतुबुद्दीनने मेरठ और दिल्लीपर अधिकार किया तदनन्तर कन्नौज, वागणसी और ग्वालियरपर अधिकार किया, अजमेर भी दिल्लीके साथ-ही साथ मुसलमानोंके अधिकारमें आ गया। ११९७ ई० में कुतुबुद्दीनने अहिलवाड़ेपर फिर आक्रमण किया किन्तु भीम द्वितीय-द्वारा नाममात्रकी अधोनता स्वीकार कर लेनेपर वापस लौट आया। उसी वर्ष उसके उपसैनाने मुहम्मद बिन बख्तियार खलजीने बिहार प्रदेशकी राजधानी बिहार दुर्गपर अधिकार कर लिया। यह स्थान उस समय बौद्धोंका प्रधान केन्द्र रह गया था और यहाँका बौद्धधर्म इस कालमें अपने अति अवनत एवं विवृण रूपमें था। थोड़े से ही परिश्रमसे मुसलमानोंका बिहार प्रदेशपर अधिकार हो गया, अनेक बौद्ध-बिहार, पुस्तकालय, मन्दिर और मूर्तियाँ नष्ट कर दी गयीं, बौद्ध भिक्षुओंको तलवारके धाट उतार दिया गया, जो किसी प्रकार बचकर भाग निकले उन्हेंने नेपाल, तिब्बत आदि देशोंमें आकर शरण ली। ११९९ ई० में इस खलजी सेनानीने बंगालकी राजधानी नदियाको भी मात्र १८ अश्वारोहियोंके साथ छल-कौशलसे हस्तगत कर लिया कहा जाता है। बूढ़ा ब्राह्मण राजा लक्ष्मणसेन बिना लड़े ही महल और राजधानी छोड़ भाग गया। नदियाको तहस-नहस करके खलजीने

महादेशको सर्वप्रथम गुलामीकी वेढियोंमें जकड़नेवाले स्वयं गुलाम थे। मुहम्मद गोरीकी मृत्युके उपरान्त उसका प्रिय क्रोतदास (जरखरीद गुलाम) और प्रधान सेनानायक कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६-१० ई०) गोरी द्वारा विजित भारतमें उसीके द्वारा स्थापित मुसलमानी राज्यका सर्वप्रथम स्वतंत्र शासक हुआ। गोरीके उत्तराधिकारीने स्वयं उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली और उसे सुल्तानकी पदवी दी। खलीफाने भी स्वीकाराविन दे दी। वास्तवमें भारतमें मुसलमानों राज्यका प्रथम सम्पापक ऐबक ही था, उसीने स्वयं तथा अपने उपसेनानायक द्वारा, जिनमें से अधिकतर उसीकी भाँति गोरीके गुलाम थे, पिछले १५ वर्षोंमें उत्तरी भारतक विभिन्न देशों राजाओं की एक एक करके पराजित किया था और इस दशमें दिल्लीको केन्द्र एवं राजधानी बनाकर मुसलमानी राज्यका विस्तार किया था तथा गोरीके वाइसरायक रूपमें शासन किया था। बिहार, बंगाल-विजेता खलजीका आसामकी चढ़ाईमें १२०६ ई० में ही अन्त हो गया था। दलदुजकी लड़की-के साथ अपना, कुवाचाके साथ अपनी बहनका और इस्तुतमिशके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करके ऐबकने प्रधान मुहम्मिज गुलाम सरदारोंको अपना सहयोगी और सहायक बना लिया था और इस प्रकार अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी।

ऐबक और उसके साथी तथा उनके उत्तराधिकारी ये प्रारम्भिक मुसलमान सुल्तान और मग़दार धर्माघ, क्रूर, निर्दयी एवं धूर्त मध्य-एशियाई योद्धा थे। जो मुल्ला मौलवी अनिवार्यतः इनके परामर्श-दाता और इतिहास-लेखक रहते थे वे उनके धर्मोन्मादका और अधिक प्रज्वलित करते रहते थे। प्रत्येक मुल्तान या सरदारके महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय कारनामे यही होते थे कि उसने कितने सशस्त्र या निहत्थे काफ़िरोंको मर उनके निस्सहाय स्त्री-वर्षोंके दोख पठाया, कितनोंको ख़बरदस्ती मुसलमान बनाया, कितने मन्दिरों और मूर्तियोंको तोड़ा और लूटा आदि। उनकी द्रुत सफलताका कारण भी उनके निर्दय अमानुषिक व्यवहारसे

प्रतिद्वन्द्वी थे उनका उसने दमन किया और उत्तरी भारतके बहुभागको अपने अधीन किया। यह एक योग्य 'यायी' एवं कुशल शासक था। इसके समयमें भयंकर मंगोल सरदार चंगेजखाने भारतपर सर्व-प्रथम आक्रमण किया किन्तु इल्तुतमिशको चतुराईसे यह सिन्धसे ही वापस लौट गया। इस सुलतानने ऐवक-द्वारा प्रारम्भ की हुई कुतुबमीनार आदि इमारतोंका पूरा किया, अजमेरकी विशाल मसजिद जैन मन्दिरोंको तोड़कर धनवायी और दिल्लीमें अपना मक़बरा बनवाया। इल्तुतमिशका पुत्र रुकुनूद्दीन अयोग्य और दुराचारी था अनएव कुछ ही महीने राज्य करनेके बाद सरदारोंने उसे मारकर उसकी बहन सुलताना रजिया बेगम (१२३६-३९ ई०) को गद्दीपर बैठाया। वह योग्य और बुद्धिमती थी, पुरुष-वेषमें ही रहती थी, युद्धोंमें भाग लेती थी, किन्तु कुछ सरदारोंके प्रेमपाशमें पड़कर उसने अन्य सरदारोंको अपना विद्रोही बना लिया और जीवनसे हाथ धोया। तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की है और उसके पतनका कारण उसका स्त्री होना लिखा है। उसके बाद उसके भाई बहरामने और फिर एक भतीजेने थोड़े-थोड़े समय तक राज्य किया। ये दोनों ही निकम्मे शासक रहे। तदनन्तर इल्तुतमिशका ही एक अन्य छोटा लड़का नासिरूद्दीन (१२४६-६६ ई०) सुलतान हुआ। उसके एक मुल्ला राजकर्मचारी मिनहाज सिराजने 'तघ़काते नासिरी' नामका प्रथम भारतीय मुसलमानी इतिहास-ग्रन्थ फ़ारसी भाषामें लिखा। सुलतान नासिरूद्दीन एक बहुत सीधा नेक और धर्मात्मा व्यक्ति कहा जाता है। समस्त शासनकार्य उसके स्वसुर एव प्रधान मन्त्री उलुग़खां बलवनके हाथमें था। उसीको सुलतानने अपना उत्तराधिकारी भी बनाया। नासिरूद्दीनकी ओरसे बलवनने भी हिन्दुओंके विरुद्ध अनेक जहाद किये, असंख्य काफ़िरोंको मारा, कितनों ही को मुसलमान बनाया, उनके मन्दिरों और मूर्तियोंको तोड़ा, उनका धन लूटा और राज्यकोष भरा। मुल्ला इतिहासकार इन जहादोंका वर्णन करते अघाता नहीं। इस कालमें भी

बंदीबंदी कई आक्रमण हुए । बाहीर एक कम्पनीने मृत-भार की । इन्हें
जनकने बीजालपुरदेखी गद्याकी और अधिक भयानक किया ।

बहीर बीजाल के बाद कलकत्ता (१९९९-८९ ई) में इन्होंने एक
जातीय गली गल्लन करारोंके रचना बनाने किया जिसे इन्डियन
नैटिविटी फिजा या और वा इन समय कलकत्ता कीचन इतिहासी बना हुआ
वा । कलकत्ता बहुत कठोर अन्धकार का, निर्दोषियोंकी कला बना देता
वा और बनना बीज गल्लन कर देता था । बंदाकका निर्देशी बुरेपर
मुद्रितन देव बनना अन्धकार है । निर्देशीके निर्देशी इतिहासी बिन्दु
बैजाली गल्लन बलान् बनने गल्लन दे । बनने कम्पनी बुरी लाल्लन बनाने किया ।
बननेके कलकत्ता मुद्रितन बन कल । बंदाकने कल बनने मुद्रितन बनाने
मुद्रितन बनाया जिसके बंदन कम्पनी बन बनाने १९९८ ई । एक बनने पड़े ।
कलकत्ताके बनने मुद्रितन बाहीर और बनने पड़े दे । बाहीरोंकी बुरे
पल्लन-बैजाली निर्देशी गली करार वा । बुरे बनने बनानेकी कल-बैजाली
और भी बनने बनाने पल्लन था । बंदीबंदीके बनने बनने हुए कलकत्ता
बंदाकने गल्लन बनने बनने पल्लन दे । इतिहासी कलकत्ता बनने की
हमी बननेबंदाकने बनने बनने पल्लन था । बिन्दु निर्देशीके इति
कलकत्ताके कलकत्ता कल मुद्रितनके की बंदाक कलकत्ताके दे ।
बंदाककी कलकत्ता कल वा इतिहासीके बंदाकने मुद्रितन बनाने
कलकत्ता बनने दे । बंदीबंदीके की कलकत्ता कलकत्ता हुए कलके बनने था
कलकत्ताके बंदाकने और कलकत्ता ही बन दे बना । कलकी बंदाकने कलकत्ता
मुद्रितन बनने की बिन्दु कलके बनने ही कलकत्ता और कलकत्ताके कल
कल । कलकत्ता कलकत्ताके कलकत्ता और कलकत्ता (१९८९-९)
कलकत्ताके कलकत्ता मुद्रितन वा । बुरे कल मुद्रितन और कलकत्ता
कलकत्ता वा । बुरे १९९ ई में कलके मुद्रितन कलके कल इन बंदाक
कल हुआ । इन मुद्रितनकी कलकत्ता और कलकत्ताके कल ही
वा कल और कलकत्ता कल की कलके कल था । बाहीर बनना

आखेट क्षेत्र और भारतीय जनता आखेट मात्र थी ।

खलजीवंश (१२९०-१३२० ई०)—कैकुवादका वध करके सरदारों-
ने समानाके हाकिम वृद्ध खलजी सरदार जलालुद्दीन फिरोज (१२९०-९६
ई०) को सुलतान बनाया । आले ही वर्ष दिल्लीके आस-पास भेषण
अकाल पड़ा जिसमें अनेक भारतीयोंने यमुनामें डूबकर प्राण दे दिये ।
फिर मंगोलोंका आक्रमण हुआ । उन्हें सुलतानने घूम देकर वापस लौटा
दिया किन्तु उनमें-से कुछ मुसलमान बनकर यही बस गये और नव-मुसलिम
कहलाये । इस सुलतानने मिर्जिमोला नामक एक मुल्लाको मरवा डाला,
इससे मुल्ला मौलवी भटक उठे । वैसे वह नम्र प्रकृतिका था । हिन्दुआगर
उसने अधिक अत्याचार नहीं किये प्रतीत होते । सुलतानकी नरमीके
कारण राज्यमें ठगोंका जोर बढ़ गया था । १२९४ ई० में उसका भतीजा
एव दामाद अलाउद्दीन सुलतानकी अनुमतिसे मालवा विजय करनेके लिए
गया किन्तु तदुपरान्त दक्षिणमें घुसकर उसने देवगिरिके यादव राजा
रामचन्द्ररायको भी पराजित किया और लूटका विपुल धन लेकर वापस
लौटा । कड़ामें प्रेमविह्वल वृद्ध सुलतान यशस्वी उत्तराधिकारीका स्वागत
करने गया तो उसीके हाथों छत्रसे मारा गया ।

अलाउद्दीन खलजी (१२९६-१३१६ ई०) ने लूटके धनको सर-
दारोंमें बाँटकर उन्हें अपनी आर मिलाया और अपनी स्थिति सुदृढ़ एव
सुरक्षित करके अपने विद्रोहियों एव विरोधियोंका शनैः शनैः कुचल डाला ।
१२९७-१३०५ ई० के बीच मंगोलोंक कई आक्रमण हुए, एक बार तो वे
दिल्लीपर ही आ घमके, किन्तु छल-बल, चतुराई और घूस आदिके
प्रयोगसे सुलतानने उनसे त्राण पाया । १२९८ ई० में नव-मुसलिम
मंगोलोंक विद्रोह करनेपर उसने सहस्त्राकी सख्यामें उन्हें मरवा डाला ।
उसने स्थय तथा अपने मलिक काफूर, उलुगखाँ, अलपखाँ, जफरखाँ,
नसरतखाँ आदि सेना-नायकोंके द्वारा राजपूतानेके रणयम्भौर (१३०१ ई०)
और चित्तोड़ (१३०३ ई०) जैसे प्रसिद्ध दुर्गोंको अधिकृत किया । राज-

इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुलतान

वन कीर आत्म कीरनामै कहे कीर आत्म कीरनाम आत्म विषय
 ७४ अन्तर्गत विषयविषय आत्म वर एक-एक काहे कह्यो । ११९८
 ई में वन कीरनामै वरविषय काहे कुशलको कह्यो विषय वन,
 वनवर्णन आत्मकीरनामै आत्मकीरनाम विषय तथा देवकी के आत्म
 की आत्मकीरनामै देवकीकी वरविषय काहे कह्यो आत्म आत्म विषय ।
 आत्मकीरनाम नरका गीत हूँ अन्तर्गत वनकी वरनामै कह्यो । इन वरनाम
 काहे नाम के ही विषय कह्यो विषयकाहे केवल वरनाम आत्मकीरनाम वरनाम
 देवकी वरनाम विषय-वर्णन वरनाम की वर वरनामै वरनामकीरनाम
 वरनामके वरविषय विषय आत्मकीरनाम वरनाम ।

[illegible]

कर ली थी और विद्वानोंका आदर करता था। सुप्रसिद्ध अमीर खुसरो उसका राजकवि था। राघो और चेतन नामक दो ब्राह्मण पण्डितोंका भी मुलतानके ऊपर पर्याप्त प्रभाव रहा, उसका एक हिन्दू मन्त्री माधव था। जिनप्रभूमूर्तिके विविधतीर्थरूपके अनुसार मन्त्री माधवकी प्रेरणापर ही मुलतानने अपने भाई उलुगखांको गुजरातकी विजय करनेके लिए भेजा था। दिल्लीका नगरसेठ उस समय पूर्णचन्द्र नामक अप्रवाल जैनी था और मुलतान भी उसे काफी मानता था। इसी सेठमें कहकर मुलतानने दिगम्बराचार्य माधवमेनको लिला बुलवाया था, मुलतानने अपन दरबारमें उनका व्याख्यान सुना और सम्मान किया। राघो और चेतन नामक विद्वानोंके साथ शास्त्राध्यक्षमें जैनाचार्यन विजय प्राप्त का बताया जाती है। दिल्लीमें काष्ठामधकी गद्दीके सम्भारक भी यही आचार्य थे। इस मुलतानमें इस्तेने कई क्रमान भी प्राप्त किये बताये जाते हैं। नन्दिमधके आचार्य प्रभाचन्द्रने भी इसी समयक लगभग दिल्लीमें अपना पट्ट स्थापित किया था। गुजरातके अपने पहले आक्रमणमें भडौंघके दिगम्बर जैन साधु श्रुत-वार स्वामीन भी इस मुलतानका साक्षात्कार हुआ बताया जाता है। श्वेताम्बरगन्धर्व रामचन्द्रमूर्ति और जिनचन्द्रमूर्तिको भी उसने सम्मान किया था, ऐसी अनुश्रुति है। उसीके शासन-कालमें नठ पूणचन्द्र मुलतानके क्रमान पञ्च महायतावी प्राप्त करके जैनाका एक बड़ा पञ्च गिरनार तीर्थकी यात्राय लिए गे गया था। उसी समय पयटशाहके नवृत्त्वमें वहाँ गुजरातका मध भी आया था और दाना मधान सद्भावपूर्वक साथ साथ तीर्थ वन्दना की था। गुजरातके सूबेदार अलपखान भी पाटनके सेठ समर-शाहको शत्रुघ्न तीर्थका जीर्णोद्धार करन एवं यात्रामध ले जानेके लिए महर्ष सैनिक महायता भी दी थी। इन तथ्योंमें विदित होता है कि विजयाध्य या विद्रोह दमनाध किये गये युद्ध अवसरोंको छोड़कर सामान्यतः इस कालमें भारतीयोंका स्वधर्म पालनकी सीमित स्वतन्त्रता हो जाने लगी थी, और भारतीयोंको राज्यमें यदा-कदा पदादि भी दिये जाने लगे थे।

इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुलतान

मध्यप्रदेशमें गईं बनसिरीं बचन खादि भी बनसाले और छोरी पावक
 अचानमें मदी दिल्लीके निर्वाचका कार्य भी आरम्भ किया था । मुजफ्फर
 कछेर कायमके परिचायकबन्धन छोरी छोरी खादि भी बहुत कम हो गई
 थी और साहब पराचोंके मूल्य ही बढने हुअे कम निर्धारित दिने के कि
 बतना बस्ता बचन खादे फिर घायब कजो नहीं आया । उनके अन्तिम
 बचनमें उनके मनी कठिक कमचूरकी बलि बहुत बड़ कजो थी ।

मुजफ्फरकी मृत्युके बाद नाकूरने उनके एक पिछू पुनको अंगर
 पिछमा जारी बलि बनने इश्वर कर भी और एकनर्बकी अनेक
 अवलिबोना बर कर दिवा । किन्तु अन्तम एक बाल अन्नाद् ही कजो
 और उनके अर्थिनोकी हुला कर दी गयी । कम मध्यप्रदेशका एक बन्ध पुन
 मुजफ्फरकी मृत्युके बाद (१९१९-१९२ ई) मुजफ्फर हुवा किन्तु
 वह भी कम दुपचारी बालाचारी एवं निकम्मा था । देशभिरिके पिछोही
 पन्ना इरपाव देकनी कजने बाब खिन्ना की थी और घायब अन्तम
 बन्ध कर दिवा था । किन्तु वह हिन्दुबोना बर भी बरठा था अन्तमके
 केठ बन्धनकाही दिल्ली बुलकर कजे कजने एक बन्ध बचन किन्तु
 किया था । मुजफ्फरके एक नीच परचारी बालिके हिन्दुकी कजने कजना
 बलि मूर्द-बढ़ा बना किया था । वह अवलि बूठोहाके नादे अन्तिम
 हुवा और कजने इनामीक बर करके लर्न मुजफ्फर बन केठ । कजने
 परचारीकी कजनामिठ किया और कजने बालि-बालुकी राजकीय कजना
 भर किया । दुपचार बन्धनार और बालाचारीका और और बलि
 बडा अन्तम परचारीने कजना बर कर दिवा ।

मुजफ्फरका (१९२१-१९२४ ई)—बूठोहाकी अन्तमबलि किन्तु
 बलि बुल होकर कजना अन्त कजनाले परचारीका केठ रिचलपुरका
 हाकिम छोरी बलि था । वह एक दुर्क बन्धन था । कजनी बचने कोई
 बुल भीरिठ बना नहीं था अन्त कम परचारीकी बन्धनले बलि जारी
 ही कजनाहुवा (१९२१-१९२५ ई) के नामक मुजफ्फर

यना । वस्तुतः उसका बाप बलबनका एक तुर्क गुलाम था और माँ एक जाटनी थी, भारतमें ही इसका जन्म हुआ था, अतः वह अत्यंत प्रारम्भिक मुलताना जैसा निर्दय क्रूर और घमाँच नहीं था, साय ही एक योग्य शासक भी था । थोड़े से समयमें ही उसने आन्तरिक शासन व्यवस्थित कर लिया और मगोलोंके निरन्तर होनेवाले आक्रमणोंसे राज्यको रक्षा करनेके उपाय भी कर लिये । कतिपय भारतीयोंको भी उसने उच्च पदों पर नियुक्त किया था । पाटनके मेठ सम्राज्ञाहको वह पुत्रवत् मानता था और उसे उसने तैलिलाने भेजा था । सोमचरित्रगणिकृत गुरुगुण-रत्नाकर ग्रन्थ (१४८५ ई०) के अनुसार सूर और नानक नामके प्राग्जाट जातीय दो जैन भ्राता भी उसके प्रतिष्ठित सगदार थे । अपने पुत्र जूनाखाँको उसने दक्षिण-विजयके लिए भेजा । वारंगलके प्रथम युद्धमें तो जूनाखाँ वुरी तरह पराजित हुआ किन्तु दूसरे आक्रमणमें उसने कर्नातीय राज्यका अन्त करके वांगल और बीदरपर अधिकार कर लिया । इस समय मुलतान स्वयं वंगलके उत्तराधिकारकी समस्या सुलझानेके लिए गया हुआ था । उसके लौटनेके पूर्व ही जूनाखाँ दिल्ली लौट आया । मुलतानके स्वागतके लिए राजधानीसे बाहर उसने अपने विश्वासी अनुचर धाजाजहाँ-द्वारा एक अस्थायी काष्ठमण्डप बनवाया । मुलतान जब अपने छोटे पुत्र महमूदके साथ उस भवनमें शयन कर रहा था तो जूनाखाँके पट्ट्यासे वह मण्डप गिरवा दिया गया और मुलतान व उसका पुत्र उसीमें दबकर मर गये । मुसलमान फकीर निजामुद्दीन औलियाका भी इस पट्ट्यासे हाथ रहा बनाया जाता है । गयासुद्दीनने दिल्लीके निकट ही तुगलकाबाद नामक एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया था और उसमें अपार धन संचयन किया था । वहाँ उसने अपना मक़बरा भी पहलेसे ही बनवा लिया था ।

अब जूनाखाँ, मुहम्मद बिन तुगलक (१३०५-५१ ई०) के नामसे मुलतान बना । इस वंशका यह सर्वमहान् शासक था । उसका व्यक्तित्व

इसका नाम और दिल्लीके मुलतान

चावने सुनता था और उक्त विद्वानोंसे स्वयं भी वाद करता था ।

विविधतोषकल्पके कर्त्ता जिनप्रभसूरिका सुल्तानने सम्मान किया और उन्हें कई फरमान न्यिये जिसमे उन्होंने हस्तिनापुर, मथुरा आदि तीर्थों-की समष्टि यात्राएँ की और अनेक धर्मोत्सव किये । राजा-मन्त्रियों ने उन्हें वाद विवाद भी किये । उनके शिष्य जिनदेवसूरि बहुत समय तक सुल्तानके साथ रहे और सम्मानित हुए । इनके कथनसे सुल्तानने कन्नौज नगरकी महावीर प्रतिमाको दिल्लीमें स्थापित करवाया । यह प्रतिमा कुछ दिन तुगलकाबादके शाही खजानेमें भी रही । एक पोषघशाला भी उस समय सुल्तानकी आज्ञा और सहायतासे दिल्लीमें बना । सुल्तानकी माता मल्लभूमेजहाँ बेगम भी इन जैन-गुरुआका आदर करती थी । जैन यति महेन्द्रसूरिका भी सुल्तानने सम्मान किया था । पाटनके शाह समरसिंहको सुल्तान भाई-जैसा मानता था और उसे उसने तेलिगानेका शासक नियुक्त किया था । ज्योतिषी घराघर भी सुल्तानका कृपापात्र था । १३३४ ई० की एक जैन-ग्रन्थ प्रशस्तिमें दिल्लीका नाम योगिनीपुर मिलता है । राज-घानी तुगलकाबादके शाही किलेमें ही 'दग्धार चैत्यालय' नामका एक जैनमन्दिर विद्यमान था जिसमें १३४२ ई० में उस चैत्यालयके निकट रहनेवाले पाटन निवामी अग्रवाल जैन साह सागियाके वंशजोंने एक महान् पूजोत्सव किया था । इन लोगोंके गुरु काष्ठामघो जयमेनके शिष्य भट्टारक दुर्लभमेन थे । सुल्तान भी उनका आदर करता था । इस अवसरपर अनेक ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ करायी गयीं जिनका लेखक गन्धर्वका पुत्र पण्डित बाहूड था । इस सुल्तानके समयमें दिल्लीमें नन्दिसंघके पट्टाधीश प्रसिद्ध भट्टारक प्रभाचन्द्र थे जिनसे सुल्तान बहुत प्रसन्न था ।

अपने शासनके प्रथम वर्षमें ही इस सुल्तानने अपने राज्यके जैनियों (सयुरगान = सराओगान, श्रावकों) के हितार्थ एक कर्मणि भी जारी किया था । १३२७ ई० में ही सुल्तानने दक्षिण देशस्थ दौलताबाद (देवगिरि) को राजधानी स्थानांतरित करनेका निश्चय किया और

विन्सीको जाली करनेवा हुनन हे विवा । कपूर बक-उगरी हामि हुने विन्नु प्रयोग बाटल गडी हुवा । हा १३२० ई के हो उनमे शारबकुले होयनमाना मल नाने बलिम बागुवा अपविष्ट गृमान भी मुननगली माननके अन्तवन बलिमलिष्ट नर भिया । मयोकाके बाह्यनके नात्य मुननगली मुनन कपूर जला गवा और मुनन देकर हो बकने प्रयोगी पीछन लगवा । ईमान और नीलनर बाह्यन करनेकी योग्यार्थ भी दह मुननगली गवाकी विन्नु रोमांमे हो मानकन रहा । १३४ ई के कन-बन फिर बकन विन्सीको छोडकर योग्यवाचकी राजवाकी बनानेवा बयन विवा और दह बार भी निरुक्त हुवा । इनके पावनन-नाकमे कपूर-बकने योग्यन दुकान गवा अन्तवन गवाकी भुनो नर बने । मयोकाके बाह्यनको मुननगली अन्तनी योग्यवाकी अन्तरवाकी बाग्यीकन और राजवाकी-बलिमन अन्तके नारन राजकीय जाली हो गवा य अन्तवन बकने मोने-बाकीके स्वाकमे ठामे और नीलनकी प्रतीक मुनन गवाकी पाडी । यद योग्यना भी निरुक्त हुने । कपूर पावनन-अन्तवा भी अन्त-न्यास हो गडी । निम्न बंधन बलिम बागि बाह्यनके विभिन्न बायोमे निरुक्त हुने लने निम्नके बकन करनेके प्रकनमे कनन्य योग्य नील और फिर भी कनके अन्तन अन्तन हुने और बाह्यनके किलन-किलन हुनेकी नद न रीक गवा । दह प्रकार विन्नु मुननन गवाकन और कपूरन हुने हुने भी मुननन मुननकुले कपूरको, गृमि मुननन—बकने निरुक्त देवी बिमन र्चिर्दमिर्ति बलनन नर हो कि बने लद और विभिन्न कयोमे काने कपूर-नी-कपूर रीक गाने लने नद विभिन्न-नीका हो गवा कनकी प्रविष्टिवा बकन कयो और कनने कपूरको एवं विरिष्टिवाके निरुक्तकोन रकनगतमे नद नद गवा । अन्तनील मुननगली इतिहासकार विवागुलेन गवाकी निरुक्त हो कि योग्य हो बकने निरुक्त निरुक्त करणे नदी नगरी के और मुननगली कनू कनरीके कनरी बकन गरी नदी गवा वा । दह प्रकार कन विन्सीके निरुक्तन बलन करनेके अन्तनमे नद विन्नुनरके निरुक्त

छावनी छाले पड़ा था तो बीमार पड़ गया और वहाँ १३५१ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी ।

वह निम्नस्तान था अतः उसका चचेरा भाई फीरोजशाह तुगलुक (१३५१-१३८८ ई०), जो उस समय छावनीमें ही उपस्थित था तथा बड़ा सूवेदार था, सभी उपस्थित हिन्दू एवं मुसलमान सरदारोंके आग्रहमे गद्दीपर बैठा और सेनाके साथ दिल्ली लौटा । वहाँ बृद्ध नगरपाल ख्वाजा-जहाने एक शिशुको सिंहासनपर बिठा दिया था, अतः बिद्रोहके अवग्राधमें उन दोनोंका वध करा दिया गया । १३५४ ई० में फीरोज न बंगालपर आक्रमण किया और एक साल तक युद्ध चलता रहा, लाखों व्यक्ति मारे गये किन्तु वह सूबा प्रायः स्वतन्त्र हो बना रहा और सुल्तान दिल्ली लौट आया । १३६० ई० में उसने वहाँ फिर आक्रमण किया, किन्तु शीघ्र ही सिंघ हो गयी और बंगालका सूबा पूर्णतया साम्राज्यसे अलग हो गया । दक्षिणको फिरसे अधीन करनेका उसने प्रयत्न ही नहीं किया, बल्कि यहमनी मुल्तान और माबरके सुल्तानकी स्वाधीनताको ही प्रायः स्वीकार कर लिया । १३६१ ई० में उसने सिंघपर आक्रमण किया । प्रथम बार तो अपनी भारी हानि करके उसे गुजरातकी ओर हट जाना पड़ा किन्तु दूसरे आक्रमणमें सिंघका शासक पराजित हुआ और सुल्तान उसे बन्दी करके दिल्ली ले आया, फिर भी सिंघका सूबा उसके अधीन न हुआ । इसके उपरान्त फीरोजने युद्ध एवं आक्रमणोंको सिलसिले में दे दी और अपने सकुचित साम्राज्यपर शान्तिसे शासन करने लगा । वह अपने मजहबका बड़ा पक्का था, मुल्ला मोलवियोंका बड़ा आदर करता था तथा उन्हींके परामर्शसे कुरान शरीफ और शरीयतके अनुसार राज्य-काय करता था । आन्तरिक शासन प्रबन्ध सब उसके सुयोग्य मन्त्री खाँजहाँके हाथमें था जिसकी मृत्युके बाद उसीके पुत्रने वह कार्य सम्हाला । सुल्तान स्वयं भी नरमदिल था । अपराधियोंको भीषण दण्ड और नाना प्रकारकी यत्रणाएँ देनेकी प्रथा उसने बन्द कर दी ।

इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुल्तान

बनने हिन्दुओंपर आदिवा वर मनाया जो मुसलमान समझ लीकार
 कर केते थे चण्ड बह उत कामे मुक्त कर बैठे वा । इन प्रकार बख्तवार
 और आन्ध्याबागके इशानमें चुन और बनका और बेकर इनमें मुसलमानोंकी
 मर्याद-बुद्धि की । बाकीर इबा और तलामोकी प्रजाकी भी इनमें प्रोत्साहन
 दिया । इनमें मुसलमान अमीरी और बेचाओके लिए कृतिवीरों की और
 ममलमयानाएँ किए मकनब ल, बगल्ले तथा बरफ़्तान बुल्लवाई । यह बहुत
 सुखी ममलमान वा और पिना आदि अन्य मुसलमानों की सम्प्रदायोंके इति
 भी बीना ही बनगिन्नु वा बीना नि हिन्दुओंके प्रति । एक बख़्ताबकी इनमें
 शिन्वा बनवा दिया कुछ बन्धियों एवं कृतिवीरों की पुत्रवारा तथा
 मनीष बन्धियोंके निर्माणपर प्रतिबन्ध बना दिया । मुसलमानोंकी
 बिग बर एक आदम मुसलमान मुसलमान वा । ईधमें भी मालिक रही
 प्रजा की बनेबल्लन मुसली की । मररी और इमारतोंके निर्माणवा भी उके
 बीक वा बीनपुर शिनाए बीगोबमाना आदि मररोना इनमें निर्माण
 दिया बकुनाकी बहुत निबल्लवाकी कई बीच बनवाये अनेक बगल्लि
 द्विमे बाकल्लन (निबल्लन) आदि बनवाये । बैठ और डेवाते
 लकीर-मलमोकी बनबल्लकर बह दिल्ली के मना । बीन मल्लिर्तबके बग़ारक
 बग़ारककी भी बिकम्बर बुनि के उपर्ये आने बहल्लमें बुल्लवाया था । क्या
 जाना है कि मुसली इस बग़ारकपर बाध बाध करी गये थे और तल्ले
 इनपर बाहल्लके सम्प्रदायी बग़ारक प्रजावा अनुमान हुआ । दिल्लीमें
 बग़ारकीय बहल्लों बहल्ले ही स्थापित हो चुकी थी । मुसलमान और बहल्ले
 बैधमें बुनिके बहल्ल बिदे और सम्मान बिध । मुसलि रल्लेबल्लुकी
 भी इन मुसलमानों सम्मान किया बल्लवा जाना है । बग़ारक बग़ारक
 लल्लनके लल्लनो बहल्लेके निब बिब हिन्दु विद्वानोंकी मर्यादा वा इनमें
 बल्लन बग़ारकोंके बहल्लिर्तब बीन (मपुरवाक) बिबल्ल भी थे । इन मुसलमानों
 इनमें सम्मानबल्ल । इतिहास बहल्ल मिता है और बिबाबहल्ल बग़ारकी
 तल्ले कीरीबल्लयी तथा बल्लबिबल्ल बल्लेबकी बग़ारके कीरीबल्लयी

नामक इतिहास ग्रन्थ भी उसीके आश्रयमें लिखे गये ।

१३८८ ई० में ८० वर्ष की अवस्थामें फ़ीरोज़शाहकी मृत्यु हुई और उसके मरते ही राज्यमें अव्यवस्था एवं अराजकता उत्पन्न हो गयी । सब सूबेदार स्वतन्त्र बन बैठे । मन्त्रियोंके पक्ष-त्रोस एकके बाद एक कई नाममात्रके सुल्तान हुए । एक माथ कई-कई दावेदार भी चलते रहे । अन्ततः फ़ीरोज़का पोता महमूद तुग़लुक नाममात्रका सुल्तान बना रहा । उसके समयमें १३९८ ई० में मध्यएशियाके मवशकिनशाली एवं खन-पिषामु अमीर तैमूरलगने भारतपर आक्रमण किया । पंजाब, दिल्ली, मेरठ, हरद्वार आदिको लूटता-प्याटना, असंख्य नर-नागियोंको तलवारके घाट उतारता, यह भयानक नर-संहारक देशकी रही-सही दुर्दशा कर गया । अब सर्वत्र अराजकता, दुष्काल, भुखमरी और त्राहि-त्राहि मच रही थी । तुग़लुकोंके नाममात्रके राजत्वमें १४१४ ई० तक प्रायः यही हालत चलती रही ।

सैयदवश (१४१४-१४५० ई०)—१४१४ ई० में पंजाबके सूबेदार खिज्रख़ाने, जो अपने-आपको सैयदवशमें उत्पन्न हुआ कहता था और तैमूरलगका प्रतिनिधि घोषित करता था, दिल्लीपर अधिकार कर लिया । दिल्लीके आस-पासके थोड़े से प्रदेशपर उसका राज्य था । उसने और उसके तीन उत्तराधिकारियोंने न अपने आपका सुल्तान घोषित किया और न अपने नामके सिक्के ही चलाये । सैयद मुबारकशाहका एक मन्त्री हिसार-निवासी अग्रवाल जैनी हेमराज था जो भट्टारक यश कीर्तिका शिष्य था । इस वंशका अन्तिम शासक अलाउद्दीन १४५० ई० में पदच्युत कर दिया गया और वह दिल्लीका परित्याग करके वदायूँमें जाकर एक साधारण जागीरदारकी तरह रहन लगा ।

लोदीवश (१४५०-१५२६ ई०)—अफ़ग़ान सरदार बहलोलख़ाँ लोदीने, जो सैयदोंके शासनकालमें पंजाबका स्वतन्त्र सूबेदार बन बैठा था, १४५० ई० में दिल्लीपर अधिकार कर लिया और अपने आपको सुल्तान घोषित कर दिया । उसने दिल्लीका जो छोटा सा राज्य बचा था उसमें

कर्णाटकके कुछ तत्कालीन शिलालेखोंमें पता चलता है कि वहाँके महान् वादो एव वक्ता प्रसिद्ध जैनाचार्य विशालकोत्ति मुलतान सिकन्दर लोदीको राजसभामें आये थे और उसके द्वारा सम्मानित हुए थे। सिकन्दरके राज्य कालमें अत्यधिक सुकाल था, सभी पदार्थ अत्यन्त सस्ते थे और अल्प साधनवाले व्यक्ति भी सुखमें रह सकते थे, ऐसा उस कालके इतिहास-ग्रन्थोंमें पता चलता है।

उसका पुत्र इब्राहीम लोदी (१५१७-२६ ई०) निदयी और अयोग्य शासक था। उसके समयमें भी वस्तुएँ अत्यधिक सस्ती थी किन्तु उसने अपनी उद्धृष्टतामें अपने अफगान अमीरोंका रुष्ट कर दिया और उनसे निरन्तर लड़ता-झगड़ता रहा। जब कभी उनका अपने हाथमें कर पाता तो उनपर बड़े निदर अत्याचार करता। धुन्न अफगान सरदारान पञ्चायक सूबदार दीलतख़ाँ लादाको अपना नेता बनाया और उसने फावुलके बादशाह बाबरको भारतपर आक्रमण करनेका निमंत्रण दिया। बाबर आया और १५२६ ई० में पानीपतकी प्रसिद्ध गणभूमिमें इब्राहीमकी विशाल सेनाको उसने पराजित किया। इब्राहीम मारा गया और उसके साथ ही लादीवंशका अन्त हुआ। दिल्लीमें मुघलवंशकी स्थापना हुई किन्तु अस्थायी रही। १३ १४ वर्ष बाद ही बाबरके उत्तराधिकारी हुमायूँ-को एक अन्य अफगान सरदार दोस्तान निजाल बाहर किया।

सुरिवंश—(१५४०-१५५५ ई०)—लोदी सुल्तानोंके शासनकालमें पूर्वी भागमें अनवर अथर्वतन्त्र छाटे-छाटे अफगान अमीर उत्पन्न हो गये थे। उन्हींमें बिहार प्रांतस्थ महसगमका जागीरदार हमन था। उसका बेटा फरीश अपनी सीतली माँके दुष्प्रवहारमें निडर घर छोड़कर जौनपुर चला आया। वहाँ उसने जानहार मुबकने पाँठ ही समयमें शासन एवं राजनीति-मन्त्रगणों विविध ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया। लौटकर हमन अपने बापका जागीरका बड़ा निपुणतासे साथ प्रबंध किया और उस अमरुत बना दिया। बाबरके आक्रमणसे उत्पन्न विषम परिस्थितिमें

अध्याय २

पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है मुहम्मद तुगलुक के समयमें ही दिल्ली-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था और अनेक नवीन एवं स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य यत्र-तत्र अस्तित्वमें आ गये थे, जिनमें बगाल, जोनपुर, गुजरात, मालवा एवं कश्मीर के राज्य और दक्षिणका बहमनी राज्य उल्लेखनीय हैं।

बंगाल (१३४०-१५७६ ई०)—मुहम्मद तुगलुक के समयमें बगाल के सूबेदार फख्रुद्दीनने १३४० ई० में विद्रोह करके अपने प्रान्तको साम्राज्यसे प्रायः पृथक् कर लिया था। १३५३-५४ ई० में फ़ौरोज़शाहने बगालके सूबेदारका अधीन करनेका विफल प्रयत्न किया था, १३६० ई० में फिर उसने एक प्रयत्न किया और अन्ततः उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। तभीसे लेकर अकबरकी विजय पर्यन्त सूबेदार फख्रुद्दीनके वंशज सिकन्दरशाह (१३६८ ई०) आदि जो अश्वदशीय सैन्य जातिके थे स्वतन्त्र सुल्तानोंके रूपमें उस प्रांतपर राज्य करते रहे। देशके अन्य राज्योंके साथ उनके प्रायः कोई युद्ध नहीं हुए किन्तु तत्कालीन सभी मुसलमानी राज्योंकी भाँति गुप्त हत्याएँ, गृह-कलह, उत्तराधिकार संघर्ष पड़्यन्त, विश्वासघात आदिसे इस वंशका इतिहास भी ओत प्रोत है। शासन व्यवस्था भी प्रायः दिल्ली-सल्तनत एवं अन्य सभी भारतीय मुसलमानी राज्योंके प्रतिरूप ही थी। उसमें मुसलमानों एवं इस्लामक हित प्रधान था और शासन प्रायः नागरिक ही था। असह्य ग्रामीण

जगति बाराह करके स्वर्गका ही दिखानेका सम्राट् घोषित कर दिया ।
 विष्णु १५५६ ई. में बालीपुत्रक कुम्भमें अक्षर और बीरवर्मा-काष्ठ बरालित
 होकर एक पाठा बाहर आया और उसके साथ ही आग्नीसम्बाह बुल्ले
 बिल्ली राज्यका अधिकारका अन्त ही गया । देवकाहुषा एक अन्य गह्वेरा
 निजगणसम्बाह बुलि भी प्राप्तकहे ही मुम्भार काबिलपात्रका अस्तिनीय
 और राज्यके परिचयी राज (राजा) बन अधिकृत था । हुषार्जु और
 कम्भके बाद अक्षरके साथ पञ्चाशमें बहू लगना रहा । बालीपुत्र कुम्भके
 बरालित समय आत्म-नक्षत्र कर दिया और अक्षरके कले बराल कर
 दिया । इन बराल मुगीर्षयका अन्तर्गत १५ बरके राज्यके बाद अन्त हुआ ।



अध्याय १

पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है मुहम्मद तुगलुकके समयसे ही दिल्ली-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था और अनेक नयीन एवं स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य यत्र तत्र अस्तित्वमें आ गये थे, जिनमें बंगाल, जोनपुर, गुजरात, मालवा एवं कश्मीरके राज्य और दक्षिणवा बहमना राज्य उल्लेखनीय हैं।

बंगाल (१३४०-१५७६ ई०)—मुहम्मद तुगलुकके समयमें बंगालके सूबेदार फखरुद्दीनने १३४० ई० में विद्रोह करके अपने प्रान्तको साम्राज्यसे प्रायः पृथक् कर लिया था। १३५३-५४ ई० में फ़ोरोज़शाहने बंगालके सूबेदारका अधीन करनका विफल प्रयत्न किया था, १३६० ई० में फिर उसने एक प्रयत्न किया और अन्ततः उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। तभीसे लेकर अकबरकी विजय पयन्त सूबेदार फ़खरुद्दीनके वंशज सिकन्दरशाह (१३६८ ई०) आदि जो अरबदशौय सैयद जातिके थे स्वतन्त्र सुलतानाके रूपमें उस प्रांतपर राज्य करते रहे। दशके अन्त्य राज्याके साथ उनके प्रायः कोई युद्ध नहीं हुए किन्तु तत्कालीन सभी मुसलमानी राज्योंकी भाँति गुप्त हत्याएँ, गृह-कलह, उत्तराधिकार सघर्ष, पड़्यन्त, विश्वासघात आदिसे इस वंशका इतिहास भी ओत-प्रोत है। शासन व्यवस्था भी प्रायः दिल्ली सल्तनत एवं अन्य सभी भारतीय मुसलमानी राज्योंके प्रतिरूप ही थी। उसमें मुसलमानों एवं इस्लामका हित प्रधान था और शासन प्रायः नागरिक ही था। असह्य ग्रामीण

पूर्व मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

प्रवाची भूमि-कर ईनेके अतिरिक्त घासफूस अन्य कोई विशेष हासि-
काम नहीं था । किन्तु इन नुवा राज्योंके मुख्यालय सिन्धीके मुख्यालयोंमें
कोईया सामान्यतया अधिक बहिष्कृत होते थे ।

बंशानके मुख्यालयमें बंद-बन्दिन हूईक्याहू (१४९१-१५१९ ई)
था । यह पूर्ववर्ती मुख्यालय मुजफ्फरपुराका प्रवाल बन्यो था । मुजफ्फरके
आकाशारोके कारण बहने लगे पत्थरों को बचका बन कर पिलवा
और बरसातोंकी सम्पत्तिके लिये मुख्यालय बन गया था । बचका राज्यालय
अत्यन्त सुख-सम्पत्ति और समृद्धिपूर्ण रहा । बचकी प्रवा बनने श्रेय करणी
की और गरीबी राजे बचका भार कटो थे । बंशानमें बचका नाम
काय तक बहर है । हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इसे बहते थे ।
बचका पुत्र नवरत्नकाहू नामकका बचकलीन था । यह भी एक अन्य
मुख्यालय था । मुजफ्फर-नरेशोंकी प्रवाके प्रतिभूल यह बने । छोटे
मातृवीके इतिहास श्रेय करता था और कई कुलके रहता था । बचकाके
नाम बहने सामान्यपूर्ण बन्दि की थी । इस बंशका अन्तिम मुख्यालय
मज्जरकाहू था जो १५७९ ई में अफगानोंके आगमन के कारण फैलापिन्नी-
हाय पराजित हुआ और मुहम्मद बारा गया ।

बंशानके इस मुख्यालयके आसनकायने विजयनगर-राज्य चालुखानों
निर्मित अत्यन्त विद्यालय एवं सुन्दर गरीब बचकिय, पीछे हूईनकाहूअ
नगराज एवं छोटी मुनहकी नबन्दि, नवरत्नकाहूकी बड़ी मुनहकी बचकिय
और कटमरमुक तथा राजधानी पीछे एवं अन्य प्रमुख बचकोमें निर्मित
पत्थर बनातुर्न एवं बहलीन हैं । इन्हींके राजदरमें १४४९ ई में कनि
हूईनकाहूने बंशका राजावत सिन्धी और हूईनकाहू एवं नवरत्नकाहूने
महाराजके की बंशका अनुवाद कर्तये । इस प्रकार इन मुख्यालयोंने व
बंशका प्राचीन आर्योव आर्योवमें अधिष्ठित विद्यापीठ बालू बंशका नामके
विजयनकी की गीतकाहूव किया । बंशानमें अब भी और आन्त कर्तिय
ही बहलन था किन्तु इसी अन्तमें केवल मज्जरकाहूने हल्लबन्दि और

वैष्णवधर्मका भी प्रचार किया ।

जौनपुर (१३९९-१४७६ ई०)—फ़ोरोजशाह तुग़लुक़ने अपने भाई जूनखाँकी स्मृतिमें जौनपुर नगर बसाया था । १३९४ ई० में उसके उत्तराधिकारी महमूद तुग़लुक़ने अपने कृपापात्र खोजे सरदार ख़ाजाजहाँको मलिकुद्दशर्कको उपाधि देकर जौनपुरका सूबेदार नियुक्त किया । तैमूरके आक्रमणसे लाम उठाकर १३९९ ई० में ख़ाजाजहाँका दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी मुबारकशाह शर्की स्वतन्त्र हो गया । इसके उपरान्त उसके भाई इब्राहीमशाह शर्की (१४००-४० ई०) ने शान्तिपूर्वक राज्य किया । वह पक्का मुसलमान था, रक्तपात तो उसने अधिक नहीं किया किन्तु हिन्दुओंपर अन्य सुलतानोंकी भाँति जोर-जुल्म किये ही । उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी महमूदशाह शर्की भी सफल शासक रहा । सम्भव-तया इसी सुलतानके दरबारमें कर्णाटकके जैनाचार्य वादी सिंहकीर्त्तिके आकर शास्त्रार्थ किया था और जयपन्न प्राप्त किया था । सिंहकीर्त्तिका समय १४५० ई० के लगभग है । 'अश्वपतेर्द्दिनतनय-वगात्मदेशावृत-दिल्लीपुरेष्ठ महम्मूद सूरीत्राण'-वर्णन उस कालके सुलतानोंमें सबसे अधिक इसीपर लागू होता है । तदुपरान्त हुसैनशाह शर्की सुलतान बना । १४७६ ई० में दिल्लीके सुलतान बहलोल लोदीने उसे पराजित करके जौनपुरसे निकाल दिया और उसने जाकर बगालके सुलतानको शरण ली । बहलोलने जौनपुरका सूबा अपने बेटे बारबकशाहको दे दिया, किन्तु सिकन्दर लोदीने बारबकशाहको भी मारकर जौनपुरको दिल्ली राज्यमें ही मिला लिया । जौनपुरके शर्की सुलतान अरबी और फ़ारसी साहित्यके भारी प्रश्रयदाता थे । उन्होंने जौनपुरमें अनेक सुन्दर एवं विशाल मसजिदें भी बनवायीं जिनमें अटालादेवी मसजिद अति प्रसिद्ध है । इनकी निर्माण-कलामें भारतीय प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

मालवा (१३८७-१५६४ ई०)—मध्य भारतका वह बहुभाग जो उत्तरमें घम्बल, दक्षिणमें नर्मदा, पूर्वमें बुन्देलखण्ड और पश्चिममें गुजरात-पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

के बंदिग हैं। अतः यह कहा जाता है। यह कर्षर समुद्र एवं सुल्तान शरीफ
 बिरबाल तक आती सांस्कृतिक रीति थी रही। भारतीय राजपरिवारों
 अर्थात् बगैरी, बघनूर आदिके उपरान्त बरबारीके राज्यपालों ने आता
 मराठीका सम्पूर्ण हूक। इस्लामविषये ११वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें अलमघार
 आक्रमण किया था और तातालीय बरबारी-मरेचकी बरबोकाता लीकार
 करकेदार राज्य किया था १११ ई में बगैरुद्दीन तुगलकीने आलमघके
 द्विगुराम्भवा बल करके इसे आक्रामका एक शक्त बना लिया और यही
 एक सुनसमान सुबेदार नियुक्त कर दिया। छोटे-बड़े तुगलुके अर्द्ध-
 राज्यमें विभाज्यता (११८७-१४ ई) आक्रामका सुबेदार था। यह
 आलमघकी ही शक्तोंके अर्धीन था और तुगलुके आक्रमणके उपरान्त
 मुसलमान विद्वान्बुद्दीन बोरी (१४१-१४७५ ई) ने आलमघ के अनेक-
 आलमकी आक्रामका स्वतन्त्र मुसलमान घोषित कर दिया तथा आलमघ
 परिवर्तन करके बागु (मराठपुर) की अपनी राजधानी बनाया। उसके
 पुत्र अलमघों का 'अलमघ' बनाया मुसलमान ईश्वरप्रादु बोरी (१४७५-
 १४९९ ई) ने शिवाजी सिंह देकर राज्य राज्य किया और बागु राज
 बागुको सुबेदार-सुबेदार बननेके आरम्भ किया। मुसलमानों के मुसलमान उसके
 अर्धीन था। १४८ ई में मुसलमानों के मुसलमान मुसलमानों के अनेक-
 शक्ति करके बगैर कर लिया किन्तु एक वर्ष बाद मुसलमान कर दिया। आलमघ
 और मुसलमानों के बीच आलमघ की विरामर मुसलमान रहे, कभी एक कभी
 और होती कभी दूसरी। होशिय बोरीका पुत्र मुसलमान बोरी (१४९९-
 १४९९ ई) बगैर मुसलमान और बगैर था। उसके अर्धीन
 बगैर बगैर (१४९९-१४८९ ई) ने सिंह देकर अनेक बार राज्य और
 स्वयं मुसलमान बन गया। आक्रामके मुसलमानोंमें यह आक्रामक राज्य अर्धीन
 था। मुसलमानों के मुसलमान बगैर मुसलमान और राजपालके राजपाल
 एने उसके अर्धीन यह भी और अनेक आलम उसके विरामर मुसलमान रहे।
 इतिहासकार औरबाली उसके आलम आक्रम और बगैरकी बड़ी अर्धीन की

है। उसकी हिंदू और मुसलमान प्रजा समान रूपसे सुखी और सम्पन्न थी। चित्तौड़के राणा कुम्भके साथ उसके जो युद्ध हुए उनकी स्मृतिमें राणाने चित्तौड़में कीर्तिस्तम्भ बनवाया और महमूदने माण्डूमें। उसका पुत्र सुलतान गयासुद्दीन (१४८३-१५०१ ई०) दिल्लीके सिकन्दर लोदी, गुजरातके महमूद वेगडा, खालियरके मानसिंह तामर और चित्तौड़के राणा रायमल्लका प्रतिद्वन्द्वी था। उसका पुत्र नासिरुद्दीन (१५०१-१५१२ ई०) भी अपने पिताको विपद् द्वारा मारकर सुलतान बना, वह बहुत दुराचारी और निर्दयी था। उसका पुत्र महमूद द्वितीय (१५१२-३१ ई०) इस वंशका अन्तिम सुलतान था जिसे १५३१ ई० में गुजरातके बहादुरशाहने पराजित करके मार दिया और मालवाको अपने राज्यमें मिला लिया। १५३५ ई० में हुमायूँने मालवाको गुजरातसे छीनकर अपने अधीन किया और मालवाके राज्यवशके ही एक व्यक्तिको जो उसके आश्रयमें चला गया था अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। किन्तु हुमायूँका अधिकार अल्पस्थायी ही रहा। अन्ततः मालवाके बाजबहादुरको १५६४ ई० में अकबरने समाप्त करके इस प्रदेशको अपने राज्यमें मिलाया। बाजबहादुर और रूपमतीको प्रेम-गाथा सुप्रसिद्ध है।

मालवाके इन सुलतानोंने माण्डूका विशाल सुदृढ़ दुर्ग एवं नगर, हिंङ्गाला महल, जहाज महल, बाजबहादुर और रूपमतीका महल आदि सुन्दर राजप्रासाद, भव्य जामामसजिद, होशग गोरीका सुन्दर मकबरा आदि अनेक कलापूर्ण दशनीय कृतियोंका निर्माण किया जिनमें माण्डूके प्राचीन जैन एवं हिन्दू मन्दिरोंकी सामग्री भी प्रयुक्त हुई। वे धर्म-सहिष्णु भी थे और हिन्दुओंपर उन्होंने धर्मके नामपर विशेष अत्याचार नहीं किये। सुलतान होशग गोरी अलपख्वाँके समयमें, १४२४ ई० में दिल्लीके मूल-मघी मट्टारक शुभचन्द्रके उपदेशसे इस सुलतानके राज्यके सघनपति होलीचन्द्र आदि अनेक धनी धावकोंने देवगढ़में तीर्थकरों और गुरुओंकी कई प्रतिमाएँ निर्माण कराकर भारी प्रतिष्ठोत्सव किया था। शिलालेखमें

मुक्तपत्रकी भी बहुत प्रशंसा है। नाटकायें इस नाटकी विमर्श नाम्नाके
 गलि नाट्य और सैन्यबोके कई पट्टे विद्यमान थे। बनेक दिनु और
 तीन मान्नु पत्रायें कल्प पात्रकीय बरोबर भी विमुक्त के अन्दर-ही एक
 सैन्यबोके बहुत प्रसिद्ध हुआ—संघर्षन नाम्ना दूबेदार विमर्शएकि
 पुनबोके समयमें पात्रकभी था। कबका पुन बाहर स्वयं विमर्शएकी
 कपनाय छिद्रमुहल कोटीका कभी था और कतना घाई पय थी। बाहर
 का पुन लम्पन मुक्तपत्र होर्धन कोटीका बाहरबायन या प्रबायन कभी था।
 यह कथा साक्ष्य-मुसक और ताव ही मान्नु विज्ञान् एवं दार्ष्टिककार था।
 काल्पनिकता या औरत-व्यक्तबोधकथा शृंगारकथन कंठकथन
 साधककथन आदि विविधविधक कृतकपूर्ण कभीकी उरवे रचय
 की थी और बहु धर्मविचारिचारर बहुकथा था। यन्त्रके कनेरे घाई
 धर्मरति नाम्नायके जो १४१४ ई. में प्रकाशकी रचना की थी।
 समकालीन कालके ही रचका सैव नामक अलि मुक्तपत्र कथानुक्ति
 कथकीका कभी था और कने 'कथक-कथिनी की कथावि प्रयत्न थी।
 इसका कथीया पुनराय भी कल्प परपर कथीय था यह हिनुमा
 एव बहीर कहलाया था और घाटी विज्ञान् था। १५ ई. में कने
 कारककथिनी नामक आकरककी टीकाभी रचना की थी और कथी
 केरपर इतरकुरिने लकितावधरिनी रचना की थी। कथानुक्ति
 कथकी ही १४९७ ई. में मुक्तपत्रके इतिवस्तुपत्रकी एक प्रसिद्धि
 बीरुद नगरमें करावी कयी थी। अत एव है कि मुक्तपत्र दूबेदारों
 और मुक्तपत्रोंके नाक (अथवा १३ — १५५ ई.) में नाटकायें दिनु
 और तीन कभी कथनायें थे। इस नाटके कालक सैन्य-विमर्श की बापू व
 कल्प एनालीमें पावे गयी है। मुक्तपत्रकी दार्ष्टिक कथनाय कथर ही
 इसमें कथक की।

मुक्तपत्र (११९१-१५७१ ई.) का मुक्तपत्र किं दुरण्ण
 की कहा नाट्य था और अनेक कथिनायक कथिनी है, नाट्यकी कथि

हो समृद्ध, सुरम्य और उर्वर प्रदेश रहा है। समुद्रतटके निकट होनेके कारण विदेशोंके साथ समुद्री व्यापारका भी वह प्रमुख द्वार रहा है। १२९७ ई० में अलाउद्दीन खलजीके सेनापति उलुगखाँ और नसरतखाँ ने कर्ण घघेलेका अन्त करके इस देशको दिल्ली-साम्राज्यमें मिला लिया था, और तभीसे दिल्लीके सुलतानोंके सूवेदार यहाँ शासन करते थे। १३९१ ई० में जफरखाँ गुजरातका सूवेदार नियुक्त हुआ। वह नाम मात्रको ही दिल्लीके अधीन था। १४०१ ई० में उसने अपने पुत्र तातार-खाँको सुलतान नासिरुद्दीन मुहम्मदशाहके नामसे गुजरातका स्वतन्त्र वादशाह बना दिया। किन्तु १४०७ ई० में स्वयं ही उसे विष देकर मार डाला और मुजफ्फरशाहके नामसे स्वयं ही सुलतान बन गया। १४११ ई० में उसके पोते अलपखाँने उसे भी विष देकर मार डाला और अहमदशाह (१४११-१४४१ ई०) के नामसे सुलतान बना। कर्णावतीको अहमदाबाद नाम देकर उसने अपनी राजधानी बनाया और उसे इतना सुन्दर बना लिया कि विदेशी यात्री इस नगरीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। वहमनी सुलतान फीरोज उसका मित्र था तथा मालवाके सुलतान, चित्तौड़के राणा और असीरगढ़के राजा उसके प्रधान शत्रु थे। वह निरन्तर युद्धोंमें संलग्न रहा और प्रायः सदैव सफल रहा, फलस्वरूप अपने राज्यका उसने काफी विस्तार कर लिया। हिन्दुओंके मन्दिरोंको तोड़ना, उनपर अत्याचार करना और इस्लामका प्रचार एवं मुसलमानोंकी सख्या बढ़ाना सभी सुलतानोंका खूब था, उसका भी था। किन्तु ये कार्य युद्ध और विद्रोहदमन आदि अवसरोंपर, सो भी प्रायः दिखावेके लिए ही अधिक किये जाते थे। सामान्यतः अपनी हिन्दू, जैन प्रजाके साथ उदारता और सहिष्णुताका ही बर्ताव होता था। उसका उत्तराधिकारी सामान्य श्रेणीका व्यक्ति था, किन्तु पोता सुलतान महमूद बेगड़ा (१४५९-१५११ ई०) अपने दीर्घकालीन शासन, विशाल काय, दानवों-जैसे भोजन, चारित्रिक विशेषताओं और कार्य-कलापोंके लिए दूर-दूर प्रसिद्ध हो गया। राज्यकी भी उसके

वे । जैनियोंके ढेलवाटा, आग, शत्रुजय, गिरनार, अहिसवाटा, अहमदा-
वाद आदिके प्रसिद्ध मन्दिर उस कालमें भी अधिकांशतः सुरक्षित रहे और
कुछ नवीन भी बने । इस कालमें दिगम्बर आम्नायके लाटवागड मण्डपा
भी इस प्रदेशमें काफी प्रभाव था । १५वीं शताब्दी तक सूरत, सीजिना,
भटौच, ईडर आदि कई स्वानोंमें दिगम्बरी भट्टारखोकी गद्दियाँ स्थापित
हो चुकी थीं और उनमें-से आचार्य सबलकीर्ति, ब्रह्म श्रुतसागर, ब्रह्म
नेमिदत्त, ज्ञानभूषण, गुणमन्द आदि अनेक विद्वानोंने विविधविषयक विपुल
संस्कृत-साहित्यकी रचना की थी । इनके अतिरिक्त जिनेश्वर और भट्टे-
श्वरकी कथावलिर्वा (लगभग १२०० ई०), प्रभाचन्द्रका प्रभायकचरित्र
(१२७७ ई०), मेरुतुगकी प्रबन्ध चिन्तामणि (१३०५ ई०), जिनप्रभ-
सूरिका विविधतीर्थवृत्त (१३३२ ई०), राजशेखरका प्रबन्धकोष
(१३४८ ई०) आदि महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ भी मुसलमानों के कालमें
ही लिखे गये । उपरान्त कालमें भी जैन मुनियों, यतियों और विद्वानों-
द्वारा साहित्य-सृजन होता रहा । १५वीं शतीमें अहमदावादमें जैन-ग्रन्थोंकी
प्रतिलिपियाँ करनेका कार्य कई संस्थाओंमें बड़े पैमानेपर होता था । इसी
कालमें अहमदावादके लौकाशाह (१४२०-१४७६ ई०) नामके एक जैन
सुधारकने मुसलमानों के शासनकालको मन्दिर और मूर्तियोंके प्रतिकूल समझ-
कर मन्दिर और मूर्तियोंका विरोध किया । उसके द्वारा प्रचलित लुण्ठामत-
में, जो कालान्तरमें जैनोका श्वेताम्बर-स्थानकवासी सम्प्रदाय कहलाया,
मूर्तिपूजा निषिद्ध मानो जाती है । नारायणके पुत्र मण्डनमिश्र (१४३०
ई०) अहमदशाहके राजवैद्य थे और उनके पुत्र अनन्तने १४५७ ई० में
काम-समूहकी रचना की थी ।

कश्मीर (१३००-१५८६ ई०)—कश्मीरमें १३वीं शती ई० के अन्त
तक उत्पलवशी हिन्दू राजाओंका स्वतन्त्र राज्य बना रहा । १४वीं शती-
के प्रारम्भमें स्वातके शाह मिर्जा या मोर नामक मुसलमानने जो अन्तिम
पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

यथाकम कम्भी इन बातों का पताकी माफकर विद्वान् इच्छा कर दिया और यथोक्त मुकदमा बन बैठा । इस बीच का कुछ मुकदमा विनमर (१९८९ ई) का हार, जलापारी और बरौत का । तैमूरके आज्ञाकारी जीजापति कम्भीरकी रक्षा हो गयी किन्तु तिनमरके जलापारीय बलिदान हिन्दु बगदाबो बुनकमान बन्नेपर विवश कर दिया । लम्बे हिन्दु देश छोड़कर चले गये । जो रात को हफ्ता बरिदा कमा और बड़ी सुरक्षामें कनका बीचन बोठा । बरिदा और बृत्तिबोका ली गई देना धनु का कि बलक नाम ही बृत्ति-बलक नष्ट करा । किन्तु इसके कारणसे बाठवी मुकदमा बीनमरानाथील (१९९०-१९९७ ई) कम्भी विकदुल निराश का । यह बस बहिष्णु और कपार का । इसके हिन्दुओं-पर-त बरिदा कर कुछ दिया निर्दिष्ट हिन्दुओंको फिर देखने वाला बुल दिया और उन्हें कली बलिदानके विधीयकी ली बर्ष अनुवर्ति दे दी । इसके कारणसे औरत कम्भी कुछ दिया, यह लम्बे ली बल न बाठा का एकलकीवती और बहा कपारपी का । कम्भी बलक और बरौत कम्भीके बनुवार कपारी और बहिष्णु कम्भी एवं विवकमानकी ली प्रोत्साहन दिया । यह बाठी यथाकम यथाकम ही करा और बल बुल नाम्य जाने कुछ नाम की कम्भीकी 'बुनपाई' कम्भीके बलके ली बल कपारी है । इसके बल कई बाधारण एवं लकीय पात्रक हुए । इन्हींमें कम्भीरकी विवश करके कम्भी एक कम्भीकी विवश ईश्वर (१९९१-९२ ई) की कम्भीरका पात्रक निम्न का । अनुवर्तन यह देखने बाक्यका उक्त बस विवश १९८९ ई की बम्भरले कपारी कम्भीरकी लम्भी बाधारणमें विवश दिया ।

बहुमन्वीराज्य (११४७-११९९ ई.)—इसका शासक एक दुर्ग या ईलाही विराट् को बसिआवासी के पंहु नामक बाहुमन्वीरा के एक था । इस बाहुमन्वीरा की कुतली इलाहाबाद के पंहु नामक बाहुमन्वीरा के एक था । इस बाहुमन्वीरा का नाम बाहुमन्वीरा था । इस बाहुमन्वीरा का नाम बाहुमन्वीरा था ।

१३४७ ई० में जब मुहम्मद तुगलक सानाजमें सर्वत्र विप्लव एव विद्रोह हो रहे थे जकरखाने दोलताबादपर कब्जा कर लिया। वह अपने-आपको ईरानमें बहमनशाह-अरन्दो-र-गजस्तका वंशज कहता था अतः अलाउद्दीन बहमनशाहके नामसे दक्षिणापथका स्वतंत्र सुलतान बन बैठा। उसने ही बहमनी-राज्य और यशकी स्थापना की और गुन्धग (गुन्धग) को बहमनाबाद नामसे अपनी राजधानी बनाया। १३८७-१३५८ ई० तक उसने राज्य किया।

दक्षिणमें १३३६ ई० में मगमके पुत्रा-द्वारा विजयनगरके हिन्दू-राज्यकी स्थापना बहमनी राज्यको स्थापनामें प्रधान प्रेरक थी। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिममें प्रदेश विजय करके उसने अपना पर्याप्त राज्यविस्तार कर लिया। अथ सुलतानोंकी भाँति बहमनी-सुलतान भी कट्टर मुसलमान थे, हिन्दुओं और उनके धर्मके विद्वेषी दानु थे तथा निर्दयी एवं रक्तपिषामु थे। उनके प्रधान राजनैतिक दानु विजयनगरके हिन्दू सम्राट् थे, जिनके साथ प्रारम्भसे अन्त तक उनके निरन्तर युद्ध चलते रहे। उत्तर और पश्चिममें मालवा एव गुजरातके सुलतानोंके साथ उनके राजनैतिक सम्बन्ध कभी मित्र रूपमें और कभी दानु रूपमें चलते रहे।

उसका उत्तराधिकारी मुहम्मदशाह प्रथम (१३५८-१३७३ ई०) अत्यन्त नृशत्रु हत्यारा था, नरसंहार करनेमें उसे आनन्द आता था। विजयनगरके साथ उसके भीषण युद्ध निरन्तर चले जिनमें लाखों व्यक्ति मारे गये। इस नरपशु सुलतानको पाँच लाख हिन्दुओंकी हत्याका श्रेय दिया जाता है, देशका जनसंख्या अत्यधिक कम हो गयी अन्ततः दाना पक्षोंन यह निर्णय किया कि युद्ध-वन्दियों एवं युद्धमें भाग न लेनेवालोंकी हत्या न की जायेगी। राज्यका सुयोग्य मन्त्री सैफुद्दीन गोरी प्रथम सुलतान-के समयस हा चला आ रहा था और छठे सुलतानके समय तक उसी पदपर चलता रहा। उसके कारण आन्तरिक शासन बहुत कुछ सुव्यवस्थित रहा।

१९०१ ई. से १९१७ ई. के बीच २४ वर्षों में चौब मुफ्तान बहोत बढ़े। इस समय में विजयनगरका महाराष्ट्र इतिहास प्रतीय का यह चौबालिखित का अन्त. दोनों राज्यों के बीच प्रायः शांति रही। महाराष्ट्र मुसलमान प्रीति (१९१७-१९२२ ई.) का चौब मुसलमानका इस समय ही एक बनीया का। इनके राज्य के राज्य में ही महाराष्ट्र में १२ वर्षों का चौब अन्त का। यह मुफ्तान चौब बहा दुर्लभ एवं हिन्दु-धर्म का। यह विजयनगर के नाम गिम्हारा मुक्त करता रहा। एक बार तो यह चौब नाम तक विजयनगरका पेटा करने बड़ा रहा और मुक्त बनीं कि विष्ट मरने के बाद बरने में चौब लम्ब हुआ। इनने ही हिन्दु-मन्त्रालय में चौब विष्ट मिया का विष्ट में एक विजयनगर की राजमुद्रा की बनी बनी है। यह ईसाइयों की शांति का चौब करने बनी का, धर्मका बहा विजयनगर का, बनीका चौब काटी बनी का। इनके इतर में विविध देशों की लीक में विष्टा चौब और बनी है कि यह इन कने बनीं का शांति में कांति का कर लका का। दुर्लभ की मरने के एवं अन्य बन्तुओं का यह चौब और बनी के इतर में कांति करता का। चौब के किनारे इतिहासका कर इनने बनीका और बनी एक मुक्त और बहा बनका। दुर्लभ में बनी लीक मुक्त बन बनने विष्ट काकाका विष्ट दर्शनीय है और बन्तु कांति में किन्ती लीक में बनी का बनी काटी है। इनके समय में काका-राज्य करने बनीकाका का। विजयनगर के काका बनी कांति मुक्त (१७२ ई.) में यह मुक्त कांति कांति हुआ विष्ट के बरने का चौब ही कर बनी।

कानून दल कुछ मुकदमोंकी वकालत खाई अदालतोंमें (१८९१-९५ ई) के अधिन-द्वारा कानून करके बार कायम का और यह सर्व मुकदमा बन गया । हिन्दु-मिशनरी यह जानने पूर्वकीति थी जाने यह क्या । श्रीटीलकी परामर्शका वरदान देनेके लिये वकालत विवशकर राज्यपर भीषण आक्रमण किया और विवशता दायरे की वकाली कुछो दिने बैठा करीब

लाताकी सभ्यामें बध किया, खेती उजाड़ी, जनताकी लूटा और इस सम्बन्धमें पिछली सन्धियोंकी भी अवहेलना की। उसने १४२४-२५ ई० वारंगलके हिन्दू राजघरा भी अत कर दिया। इसके राजघराके प्रारम्भ-में भी नय कर अकाल पड़ा। गुजरात और मालवाक सुल्ताना तथा बौदणके हिन्दू राजाओंके साथ भी उमने युद्ध किये। तदनन्तर गुजरातके साथ मैत्री-सन्धि कर ली। उमने राजधानी कुलबर्गका त्याग करके बीदरका स्थानान्तरित कर दो। यह नगर अधिक स्वास्थ्यप्रद था और इस उमने सुदूर बनानेका भी प्रयत्न किया।

उसका पुत्र अलाउद्दीन द्वितीय (१४३५-५७ ई०) ने विजयनगरक साथ फिर युद्ध छेद दिया किन्तु दोनों राज्योंमें अतत सन्धि हो गयी। सुल्तान मद्यपान और विषयभोगमें फँस गया। दरबारमें दक्षिणी अमीरों, जो अधिकांशत सुन्नी थे, और विदेशी अमीरों, जो अधिकांशत शिया थे, के बीच बड़ा संघर्ष और कलह चलन लगी। दक्षिणी दलने हजारा विदेशी मैसरी और मुगलोंका विषयभोगानपूर्वक बध कर डाला जिनमें अहमदशाहका सहायक और मंत्री खलजहमन भी मारा गया।

अलाउद्दीनका पुत्र हुमायूँ (१४५७-६१ ई०) भारी हत्याका था और अपने सम्मुख जुल्माके कारण यह आलम कहलाता था, स्त्री-पुरुष आवाज वृद्ध सभीको जिसपर तनिक भी विद्रोहका सन्देह होता वह भीषण यात्रणा देकर मरवा डालता। अतत उसके सेवकोंने इस मशपायी नर-पशु-का बध कर दिया जिससे सारी प्रजाने आनन्द मनाया। किन्तु उसका मंत्री तवाजा महमूदगवाँ अन्यन्त योग्य व्यक्ति था और उसके उत्तराधिकारियोंके समयमें भी कुशलतापूर्वक शासन-मंचालन करता रहा।

हुमायूँका उत्तराधिकारी छोटे समय ही राज्य कर पाया, तदनन्तर मुहम्मदशाह तृतीय (१४६३-८२ ई०) सुल्तान हुआ और उसका सफलता एवं उन्नतिका प्रधान कारण उसका राजनीतिनिपुण, कुशल सेनानी, सुयोग्य शासक एवं विचक्षण मंत्री महमूदगवाँ था। १४७३ ई० में उसने बेलगाँव-

का मुमुक्षु वर्ग नियत किया जोआवर अधिकार किया। अरुण वर्ग पहले-
 वाले लक्षण सम्मिलित। आगवा किया १४८१ ई. में सौदाम्नीर
 आक्रमण किया। यहाँ मुसलमानों ने आगवा प्रमुख हिन्दू-मन्त्र
 और उच्चरी प्रतिष्ठो तीस तथा ब्रह्मण मुसलमानों का करके यह गरी
 बना। अतन्तर इनमें अधिक मुसलमानों कापीर आक्रमण किया
 और बड़ी ब्रह्मण प्रतिष्ठो तीस मूय मुसलमानों और राजपूतों का कर
 किया तथा करको बहुत कुछ नियत किया। यह मुसलमान वर्ग का
 पगारी का अधिकारी इनमें ब्रह्मण काके मुसलमानों, जो ईरानी का,
 मराठी मुसलमानों कोबाजिदा इनमें अधिकार बना दिया। कर्नाली इत्य
 करमानके बाद मुसलमान बहुत बलात्ता और मराठों के कारण ही कर्ना
 में गया। यह मुसलमानों के छोड़े ही अतन्तर का पगार आगवा ही गया।
 मुसलमानों के इत्यकवर्षों का मुसलमानों (१४८२-१५१८ ई.) में
 नागवानके लिए ही पगार किया। यह कर्नाली और विजय का, विज-
 यत और विजय ही गया।

धर्म-धर्म पगारके विभिन्न धर्म अतन्तर हो गये और यह धर्म-मुसलमान
 का अधिकार गगनगरी औरके आगवा-गगन गगनके अतन्तर ही यह गया।
 अरुण भी बहुत गगनगरी एक गगनगरी गगन गगन गगन गगन
 इनमें का। अरुण का अरुण गगन गगन गगन गगन गगन गगन
 मुसलमान गगनगरी मुसलमानों का एक-एक करके अरुण का मुसलमान गगन
 ईरानों और अतन्तर १५२९ ई. में गगनगरी गगन गगन गगन
 यह अरुण अतन्तर मुसलमान का ईरान। गगनगरी का गगनगरी गगन
 गगनगरी, गगनगरी, गगनगरी गगनगरी और गगनगरी गगन
 के विभिन्न यह एक गगनगरी गगन गगन गगन गगन गगन
 गगनगरी गगन गगन गगन गगन गगन गगन गगन गगन गगन
 गगनगरी, गगनगरी और गगन गगनगरी गगनगरी गगनगरी गगनगरी
 ईरानों गगनगरी गगनगरी गगन गगन गगन गगन गगन गगन

दुर्ग, ममजिदें, महल आदि उन्होंने अवश्य बनवाये, मुमलमानी विद्याको भी प्रोत्साहन दिया तथापि शान्तिपूर्ण सांस्कृतिक कार्योंके लिए नृशस सुलतान उपयुक्त ही न थे ।

वहमनी-साम्राज्य विखरकर जिन विभिन्न स्वतन्त्र मुमलमानी राज्योंमें परिवर्तित हुआ उनमें सर्वप्रथम वरारकी इमादशाही (१४८४-१५७४ ई०) थी । वरार (प्राचीन विदर्भ) वहमनी-साम्राज्यका घुर उत्तरी सूबा था । १४८४ या १४९० ई० में फ़तहुल्ला इमादुल्मुल्कने, जो पहले हिन्दू था, अपनी स्वतन्त्रता घोषित की । उसके वशमें चार सुलतान हुए और १५७४ ई० में इस राज्यका अन्त होकर यह अहमदनगर राज्यमें ही मिल गया जिसने इस सूबेको १५९६ ई० में अकबरके पुत्र मुरादको दे दिया ।

बीदरकी बरीदशाही (१५२६-१६०९ ई०)—अन्तिम वहमनी-सुलतान महमूदका मन्त्री कासिम बरीद १४९२ ई० से ही सर्वेसर्वा हो गया था, १५२६ ई० में उसके पुत्र अमीर बरीदने वहमनी राज्य और वशका नामके लिए भी अन्त कर दिया और अपने-आपको ही सुलतान घोषित कर दिया । १६०९ ई० के लगभग इस वशका अन्त करके उसके राज्यको बीजापुरने अपनेमें मिला दिया । बीदरमें अमीर बरीदकी दरगाह तथा एकाध अथ इमारतोंको छोड़कर इस छोटी-सी सल्तनतके सम्बन्धमें कुछ उल्लेखनीय नहीं है ।

गोलकुण्डाकी कुतुबशाही (१५१८-१६८७ ई०) वारंगलके प्राचीन ककातीय राज्यके प्रदेशपर स्थापित हुई । मन्त्री महमूदगवाँ-द्वारा नियुक्त इस प्रदेशका सूबेदार एक तुर्की सरदार सुलतान कुली-कुतुबशाह इस वश और राज्यका संस्थापक था । १५१८ ई०में वह स्वतन्त्र हो गया और ९० वर्षकी आयुमें अपने पुत्र जमशेद (१५४३-५० ई०) द्वारा मार डाला गया । जमशेदका भाई इब्राहीम (१५५०-८० ई०) इस वशका सर्वमहान् शासक था । गोलकुण्डाके सुलतान विजयनगर, बीजापुर और अहमदनगरके

पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

संघर्ष एवं युद्धोंनि प्रायः चलन ही रहते थे किन्तु १५९९ ई के विद्रो-
नगर बिरोधी संघर्षें इराहीम भी सम्मिलित था । इसका प्रत्यक्ष प्रभाव
रहा किन्तु बीर क्रियेय अन्त्याचार नहीं हुआ वरन् वे राज्य-क्षेत्रों की
वर्द्धनक्षेत्रों विवृणन होने के और कभी-कभी होने पर भी प्रत्यक्ष कर केने थे ।
उनका पुत्र मुहम्मद तुगी (१५८०-१५९९ ई) के कपालत इन राज्य-
को व्यवस्थित होने कभी और यह मुक्तता प्राप्तोनी प्रायः कभी-काल ही
प्राप्ता रहा । १५८० ई में औरंगजेबने कलवा क्षेत्रों का प्रत्यक्ष कर दिया ।
अबम मुगलशासने ही पारंप्रकता प्राप्त करके मोहमुगलानी राज्यक्षेत्रों
बनाया था मुक्तता प्राप्त इराहीमके समयमें इन नगरों की बहुत व्यवस्था हुई ।
मुगलशाही मुक्तताप्राप्त मुगल नगरों की अन्त्याचार और मुगल क्षेत्रों के
लिए तथा कभी-कभी हीराक्षेत्रों के लिए मोहमुगलानी प्रत्यक्ष है । यद्यपि यद्यपि
विद्रोही बाग-विद्रोहोंके अनुसार इत नगरों का प्रत्यक्ष नहीं मुगल
क्षेत्रक्षेत्रों की है । १५८९ ई में कलवा अन्त्याचार होनेके कारण
नगरक्षेत्र (ईराक्षेत्र) की राज्यक्षेत्रों प्राप्तता प्राप्त की अन्त्याचारों के अन्त्याचार
के विद्रोह नगरों की प्रत्यक्ष राज्यक्षेत्रों प्राप्त

[illegible]

राज्योंके साथ बराबर लड़ता रहा और १५५० ई० में उसने विजय-नगरके साथ सन्धि करके बीजापुरके विरुद्ध उसका साथ दिया। उसके उत्तराधिकारी हुसैनशाहने १४६५ ई० में विजयनगर विरोधी मघमें सक्रिय भाग लिया और उस महानगरीकी लूट तथा हिन्दू-राज्यके प्रदेशों-में अपना हिस्सा प्राप्त किया। १५७४ ई० में उसने बरार राज्यको विजय करके अपने राज्यमें मिला लिया। तदुपरान्त निजामशाहीकी अवनति होने लगी। सम्राट् अकबरके पुत्र मुरादके आक्रमणोंमें अहमदनगरकी राजकुमारी और तत्कालीन बालक सुलतानकी बुआ चाँदबीबीने, जा कि बीजापुरके सुलतानके साथ विवाही थी, अहमदनगर आकर अपने भतीजे-के राज्यकी धारतापूर्वक रक्षा की थी। अन्ततः १५९६ ई० में बरारका सूबा लेकर तथा चाँदसुलतानके साथ सन्धि करके मुराद लौट गया। १६०० ई० में मुग़लोंने फिर आक्रमण किया और इस बार चाँद सुलताना युद्धमें मारी गयी। किन्तु पूरे राज्यपर मुग़लोंका फिर भी अधिकार नहीं हुआ। १६३७ ई० में शाहजहाँने इन राज्यका सर्वथा अन्त किया।

बीजापुरकी आदिलशाही (१४८९-१६८६ ई०) इन समस्त सल्तनतोंमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका मस्थापक बीजापुरका बहमनो सूबेदार यूसुफ आदिलखाँ था जो १४८९ ई० में स्वतन्त्र हुआ और यूसुफ आदिलशाह (१४९०-१५१० ई०) के नामसे बीजापुरका प्रथम सुलतान हुआ। वह शिया मुसलमान था और १५०२ ई० में उसने इसी धर्मको अपना राजधर्म बनाया। विजयनगर तथा दक्षिणको उपरोक्त मुसल-मानी सल्तनतोंके साथ उसके निरन्तर युद्ध चलते रहे। सुन्नी होनेके कारण उन्होंने उसका और भी विरोध किया। गोआको उसने अपना प्रिय आवास बना रखा था, जिसके लिए पुर्तगालियोंके साथ इसके युद्ध हुए, अन्ततः उन्होंने १५१० ई० में उस नगरको अधिकृत कर लिया और वहाँके मुसलमानोंका बुरी तरह संहार किया। इस सुलतानने मराठा

नारायण कुलनरपात्रोकी बहिनके साथ विच्छेद किया तथा बचप्यी और अन्य हिन्दुओंकी छात्राई कल्प करीर भी नियुक्त किया । इनके छात्राई लोकस्वभावसे बचप्यी भाषाका ही प्रयोग होता था । यह कल्प-स्वभावका छात्र बुद्धिमान्, आशी कुलर, सुविचिन्त, विचारार्थिक और निरुप-समीक्ष्य था साथ ही बचप्यी और बहिन भी था । बीजापुरके दुर्गम होने कुल-विशेष कथ्यता था ।

कलका कुल इसाख्यका (१५१०-१४ ई) को बचप्यी छात्राई बचप्यी था इनके विचारो बचप्यी ही सुवीर्य था । सुकलान बचप्यीके बचप्यी यह बचप्यी था कल- बचप्यीके बचप्यी और कलकी कलकाछात्राई स्वयं राज-कुलकाय करवा बादा निम्न और सुकल बचप्यी और यह बचप्यी बचप्यी । कलकाय भी बचप्यी छात्राईके साथ बचप्यी लकटा छात्र और विद्यमानसे राजकुल-का बीजाय और केनेने लकल हुआ । ईछात्रके छात्राई बचप्यी बचप्यीके लकल राजकुल केने निश्चय बचप्यी बचप्यीके साथ इसाख्य किया ।

कलका कुल कलकु आरीय और सुकलकायी था बचप्यी सुकल बचप्यी बचप्यी ही केने कलका बचप्यी बचप्यी कर दिया बचप्यी और कलका अन्य बचप्यी इसाख्य आरिषकाय बचप्यी (१५१५-१७ ई) सुकलान हुआ । इनके सुकली बचप्यी और बचप्यीके लकल सुकली छरकायीका बचप्यी किया बचप्यी बचप्यीके ईछात्राई आरिष विच्छेदी छरकायेने विद्यमानसे छात्राईकी बीजाय कर की । १५१५-१६ ई में सुकलान विद्यमानसे सुकल बचप्यीके निश्चय-बचप्यी बचप्यी बचप्यी और बचप्यीका बचप्यी बचप्यी बचप्यी । कलका कलकी बचप्यी बचप्यी बचप्यी का कलकाय सुकलीके विद्यमानसे विच्छेद गयी सुकल-कल सुकलकाय लकल बचप्यी हुआ था । बचप्यी बचप्यीकाय सुकलीके बचप्यीके बचप्यी बचप्यी बचप्यी बचप्यी सुकलान बचप्यी और बीजायके साथ बचप्यी बचप्यीके कल ही बचप्यी और सुकली बीजाय बचप्यी ।

कलका कुल बचप्यी आरिषकाय (१५१७-८ ई) बचप्यी किया था और बुद्धिर्मान् विच्छेदी था । १५१८ ई में छात्राईके साथ बचप्यी

करके उसको सहायतामें उसने अहमदनगरपर आक्रमण किया और वहाँ निर्दयताके साथ लूट मार की। इस अवसरपर रामराजाने मुसलमानोंपर जो अन्याचार किये और उनके प्रति जैसी घृणा प्रदर्शित की उससे मभी सुलतान आपसी सगठानों को बुलाकर उसका अन्त करनेपर कटिबद्ध हो गये। इसी उद्देश्यसे आपसी सम्बन्धोंका और अधिक पुष्ट करनेके लिए उसने अहमदनगरके हुसैन निजामशाहकी बहिन चाँदबीबीसे साथ अपना और उसकी पुत्रीके साथ अपन पुत्रका विवाह कर लिया।

१५६४ ई० के दिसम्बर मासमें बीजापुर, अहमदनगर, बीदर और गोलकुण्डाके सुलतान अपनी-अपनी सेनाओं-सहित तालिकोटामें एकत्रित हुए और १५६५ ई० के प्रारम्भमें मंगलवार २३ जनवरीके दिन तालिकोटासे २५ मील दूर उनका विजयनगरकी सेनाके साथ भीषण युद्ध हुआ। वृद्ध रामराजा और उसके धीरे मैदान अत्यन्त वीरताके साथ लड़े और उन्होंने मुसलमानोंके पैर उखाड़ दिये। किन्तु विजयनगरके दुर्भाग्यसे कुछ हाथा भटक गये, गठबन्धमें रामराजा बन्दी हुआ और तुरन्त उसका सिर काट दिया गया, हिन्दुओंमें भगदड़ मच गयी, मुसलमानोंने बड़ी निर्दयताके साथ हिन्दुओंका सहार किया और लूट-मार करते हुए विजयनगरपर चढ़ दौड़े तथा कई सप्ताह पर्यन्त उस महानगरीका ऐसा भयंकर विध्वंस किया जिसका अन्य उदाहरण नहीं। सभी मुसलमान सुलतान घनी बन गये और विशेषकर अली आदिलशाह अपार धन लेकर बीजापुर लौटा। १५७० ई० में सुलतानने अहमदनगरके साथ मिलकर पुतगालियोंकी दस्तियोंपर अधिकार करनेका विफल प्रयत्न किया। १५७९ ई० में एक खोजके हाथों अली-आदिलशाहकी मृत्यु हुई।

उसका पुत्र इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (१५८०-१६२६ ई०) राज्य प्राप्त करनेके समय बालक ही था और १५८४ ई० तक उसकी माँ चाँदबीबी ही सब राज्यकार्य करती रही। तदुपरांत वह अपने मायके अहमदनगर चली गयी और उस राज्यकी रक्षामें ही उसका अन्त हुआ।

१५९५ ई में बीकानूर और जयपुरनगरके बीच बंठित हुए हुए। जयपुरनगर बीकानूर ही बनेका प्रमाणोंकी राज्य यह था और मुगल नज़ार ही बंठके प्रमाण कहेंगे। यह मुगलान बहुत योग्य कालक का वास्तविकस्थिति भी था जर्जर वास्तुन और मरुके इनके राज्यने राज्य बर्बर निकुल से बंठने बुद्धिवा प्रत्यक्ष प्रमाणोंका निशान और पुनर्वास्तविकता भी जैसी सम्मान रखी। विचारकोंकी भी कहने प्रमाण दिया। इनके समयमें बीकानूर-राज्य सर्वाधिक विस्तृत था और बंठके बाद बाली हजार मैदा और बरान्जुय राजकीय था। बंठने कई मुगल इबारतों भी बनवायीं।

उन्हीं पुत्र मुहम्मद बरिक्कहा (१९५५-१९५६ ई) के १९५६ ई में साहूज्जादी की असीमता स्वीकार कर ली । उन्हींके बल्लभों कीर सिवाजीके संतुषर्षों पराक्रम-कवित्व का वरस हुआ वो बीरानुरागे बल्लभों प्रभाव कारण बनी । उन्हींके पुत्र बकी बरिक्कहा (१९५६-५७ ई) के नाम सिवाजीके बनेक पुत्र हुए । अन्ततः सिवाजीके सम्पत्ति पराक्रम-पुष्पको स्वयम्प तप्य बीरानुरागो स्वीकार करली गयी । बरिक्कहा मुहम्मद बरिक्कहा (१९५७-५८ ई) की औरबनेबने बनी बल्लभ बीरानुर-पुष्पका अन्त कर दिया ।

[illegible]

आन्ध्रप्रदेश प्रशासनिक (१९८८-१९९०)—औद्योगिक
मन्त्रालय के अन्तर्गत आन्ध्रप्रदेश के अन्तर्गत आन्ध्र प्रदेश

मुसलमानों राज्य अपने मुदूह असोर्गद-दुर्गके लिए प्रसिद्ध था जिसे १६०१ ई० में अकबरने विजय करके इस राज्यका अन्त किया। फ़ाम्की सुलतानोंकी राजधानी बुरहानपुर थी। ताप्तीकी घाटीमें स्थित यह छोटा-सा मुसलमानों राज्य भी पड़ोसी राज्योंके साथ युद्धोंमें सलग्न रहा और कुछ काल तक गुजरातके सुलतानोंके अधीन भी रहा।

राजपूत राज्य—उपरोक्त मुसलमानों राज्योंके अतिरिक्त इस कालमें कुछ शक्तिशाली हिंदू राज्य भी थे जिनमें सर्वाधिक शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण दक्षिणका विजयनगर-साम्राज्य था जिसका वर्णन पिछले खण्डमें किया जा चुका है। उसके अतिरिक्त कोङ्कण, कर्णाटक, तुलुव और सुदूर दक्षिणमें कुछ छोटे-छाटे हिंदू और जैन राज्य थे। गोआकी पुर्तगाली शक्ति भी अपने ममुद्री बलके कारण महत्त्वपूर्ण थी। उत्तरापथमें राजस्थानमें कई प्रसिद्ध राज्य थे यथा बीकानेर, जोधपुर, जयपुर (अम्बर), हाहाबूँदी, रणथम्भौर, चित्तौड़ आदि। इन सबमें चित्तौड़ राजधानीस राज्य करनेवाले मेवाड़के गुहिलौत या सीसोदियावशी राणा सबसे अधिक शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण थे। वास्तवमें ये ही सम्पूर्ण राजस्थानके नेता थे और मुसलमान सुलतानोंके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। दिल्लीके तथा गुजरात और मालवाके सुलतानोंके साथ उनके निरन्तर युद्ध होते रहे। महमूद गजनवीके लुटेरे आक्रमणों, मुहम्मद ग़ोरी और उसके सिपहसालारोंके देश विजयके लिए किये गये हमलों तथा गुलामबशके शासकोंके घावोंसे भी अजमेर और रणथम्भौरको छोड़कर प्रायः सम्पूर्ण राजस्थान सुरक्षित रहा।

१०वीं शताब्दीमें मेवाड़का राजा शक्ति कुमार था। उसकी दसवीं पीढ़ीमें विजयसिंह (११०८-१६ ई०) प्रसिद्ध राजा हुआ। इसका पुत्र अरिसिंह था जिसके प्रपौत्र रणसिंह (कर्ण) के पुत्र क्षेमसिंहके वंशज रावल कहलाये और मूल राजधानी नागहद (नादा) से ही राज्य करते रहे। रणसिंहके एक पुत्र राहुपके वंशज राणा कहलाये और वे मिसोदमें

एकछोले छामनोले कर्मने राज्य करते रहे । १२वीं शती ई के उत्तरार्ध-
में सेनापति के पुत्र राजा राजमहिषने समकक्षता मुन्नीराजके छोटी
बिरोधी बंधने एवं लड़ाईकी बुझोने काय किया था । ११९९-१२ ई के
बीरबिन्द (बीरल) एक बहादुर नरेश हुआ । कभीने बिर्तापुर अधिकार
करके बड़े राज्यानी बनाया । १२९ ई के लगभग बल्लभ पुत्र ठेकसिंह
मिर्जापुर राज्य करता था । कतली मुसलमानी बल्लभसेबीबी कीन-बर्नर
मदद करता रही बल्लभी बली ई । इस रातीने बिर्तापुर के बीर ही
स्वाय राजमहायका मुन्नीर मन्दिर बनवाया था और भी बनेक मिन-
बन्धि बनवाये थे । उनके पुत्र बीरसेनही राज्य समरहिने बाबार्न
बकिजमसिंहुरिके हथकेहते अपने राज्यमें बीर-सिंह बन्ध कर भी बी ।
बभार्नबह बल्लभी बीरताके सिद्ध इतिहास-बलिद्ध ई ।

एकछोलेके समकक्षीके विशेष करीबता करीबन मुसकन
मुसलमान बल्लभहीन बल्लभी था बिन्दने १९ ई के उत्तरार्धमें
बीरब बाल्लभ किया किन्तु राजमुन्नीकी बीरताके कारण वह बार भी
विजय होकर छोटता गया । उसके कई बन्धने और अधिक बीरब बाल्लभ
किया और कई माह एक बेघर बने रहनेके उत्तराध बल्लभ राजा एक
बीर-राज था बरे लव बह दुर्नर अधिकार कर गया । इस बल्लभ एक-
बल्लभका स्त्री मुन्नीराज बीरलका बन्धन बीर बिरोधने राजा हुम्मीर
सेन (१२८९-१३९ ई) था भी हुम्मीरमुसलमान, हुम्मीरराज
बाबि कल्लभ बल्लभ नामक ई । मुसक बन्धने मुसलमान बल्लभका बह बल्ल
था । उत्तरार्धमें राजा भी लल्ल-बल्ल ही बल्लने बीरबलि बल्ल भी ।
उत्तरार्ध बल्लभीने बिर्तापुर बाल्लभ किया । बल्ल बल्ल राज्य बीरबलि-
का बल्लभ था । बल्ल बल्ल ई कि बल्लभी बल्लभी बलिभीके बल्ल बल्ल-
बल्लभीके बल्लभी मुसलमानभी बिर्तापुरकी बीर बल्लभ किया था । एकछोली-
की बीरताके कारण कई बार बल्लके बल्ल विजय हुए, बल्ल १९ ९ ई
में बल्लभीके बलिभी लल्लो सिरोके काय दुर्नके बल्ल-मुसलमान किया में बल्ल

गया बार बार राजपूत कसारया घाना पहन लड़ते लड़ते जूस मरे ।
 भयकर जोहरमें चित्तौड़के समस्त स्त्री-पुरुषोंका अन्न ही जानेपर ही
 लमान किलेपर अधिकार कर मके । चित्तौड़पर कुछ वर्ष तक अलाउद्दीन-
 पुत्र खिजरखाँ मूवेदार रहा और उसपर मुसलमानोंका अधिकार रहा ।
 नन्तर राजपूतोंने उन्हें निकाल बाहर किया । १३२५ ई० के लगभग
 सोदिया शाखाके राणा हम्मीरके समयसे चित्तौड़ राज्यका उत्कर्ष वेगके
 से हुआ । और फिर कई घताब्दियों तक मुसलमानोंको उसकी ओर
 एपात करनेका साहस न हुआ ।

१४वीं शती ई० के उत्तरार्धमें मेवाड़के वषेरवाल जीजी माहजीजाने
 चित्तौड़में प्राचीन चन्द्रप्रभु चैत्यालयके निकट एक सतसना उत्तुग एवं
 यन्त्र कलापूर्ण कीर्तिस्तम्भ (मानस्तम्भ) बनवाया या पुरातन अपूर्ण
 स्तम्भका जीर्णोद्धार कराके उसे पूर्ण किया था । कहा जाता है कि इस
 स्तम्भ से ठीके १०८ प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार, उतने ही नवीन
 मन्दिरोंका निर्माण एवं प्रतिष्ठा करायी थी, अठारह स्थानोंमें अठारह
 साल श्रुत भण्डार स्थापित किये थे और सवालाम्ब घन्टियोंको मुक्त
 राया था । उसके गुरु दिगम्बराचार्य सोमसेन भट्टारक थे ।

१५वीं शतीके प्रारम्भमें राणा लाखाके समयसे मेवाड़-राज्यकी शक्ति
 और अधिक बढ़ने लगी । रामदेव नामक जैन भी इनका एक मन्त्री था,
 लाखाका उत्तराधिकारी राणा मोवल भी योग्य शासक था । तदनन्तर
 हाराणा कुम्भ दिल्ली, मालवा और गुजरातके मुसलमान सुलतानोंका
 बल प्रतिद्वन्द्वी हुआ । मालवाके सुलतानपर विजय पानेके उपलक्ष्यमें इस
 णाने चित्तौड़में एक नौ-मजिला उत्तुग कीर्तिस्तम्भ या जयस्तम्भ
 बनवाया था । इसीके आश्रयमें उसके एक ओसवाल महाजन गुणराजने
 ४३८ ई० में जैन-कीर्तिस्तम्भके निकट स्थित महावीर स्वामीके प्राचीन
 मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया था । स्वयं महाराणा कुम्भने मचींद दुर्गमें
 एक सुन्दर चैत्यालय बनवाया था । महाराणा कुम्भके प्रतापके आगे

बड़ेकी मुन्नाल घर-घर बसते थे। १४४६ ई में उनके चेहरे
 (पोशाक) बना देने, जो बाद केहुता पुत्र या रामचन्द्रके भिन्न
 ही एक छोटा-सा कमलूष शिव-मन्दिर बनवाया था। धार्मिकाने सब
 मन्दिरको सुधार-नैदरी करते हैं। इनकी प्रतिष्ठा चारखण्डके बाध्या
 जिनकेमूर्ति की थी। मुम्बई कातराधिकारी राजा रावराज गृहीत
 और मिन्दर लोदीका इनिङ्गनी था। बड़ोली मुत्तमानके समय इनके
 को कनेक गुट हुए। इनके समयमें बितीह दुर्गे चौकुटीयके सिद्ध
 १४८५ ई में एक दीक्षामन्दिरका निर्माण हुआ था जिसमें सीधके
 कथित देखने लाकर जिन-मूर्ति स्थापित की गयी थी।

[illegible]

उसके राज्यको स्पर्श करनेका उसे फिर भी साहस न हुआ। इस युद्धके परिणामसे राणाको बड़ा सदमा पहुँचा और १५२९ ई० में उस वीरकी मृत्यु हो गयी। इस महाराणा सागाके राज्यकालमें ही दिल्लीके मूलसघी पट्टाचार्य जिनचन्द्रसूरिके शिष्य अभिनवप्रभाचन्द्र (१५१४-१५२४ ई०) ने चित्तौड़में स्वतन्त्र पट्ट स्थापित किया था। मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र (१५२४-१५४६ ई०) उनके उत्तराधिकारी थे। इनके प्रशिष्यके समय चित्तौड़का पतन होनेपर यह पट्ट आमेरको स्थानान्तरित हो गया था। चित्तौड़के इस पट्टके आश्रयमें अनेक ग्रंथोंकी रचना हुई। आचार्य नेमिचन्द्रन गोमट्टसारकी संस्कृत टीका १५१५ ई० में चित्तौड़में ही जिनदास-शाहके पार्श्वजिनालयमें की थी। लाला वर्णोंकी प्रेरणापर नेमिचन्द्र दक्षिणसे यहाँ आये थे। राणाने जैनाचार्य धर्मरत्नसूरिका भी ज्ञापी, घोड़े, सेना और याजे-गाजेक साथ स्वागत-सत्कार किया था तथा उनके उपदेशसे प्रभावित होकर शिकार आदिका त्याग कर दिया था, ऐसा कहा जाता है। इन जैनाचार्यका ब्राह्मण विद्वान् पुरुषोत्तमके साथ सात दिन तक राजसभामें शास्त्रार्थ भी हुआ था। राणा सांगाके पुत्र भोजराजकी पत्नी ही कृष्ण भगवान्की परम भक्त सुप्रसिद्ध मोराबाई थीं जिनके कारण राजस्थानमें कृष्ण-भक्तिकी अपूर्व लहर दौड़ गयी थी।

सांगाके उपरान्त उसका पुत्र रत्नसिंह राणा हुआ। उसके समयमें उसके मन्त्री कर्माशाहने १५३० ई० में शत्रुजय तीर्थका जीर्णोद्धार कराया और इस कायमें गुजरातके सुलतान बहादुरशाहने भी उसकी सहायता की थी। कर्माशाहके लिए तत्कालीन शिलालेखोंमें लिखा है कि वह 'श्रीरत्नसिंहराज्ये राज्यव्यापार-भारघोरिये' था। इसका पिता तोलाशाह राणा सागाका मित्र और मन्त्री था। राणा रत्नसिंहकी मृत्युके कुछ ही समय पश्चात् १५३४ ई० में गुजरातके बहादुरशाहने चित्तौड़पर भीषण आक्रमण किया। इस विपत्तिमें राणा सांगाकी विधवा महारानी कर्णवतीने मुगल-बादशाह हुमायूँक पास राखी भेजकर सहायता माँगी। हुमायूँ उस

बढ़ती मुज्जाल बार-बार बसती थे। १४८८ ई में उसके ब्रह्मरी (गोपायक) केनालने, जो तब केन्द्रका पुत्र या पञ्चमके लिये ही एक ब्रह्म-राज कर्माधुर्बे शिव-शक्तिर बनवाता था। पार्थिवराजके लव शक्तिरको गृहभार-बैवरी बसती है। इसकी प्रसिद्धा ब्रह्मराजके कारण किर्तिमयुक्ति की थी। कुम्भरा ब्रह्मराजकी रात्र पञ्चमक शक्तिर और शक्तिर सोतीका प्रसिद्धा थी। बढ़ती मुज्जालोंके साथ इसके भी कनेक मुद्र हुए। इसके समयमें विद्योक्त मुद्रके शक्तिरकी लिये १४८६ ई में एक शिव-शक्तिरका निर्माण हुआ था जिसमें शक्तिरके शक्तिरके लिये लालर शिव-शक्तिर लालर की लाली थी।

[illegible]

श्वेताम्बर जैन साधुओंका सम्पूर्ण राजस्थानमें चमुक्त विहार था। अनेक स्थानोंमें उनके तीर्थ, सांस्कृतिक केन्द्र और भट्टारकीय गहियाँ थी। राज्य-वंशों एवं सामन्तवर्गोंके अनेक स्त्री-पुरुष और कभी-कभी कोई-भीई नरेश भी जैनधर्मके अनुयायी या भक्त होते रहे। उस कालमें वहाँ जैनोकी सस्या अवकी अपेक्षा कमसे कम दुगुनी थी, और क्योंकि उस कालमें जैनी प्रायः क्षत्रिय और वैश्य जातियो एव मध्यम वर्गमें से ही थे, अतएव उस वर्गमें आवेसे अधिक उन्हीकी सस्या थी और इन जैनोंने मेवाड तथा अन्य राजपूत राज्योंके सरक्षण, उन्नति, शासन-प्रवर्ध, धर्म, साहित्य एव कलाके क्षेत्रमें और सांस्कृतिक विकासमें स्तुत्य योगदान दिया। स्वयं मेवाड राज्यमें ही जय-जय किलेकी नींव रखी जाती तब-ही-तब राज्यकी ओरसे एक नवीन जैनमन्दिर बनवाये जानेकी रीति थी। राज्य-भरमें राजाशासे रात्रि-भोजनका निषेध था। कोई भी जैनसाधु राजधानीमें पधारता तो महारानियाँ उस राजमहलमें आदर-भूषक आमन्त्रित करके उसके आहार आदिका प्रवर्ध करती थीं। राज-सभाओंमें जैनसाधुओंके भाषण और शास्त्रार्थ होते और उनका सम्मान किया जाता था। उनके तीर्थोंका सरक्षण राज्यकी ओरसे होता था। प्रायः यही व्यवहार अन्य राजपूत राज्योंका भी था। इसी कालमें सन् १४९१ ई० में राजस्थानके एक धनकुवेर साहू जीवराज पापहीवालने दिल्लीके भट्टारक जिनचन्द्रके उपदेशसे धातु और पापाणकी असह्य जिन-मूर्तियोंका निर्माण और प्रतिष्ठा करायी थी और भारतके विभिन्न भागोंमें बहुसंख्यामें इन मूर्तियोंको भेजा था। आज भी उत्तर और मध्यभारतके अनगिनत स्थानोंमें इन मूर्तियोंमेंसे अनेक पायी जाती हैं।

राजपूतानके अतिरिक्त खालियरमें तोमरवंशी राजपूतोंका राज्य भी इस कालका शक्तिशाली राज्य था। खालियर (गोपाचल या गोपगिरि) का प्रसिद्ध सुदृढ़ दुर्ग कमसे कम गुप्तकाल-जितना प्राचीन है। गुर्जर प्रतिहारोंके बाद चन्देलोंका और कच्छपघट राजपूतोंका इस प्रदेश

पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

समय दोरघाड़के विरुद्ध विहारमें भेजा हुआ था, किन्तु वह पवित्र राजाओं
सम्मान रखनेके लिए तुरन्त बिछीड़की राजाके लिए बच गया। फिर
भी विजय हो ही गया। और मझपानीने और उसके और राजपुत्रों
बंदिर करके अपना अन्त किया। केवल तब ही मझपुरवाड़ दुर्गमें बसिष्ठ
कर गया। किन्तु उनकी विजय अन्तर्गत रही। हमानुं वा पुरा और
१५३५ ई. में ही मझपुरवाड़को बुढ़ी तपस्व बसिष्ठ करके अपने पिछो-
विजयकरा गया। तबमन्तर बिछीड़का राजा आनन्द एक बड़ा
पुत्र पिछोवागोत्र हुआ किन्तु राजपुत्र उनकी कन्या हुआ कर ही
और अपने राजा बन बैठा। अपने आनन्दके अर्धविह्वल पुत्र बाहक उनके
विह्वली हुआ करनेका भी प्रयत्न किया किन्तु स्वामिभक्त फलाभाजने
स्वपुत्रकी बलि देकर स्वामीके पुत्रकी राजा की। राजपुत्रको लेकर कई
बड़े ब्राह्मणोंके साथ घर-शान्तिके लिए गये किन्तु अन्तर्गत उनकी कन्याके
पक्षके पिछोने भी राजपुत्रको चरण न की। अन्तमें दुम्नकरके की
निन्दार आनन्दवाड़ देकर और कन्या और अन्तमें राजपुत्रको चरण
ही कर और शान्तिकी परवा न करके बलवत् तैरान किया गया बलवत्
होनेपर कन्याके पिछोके विहारमन्तर बाकील बनाया। आनन्द
कन्याका राजा करवाकर अपने अन्त बनाया। राजा अन्तमें ही
बड़े बलवत् पुत्रकर राजपुत्रका निन्दार विरुद्ध किया था।

दूध-मुक्तकालमें बैरागके उपरोक्त और पाषाणोंके चारदीव स्थलमें-
 चर्चर्चको करीब रहा और वे अपने नेत्रुपमें कमसे कम पाषाणोंके
 ग्राम बनात हिनूपाय-बालिपोंकी स्थापित करके मुक्तकालमें बरबर
 मीठा पेटे रह्ये, और एक प्रकारके काले चर्चर्च जलपाषाणोंपर प्रतिम-
 का कार्य भी करत रह्ये। पाषाणोंका मुक्तकाल हीन या अपने पालमें बना
 राजमुक्तकालके जल पाषाण पाषाणों की हीन और हीनचर्च पर्वोंकी बालक
 की बनी थी। तबाली हीनचर्चके प्रति ग्राम करी पाषाण और जल पाषाण
 गवा बालक-बालक मुक्तकाल काल और रहिये थे। तबाली और

श्वेताम्बर जैन साधुओंका सम्पूर्ण राजस्थानमें उन्मुक्त विहार था। अनेक स्थानोंमें उनके तीर्थ, सांस्कृतिक केन्द्र और भट्टारकीय गढ़ियाँ थीं। राज्य-वशो एव सामन्तवशोंके अनेक स्त्री-पुरुष और कभी-कभी कोई-कोई नरेश भी जैनधर्मके अनुयायी या भक्त होते रहे। उस कालमें वहाँ जैनोकी सख्या अवकी अपेक्षा कमसे कम दुगुनी थी, और क्योंकि उस कालमें जैनी प्रायः क्षत्रिय और वैश्य जातियो एव मध्यम वर्गमें से ही थे, अतएव उस वर्गमें आधेसे अधिक उन्हींकी सख्या थी और इन जैनोंने मेवाड़ तथा अन्य राजपूत राज्योंके सरक्षण, उन्नति, शासन-प्रबन्ध, धर्म, साहित्य एव कलाके क्षेत्रमें और सांस्कृतिक विकासमें स्तुत्य योगदान दिया। स्वयं मेवाड़ राज्यमें ही जब-जब किलेकी नींव रखी जाती तब-ही-तब राज्यकी ओरसे एक नवीन जैनमन्दिर बनवाये जानेकी रीति थी। राज्य-भरमें राजाज्ञासे रात्रि-भोजनका निषेध था। कोई भी जैनसाधु राजधानीमें पधारता तो महारानियाँ उसे राजमहलमें आदर-पूर्वक आमन्त्रित करके उसके आहार आदिका प्रबन्ध करती थीं। राज-सभाओंमें जैनसाधुओंके भाषण और शास्त्रार्थ होते और उनका सम्मान किया जाता था। उनके तीर्थोंका सरक्षण राज्यकी ओरसे होता था। प्रायः यही व्यवहार अन्य राजपूत राज्योंका भी था। इसी कालमें सन् १४९१ ई० में राजस्थानके एक धनकृवेर साहू जोधराज पापड़ीवालने दिल्लीके भट्टारक जिनचन्द्रके उपदेशसे धातु और पाषाणकी असंख्य जिन-मूर्तियोंका निर्माण और प्रतिष्ठा करायी थी और भारतके विभिन्न भागोंमें बहुसंख्यामें इन मूर्तियोंको भेजा था। आज भी उत्तर और मध्यभारतके अनगिनत स्थानोंमें इन मूर्तियोंमेंसे अनेक पायी जाती हैं।

राजपूतानेके अतिरिक्त ग्वालियरमें तोमरवशो राजपूतोंका राज्य भी इस कालका शक्तिशाली राज्य था। ग्वालियर (गापावल या गोपगिरि) का प्रसिद्ध सुदृढ़ दुर्ग कमसे कम गुप्तकाल-जितना प्राचीन है। गुर्जर प्रतिहारोंके बाद चन्देलोंका और कच्छपघट राजपूतोंका इस प्रदेश

गज्जनवीका इन भार-राजाओंने इटावाके निकट मुजके दुर्गसे भीषण विरोध किया था, तदनन्तर असाई दुर्गसे भीषण युद्ध किया, अतत महमूदने उन्हें पराजित किया, दुर्ग और मन्दिरोंको लूटा और विध्वंस किया । उस समय राजपूत मन्त्री-पुरुषोंने जोहर करके अपना अन्त किया था । तदनन्तर फ़तह-पुर, इलाहाबाद, अलीगढ आदि जिलोंमें भारोंने अपने छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये । महमूद गज्जनवीके समयमें मेरठ, हापुड, बुलन्दशहर (वरन) का दौर राजा हरदत्तराय प्रसिद्ध था, उसोंने मेरठका वह सुदृढ़ दुर्ग बनवाया था जिसे सरमेशरीनखा भी नहीं जीत सका था और जिसे सर करनेमें तैमूर लंगको काफ़ा कठिनाई हुई थी । इसी राजाने हापुड नगर भी बसाया था ।

स्वयं असाईखेहामें भारोंका अन्त होनेके बाद उसके निकट चन्दवाड (चन्द्रपाठ) में, जिसे रपरी-चन्दवाड भी कहते थे, चन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रपाल नामक चौहान राजपूतने अपना राज्य स्थापित किया, और चन्दवाड दुर्ग एवं नगरका निर्माण करके उसे अपनी राजधानी बनाया । राजा चन्द्रपाल जैनी था और उसका दीवान रामसिंह हासल भी जैनी था । १३वीं-१५वीं शतियोंमें यह नगर बड़ा सुन्दर समृद्ध और प्रसिद्ध था । इस राज्यमें चन्दवाडके अतिरिक्त ५-६ अथ महत्त्वपूर्ण दुर्ग एवं नगर थे जिनमें रायवट्टीय, रपरी, हथिकन्त, शोरीपुर (वटेश्वर) आगरा आदि प्रमुख थे । अट्टे हथिकन्त, (हस्तिकान्त) और शोरीपुरमें जैन मठार-कोंकी गढ़ियाँ स्थापित थीं जा महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्रोंका कार्य करती थीं । वहाँके मठारकोंने उत्तर मध्यकालमें साहित्यरचनाको भी भारी प्रारम्भ दिया । शोरीपुरकी गढ़ी गत शताब्दी तक विद्यमान थी । अतः चन्दवाड राज्यमें जैनधर्म और जैनोंकी पर्याप्त मान्यता एवं प्रतिष्ठा थी । राजागण प्रायः सब स्वयं जैन थे और प्रधान मन्त्री आदि भी प्रायः जैन ही होते थे । राज्य-संस्थापक चन्द्रपालके उत्तराधिकारी भरतपालका नगरसेठ हल्लण था । उसके उत्तराधिकारी अमयपालका मन्त्री हल्लणका

वका रिउम-कम और नन्दनकरिन इनकी कम रचनाएँ हैं। इनके
 सब काम आधुनिक भाषा में रचे गये हैं। मद्रास में स्वराज्य के दिनों में
 एक बीच-बीच में इन्होंने कठार दिया था। इनके सग मद्रा-
 स में रह चुके इनका जेल में समय २३ २४ जन्मोरी अगस्त में
 गया की थी। १८९८ ई. में रानियर के नगर के नगरपालिका में
 पुनः उनके मद्रास में आकर उन्निर्मित कराती एक-आप रानी के
 कम कम विनय में और २४ दिन-दिन के नगर में थे। इसी समय
 मद्रास की पालिका में रानियर के नगरपालिका के विनय में विनय करती
 और का पालिका के पुन कम-दिन में मद्रास में रानी के विनय में
 विनय विनय कराती और इनकी विनय कराती। यह कोर के विनय
 मद्रास में और इनके विनय मद्रास में की गये जन्मोरी रचना की।
 रानियर में निर्मित के मद्रास की भी एक गरी था। रानियर में
 मद्रास में मद्रास और मद्रास के विनय के विनय में है। मद्रास-
 मद्रास में मद्रास और मद्रास में की एक रानियर के मद्रास में है
 मद्रास में मद्रास की और मद्रास में मद्रास में मद्रास में

मद्रास के मद्रास की और मद्रास में मद्रास में मद्रास में
 मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में
 मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में

मद्रास मद्रास के मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में
 मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में
 मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में
 मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में
 मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में
 मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में मद्रास में

... .. मुजक दुगस भापण वराध
 किया था, तदनन्तर असाई दुर्गसे भीषण युद्ध किया, अतत महमूदने उन्हें पराजित किया, दुग और मन्दिरोंको लूटा और विध्वंस किया। उस समय राजपूत स्त्री-पुरुषोंने जोहर करके अपना अन्त किया था। तदनन्तर कतह-पुर, इलाहाबाद, अलीगढ़ आदि जिलोंमें भारोने अपने छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये। महमूद गजनवीके समयमें मेरठ, हापुड़, बुलन्दशहर (वरन) का दौर राजा हरदत्तराय प्रसिद्ध था, उसोंने मेरठका वह सुदृढ़ दुर्ग बनवाया था जिसे तरमेशरीनखाँ भी नहीं जीत सका था और जिसे मर करनेमें तैमूर लंगको काफ़ा कठिनाई हुई थी। इसी राजाने हापुड़ नगर भी बसाया था।

स्वयं असाईखेहामें भारोफा अन्त होनेके बाद उसके निकट चन्दवाड (चन्द्रपाठ) में, जिस रपरी-चन्दवाड भी कहते थे, चन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रपाल नामक चौहान राजपूतने अपना राज्य स्थापित किया, और चन्द्रवाड दुर्ग एवं नगरका निर्माण करके उसे अपनी राजधानी बनाया। राजा चन्द्रपाल जैनी था और उसका दीवान रामसिंह हासल भी जैनी था। १३वीं-१५वीं शतियोंमें यह नगर बड़ा सुन्दर समृद्ध और प्रसिद्ध था। इस राज्यमें चन्द्रवाडके अतिरिक्त ५-६ अथ महत्त्वपूर्ण दुर्ग एवं नगर थे जिनमें रायबहीय, रपरी, हयिकन्त, शोरीपुर (वटेपवर) आगरा आदि प्रमुख थे। अटेर हयिकन्त, (हस्तिकान्त) और शोरीपुरमें जैन मठारकोंकी गद्दियाँ स्थापित थी जो महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्रोंका काय करती थीं। वहाँके मठारकोंने उत्तर मध्यकालमें साहित्यरचनाको भी भारी प्रोत्साहन दिया। शोरीपुरकी गद्दी गत शताब्दी तक विद्यमान थी। अतः चन्द्रवाड राज्यमें जैनधर्म और जैनोंकी पर्याप्त मान्यता एवं प्रतिष्ठा थी। राजागण प्रायः सब स्वयं जैन थे और प्रधान मन्त्री आदि भी प्रायः जैन ही होते थे। राज्य-संस्थापक चन्द्रपालके उत्तराधिकारी भरतपालका नगरसेठ हल्लण था। उसके उत्तराधिकारी अभयपालका मन्त्री हल्लणका

पुनः समुद्रराज वा : जिसने बलराजसे एक सुन्दर विवाहवाची मित्रता
 कराया था : उसके इतराधिकारियों काट्ट और बीरबलदेवके राज-
 शाहीमें समुद्रराजका पुनः छोटा राज्यकामी था : बलराजके उत्तराधिकारी
 बालदेवसिंह (१२५ ई) के समयमें हीहूय लोह पुनः राजराज कर
 केड वा और छोटा पुनः सुम्पसिंह राजका प्रधान कमी और केनाती
 था : बुकाव सुलतानाके विरुद्ध उसके अनेक लड़कें हुई थीं : कमी
 अनेक मित्र-बन्धियोंके बीबीद्वारा कराया गया कि वह अपने अनेक
 भाइयों समुद्रराजके ही नामक बर्गद्वारा रखा करावी थी : कुछ
 महीना पिछे ही लोह विहालु एवं कलाकर वा और कमी जि
 राजराजके अनेक राजवंश बना था : बलराज राजा कम्पसिंह
 कमी था : बलराज पुनः बीरबल की सुम्पसिंहवा रचिता की वा का
 बरेलका लगी रहा : बीरबलका पुनः बीरबल राजा अनेकल विहालु
 तथा अनेकल और बलराज पुनः बाबावर (११५८ ई) राजा राज-
 कला बना लगी था : इसके बाद पुनः बीरबल के और राजराज
 विहालु थे : कमी पूर्वकी बीरबल नामावर की बड़ा कमी था : अनेक
 मित्र-बन्धियोंके अनेक बीबीद्वारा कराया एक बीरबल सुन्दर विवाह की
 राजराजमें बनाया और बुकावके कमी बलराजके की बीरबल कीरकी
 कलाके अनेकमें बनायाके वा रहा वा अनेक बनाया बाबावर
 विहालु विहालु : जिसके सुम्पसिंह कलाके की बाबावरके केलावर
 नामावरद्वारा रखा था :

बलराजके की सुम्पसिंह के अनेक लड़कें लगीं जिसके सुम्पसिंहके
 विहालु विहालु कर के और कमी बरेलका कमी लगी और अनेक सुम्पसिंह
 अनेक लड़कें ही विहालु करके अनेकल लीलावर कर के : बीरबल
 सुम्पसिंहके लगीके अनेक सुम्पसिंह लगीद्वारा की विहालु कर विहालु
 वा विहालु अनेक राजराजके विहालु कर के रहा था : बीरबल
 सुम्पसिंहकी की बलराजके राजराजके अनेक लड़कें लगीं : अनेक

इब्राहिम लोदीने अपने भाई अलमस्लाँको चन्दवाड़का सूबेदार बनाया किन्तु वह बाबरसे मिल गया। चन्दवाड़के हिन्दू राज्यकी रक्षाके लिए राणा सागा भी आये थे किन्तु हुमायूँके साथ चन्दवाड़के युद्धमें पराजित होकर उनकी सेना लीट गयी। मुगलकालमें इस राज्य और नगरका अन्त हो गया। आगे जिलेके हथिकत नगरमें इन्ही चौहानोंकी एक शाखा भदोरिया राजपूतोंका राज्य था जिसका संस्थापक राजुलरावत (१२वीं शती) था। सोकरीमें मीकरवार राजपूतोंका राज्य था। कटेहर (रहेलखण्ड) में कटेहरिया राजपूत सर्वेभवा थे।

इस प्रकारके और भी कई छोटे-छोटे हिन्दू-राज्य यत्र तत्र उस कालमें रहे प्रतीत होते हैं जिन्हाने दिल्लीके सुलतानोंका नाका दम किये रखा। प्रत्येक सुलतानकी मृत्यु, दुर्बलता या अमावधानीका लाभ उठाकर ये स्वतन्त्रताका क्षण्डा खड़ा कर देते थे।

लगभग ३५० वर्षके इस मुसलमानी शासनकालके प्रारम्भिक डेढ़-सौ वर्ष (लगभग ११९०-१३४० ई०) तक ता इस्लाम और उसके राजनैतिक प्रभुत्वका द्रुत वेगसे प्रसार हुआ यहाँतक कि सम्पूर्ण देशको, अटकमें अटक और हिमालयसे कन्याकुमारी पयन्त उमने आच्छादित कर लिया। ये नवागस्त मुसलमान धर्म विदेशों से, धन और राज्यके लोभ तथा इस्लामके प्रचार और कृष्णके विनाशकी भावनासे उन्मत्त थे। उनके रोमांचकारी अत्याचार और उनकी अमानुषिक क्रूरता भारतवर्षके लिए सद्यथा नवीन वस्तुएँ थीं। घमं एव न्याय युद्धाके आदौ भारतीय धीरे इन नृशंस घमंघ वर्चरोंकी उस पैशाचिकताकी समझ ही न पाये जिसमें आत्म-समर्पण करने-वाले या युद्धमें बन्दी हो जानेवाले योद्धाओंकी भयानक यन्त्रणा दे-देकर अनिवार्यत हत्या कर दी जाती थी, भागते हुए शत्रुओंका पीछा करके उनका संहार कर दिया जाता था, निहत्थी प्रजापर लूट-मार आदि भीषण अत्याचार किये जाते थे, स्त्रियोंकी लाज लूटना और असहाय बच्ची, स्त्रियों एव वृद्धोंका प्राणान्त कर देना एक खेल था, खेतीकी उजाड़ देना,

[illegible]

किन्तु कर्म-कर्म-भारतीयोंमें यह भी देखा कि बुद्धि विवेक और
मैत्रिक बचने उनके ने बाधु बचनी लगेबा होन हूँ । वेद-ही इसके बीच
मिलीयेँ बार बंद परिकल्प हूँ और लगेक बंधके अधिकांश बुद्धिमान
लगेन कालीको-हाथ बन गिने बये । पुण्ड इत्यादि, पद्मकम लगेन बारबंदार,
लवविचार, दुष्टचार, अनाचार कभी कम बुद्धिमानोंमें नर किने हूँ नै ।
भुष्टी, लवति बुद्धिमानोंकी संख्यामें कर्मात्त बुद्धि हो कयी भी किन्तु
कहका मुक्त कारण भी विवेकी बुद्धिमानोंका ज्ञानात् यही वा वरन् लगे
देखने बन्धुत् बर्क-परिकल्प एवं लल-विचारों ही देखा हुआ नै । बुद्धि
मिलेकी मुक्तमानोंका अनुगत हो कीरे-कीरे बन ही देखा नै प्या नै ।
लौकिक, किन्तु और बीच बाधु-बन्धी एवं अनाचारोंमें भारतीय बन्धु एवं
अनधिक भारतीय पदार्थोंके हूँकने बर्क-लेन देह-लेन, संस्कृति-लेन एवं
ललकल्प-लेनकी ही प्रत्यक्ष किने रही । कर्मोंमें मुक्तमान बुद्धिमानों

पूरेदारी और सरदारों को भी अपनी विद्वत्ता एवं पारिवर्तन में प्रभावित
 करके उनको झूठ धर्मापत्ता को हलवा दिया और इस देश को अपना ही
 समझकर एगो सभ्यता और जन माधारणका छात्र बननेकी प्रेरणा दी।
 अलाउद्दीन खलजीके समयमें ही मुल्ता-मोन्वियोंका प्रभाव राज्य-न्याय
 में घटने लगा था। फलस्वरूप भारतीय जीजा फिर बल पकड़ने लगा।
 मुहम्मद तुगलुकके समयमें ही दिल्लीका मुसलमानों का राज्य छिन्न-भिन्न
 होने लगा। वस्तुतः परे इसपर वह कठिनाईसे तास पालीस वर्षों ही रह
 पाया था। अनेक नवीन एवं स्वतंत्र हिन्दू और मुसलमान राज्य स्थापित
 हो गये और पुनः हिन्दूराज्याने भी बल पकड़ा। दक्षिणमें विजयनगर-
 का शक्तिशाली हिन्दू साम्राज्य मुसलमानोंको उम दिनाम प्रगतिशा
 लभग तथा दो सौ-वर्ष पयन्त सफल अवरोधक रहा। उत्तरमें मेवाड़के
 घोर राणाओंके नेतृत्वमें राज्यस्थानके अनेक विभिन्न राजे, गुजरात,
 मालवा और दिल्लीके मुसलमानोंपर सबल एवं सफल नियन्त्रक रहे।
 आलिपर, चन्दबाद, वरन, फटेहर आदिके अनेक छोटे-बड़े हिन्दूराज्यों
 मुसलमानोंका सुलतानों नौद न मोने दिया। दिल्ली, बंगाल, गुजरात, मालवा
 खानदेशकी तथा बहमनी-राज्य एवं उसके पतनमें उत्पन्न दक्षिणकी पाँच
 मुसलमानी सल्तनतें जो प्रायः सब ही समान थोटिकी और स्वतंत्र थीं,
 अपने आचरण और व्यवहारमें दिल्लीके प्रारम्भिक सुलतानोंसे बहुत कुछ
 भिन्न थी। इनके शासक नाम और दिग्दर्शक लिए ही मुसलमान थे,
 इस्लामके नियमोंके विरुद्ध मद्यपान, धूम्रपान, संगीत, चित्र, मूर्ति आदि
 कलाओंकी रसिकता, हिन्दुओं और जैनियोंको बहुलताका साथ शासनके
 विभिन्न विभागोंमें नियुक्त करना, उनके धर्म और जातीयताका प्रति उदार
 और सहिष्णु रहना, उनके गुणोंका सम्मान करना, प्रादेशिक भाषाओंको
 प्रोत्साहन देना, प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंके अनुवादोंकराना, भारतीय
 आयुर्वेद, ज्योतिष आदिमें विश्वास करना, इत्यादि कार्योंसे कतिपय
 अपवादोंको छोड़कर वे आधे भारतीय ही बन गये थे। युद्ध और विद्रोह-

पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

वनवाये जिनमें अवश्य ही हिन्दू एवं जैन-मन्दिरोंके विध्वंससे प्राप्त अतुल्य सामग्रिका ही बहुधा उपयोग किया, तथापि एक नवीन भारतीय मुसलिम स्थापत्य-कलाको भी जन्म दिया और उसका विकास किया। प्रान्तीय भेदसे प्रान्तीय सुलतानोंने उसमें और भी विचित्रताएँ उत्पन्न कीं। भारतीय भाषाओंका भी प्रोत्साहन मिला और विशेषकर जन-भाषाके रूपमें अपभ्रंशसे विकसित दिल्लीके आस पासकी जन-भाषा (सही बोली हिन्दी) में अरबी फारसी तुर्की शब्दा और लहजोंके समावेशसे एक नवीन जन भाषाके विकासको प्रोत्साहन दिया जो उस समय ज़बान हिन्दवी कहलाती थी।

मुसलमान-सुलतानोंका शासन चाहे जितने बड़े या छोटे प्रदेशपर रहा वह मुख्यतया नागरिक ही था। राजधानियों, प्रमुख दुर्गों और नगरोंपर अपनी-अपनी सेनाओंके बलपर मुलतान और उनके सूबेदार या सरदार निरंकुश शासन करते थे। सामान्य नागरिक शासन पूर्ववत् ही देहातो एवं नगरमें हिन्दू अधिकारी करते थे। जो हिन्दू-राजे, उपराजे या सामन्त-सरदार पहलेसे चले आते थे वे उसी प्रकार चलते रहे और प्रजासे भूमिकर आदि पूर्ववत् वसूल करते रहे। उन्हें केवल अपने प्रदेशके मुलतान-की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी और उसको या उसके प्रतिनिधियोंको जैसा जितना निश्चित होता कर देना पड़ता था। अल्पसंख्यक मुसलमानोंके लिए इससे अधिक सम्भव भी न था, विशेषकर जब शासित हिन्दू-जनता उनकी अपेक्षा बसियों गुना अधिक थी। इस प्रकार उस कालका मुसलमानोंका शासन प्रधानतया क्रीड़ी और शहरी ही था। बहुभाग जन-साधारणको वह युद्ध, विद्रोह, लूट-मार और कर आदि वसूल करनेके अवसरोंपर ही, सो भी उसी सम्बन्धमें, स्पर्श करता था।

बहुसंख्यक भारतीयोंके बीच विदेशोंसे आगमन, प्रजनन और धर्म परिवर्तन आदि कारणोंसे बढ़ती हुई मुसलमानोंकी संख्या एक नवीन समस्या थी। प्राचीन यवन, पल्लव, शक, कुषाण, हूण आदिकी भाँति मुसलमान भारतीय समाजमें आत्मसात् न हो सके। बाहरसे आते रहने

उनके मुख्य-नीतिविशेषों को हमको बहुत बर्तान्धताओं काटतीं क्यों नहीं, और उनका विरोध प्रति हमके तीव्र विरोधों के साथ मुहम्मदियों के साथ भारतीय विरोधों के प्रति प्रतिशुद्ध शास्त्राचार और विचारवाचकों के साथ नहीं होता ही अपना प्रधान कर्तव्य बना रहा है । यह भारत में धर्म के मुहम्मदों का एक भारतीयों और भारतीयता के धर्म के मुख्य ही नहीं रहे । उनके विरोधी धर्मों के एकल विचार बहिष्कार और समाविष्टि के लिए विरोध बचकाय न था । प्रत्येक मुहम्मदों के साथ वह विरोधी ही वह विचारों को न ही स्वयं की ईर्ष्या के ईर्ष्या काटती-रही केवल बचकाय या और पचास-सत्तर हिन्दू धार्मिकों को धार्मिक समर्थन व रक्षा था ।

हिन्दु यह सिद्धि करैव ऐसे ही लखी बरक बकरी की । कल्ले सब
राजनैतिक बुद्धिसे ही मुसलमान बाहरकीनी छोड़े-बड़े पाण्ठीबोध्य लखी
कैना ही परता था बाहरन-बाहरन की बकरी बिना न बरक बकरी था ।
मिन बाण्ठीबोयो इसकाम अनीकर करना पडा था कल्लेने कल्ले
बनिकारय गूणले ऐति-विवाज बाजार-बिचार भी बनवती रखे । इन्ने
मरिषिकर कुछ मुसलमान छोड़ीय ठपा मुसलुमीन बिकरी बिकलुमीन
लौकिका येन भन्नुहीन बेक बकरीन बिकरी बाणिने प्रचलित हव बाकरी
इस्लामकी बहुत-कुछ बाण्ठीकयके ऐसी रव दिया । धीरगुन बने,
मुस-बाधन, बैरलपके बिकरी-मुकरी लुकी बिचाटे बाणिने प्रचारके ऐसी
कल्लेबिनीके बीचकी बाणिने बकरी कर दिया । कल्लेन एवम, कल्ले
मुसलमन बाधनी येन मुसलमन बैरल-बीके पूछी बनिबोले बैरली लया
हिन्दीमें बाण्ठीन मेक-बाण्ठीनी लुकी बिचाटेमें ऐवकर कल्ले कल्ले-
पकन कथापक कथापक, मुसलानी बाणि लल्लेबिनीमें रवा । बाणि
बुधके-बीके बनिने हिन्दीमें कल्लेकी की बीर बल्लेन हिन्दी बाण्ठी विनिन
बाणिने प्रचलनता प्रचलन किया ।

आरम्भिक दिग्गु बौर बौर-कविबाबे कालकृत्यक बौरबाबाबो एवं
कालिक ऐतिहासिक पत्रो कालीना कालकाल कालकाली करके

जहाँ धोरोँके स्वातन्त्र्य-प्रेम, युद्ध और देश-प्रेमको प्रज्वलित रखा और उनके धर्मभावको पुष्ट बनाया वहाँ उनके उत्तराधिकारियोंने मुसलमान सूफ़ी-सन्तोंके सदृश निर्गुण भक्तिका, किन्तु उनके प्रतिकूल उसके प्रेम-मार्गका नहीं, वरन् ज्ञान-मार्गका प्रचार किया। इस भारतीय धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलनके प्रमुख पुरस्कर्त्ता पूर्वोत्तर भारतमें रामानन्द, सन्त कबीर, पंजाबमें गुरु नानक, मध्यभारतमें सन्त दादू, सन्त सुन्दरदास, दक्षिणमें ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम और रामदास थे। बंगालमें चैतन्यदेव, बिहारमें विद्यापति ठाकुर, गुजरातमें लोकाशाह, बुंदेलखण्डमें तारणस्वामी थे। इन सभी सन्तोंने अपनी बोल-चालकी सघुक्कड़ी भाषामें पदरचना और व्याख्यानों एवं सत्सर्गों द्वारा हिन्दू मुसलिम विद्वेषको दूर करनेका भी प्रयत्न किया। उन्होंने मन्दिरों और मूर्तियोंका विरोध किया, सरल निर्गुण धर्मका प्रचार किया, जाति-पाँति और अन्य सामाजिक क्रूरियोंके विरुद्ध आन्दोलन किया। इनके शिष्य और अनुयायी हिन्दू, जैन, मुसलमान सभीमें-से होते थे। अपभ्रंश भाषास हिन्दीके विकासका भी इन सन्त-कवियोंने भारी प्रोत्साहन दिया। उन्होंने भारतीय जीवनमें एक नयी स्फूर्ति भर दी, हिन्दू-मुसलिम वैमनस्यको बहुत कुछ कम कर दिया। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण पण्डितों, जैन मुनियों, भट्टारकों और यतियोंने भी अपनी-अपनी धर्म-संस्थाओंमें समयानुकूल परिवर्तन करके तथा अपने प्रभावसे जनता एवं शासकोंको प्रभावित करके और अपने कार्यों एवं प्रेरणासे देशके नैतिक स्तरको उन्नत करके तथा धर्म, कला, साहित्य आदि क्षेत्रोंमें उसकी सांस्कृतिक अभिवृद्धि करके देशके पुनर्निर्माणमें स्तुत्य योग दिया। उन्होंने कमसे कम भारतीयताको सजग और अक्षुण्ण बनाये रखा। उपरोक्त अष्टाष्ट्याफ़े साप ही आततायियोंकी कुदृष्टिसे अपनी बहु-त्रैटियोंकी रक्षा करनेके लिए परदेकी, वाल-विवाहकी, ससीकी, छूतछातकी जैसी कुप्रथाओंका जन्म भी हिन्दुओंमें इसी कालमें हुआ और जाति-व्यवस्था भी अधिकाधिक जकड़ती चली गयी।

अध्याय ३

वपुः-साम्राज्य—ऊर्ध्वगर्भ

१६) यथापटी ई के विधीय यन्त्रके आरम्भमें ही भारतीय धर्मशास्त्रों में एक असीम आत्मतन्त्र राज्य-आदर्श हुई और मुसल-मन्त्रके अन्तर्गत ऐसी असीम एक असीम राज्य-व्यवस्था बरत हुआ कि जिससे न केवल कर्मयोग्यता मूलमानी यथापटी इस देशमें गया औरत एवं अशिक्षित वर्गों को बरत इस देशको राष्ट्रीय आर्थिक एवं सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था में विश्वपर प्रतीक दिया ।

निम्नलिखित बातें ध्यान में रखकर भारतीय जनता को सूचना दी जाती है—

मारणोंसे उनमें घर्माघटाया उन्माद और अनुदारताया विष भी कुछ कम होने लगा था । किन्तु वे यह भी समझते थे और उनके मुत्ता मोल्थी उन्हें यह समझानेमें अभी न सकते थे कि इन दानों उपायोंके बिना उनकी और उनके धर्म एवं राज्यकी रक्षा हम देगमें असम्भव है, अतः स्वरक्षार्थ वे इन उपायोंका अकल्मषन लेते ही थे । उनकी राजनैतिक एकाग्रता भी कभीकी नग हो चुकी थी । दगाल, मानवा, गुजरात तथा दक्षिणापथके उत्तरी भागकी मुसलमानी मन्तनतों और दिल्लीके मुल्तान सब एक दूसरेसे सर्वथा स्वतंत्र और पृथक् थे । उन सबमें ही परस्पर फूट, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य और युद्ध निरन्तर चलते थे । उन मधका प्यान अपने अपने राज्यको अधुण बनाये रखने और ही मका तो अपने निकट पड़ोसियोंकी क्षति करके अपनी-अपनी शक्ति और विस्तार बढ़ाने तक ही सीमित था । मिथमें अनेक छाटे छाटे अरबी अमोर इसा प्रकार परस्पर कलहमें व्यस्त थे । पंजाबमें लेखर बिहार तक पठान मरदार फैले हुए थे । दिल्लीके लोदी मुल्तान उनके मुगिया थे । किन्तु पंजाब और पूर्वी भारतके पठा मरदार नाम मात्रका ही उनके अधीन थे । वे लोदियोंके पतनके ही द्रज्जुन थे और परस्पर भी कलहमें रत थे । भारतकी इन सभी मुसलमान राजा शक्तिशाली उस समय एक सूत्रमें संगठित होना असम्भव था ।

इसके विपरीत, जन-साधारणमें गैर मुसलिम भारतीयोंका अत्यधिक सम्बन्ध-बाहुल्य था । विभिन्न मुसलमानी मन्तनतोंमें वे राज्य-कमचारियों उपराजाओं एवं सामन्तों, जागीरदारों आदिके रूपमें भा काफी संख्यामें थे । इसके अतिरिक्त, दक्षिणापथके आधेसे अधिक दक्षिणी भागपर विस्तृत एवं शक्तिशाली विजयनगर-माम्राज्य था और उत्तरापथमें सम्पूर्ण राजस्थानके अनेक स्वतंत्र राजपूत राज्य थे जिन्हें मेवाड़के शक्तिशाली राजाओंका नेतृत्व प्राप्त था । दक्षिण पूव भारतमें गोडवानाक विस्तृत हिन्दू-राज्य था, वुदेल्खण्डके बहुभागपर भालियरके तोमराज्यका शासन था तथा खन्दवाड़, वरन, तराई आदिके अन्य अने

[illegible]

ऐसी परिस्थितिमें बाबर आया, सहज ही उसने लोदीयोधा अन्त बर्गके
 दिल्लीपर अधिकार कर लिया और इस देशमें मुगल-वंश एक राज्यकी
 नींव डाली। वह शीघ्र ही मर गया। उसके उत्तराधिकारीको दग बगले
 भीतर ही देश छोड़ भाग जाना पड़ा। १५ वर्ष बाद वह पुन आया और
 उसके पुत्र अब्बरने मुगल-वंश और साम्राज्यकी इतना मज्जितगाली और
 स्थायी बना दिया कि वह अपन समयकी मगारकी एक स्पृहणीय शक्ति
 हो गया। मुगल-वंशका अस्तित्व और दिल्लीपर उसका अधिकार तो
 लगभग तीन सौ वर्ष पयन्त बना रहा किन्तु मुगल साम्राज्यका चरमावस्था
 काल लगभग एक सौ वर्ष ही रहा। अब्बरने राज्यपालके मध्यमे लेकर
 औरंगजेबके राज्य-कालक मध्य पयन्त भारतका मुगल साम्राज्य और उसके
 सम्राट न केवल आग्नीय ईतिहासमें ही बरन् सम्पूर्ण सत्ताशालीन विश्वमें
 सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतापी और वैभव-मम्बन था। भारतमें मुगलमानी
 राज्यवशाम इतना दीर्घकालीनवश ना अब कोई न हुआ। औरंगजेबके
 राज्य-कालके उत्तरार्धमें साम्राज्यमें अनेक दुर्वृत्ताओंने घर कर लिया था
 और शीघ्र-पतनक चिह्न दृष्टिगोचर होन लगे थे। उसकी मृत्युक कृष्ट वर्ष
 उपरान्त ही साम्राज्य द्रुत वेगसे छिन्न-भिन्न होने लगा। उत्तरवर्ती मुगल
 नरेशाकी अयोग्यता एक अकर्मण्यता, उनक मुसलमान सरदारोंके विद्वान-
 घात और स्वाधपरता, जोधपुरके राठौर राजाओंके नेतृत्वमें राजपूतोंका
 उत्थान, महाराष्ट्रक पेशवाओं और उनक सरदारोंकी द्रुत प्रगति, राज-
 धानीके निकट ही जाटाका और पजाबमें सिक्खोंका उदय, नादिरशाह
 और अहमदशाहके आक्रमण और सात समुद्र पारमें व्यापारार्थ आनवाले
 अंगरेजोंकी छल-बलपूर्ण कूटनीति, सबने मिलकर मुगलका पतन सम्पादित
 किया। सम्पूर्ण भारतके एकच्छत्र शक्तिशाली सम्राट औरंगजेबकी
 मृत्युको साठ वर्ष बीतते-न-बीतते उसका बराबर शाहआलम नाम भायका
 ही मुगल-सम्राट रह गया था और मात्र दिल्ली आगरापर उसका अधिकार
 शेष रह गया था। १८५६ ई० में अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाहका

सम्भवतः हिन्दु-राज्य है। नाबुद्धिक बनने पर वह समझदारों की
 ता हिन राज-मन्त्रिने नहीं करिब नवन है। यदि वह समझ
 की है राजकीय-विषयों के देने का हुआ होगा जो इस भारतीय
 मन्त्रियों के एक गुण। यदि नवन ही को देने ही राज्यने बनने
 नवनमय राजकीय बन कर दिया था नवन था। बाह्य नवनन
 मन्त्र-पर वह नवनकी भारतीय नवन। भारतीय नवनन कीर नवनकी
 नवन ही नवन-नवन नवनने नवननकी नवनन। बन कर नवन है।
 विषय-पर राजकीय और नवनकी नवननन या नवन नवनन नवनने
 नवनन नवनन कीर नवननका नवननका नवनन कर नवन की
 थी। इसी नवन राजकीय नवन नवन, नवननका नवनने राज्य मन्त्र-पर
 नवन भारतीय नवनकी नवनन। नवनन नवन कर नवन है। हिन्दु नवनन-
 ने भारतीयन नवन नवनन नवन भारतीय नवननका नवन नवन
 ही नहीं हुआ था। नवनने विदेशीय नवनन और नवननकी नवनन
 नवन नवन एक नवनने नवनन या नवनन हिन्दु नवन थी नवनन नवनन न
 था जो नवनने नवननन नवननका नवनन नवननन नवन नवनन। नवनकी
 नवननन नवन नवनने नवन राज्य नवनन और नवन नवन ही नवनन थी।
 इसी कारण नवनननका नवननन नवन राज्य नवनन करनने नवननन
 नवनन इसी कारण नवनने नवन नवनन नवनने नवनन नवनकी नवन
 नवननन ही नवन कीर इसी कारण नवनन नवनन के नवननने नवनन-
 नवनकी नवनकी नवन नवनन और नवनन नवनननन की भारतीय नवन
 नवन नवन। नवननका नवन नवन कीरनका नवन नवनन ही
 कीर नवन नवननने नवननके नवननका नवन नवनन नवननन
 की नवन। हिन्दु नवन नवनने नवन नवनने नवनकी नवननन
 ही नवन नवन। नवन नवनन या कि नवनकी नवनन नवनन की
 नवननन। नवन करके नवन नवनन कीर नवन नवन नवन
 नवन नवन नवन ही नवनने नवननन नवनन कर नवन।

ऐसी परिस्थितिमें बाबर आया, सहज ही उसने लोदियोंका अन्त करके दिल्लीपर अधिकार कर लिया और इस देशमें मुगल-वंश एवं राज्यकी नींव डाली। वह शीघ्र ही मर गया। उसके उत्तराधिकारीको दस वर्षोंके भीतर ही देश छोड़ भाग जाना पड़ा। १५ वर्ष बाद वह पुन आया और उसके पुत्र अकबरने मुगलवंश और साम्राज्यकी इतना शक्तिशाली और स्थायी बना दिया कि वह अपने समयकी ससारकी एक स्पृहणीय शक्ति हो गया। मुगलवंशका अस्तित्व और दिल्लीपर उसका अधिकार तो लगभग तीन सौ वर्ष पर्यन्त बना रहा किन्तु मुगल साम्राज्यका चरमोत्कर्ष काल लगभग एक सौ वर्ष ही रहा। अकबरके राज्यकालके मध्यसे लेकर औरंगजेबके राज्य-कालके मध्य पर्यन्त भारतका मुगल साम्राज्य और उसके सम्राट् न केवल भारतीय इतिहासमें ही वरन् सम्पूर्ण तत्कालीन विश्वमें सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतापी और वैभव-सम्पन्न थे। भारतके मुसलमानों की राज्यवंशोंमें इतना दीर्घकालीनवंश भा अथ कोई न हुआ। औरंगजेबके राज्य-कालके उत्तरार्धमें साम्राज्यमें अनेक दुर्बलताओंने धर कर लिया था और शीघ्र-पतनके चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे। उसकी मृत्युके कुछ वर्ष उपरान्त ही साम्राज्य द्रुत वेगसे छिन्न-भिन्न होने लगा। उत्तरवर्ती मुगल-नरेशोंकी अयोग्यता एवं अकर्मण्यता, उनके मुसलमान सरदारोंके विद्वाम-घात और स्वार्थपरता, जोधपुरके राठौड़ राजाओंके नेतृत्वमें राजपूतोंका उत्थान, महाराष्ट्रके पेशवाओं और उनके सरदारोंकी द्रुत प्रगति, गज-घानोंके निकट ही जाटाका और पंजाबमें सिक्खोंका उदय, नादिरशाह और अहमदशाहके आक्रमण और सात समुद्र पारसे व्यापारार्थ आनेवाले अंगरेजोंकी छल-बलपूर्ण कूटनीति, सबने मिलकर मुगलोंका पतन सम्पादित किया। सम्पूर्ण भारतके एकच्छन्न शक्तिशाली सम्राट् औरंगजेबकी मृत्युकी साठ वर्ष बीतते-न-बीतते उसका वंशज शाहआलम नाम मात्रका ही मुगल-सम्राट् रह गया था और मात्र दिल्ली-आगरापर उसका अधिकार घोष रह गया था। १८५६ ई० में अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाहका

माझाज्य ही जिन्दीफे जी केराप जाल जिकेकी बहार-बीबारीफे बीहार ही सीमित बा । अह बर होले हुर जी हकमें कबोई बाही ई कि मुबक-जाल बाछीर इतिहासका एक जालाल बहालकूर्त मुन ई । अन्ने कुटीर आनर्न काजमें हमन हेयकी कबोकुली कबलि रेकी ।

[illegible]

हजारीबाँके भन्ने ठाउँमा रहेको हजारी सिमरी बुझिन्छ न हो । त्यहाँ सिमरीको बाटोमा रहेको हजारी बुझिन्छ । त्यसको रोजाइ गर्दा हजारी

इस देशकी ओर ध्यान दिया । भारतकी तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति भी संयोगसे उसके अत्यन्त अनुकूल थी । दिल्लीका पठान सुलतान इब्राहीम लोदी अयोग्य, मूर्ख और अत्याचारी था । उसने स्वयं अपने पठान सरदारों और सम्बन्धियोंको भी अपना शत्रु बना लिया था । उसके वशके ही आलमख़ाँ लोदी और दालतख़ाँ लोदी जो पंजाब प्रान्तपर अधिकृत थे उसका विनाश चाहते थे । उन्होंने इसी उद्देश्यसे बाबरको आमन्त्रित किया । वे समझते थे कि तैमूरकी भाँति बाबर भी इब्राहीम लोदीका अन्त और दिल्लीकी लूट मार करके चला जायेगा और वे फिर सरलतासे दिल्ली राज्यके स्वामी बन जायेंगे । राणा सागा भी ऐसा ही समझता था । अतः ये लोग बाबरके आक्रमणमें तनिक भी बाधक न हुए । किन्तु बाबर वीर योद्धा और कुशल सेनानी ही नहीं था, वह चतुर राजनीतिज्ञ भी था । १५१८ से १५२४ ई० के बीच उसने भारतपर चार बार आक्रमण किया । प्रारम्भमें उसने सीमान्त प्रदेशका अन्वेषण करके उसे अधिकृत किया, फिर शर्न-शर्न पंजाबमें घुसा, दालतख़ाँ लोदीके विश्वासघातसे रुष्ट होकर उसका दमन किया और १५२४ ई० तक काबुलसे सम्पूर्ण पंजाब पर्यन्त उसने अपना अधिकार भलीभाँति जमा लिया । तदनन्तर १५२६ में उसने दिल्लीपर आक्रमण किया । इब्राहीम लोदीने अपनी विशाल किन्तु निकम्मी सेना लेकर पानीपतके ऐतिहासिक रणक्षेत्रमें उसका सामना किया, किन्तु पराजित हुआ और मारा गया । दिल्लीपर मुगल बाबरका अधिकार हो गया । पठानोंकी आपसी फूट, इब्राहीम लोदीकी अयोग्यता, उसकी सेनामें उचित संगठन एवं कुशल नेतृत्वका अभाव, बाबरका तोपखाना जो युद्ध विद्याका भारतके लिए उस समय एक नवीन आविष्कार था, और उसका कुशल नेतृत्व इस विजयमें प्रधान कारण थे । छोटे-से किन्तु अत्यन्त अव्यवस्थित लोदी साम्राज्यको उसने अपने सेनानायकोंद्वारा शर्न-शर्न जीतना शुरू किया । जो सरदार जिस प्रदेशको जीतता उसे ही वह उस प्रदेशका शासक नियुक्त कर देता ।

[illegible]

उसने मुल्तानके धनाय बादशाह उपाधि धारण की, अपने अधिकांशके लिए श्लोकाकी स्वीकृतिकी भी कोई अपवा न थी और इस प्रकार धर्मको राजनीतिसे पृथक् रखनेका प्रथम उपक्रम किया ।

वह अत्यन्त वन्त्रवान्, वीर, साहसी, बुद्धिमान, सुशिक्षित, विद्या और कलाका रसिक, धार्मिक, उदार, सर्वप्रिय और स्नेहशील था । उसका तुजुकेबाबरी या बाबरनामा नामक आत्मचरित्र एक अत्यन्त दिलचस्प रचना है । अपने पुत्र हुमायूँकी रोगसे प्राणरक्षाके लिए उसने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया । १५३० ई० में मुगल-वंश और साम्राज्यके मूल मस्थापक इस जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर बादशाहकी मृत्यु हुई । बाबर भारत और मध्य-एशियाके बीचकी कड़ी था । काबुलसे उसे स्नेह था । अतः उसने अपने शवको काबुल में जाकर दफनानेकी इच्छा अन्त समय प्रकट की थी, वैसा ही किया गया । ईरानी संस्कृतिका भारतमें प्रविष्ट करनेका श्रेय भी उसे ही है । आगरा आदिमें उसने कई बाग भी लगवाये ।

२. हुमायूँ (१५३०-५५ ई०) बाबरका ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी था । वह सुशिक्षित, नम्र, दयालु, उदार और स्नेहशील था, किन्तु उतना ही जितना कि उस कालमें एक मध्य-एशियायी मुसलमान राजकुमार अधिकसे अधिक हो सकता था । शासन और युद्ध विद्यामें भी वह साधारणतया माग्य था किन्तु साय ही आलसी, अक्रोम स्थानेका अल्पवृत्त, कुछ अदूरदर्शी और भावुक भी था । इन दोषोंके कारण जिन परिस्थितियोंमें उसने राज्य-भार सम्भाला और जा विकट समस्याएँ उसके सम्मुख थीं उनके योग्य वह नहीं था । बाबरने उत्तर भारतको पञ्जाबसे विहार पर्यन्त विजय तो कर ली थी किन्तु वह राज्यको सुसंगठित नहीं कर पाया था और शासन-प्रबंधकी भी कोई योजना कार्यान्वित न हो पायी थी । राजकोष प्रायः खाली था जिसके कारण आर्थिक कठिनाईका सामना था । उसके तीन अन्य भाई कामरान, अस्करी और हिन्दाल उस सदैव तंग करते रहे, विशेषकर कामरान और अस्करीने उसके साथ

उत्तुता कायेमें की^१ कहर न रही किन्तु हुमानुमे कुछ कामे स्नेहपूर्ण
 नम्र स्वभाव कीर कुछ मित्रोंके जलियन करनेछका रत्तार्थे पनीं बहिन काम
 किया कीर कीई हउमि न गईचाही ।

शहरकी नृत्यके परवान् पछन सरदारोंन की बानी स्थितिका अनुभव
 किया कीर वे नृत्यकीको मित्रान बाहर करकेके लिए बन्धित हो गई
 नृत्यन नम्रतरक इस बहनें कम ही न कामे वे कीर बन्धित ऊनीं जियेकी ही
 नम्रतरकी की । कमरानको बन्धुन कीर बन्धुनका नृत्यकार विमुक्त कर
 दिया बहा था किन्तु इकने बन्धनपर की बन्धनार कर लिया कीर इस
 प्रकार हुमानुकी उतके नृत्यकारों ही बन्धन कर दिया । इन कम
 कीकनरका राजा राज बहनी था । ऊनका एक बानस कीतनी बनेनेका
 बानस था । बानस नृत्यके बन्धनकीके यह हीकर बानस बनें बानसकार थिये
 कीर बानस नृत्यकी की बानस राजा । १५६४ ई. में बानसकी बनेनेका
 बानसका किया । नृत्यके बानसकी बानस का राजकार बानसकी बानस
 बानसकार बानस कर दिया किन्तु बानसकी हीकर कीर बानस । इस
 हुमानुकी की बानसकी बानसकी नृत्यकारों लिए लिएकर कुछ करते राजा
 बानस । बानसकार इसी कमर नृत्यकारोंके बानसकारोंने बानस
 कर दिया । बानसकारोंके हुमानुकी पानसकी बानसकार बानसकारोंके लिए
 नृत्यकार । यह नृत्यकार बानस बानस किन्तु इसके बानसकीके पूर्व ही
 बानसकारोंके बानसकारोंके बानस कर हुआ था । हुमानुका बानसकार
 यह नृत्यकार बानस कीर बानस किन्तु हुमानुके बानस बानस न कीर कीर
 १५६५ ई. में नृत्यकारोंके बानसकार कर दिया बानसकारोंके नृत्य
 बानसकी किया किया । बानसकारोंके बानसकारोंके बानसकारोंकी कीर
 बानस बानस । हुमानुकी नृत्यकारोंकी बानस कर बानस बानस था किन्तु
 बानसकी बानसकारोंके बानसकारोंके बानसकारोंके बानसकारोंके बानसकारोंके
 बानसकी बानसकारोंकी कीर बानस बानस बानस । १५६७ ई. में बानस
 बानसकी बानसकारोंके बानसकारोंकी बानसकारोंकी बानसकारोंकी बानसकारोंकी

तदनन्तर लगभग एक वर्ष गौड नगरमें ही धर्म्य आलस्यमें बिता दिया । इस बीचमें शेरशाहने शक्ति संग्रह करके उस वहाँ रोकनेका उपक्रम किया । १५३९ ई० में सोमाक युद्धमें बुरा पराजित होकर हुमायूँ थोड़े-से सैनिकोंके साथ प्राण बचाकर दिला पहुँचा । १५४० ई० में शेरशाहके साथ कन्नौजके निकट उसका फिर भाषण युद्ध हुआ । इन युद्धमें भी वह पराजित हुआ और साथ ही उससे उसका भारती राज्य भी छिन गया ।

अब वह निराश्रित और असहाय था । उसके भाइयाने उसकी कोई सहायता नहीं की । ऐस हो ममयमें उसने हमीदाबानूके साथ अपना विवाह किया । पत्नी और मुट्ठी भर साधियाके साथ वह सिन्धको ओर भागा, फिर मारवाड आया और जोधपुर-नरेशसे आश्रय चाहा । एबके बाद एक कई राजाओं और मुसलमान-नरेशोंसे उसने आश्रय और सहायताकी याचना की किन्तु किसीन महारा न दिया । शेरशाहकी सेना पीछे पड़ा हुई थी, अतः फिर उसे सिन्धका मरुभूमिकी शरण लेना पड़ी और वहाँ अमरकोट नामक स्थानमें १५४२ ई० में हमीदाबानू वेगमने अकबरको जन्म दिया । किसी तरह बचकर हुमायूँ काबुल पहुँचा किन्तु उसके भाई कामरानने भी उसे आश्रय नहीं दिया, अतः बालक अकबरका कामरानके ही आश्रयमें छोड़ १५४४ ई० में वह ईरान पहुँचा और शाह तहमास्पसे सहायताकी याचना की । शाहने इस शतपर कि हुमायूँ शिया मत धारण कर ले और कन्दहारको विजय करके उस सौंप दे सहायता देनेका वचन दिया । अतः १५४५ ई० में शाह ईरानकी सहायतासे हुमायूँने कन्दहारपर अधिकार कर लिया । उसके बाद काबुलपर आक्रमण किया । कई वर्ष तक कामरानके साथ युद्ध चलता रहा । उस दुष्टने अपने भतीजे बालक अकबरको किलेकी दीवारपर सीरोकी बोलारमें बैठाया किन्तु अकबरका बाल बँका न हुआ । अन्ततः कामरान पराजित हुआ, बन्दी हुआ और अन्धा कर दिया गया । कुछ वर्ष हुमायूँने काबुलमें रहकर ही अपनी स्थिति सुदृढ़

सुगल-साम्राज्य—ऊर्ध्वगत-

की और बलि नयन की। गन्धारकी बहने ईशानियोंको बागदेके अनुसार दिया ही न था। १५५५ ई के बहने गण्डार बागमन दिया। गुरी नयन बागमन का विद्यालयके टीच-टीच सर्वदार थे, बल. श्रीरामचन्द्र अनुकूल की बहने ही गन्धार और फिर दिल्ली और बागदेवर की हुसैनका अधिकार ही न था। किन्तु कुछ ही माल बार १५५६ ई के शारमन ही दिल्लीमें बहने गुम्नामनकी श्रीरामचन्द्र फिनकर निरनेके बारण बारधाम हुसैनकी माल ही न थी।

यह कार्य सिवाय भारतीय राज्यधिकारको नामकरणके लिए ही कुछ प्राप्त करनेमें सफल हो पाया था। कार्य सिवाकी शक्ति कच्छात बरखारों की पारस्परिक युद्धों करने की कम बरखा था। कच्छा भारतमें नु-आक्रम और विद्रोह-आदि विरा नवीन ही था। कच्छा कोई जगह न थी। बलुन करने इन नु-आक्रमोंकी वृद्धि यह भारतीय मुकर्मक कम कड़ी पूर्वपक्षी मुकर्मक आक्रमोंकी एवं मुकर्मक ईश्वरी की कर्मक वरखीन एवं वरखीन था।

३. अकबर (१५५५-१५५६)—विश्व कर्मण्डूकी मुलु
हुई बरका मुल अकबर १४ वर्षका बालक बाब बा और बड़ बरका बेबा-
नसि बीरमहाकि बाब बंदाबदे विजयार मुटीका बरका करदेई बरका बा ।
अनुकर अकरका बीजेबा बाई विजई हुजीन बरिका बा और बर
बाब लवण ही बा । हुवायुकी दिखीके विजय बरिका ही बाबिकाबा
मुटी दिखी बीजेकर मुलार बरका बा बा और बाई रहने बरका बा विजय
हुवायुकी मुलु बीजे ही बाबिकाबाके कबी एवं बीरमहाकि हुनु-विजयारिका
बाबदे और विजयार अकरका कर दिवा । दिखीके मुलक बाबक
उरिकाके बड़े बाबक-उरिका कर दिवा और हुमुका बाई बरिका ही बरका ।
विजयार, बीजापुर, बहमननर बीजमुका बीर, बर, बाबिका
बाबिका बाबिका विजय अनुई बरिका बाब ही लवण बा ही मुलका
बाब, बीजका, बीजाक और बीजाक बी लवण के और विजय

रणथम्भीर, जैसलमेर, बूंदी, जोधपुर, बीकानेर, अम्बर आदि स्वतन्त्र राजपूत राज्योंका समूह राजस्थान सजीव आतक बना हुआ था। पश्चिमी-तटपर पुतगालियोंकी शक्ति भी उपेक्षणीय नहीं थी। और स्वयं दिल्लीके सिंहासनके लिए तीन प्रतिद्वन्द्वी दावेदार थे, आदिलशाह सूरी, सिकन्दरशाह सूरी और हेमू। हुमायूँकी दिल्लीपर अधिकार कर लेनेकी अल्पस्थायी सफलताने अकबरको भी उन जैसा ही किन्तु उनसे कम साधन और शक्तिसम्पन्न एक दावेदार मात्र बना दिया था। अतः १४ फ़रवरी १५५६ ई० के दिन जब पंजाबके जिले गुरुदासपुरके अन्तर्गत कलानीर नामक गाँवके बाहर एक वाग़में इंटोंके कच्चे चबूतरपर अकबरका राज्याभिषेक किया गया तो उस चौदहवर्षीय नरेशका राज्याधिकार आस-पासके दस-बीस गाँवोंपर ही था, वह धन और जन दोनोंसे ही हीन था, मुठ्ठीभर सेना हाथमें थी और वैरमख़्त-जैसे इने-गिने विश्वासी, स्वामिमक्त और उत्साही सरदारोंका भरोसा था। अकबरकी कुछ शिक्षा दीक्षा भी नहीं हो पायी थी और वह प्रायः निरक्षर था। उसी समय उत्तर प्रदेशमें भीषण अकाल भी पड़ रहा था। ऐसी विपन्न परिस्थितियोंमें अकबर और उसके साथियोंके सम्मुख तीन ही मार्ग थे या तो हुमायूँकी भाँति देश छोड़कर भाग जायें, या सब आकांक्षाओंको तिलाजलि देकर सामान्य जनोंकी भाँति यहीं बस जायें, अथवा राजघोड़ेदारका प्रयत्न करें। उन्होंने यह तीसरा योरोचित मार्ग ही पसन्द किया। इस दिशामें सबसे पहला क़दम दिल्लीको हस्तगत करना था क्योंकि भारतकी राजधानीपर अधिकार कर लेना ही अकबरके राज्याधिकारके औचित्यको सिद्ध कर सकता था और अन्य प्रदेशोंकी विजयमें प्रधान साधक हो सकता था।

अतएव अकबरको लेकर वैरमख़्त ससैन्य थानेश्वरके मागसे होकर पानीपतकी ऐतिहासिक रणभूमिमें आ बटा। एक विशाल सेनाके साथ दिल्लीसे निकलकर हेमू भी आ पहुँचा। दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध हुआ, हेमूकी विजय हो रही थी कि शत्रुका एक तीर आकर उसकी आँखमें

निरपराध रक्षक तर्द्विग्रीही हत्या करने और उसके सामान्यत उद्धत स्वभाव एव बढ़ते हुए प्रभावके कारण अब सरदार भी वैरमखाँमें रुष्ट थे । अतः अकबरने १५६० ई० में उसे पदच्युत करके मक्का चले जानेका परामर्श दिया और राज्यकार्य अपने हाथमें ले लिया । थोड़ी ऊहापोहके बाद वैरमने स्वीकार कर लिया किन्तु पजाबमें पहुँचकर विद्रोह कर दिया । अकबरने तत्परतासे उसका दमन किया और फिर क्षमा कर दिया और मक्का चले जानेका ही आदेश दिया । मार्गमें एक शत्रुके हाथो वैरमखाँ मारा गया ।

वैरमखाँके अंकुशसे तो अकबर मुक्त हो गया किन्तु अब अन्तःपुरकी वेगमोर्के प्रभावने उसे आच्छन्न कर लिया । उसकी माँ हमीदाबानू वेगम तो उसे पुत्र-स्नेहवश परामर्श देती ही थी किन्तु उसको घाय माहमअगा उसपर शासन ही करने लगी और उसका पुत्र आदमखाँ निरंकुश अनाचार करने लगा । पोरमुहम्मद आदि उसके साथी थे । स्वयं अकबर आखेट आदिमें मग्न रहने लगा । १५६२ ई० में अकबरने आदमखाँ और पोर-मुहम्मदको मालवा विजय करनेके लिए भेजा । मालवापति बाजबहादुर पगजित हुआ और मालवापर अकबरका अधिकार हुआ । आदमखाँ और पोरमुहम्मदने इस अवसरपर क्रूर नरमहार और अत्याचार किये किन्तु बाजबहादुरको अकबरने क्षमा कर दिया और अपना एक मनमब्दार बना लिया । उसकी प्रेमिका सुन्दरी नर्तकी रूपमसीकी भी रक्षा हुई । इसी वर्ष अकबरने शमसुद्दीन अतकाको अपना वजीर नियुक्त किया था, किन्तु कुछ आदमखाँ वजीरमें जलता था और एक दिन शराबके नशेमें महलकी कचहरीमें घुसकर उसने वजीरका वध कर दिया । शब्द सुनकर अकबर स्वयं वहाँ आ गया, एक ही घूँसेसे उसने आदमखाँको गिरा दिया और फिर किलेकी दीवारसे गिराकर उसे मरवा डाला । उसकी माँ माहमअगाकी पुत्रशोकमें मृत्यु हो गयी । पोरमुहम्मद आदिको भी दण्डित किया गया और स्वयं अपने मामा ख्वाजा मुअज्जमको भी जो एक

अभिलाषा थी। साथ ही उसने यह मलीमाँति समझ लिया था कि इस उद्देश्यकी सिद्धि तथा उसके वश एव साम्राज्यका स्थायित्व तभी सम्भव है जब वह पूर्णतया भारतीय एव भारतीयोका बनकर राज्य करे, मुसलमानों और गैर मुसलमानोंके बीच कोई भेदभाव न करे, बल्कि अपने व्यवहारसे मुसलमानेतर भारतीयोंका विश्वास, आदर और राज्यभक्ति प्राप्त कर ले। और ये सब बातें उसकी अपनी उदारता, समदर्शिता, सर्वधर्ममहिष्णुता एव कुशल नीतिमत्तासे सम्पादित हो सकती थीं। अतः अपने राज्यके इन प्रारम्भिक वर्षों (१५६०-६४ ई०) में ही उसने युद्ध-वन्दियोंको गुलाम बनाये जानेकी पुगनी प्रथाका अन्त कर दिया, समस्त हिन्दू एव जैन तीर्थोपर-से जो यात्रीकर सुलतानोंने लगा रखा था उसे उठा दिया, इसी प्रकार जजिया नामक अपमानजनक करका भी जो समस्त मुसलमानेतर भारतीयोंपर लगा हुआ था अन्त कर दिया। जजियाका प्रवर्तन खलीफ़ा उमरने किया था और भारतके सभी मुसलमान सुलतानोंने भारतीयोंपर यह कर लाद दिया था, फ़ीरोज़ तुग़लक़के पूर्व ब्राह्मण लोग इस करसे मुक्त थे किन्तु उसने उनपर भी यह कर लगा दिया था। यह कर अतिरिक्त आर्थिक भार तो था ही होनता और अपमानका भी सूचक था। जजिया देनेवाले भारतीय थे, वे शासकोकी जाति मुसलमानोंकी समकक्षता नहीं कर सकते थे। दूसरे, करके भारसे दबे रहनेके कारण वे कभी धनसम्पन्न नहीं हो सकते थे, अतः विद्रोह नहीं कर सकते थे। अकबरने इन भेदभाव सूचक एव अन्यायपूर्ण करका अन्त करके अपने-आपको लोकप्रिय बना लिया। राजपूत कन्यासे विवाह करके और अन्य मुसलमान पत्नियोंके रहते हुए भी उसे ही साम्राज्ञी पद देकर, तथा हिन्दुओंको राज्यमें उच्च पद देना आरम्भ करके उसने भारतीयोंका विश्वास प्राप्त कर लिया। साथ ही उसने मुसलमान सरदारोंपर, जो प्रायः विदेशी थे, नियन्त्रण रखनेके लिए एक शक्तिशाली भारतीय दल राजपूत-राजाओं आदि हिन्दू सरदारोंका निर्माण

दिया। इस प्रकार १५७३ ई० में गुजरात-जैसे अति समृद्ध प्रान्तका प्राप्ति करनेसे साम्राज्यकी समृद्धि और शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी। समुद्रतट और प्रमुख बन्दरगाहोंपर भी उसका अधिकार हुआ। राजा टोडरमल गुजरात-का सूबेदार नियुक्त हुआ और वहीं सर्वप्रथम उसने अपने भूमि-व्यवस्था सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सुधारोंका प्रयोग किया। गुजरात विजयके उपलक्ष्यमें सीकरीमें बलुन्द दरवाजा बनवाया गया और उस नगरका नाम फतहपुर रखा गया। १५७५-७६ ई० में बगालकी विजय हुई, वहाँका सुलतान दाऊदख़ाँ युद्धमें मारा गया और बगाल प्रांत साम्राज्यका एक सूबा बन गया।

इसी वर्ष महाराज मानसिंहने हल्दीघाटीके सुप्रसिद्ध युद्धमें घोरवर महाराणा प्रतापको बुरी तरह पराजित किया। इस युद्धमें सिसौदियोंकी बड़ी क्षति हुई। हल्दीघाटीके युद्धमें राणाकी ओरसे उसके कई जैन-सामन्त यथा घोर ताराचन्द, मेहता जयमल घच्छावत, मेहता रत्नचन्द खेतावत आदि भी बड़ी वीरतापूर्वक लड़े थे। पराजित होकर राणा अपने परिवार और बच्चे-बुच्चे मेवकोंके साथ पहाड़ों और जंगलोंमें चला गया जहाँ अत्यन्त कष्टमें उसके दिन बीते। मुगल-सेना उसका बराबर पीछा कर रही थी। राणाने अकबरकी अधीनता तब भी स्वीकार न की, किन्तु अन्ततः निराश होकर मेवाड़को छोड़कर अन्यत्र चले जानेके लिए उद्यत हुआ। ऐसे समयमें उसके स्वामिभक्त दीवान भामाशाहने असुल द्रव्यसे राणाकी सहायता की। कहा जाता है कि यह धन इतना था कि इससे १२ वर्ष पर्यन्त २५००० सेनाका निर्वाह हो सकता था। और यह सब सम्पत्ति भामाशाहकी अपनी पैतृक तथा निजी थी। उसने अपने भाई ताराचन्दके साथ मालवापर आक्रमण करके भी कुछ द्रव्य प्राप्त किया था। राणा उदयसिंहके जैनमन्त्री भारमल कावडियाके ही ये दोनों पुत्र थे। इस अप्रत्याशित सहायतासे राणामें नये जीवन और आशाका संचार हुआ और उसने नये उत्साहसे प्रयत्न करके चित्तौड़ और

पाण्ड्यजनहन्त्री छोड़कर सम्पूर्ण मैसाडवर कुल अधिकार कर लिया। इस लक्ष्मीनारायण के कारण मायासाहू मैसाडका पञ्चारकर्ता कहलाया। एसा अमरावट्टिके समय एक बड़ी प्रवाल कन्धी बना पड़ा। इसके अंदर भी कई नीमिषीठक पाण्ड्यकन्धी बने रहे और बलका बनना ही वर्तमान काक एक मैसाड राज्यमें सम्मर्पित पड़ा। राणा प्रतापसिंह अपने मित्र-हारा बनाने बने करकपुरकी ही राज्यकानी बनाकर राज्य कराया पड़ा किन्तु पिछोह-प्रकारके हिन्दू साम्राज्य प्रकलनशील पड़ा। स्वामन्व-हीन और शरीरकमलिके इस तरह कावर्ध और एसाको कष्टर अकबरमें भी फिर नहीं देखा।

१५८१ ई में अकबरन काबुलपर आक्रमण किया और अपने कई भिरका हुकीमकी पराजित करके अपनी लिया। १५८५ ई में हुकीमकी बुलुके परमात्मा नानुष भी आक्रमणका एक युवा बन गया। १५८५ ई में कम्मीर, १५९ ई में बडीका १५९३ ई में टिम्ब और १५९५ ई में बिजोचिल्लन और इन्क्यारपर भी अकबरका अधिकार हो गया। तदनन्तर सबसे दक्षिणके बुलनगल मुल्तानोके पास राजकुल बेने और इसके अन्ध कावर्धित्व स्वीकार कर केनेके हिन्दू कहा। अहमदनगर और बीजापुरकी छोड़कर इसके अन्धकी अमीनता स्वीकार कर ली। अठ १५ ई में अहमदनगरपर आक्रमण हुआ। मुल्तानमें पराजित हुनकर अधीनता स्वीकार कर ली और बरार राज्य अन्धको दे दिया। अन्ध केनेके मुल्तानमें पहुँचे ही अधीनता स्वीकार कर ली थी किन्तु अन्ध कन्धे बिजोह करवा चला अठ १५ १ ई में इसके अन्ध एन अफिद मुर्ब अलीकन्धी पैरा अन्ध कर बिचर कर किया गया। इस प्रकार महान् विजेता अकबरने अपने बीरन-नाममें ही बने-कने माय-सम्पूर्ण भारतकी विजय कर ली। केवल दक्षिणका कुछ भाग इसके अधिकारके बाहर पड़ा। अठकन विरसुत सुप्रसिद्ध साम्राज्य अन्धकी विजयन जल-सबका अन्धरा बुनि नागा प्रकारके दृष्टि एवं अन्धिय अन्धानो अन्धविचर अन्धो-कन्धो अन्धपठ

अन्तर्देशीय एव समुद्री व्यापार आदिके कारण तत्कालीन विश्वका सर्वाधिक महान्, शक्तिशाली एव समृद्ध साम्राज्य था । उसने भारतका चक्रवर्ती सम्राट् बननेको अपनी महत्ताकाक्षा प्रायः पूरी कर ली थी ।

इस विशाल साम्राज्यका संगठन, शासन-व्यवस्था एव प्रबन्ध भी उसने बड़े कौशलसे किया । दमन और समझौतेपर आधारित उसको विजय-नीति दुनाली थी । जिन नरेशाने सरलतासे उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया और विद्रोह न किया उन्हें उसने बने रहने दिया, जिन्होंने ऐसा नहीं किया उनका अन्त कर दिया । हिन्दू राज्य प्रायः सब ही बने रहे और मुसलमानी मल्लतन्त्रें प्रायः सब ही नष्ट हो गयीं और उनके प्रदेश सम्राट्-द्वारा नियुक्त हिन्दू एव मुसलमान सूबेदारोंके शासनमें साम्राज्यका अंग बन गये । उसने शासनको पूणतया केंद्रित किया, अधीन राज्याके अतिरिक्त अन्य समस्त देशको १५ सूबोंमें विभाजित किया, प्रत्येक सूबेको सरकारोंमें, प्रत्येक सरकारको परगनों या महालोंमें और प्रत्येक परगनेको थानोंमें विभक्त किया । प्रत्येक थानके अन्तर्गत कुछ गाँव होते थे । प्रत्येक सूबेका शासक सूबेदार होता था, सैनिक-शासन, न्याय-व्यवस्था और शान्ति-स्थापन उसका कार्य था । उसके साथ ही एक दीवान होता था जो उससे स्वतन्त्र रहता और भूमिकर आदि वसूल करता तथा सूबेके आय-व्ययको व्यवस्था करता था । एक वाकानवीस होता था जो सूबेके समस्त समाचार सम्राट्को वग़वर पहुँचाता रहता था । सूबेदारके नीचे क़ौजदार, कोतवाल, थानेदार आदि अधिकारी रहते थे और दीवानके अधीन तहसीलदार, क़ानूनगो, पटवारी आदि कार्य करते थे । सम्पूर्ण शासन-यन्त्रका अध्यक्ष और सचालक सम्राट् स्वयं था और अपने मन्त्रिमण्डलकी सहायता एव परामर्शसे वह समस्त राजकार्य करता था, यद्यपि सिद्धान्ततः सम्राट् साम्राज्यमें सर्वोपरि शक्ति था, सबथा निरकुश और स्वेच्छाचारी था और समस्त पदाधिकारी उसका वतनभोगी सेवक थे । राज्यके समस्त उच्च पदाधिकारी मनसबदार कहलाते थे ।

दित्यकी भाँति नव नर-रत्नोंसे उसने अपनी राजसभाको सजाया था । संगीताचार्य तानसेन उसके दरबारकी शोभा थे । मुसलमान होते हुए भी चित्रकला और मूर्तिकलाको भी अकबरने प्रोत्साहन दिया । आगराका किला और उसके मातर सुन्दर महल बनवाये, १५७०-१५८५ ई० तक वह फतहपुर सीकरीमें रहा, उसे ही वह अपनी राजधानी बनाना चाहता था । वहाँके शेखसलीम चिश्तीकी कृपासे ही १५६९ ई० में उसका पुत्र (सलीम—जहाँगीर) उत्पन्न हुआ था, अतः सीकरीमें उसने अनेक सुन्दर भवन बनवाये और शेखसलीमका सुन्दर मकबरा बनवाया, स्वयं अपना सुन्दर मकबरा उसने सिकन्दरेमें बनवाया । इस प्रकार कला-मर्मज्ञ सम्राट् अकबरने कलाके विभिन्न अंगोंको प्रभूत प्रोत्साहन दिया और भारतीय-ईरानी मिश्रतासे एक नवीन मुगल-कलाको जन्म दिया । साथ ही अनेक कलापूर्ण दृश्यकारियाएँ एवं उद्योगोंको सम्राट् एवं उसके अमीरोंसे अभूतपूर्व आश्रय मिला ।

विद्वानों और विद्याका तो वह इतना आदर करता था कि उसके समयमें और उसका आश्रयमें विपुल साहित्य-सृजन हुआ । अयुलक़ज़लका अकबरतामा और आइने-अकबरी, अलबदायुनी और निज़ामुद्दीनके इतिहास ग्रन्थ रचे गये, फ़ैजोकी सूफ़ी कविताएँ, और रहीम एव बीरबलकी हिन्दी रचनाएँ हुईं, स्वयं अकबर भी कविता करता था, नरहरि, गग आदि अनेक हिन्दी कवि भी थे, महामारस तथा कई अन्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंके भी उसने फ़ारसीमें और फ़ारसी ग्रन्थोंके संस्कृतमें अनुवाद कराये । कृष्ण-भक्तिके महाकवि सूर व अष्टछापके कविजन, रामभक्तिके गोस्वामी तुलसीदास और जैन-अध्यात्मके बनारसीदास आदि इसी कालमें हुए । पाण्डे रूपचन्द, पाण्डे राजमल्ल, ब्रह्मा रायमल्ल, कवि परिमल आदि अन्य अनेक जैन विद्वान् और ग्रन्थकार भी उस कालमें हुए ।

अकबरने देशकी सर्वतोमुखी सांस्कृतिक अभिवृद्धि करने और उसे सांस्कृतिक एकत्व प्रदान करनेका स्तुत्य प्रयत्न किया । प्रजाके उत्थानके

अच्छी लगती उसे ही अपना लेता । सभी धर्मों और उनके दिवानों एवं गुरुओंका वह समान रूपसे आदर करता था । परिणाम यह हुआ कि हिन्दू लोग उसके राज्यको हिन्दू राज्य ही समझने लगे और अपने धर्मों एवं आचार-विचार, त्योहार, उत्सवों आदिका स्वतन्त्रतापूर्वक पालन करने लगे । मुसलमानोंके लिए मुहम्मद नाम रखनेका निषेध करना, नवीन मसजिदें न बनवाना, पुरानी मसजिदोंकी मरम्मत भी न कराना बल्कि अनेक मसजिदोंका अस्तित्वके रूपमें उपयोग करना, कुरानको टोकाओं, अरबी भाषा और शरीयत आदिके अध्ययनको हतोत्साहित करना, स्वयं अपने लिए सिजदा करवाना, इस्लामके रोज़ा, नमाज़, हज़ आदि नियमोंका पालन न करना और इनके विपरीत जीव-हिंसा और मांस भक्षणपर कड़े प्रतिबन्ध लगाना, गोधूष वन्द करवाना, सूर्य, अग्नि और प्रकाशकी उपासना करना, हिन्दू, जैनो, पारसिया, पुर्तगाली जैसुइट पादरियों आदिको अपने-अपने धर्मागतन बनाने और धर्मोत्सव मनानेमें प्रथम देना, उन सबके गुरुओंका आदर करना, अन्य धर्मवालोंको यह छूट दे देना कि वे स्वयं मुसलमानोंको भी अपने धर्ममें दीक्षित कर सकें, अपने आचार-विचार, वेप भूषाको बहुत कुछ भारतीय बना डालना, इत्यादि ऐसी बातें थीं कि बहुत मुसलमान उसे काफिर कहने लगे थे, कोई उसे पारसी कहता, कोई जैन, कोई हिन्दू और कोई ईसाई । और वह सब कुछ था और कुछ भी न था ।

तथापि इस विषयमें भी कोई मन्देह नहीं है कि जैनधर्म और उसके गुरुओंका प्रभाव अकवरपर पर्याप्त पड़ा था । उसके शासन-कालके जैनोसे सम्बन्धित जा निम्नोक्त तथ्य प्राप्त हैं उनसे यह भली प्रकार स्पष्ट है । १५७९ ई० से सम्राट्-द्वारा धर्माव्यक्षका पद ग्रहण करनेकी महत्त्वपूर्ण घोषणाके तुरन्त उपरान्त राजधानी आगराके दिगम्बर जैनोंने वहाँ एक मन्दिर निर्माण किया और बड़े समारोहके साथ विम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव किया । स्वयं राजधानी दिल्लीमें नन्दिसंघ और काण्ठामघकी भट्टारकीय

नाईयाँ थीं । पञ्चाभिवा कोक-निवासी ब्रह्मराज बीनी बाबू टोडर ब्रह्मर्षी
 टकसालका एक बचिपारी या बीर ब्रह्मराज का ब्रह्मर्षी का पुत्र भी था ।
 ब्रह्मर्षी ब्रह्मराजसे कहने अनुपम्यके लिए एक विद्यालय वाचनालय विद्यालय
 या बीर अनुपम लखन ५ । ब्रह्मराज बीन-स्तुतीका बीनोद्धार करने
 ब्रह्मरोहपुर्बक ब्रह्मकी प्रतीक्षा की था । इसी ब्रह्मराजसे कहने नामसे
 रामकन्दसे उत्पन्न था। ब्रह्मराजबीनोद्धारका रचना की करवी थी
 इस कल्पमें ब्रह्मर्षी प्रकटा करती हुए कविने लिखा है 'ब्रह्मके ब्रह्मर्षी
 ब्रह्मर्षी ब्रह्मर्षी ब्रह्मर्षी ब्रह्मर्षी कर कर करके ब्रह्मराज ब्रह्मर्षी बना
 द्विपक ब्रह्म ब्रह्मके मुखाद या न लिखकसे वे दिवाके ब्रह्म ब्रह्म हुए
 पृथ्वी या ब्रह्मके ब्रह्मराजसे कहने बहुत बीर ब्रह्म-वाक्य भी मिले
 कर दिवा या कोकिक मन्त्र-पत्र अनुपमकी मुद्रि ब्रह्म ही कही है बीर
 ब्रह्म ब्रह्मर्षी अनुपम करती है । बाबू बीनोद्धार नामसे लिखक ब्रह्म
 एक ब्रह्म लिखकसे द्विपक नामसे ब्रह्मराजबीनोद्धार लिखकना था ।
 ब्रह्म कविने भी ब्रह्मराजके पुत्रात्मके बीर टोडर बाबूके ब्रह्मराजोद्धार
 ब्रह्मराज की है । १५९४ ई । म ब्रह्मराज-निवासी कवि ब्रह्मराजसे ब्रह्मराजसे
 पृथ्वी ब्रह्म बीनोद्धारकबी रचना की थी इस कल्पमें भी ब्रह्म
 ब्रह्मराजकी ब्रह्मराज ब्रह्मके ब्रह्म बीनोद्धारके ब्रह्म बीर ब्रह्मराज
 पुत्रात्मका ब्रह्मर्षी है । बाबूने ब्रह्म लिखकका ब्रह्मराज या बीर
 बिहारीही होती थी । ब्रह्मराज नामसे ब्रह्मराजका एक ब्रह्म ब्रह्मराजका
 नाबीर-नदीका ब्रह्म ब्रह्मराज था । ब्रह्म बीनोद्धारके ब्रह्म ब्रह्मराज
 ब्रह्मराजके बीनोद्धार ब्रह्मराजका पुत्र या बीर ब्रह्म ब्रह्मराज था ।
 ब्रह्मराजका ब्रह्मराज ब्रह्मराजके ब्रह्मराज या बीनोद्धार ब्रह्मराजका
 ब्रह्मराज भी ब्रह्मके ब्रह्मराज या बीर ब्रह्मराज बीनोद्धार ब्रह्मराजका
 (ब्रह्म) थी । ब्रह्मराज बीनोद्धार बीनोद्धार ब्रह्मराज था । ब्रह्मराज ब्रह्मराज
 ब्रह्मराज ब्रह्मराज या बीर ब्रह्मराज ब्रह्मराज ब्रह्मराज बीनोद्धारके लिए

नागौरमें उसके दरबारमें जाया करता था। धार्मिक कार्यों और दानादिमें भी भागमल्ल लावों रुपये खर्च करता था। कवि राजमल्ल उसने महत्त्वपूर्ण पिगलशास्त्रकी रचना करायी थी। दिल्ली, आगरा मथुरा, मन्दावपुर, जोनपुर, मेरठ, हथियान्त, गोरीपुर, श्रोपय आदि अनेक नगर साम्राज्यके कन्द्रीय प्रदेशमें हा जैन धर्मके उत्तम केन्द्र थे। दिल्ली, खालियर, गोरीपुर आदि कई स्थानोंमें तो भट्टारकाय गढ़ियाँ भी स्थापित थीं और इन दिगम्बर भट्टारकाय साधुआका भी समाधि-प्रभाव पड़ा था। जैन जाति इस कालमें व्यापार प्रधान हो चली थी और प्रायः सभी नगर-ग्रामोंमें उनकी छोटी-बड़ी वस्तियाँ थी। स्वयं अवुलफ़ज्जने अपनी जाइन-अकबरीमें जैनाका वर्णन और उनकी मायताआका विवचन किया है। महाकवि बनारसीदासक अथकयानन नामक आत्मचरितसे भी सम्राट् अकबरकी लोकप्रियता, तत्कालीन लोकदशा आदिपर सुन्दर प्रकाश पड़ता है।

इस कालमें अनेक जैन विद्वाना और कवियाने भारताके भट्टारकी, विशेषकर हिन्दी साहित्यकी, स्तुत्य अभिवृद्धि की। कमचन्द्रकी मृगावती चौपई, पाण्डे हृषिकन्दके परमार्थी शोकाशतक एव गीतपरमार्थी, पाण्डे राजमल्लके पञ्चाध्यायी, लाटीसहिता, जम्बूस्वामीचरित्र, अध्यात्मकमल-मार्तण्ड एव पिगलशास्त्र, भट्टारक सामकीर्तिका यशाग्ररास, ब्रह्मराजमल्ल (१५५९ ई०) के हनुमन्तचरित्र, मीताचरित्र और भविष्यदत्त चरित्र, विशालकीर्ति (१५६३ ई०) का रोहिणीव्रतगम, सुमतिकीर्ति (१५६८ ई०) का धर्मपरीक्षारास, विजयदेवसूरिका सोलरासा (१५७६ ई०), कल्याणदत्त (१५८६ ई०) की देवराज वच्छराज चौपई, पाण्डे जिनदाम (१५८५ ई०) का जम्बूचरित्र, ज्ञानसूर्योदय, जोगोरासा और फुटकर पद, कवि परिमल (१५९४ ई०) का श्रीपालचरित्र, मालदेवसूरि (१५९५ ई०) की पुरन्दरकुमारचौपई, उदयरज जतीके राजनीतिके दोहे (१६०३ ई०), विद्याहर्षसूरि (१६०४ ई०) का अजना-सुन्दरी

होकर कुर्बानोंके लिए पशु एकत्र किये किन्तु मूत्रना पाने ही मस्राट्ने वह
 कुर्बानों तुरन्त एकठा दो और पशुओंका छुड़ा दिया । उसने कहा कि
 'मुझे सुख हा इन खुशियोंमें दूसरे प्राणियोंका दुःख दिया जाये यह सर्वथा
 अनुचित है ।' मुनि शान्तिचन्द्रका भी अकबरपर बड़ा प्रभाव था । एक
 वर्ष ईदके त्योहारपर वे सम्राट्के पास ही थे । ईदसे एक दिन पहले उन्होंने
 सम्राट्से कहा कि अब वे वहाँ नहीं ठहरेंगे क्योंकि अगले दिन ईदके उप-
 लक्ष्यमें हज़ारों लाखों निरीह पशुओंका वध होनेवाला है । उन्होंने कुरान
 पढ़ीक़रीसे ध्यातसे यह सिद्ध कर दिखाया कि कुर्बानोंका मांस और खून
 खुदाकी नहीं पहुँचता, वह इस हिस्सेसे प्रसन्न नहीं होता, बल्कि परहेज-
 गारीसे प्रसन्न होता है, रोटी और शाक खानेसे ही रोज़े फ़व्वल हो जाते
 हैं ।' अब अनेक मुसलमान ग्रन्थोंके हवाले देकर उन्होंने सम्राट् और उसके
 उमरावोंके हृदयपर अपनी बातकी सच्चाई जमा दी, अतः सम्राट्ने घाण्टा
 करा दी कि इस ईदपर किसी जीवका वध न किया जाये । यति जिनचन्द्र
 सूरिने अकबरका प्रतिबोध करनेके लिए 'अकबर प्रतिबोधरास' नामक
 ग्रन्थ लिखा था । जिनचन्द्रको सम्राट्ने 'युग-प्रधान'को उपाधि दी थी ।
 मुनि परमसुन्दर भी सम्राट्से सम्मानित हुए थे और उन्होंने 'अकबरशाही
 शृंगारदर्पण' ग्रन्थकी रचना की थी । कहा जाता है कि एक बार शाहजहाँ
 सलोकमक घर मूल नक्षत्रके प्रथम पादमें कन्या-जन्म हुआ । ज्योतिषियोंने
 कन्याक ग्रह उसके पिताके लिए अनिष्टकारक बताया और उसका मुख
 देखनेका भी निषेध किया । सम्राट्ने अवुलफ़ज़ल आदि विद्वान् अमात्योंके
 साथ परामर्श करके मन्त्री कर्मचन्द्र वच्छासतकी जैनधर्मानुसार ग्रहशान्तिका
 उपाय करनेका आदेश दिया । मन्त्रीने चैत्र शुक्ला पूर्णिमाके दिन स्वर्णरजत
 फलशोंसे तोषकर सुपाश्वनाथकी प्रतिमाका समारोहपूर्वक अभिषेक किया ।
 पूजनकी समाप्तिपर मंगलदीप और आरतीके समय सम्राट् अपने पुत्रों
 और दरबारियोंके साथ वहाँ आया, उसने अभिषेकका गन्धादक विनयपूर्वक
 अपने मस्तकपर चढ़ाया और अन्त पुरमें वेगमोंके लिए भी भेजा तथा उक्त

परिचायक हैं। यह कहा करता था कि 'यह नज्जित नहीं है कि मनुष्य अपने दरख्तों पशुओं को क्या पनाव। मामक अतिरिक्त वाञ्छपशुओं के लिए कोई शाय नोजन न होनेपर भी उस मामभक्षणका दण्ड अत्यायुक्त रूप से मिनता है, तब मनुष्याका जिनका स्वाभाविक भाजन मांस पशु है उस अपराधका क्या दण्ड मिलेगा।' कनाई, यहैलिय आदि जीवहिंसा करनेवाले जब नगमन यात्रा रहते हैं तो मामात्रागियाको नगमने भीतर रहनेका क्या अधिकार है? मेरे लिए यह कितने मुख्यकी बात पानी कि यदि मेरा गरीब इसना बड़ा होता कि मय मामाहारी वस्त्र समे ही माकर सन्तुष्ट हो जाते और अन्य जीवोंको हिंसा न करते। जीवहिंसाका राक्षस अत्यंत आघातक है, इमातिर् मेन स्वयं माम खाना छाड़ दिया है।' श्रिया-क सम्प्रघम यह कहा करता था 'यदि मुझा अयम्यामे भी मेरी चित्तधृति अव-जैभी होती तो वदाचित् मैं विवाह ही न करता। किमम विवाह करता? जो आयुमें बड़ी है व मेरी माताय समा है, जो छोटी है व पुत्राय तुल्य हैं और जा ममयवस्था हैं उन्हें मैं अपनी बहनें मानता हूँ।' वस्तुतः जीवहिंसा अकवरका प्रिय न थी। यह अधिकतर मांस नहीं खाया करता था और गोमांस तो छूना भी न था। उसके मांसे गामाम अवाद्य पदार्थ था। वषय कुछ निश्चित दिनोंमें पशु पक्षियोंको हिंसाको अकवरन मृत्यु-दण्डका अपराध बना दिया था। विशेषतः श्मियके अनुसार अकवरका लगभग पूर्ण रूपम मांसाहार-न्याय और अशाकके समान सुद्रादिशुद्ध जीवहिंसा-निषेधके लिए कडा आज्ञाओंका जारी करना अपन जनगुरुओंके सिद्धान्ताके अनुसार आचरण करनेका ही परिणाम थे। हिमका-का बड़ी सजा देना भी प्राचीन जैन और बौद्ध सम्राटोंके अनुसार ही था। इन आज्ञाक्रमे उसकी प्रजाके बहुत-से लोगोको, विशेषकर मुसल-मानाको बड़ा कष्ट हुआ होगा। जैन-धर्ममे प्रभावित होकर ही अपने अन्तिम जीवनमें अकवरने मामाहारका सर्वथा त्याग कर दिया था इसमें सन्देह नहीं कि वर्षा पर्यन्त जैनगुरुओंने अकवरको घण्टो उपदेश

रिसे जिनका इनके बीचभर आयेन ब्रवाव नहा और क्यूमे ब्रवावसे
 अपने निहाल्लोके इति इनका अधिक ब्रवाव कर जिया बा नि यह
 अधिक हो गया कि 'अनवरने बीच-बर्न' बारन कर जिया है । जो 'उम-
 काली' बारनर बारि अन्य अनेक इतिहासकारोंकि अनुसार भी अनवर
 बीच-बर्नर ही पड़ा रहता था । 'अनवर और बीच-बर्न' 'मुरिगर और
 लमरा' 'अनवरक बीच-बुध' बारि गुस्तर्की की इनो उमका बर्नर
 करती है । अतःपुर बीचरीके अनवरने ब्रवावसे अपने बीच-बुधको वीठनेके
 लिए एक विधि तब बीच-बुधको गुप्त करनी अनवरकी को को 'अ-
 तिया'की वीठन कहलाती है । 'बुधक-ब्रवाव'ने अनवरके बारन बारन
 गुप्तकी को इन विद्यावाचस्पतिना ब्रवाव है कि अनवरके अतिवा बर्नका
 बारन करनेके बारन ही गुप्त-बीभी ब्रवाव अनवरही ही को को और
 अतीनी केरना को अनेके ब्रवावने निरीर जिया था । वह पिछोके
 अतीमको ब्रवावना को ऐसे ही गुप्त-ब्रवावने अनेके निरी को अनवरकी
 ब्रवावनेके बारन ब्रवाव अनवर ही ।

ब्रवावके अन्तिम वर्ष गुप्तने की है । १९ -२९ ४ ई. तक अनवर
 अनेक गुप्त ब्रवाव निरीर बना रहा जिन १९ ४ ई. में निम्न-गुप्तने
 गुप्त हो गयी । इस बीचमें अनवरके अन्य गुप्तो—राजगुप्त, गुप्त और
 वाजिपक्षी गुप्त ही गुप्त को । १९ २ ई. में अतीमके ब्रवावने और
 निम्न गुप्तने ब्रवावके बारन निम्न निम्न एवं अनेक निम्न-ब्रवाव
 अनवरके बारन कर जिया । निम्न ब्रवाव निम्न करती को था,
 ब्रवाव को था गुप्त कि अतीमके गुप्त ब्रवावको ही अतीमके बारन
 बना जिया था । अतः १९ ४ ई. में अतीमके बारन-बर्नर कर जिया ।
 निम्न अनवर गुप्त ब्रवावने गुप्तने अतीमके बारन-ब्रवाव और एक
 अतीमके बारन कर जिया निम्न अनवर बना कर जिया और अतीमके बारन
 ही अनवर अतीमके बारन निम्न जिया । इस अनवर एक अनवर १९
 १९ २ ई. को २२ अनवर आनेके बारनना यह अनवर गुप्त ब्रवाव

पातशाह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर इस सप्ताहसे कूच कर गया । वह न केवल अपने कालके ही अथवा केवल भारतवर्षके ही, वरन् सम्पूर्ण विश्वके सर्वमहान् ऐतिहासिक सम्राटोंमें परिगणित हुआ ।

४ जहाँगीर (१६०५-१६२७ ई०)—सम्राट अकबरकी मृत्यु होते ही साम्राज्य-भरमें त्राहि-त्राहि मच गयी थी । कवि बनारसीदास-जैसे अनेक सहृदय प्रजा-जन उसकी मृत्युसे दुःखी हुए । कवि उस समय जोनपुरमें थे । अपने आत्म-चरितमें उन्होंने लिखा है कि 'सारे नगरमें शोर और भगदड़ मच गयी । लोगाने अपनी-अपनी दूकानें बंद कर दीं और घरोंमें किवाड़ बन्द कर लिये, अच्छे-अच्छे वस्त्र, आभूषण और नकद रुपया-पैसा भूमिमें गाड़ दिया, घर-घरमें हथियार खरीदे गये, सब लोगोंने मोटे मामूला कपड़े पहन लिये, धनी-निर्धन ऊँच-नीचमें कोई भेद ही नहीं दोख पड़ता था, सब ही आतंकित एवं आशंकित थे ।' किन्तु पिताकी मृत्युके एक सप्ताह पश्चात् ही नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर पातशाहका शान्तिपूर्वक सिंहासनारोहण हुआ । उत्तराधिकारके प्रश्नपर किसी प्रकारका कोई झगड़ा या मतभेद न हुआ

राज्याभिषेकके अवसरपर सम्राट् जहाँगीरने प्रजाके आश्वासन और अपनी उदारता-प्रदर्शनके लिए द्वादशसूत्री घोषणा की जिसके अनुसार भूमि-करके अतिरिक्त अय्य समस्त कर माफ कर दिये गये । केन्द्र-द्वारा शासित समस्त खालसा क्षेत्रकी सड़कोंके किनारे तथा निर्जन स्थानोंमें सराय और मसजिदें बनवाने, कुँए खुदवाने और लोगोंको बसानेका आदेश दिया गया । आदेश हुआ कि किसी यात्रीका सौदागरी या अय्य माल उसकी बिना अनुमतिके न खोला जाय, यदि उसकी मृत्यु हो गयी हो तो उसकी सम्पत्ति चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान उसके कानूनी वारिसोंके सुपुर्द कर दी जाये किन्तु यदि कोई वारिस न हो तो राज्य-द्वारा इस कार्यके लिए नियुक्त कर्मचारी उस सम्पत्तिको अपने अधिकारमें लेकर उसका उपयोग सराय, तालाब आदिके निर्माण एवं अन्य लोकहितके

धर्मोर्ध्व करे । बह्मदानका विशेष किया गया । अन्ध-बोध-हीन हर
 धर्मानुषिक इष्ट बन्धन जिये नदी । राज्य-धर्मधारियों और राज्यधारियों
 प्रशासी भूमिका बचान् बचान् करतीका विशेष किया गया । राज्यके
 स्वाधिकारधारियों राजाका विना अपने-आप शासित प्रदेशके प्रशासनके
 नाम विराट-अभ्यन्त्र करनेकी मनाही की गयी । मिल बागीरधारियों को
 बागीर सत्तके चनी का गही की उन्ह स्वीकृत किया गया । बगीर
 मोघोंको को राज्यके बाधने ही परो की उन्हे की स्वीकार किया गया ।
 प्रमुख नगरोंके अन्तर्गत नुकसानके आदेश दिया गया । इस धर्मियोंको
 मुक्त किया गया और सत्तके निर्दिष्ट विनोर्ध्व पदुवन कर दिया
 गया । इन नगरोंके बन्धन कहा कि 'मेरे कन्ध-माधर्म के राज्यके
 मान्यता निर्दिष्ट रहेका सत्तके एक-एक मिल इन प्रशासी पूर्ण
 निर्दिष्ट नदी प्रशासी नगर-प्रशासी विशेष है, मेरे राज्यधर्मके मिल,
 नगरधर्म और सत्तके को कोई बाधाहार न करेगा क्योंकि उक्त मिल
 सत्तका मुक्ति-नगर सत्तका हुआ था अतः उक्त मिल किसी भी सत्तका
 मान्यता करना अन्धकार है । मेरे राज्य निर्दिष्ट अन्धकार अपानि अधिक बन्धन
 उक्त इन निर्दिष्टका पञ्चन किया है, सत्तके को नष्ट करी को
 मान्यता नहीं करते वे अन्ध वे की अन्ध राज्यके करीका विशेष
 नीच-हिनाकी निवेदनपत्र पदुवनका करता है । अन्धी इन शारमिक
 मोलकाकीर । अन्धीरने अन्ध राज्यधर्म 'मुक्तके अन्धीर'के अन्धकार
 बन्धन किया है । इनके अन्ध अन्ध प्रशासी यह अन्धकार दिया कि यह
 अन्ध निर्दिष्ट ही अन्ध नीतिका अन्ध अन्धके नीतिक निर्दिष्टका अनुसरण
 करेगा । यों ही अन्ध अन्धके अन्ध अन्ध राज्यधर्मके अन्धकार इन
 प्रशासी कुछ नीचधर्म किया ही करण था । अन्ध अन्धीरकी नीचधर्म-
 के अन्धके अन्धकार और अन्धकारोंकी अन्ध अन्धकार अन्धकार होती है ।
 अन्धकार अन्ध अन्धकार ही अन्धीनि अन्धकार-अन्धकार और अन्ध अन्ध
 अन्धकारके अन्ध नीतिक अन्धकारको अनुसरण रना । राज्यके स्वाधिकारों

और कर्मचारी भी सभी प्रायः पुराने ही चरते रहे, जिनका मृत्यु हो जाती या जो पदच्युत कर दिये जाते उनका न्यायमें ही नयीन नियुक्ति होता थी। इस प्रकार शासनयन्त्रमें प्रायः कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अपने आपको यायपरायण मित्र करनेवाला उमर बड़ा चाव था, इसी उद्देश्यसे मोनेकी एक जमीनसे घेरा घण्टा उमने अपने मजदूरी विद्वत्कीये लटकवा दिया था।

अन्तक मुगल-नरेशमें जहाँगीर ही ऐसा था जो अपने माता-पिताका अनेक मनोतिथी मानते और योगकी पूजा करनेमें प्राप्त हुआ था और जिसका लालन पालन जन्ममें ही अपार वैभवके बीच हुआ था। उसकी शिक्षा-दीक्षा भी विविध एवं नरचकोटकी हुई थी। ब्राह्मण पण्डित, विद्वान् जैनगुरु, जैमुष्ट पादरी, सूफ़ी यति और मुसलमान मौलवी उसके शिक्षक रहे थे। वह मेधावी, प्रतिभाशाली, बुद्धिमान्, दूरदर्शी, भावुक, कलामग्न और विचारमग्न था। उसका आत्म चरित ही उसके अमूल्य ज्ञान और विद्वत्ता परित्यायक है। अपने जातीय स्वभावके अनुसार कभी कभी वह क्रोधमें आया एवं अत्यन्त क्रूर भी हो उठता था, किन्तु साथ ही बड़ा नरमदिल और दयालु भी था और पशु-पक्षिया तकसे बड़ा प्रेम करता था। दर्शनशास्त्रमें भी उस बड़ा प्रेम था, जिनसिंहसूरि आदि जैनगुरुओं और जयस्य नामक ब्राह्मण योगीके साथ वह घण्टों शार्ङ्गनिक विवेचन किया करता था। जिनसिंहसूरि सम्राट् अकबरमें सम्मान प्राप्त जिनचन्द्रसूरिके शिष्य थे। जहाँगीरने उन्हें युगप्रधानकी उपाधि प्रदान की थी। अपने पिताकी भाँति ही वह स्वतन्त्र विचाराका व्यक्ति था और इस्लाम उसका कुलपरम्परा धर्ममात्र था, बहुधा मुल्ला मौलवियोंकी उपस्थितिमें ही अपने दरबारमें वह ब्राह्मण जैन, ईसाई आदि विद्वानोंसे इस्लाम धर्म, पुरान शरीफ और पैगम्बर मुहम्मदकी कटु आलोचना सुनता और जब हमपर मुल्ला-मौलवी लोग क्षुब्ध हो जाते तो उनका उपहास करता। तथापि अकबरकी धर्म-सहिष्णुताकी नीतिकी एक प्रकारकी प्रतिक्रिया उसके

समयमें कुछ हो गयी थी। इसका-बन्ध और मुक्तमन्त्रीय यह बनारस
 बसिक पत्र मिला था। ईश-विश्वके विद्युत्तिलेमें बहने कुछ बन्धों और
 मुक्तिबोधों भी होना। एकोटी भावक स्वयम् विन्दुबोले बहुत-ही मुक्तमन्त्र
 कथाबोले विन्दु कलाकर बघड़ा था यह बगलार बाल होनेपर बहनीर
 में बाधा निम्नान ही कि यदि कोई पवित्रमें देना करेगा तो उसे नाटी बन्ध
 दिया बन्धेगा। वो विन्दु बाधि इसाममें दीक्षा छोटे उन्हें यह बहोका भी
 बता था। एकादि बहरीकभुत बाध बाधिमका कलने एक मुक्तमन्त्र रमनी-
 के बाध विवाद बहरीकी और उसे ईनाई बनानेकी अनुमति दे दी थी। कलने
 समयमें अन्धक नवीन विन्दु एक बैक-बन्धरीका निर्माण हुआ। बैकक बाध-
 बधी बहरीने ही कलने एकाक बन्धिम बन्धों बाधर नवीन मन्त्रि बने थे।
 विन्दु बैक बाधिका बन्धे बन्धोंकी बाधि बन्धोंकी या पूर्व स्वामन्त्र
 को इसकी विधानकी बाधि लोकाकेमें भी बघड़ा मन्त्र मिला था। विन्दु
 बैक बाधिका बन्धे लोकोकी बाधाई करनेकी भी पूरी स्वाधीनता थी।
 मुक्तमन्त्र बाधि बन्धोंके बन्धोंमें बहने बन्धोंके बाधकों विद्या-विशेषक
 कई बहरीयों को बाधि कलने थे। विन्दु बहरीके एक बैकमन्त्र मन्त्रि-
 ने विद्युत्तिले एकाकभार लककका बन्ध मिला था बहरीके बहरीके बोकने-
 का बाध एकाकिक ही बहरीकेका विरोधी हो गया था और विन्धी
 कोककर बोकनेर बन्ध बना था। बाधमें एकाकिक बहरीके कन्धी और
 बन्धे पुन्धी एका बन्धमन्त्र बन्धमन्त्रके लोको पुन्धी की मुक्तमन्त्र
 बोकनेर विद्या के बन्ध था और बहरी बन्ध थे विद्युत्तिले कोक बन्धी बहरी-
 ने एका कन्धी तो एकाकिक बन्धे बन्धे बहरीकी बन्ध मिला। बन्धमन्त्र और
 बहरीके बाध बहरीके बहरी बहरी और बन्धी विन्धीने बाधर विद्या।
 बन्धमन्त्र मुक्त बघड़ाके बाधित थे। इन्हीं बन्ध बाधकों बहरीकेर बन्ध-
 मन्त्रि और बाधा बन्धमन्त्रके बन्धमन्त्र यह ही गया बन्धमन्त्रके बन्ध-
 एकाक विन्धीकी बहरी बहरी एकाकिक भी विन्धीकेर कर विद्या। बन्धमन्त्र
 में बाधमन्त्रकी बहरी बना कर विद्या। बैकके एक बहरी कोरे-के बन्धर

किये गये जहाँगीरके ये अत्याचार राजनैतिक कारणोंसे हुए थे। वैसे जैनोंके साथ वह उतना ही उदार और सहिष्णु था जैसा कि अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ। उसकी धार्मिक नीति अकबर-जैसी उदार न होती हुए भी अनुदार न थी।

उम कालके जैन कवियों और साहित्यकारोंमें भविष्यदत्तचरित्र, भक्तामरकथा और सीताचरित्र (१६१० ई०) के कर्ता ब्रह्मचारी-गयमल्ल, भविष्यदत्तचरित्र (१६१० ई०) के कर्ता माखनपुर-खतौली निवासी पं० वनवारीलाल, सुदर्शनचरित्र (१६०६ ई०) एवं यशोधरचरित्रके कर्ता आगरा निवासी कवि नन्द पचमीप्रतकथा (१६०९ ई०) के कर्ता उज्जैन निवासी कवि विष्णु, भगवतोगीता (१६१२ ई०) के कर्ता विद्या-कमल, कृपणचरित्र (१६१४ ई०) के कर्ता कवि ब्रह्मगुलाल, ढालसागर (१६१५ ई०) के कर्ता गुणसागर, जोधररास (१६१९ ई०) के कर्ता त्रिभुवनकीर्ति, रविप्रतकथा (१६२१ ई०) के कर्ता भानुकीर्ति मुनि, सुन्दर सतसई और सुन्दरविलासके कर्ता कवि सुन्दरदास (१६२३ ई०), मृगाकलेषाचरित्र, टण्डाणारास, चुनडी, ठमाल आदि लगभग बीस-इसकीस रचनाओंके कर्ता पं० भगवतोदास आदि उल्लेखनीय हैं। उपयुल्लिखित कवि नन्दने अपने ग्रन्थमें आगरा नगरकी सुन्दरता, 'नृपति नूरदी शाहि' (जहाँगीर) के चरित्र एवं प्रताप और उसके सुख-शान्तिपूर्ण राज्यमें होनेवाले धर्म कार्योंका सुन्दर वर्णन किया है। उस समय आगरामें होरानन्द मुक्तीम राजधानीका प्रतिष्ठित रईस था तथा शाहजादा सलीमका कृपापात्र और निजो जोहरी था। १६१० ई० में जहाँगीरके बादशाह हो जानेके पश्चात् उसने उस अपने घर आमन्त्रित किया और भेंट दी थी। उस अवसरका रोचक वर्णन भी कवि नन्दने किया है। महाकवि बनारसीदास और उनकी विद्वद् गोष्ठी जहाँगीरके शासनकालमें आगरामें जम रही थी और कवि अपनी उदार काव्यधारा द्वारा हिन्दू-मुसलिम एकताको प्रोत्साहन दे रहे थे तथा अध्यात्मरस प्रवाहित कर रहे थे।

कि वन जातासि उसकी विशेष क्षति नहीं हुई। साम्राज्य अधुण बना रहा इसका कोई विशेष श्रेय जहाँगीरको नहीं है। इतिहासकारोंने उस विराधी तत्त्वोका मिश्रण और मुगल सनातोंमें सर्वाधिक पुद्धिमान् मूर्ख प्रतिपादित किया है।

विहाननपर बैठनेके अगले ही वर्ष (१६०६ ई०) उसके पत्र राज-कुमार खुमरूने विद्रोह कर दिया। अफसरके जीवनमें ही मल्लोके विद्रोहके कारण खुमरूको राज्य प्राप्त करनेका आशा हो गयी था किन्तु उसके प्रधान महायक उसके समुद्र अजाज बोका और मामा मानसिह उस समय अफसरके प्रतापम रूप रह गये और जहाँगीरको उन्हाने वाग्धात हो जान दिया। अथ खुमरूने स्वयं कृच्छ्र माथी और द्रव्य इकट्ठा करके पजाबको ओर कूच कर दिया और अपन पिताक विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जहाँगीरने बड़ी तत्परतासे तुरन्त स्वयं जाकर विद्रोहका दमन किया, खुमरूको बन्दी किया तथा उसके माथियोंका निर्दयतासे माथ महार किया। मियवाँरे गुन अजुनमिहान खुमरूकी सहायता की थी अत उन्हे भी यत्रणा दवर मार डाला, एक इबनाम्बर जैन यति मानसिह भी उसका समर्थक था अत उसके साथियों और अनुयायियोंको राज्यम निर्वामित कर दिया गया। एक वर्ष बाद फिर खुमरूके मन्वघमें एक पङ्क्यत्रका सन्वह हुआ अत राजकुमारको अघा कर दिया गया और राजा अनोरायको मुपुर्दगीमें जीवन भरके लिए नजरकैद रखा गया। १६१६ ई० में उसे उसके पशु आसक्तोंके सुपुद्द कर दिया गया जिसन उसे शहजादे खुर्रमको १६२० ई० में मीप दिया और खुर्रमने १६२२ ई० में दक्षिणमें ले जाकर अपने इस अभागे बड़े भाईको गुप्त रूपसे हत्या करवा दी। राजकुमार खुमरू मुनिशित, सुसंस्कृत, उदार, कोमल हृदय और बड़ा सच्चरित्र था। सभी छोटे बड़े उस चाहते थे। लोकने उसकी मृत्युको एक सन्तका वलिदान माना।

१६०७ ई० में बगालके एक विद्रोही सरदार शेर-अफगनका दमन

बरबसे बिहू बाबाबीरसे बरबसे बरबन्धो हुनुहुईम कोकाची मेका हिनु
 उन उपल्ले बाबा बीर घर बाउबान दोला ही बारी बर । घेर बाउबान्नी
 कुनरी कनी मैदरसमाना बीर बलकी बुचीची बन्नी कनेके बरबान बाउ
 बका बीर दाही बल बुजने बर बिबा बका । मैदरको ईछते ही ब्याहीर
 ऊपर नाहिन ही बका । किन्तु बार बार एक बर एकदा निवारण कएते
 एही बलक १९११ ई के मैदरसमाने बकादने बिबह कर बिबा
 बीर बर बनिबा बुरजहके नाबने इतिहासमे उल्लिख हई । मुरझा बलक
 मुराही हो लीं बा बरब बरबन्धो बुद्धिमती बुद्धिमान पयसीतिनु
 एव काय-बुधम हो बी । बुझाबके एकके बाबिपार बरबन्धर बिबने
 बाउक बरब बाबिबा मेव बने बिबा बापा ई । बीरे-बीरे बल
 राउबान्ने उन्ने बन्ने हाकने के बिबा बीर ब्याहीर बाबिपार बिबहने
 ही बुबा गइने बका । बरबे बुरे एहिने बराब बरबन्धो बल ब्याहीरके
 पुन ब्याहबारेके बाब बिबह बिबा । मुरझाका बल बरबन्धेन एहि-
 बलमे बरब-बुद्धिमाने बापा बा, बरबाने उके घरन बी बी बीर बर
 उने बरब लिबुल कर बिबा बा । बर बर बरबन्धोले नाबने बरब
 बा उबान कबा हुका । उनकी मृत्युके उपल्लो बका पुन बीर मुरझा-
 का माई बाउबान्नी उबान कनी हुका । बाउबान्नीकी पुची बुझाब बाप
 पयबुधर मुरझके नाब बिबहो बी । बर ब्याहीरके बाबन्धने
 बरबान्नी मुरझा बाउबान्नी बीर मुरझ (बाउबान्नी) का बंभुल बर
 ही नई-नई बा । मुरझा मरबने बला बरबार हो कएतो बी बीर
 निबोवर हो उनका नाम बलिख होने कय बा । १९११ से १९२२ ई
 तक बलुन मुरझाकी ही बलका । एही ।

बारम्बने ब्याहीर ईलाको बीर कनेके मैदर पयसीति बर हो
 बका बा किन्तु बीरे बल बरबान्नी ही उन्ने बिब बरब हुका बिबपारी
 मुक बर बी । कनेके बाबिक बिबीको उन्ने कने बाउ-नाम ईकदा बा बीर
 बलुन बर एक कनेके बाबिबान बी कएता बा । बरबन्धे इहने कना

राजनैतिक उद्देश्य था। वह पश्चिमो तटके पुर्तगालियोंसे मैत्री बनाये रखना चाहता था, इसीलिए १६०८ ई० में उसने अपना एक राजदूत गोआ भेजा। किन्तु उस दूतके पुर्तगाली गवर्नरसे भेंट होनेके पूर्व ही इरिलस्तानके राजा जेम्स प्रथमका राजदूत मर जाँन हाकिन्स जहाँगीरके दरबारमें आ पहुँचा, उसने २५००० स्वर्ण-मुद्राएँ सम्राट्को भेंट दी और अपने देशवासियोंके लिए भारतवर्षमें व्यापारिक सुविधाओंकी याचना की। सम्राट्ने उसके साथ बड़ी सज्जनताका व्यवहार किया किन्तु उसका दूतकार्य सफल न हुआ, जिसका प्रधान कारण पुर्तगालियोंका तीव्र विरोध था। हाकिन्स १६०९-११ ई० तक दो वर्ष यहाँ रहा। 'उसके विवरण महत्त्वपूर्ण हैं। तदुपरान्त अँगरेजों और पुर्तगालियोंमें भारतीय सागरमें युद्ध हुआ। पुर्तगालियोंने सम्राट्के भी चार जलपोतोंका अपहरण कर लिया इसपर सम्राट् उनसे रुष्ट हो गया और उसने उन्हें दण्ड दिया। ऐसी स्थितिमें जब अँगरेजोंका दूसरा दूत सर टामस रो (१६१५-१८ ई०) मुगल दरबारमें आया तो वह आसफ़खाँ आदि मन्त्रियोंको कुछ घूस आदि देकर अपने देशके लिए व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करनेमें सहज ही सफल हो गया। टामस रोके अपने वृत्तान्त और उससे भी अधिक उसके सेवक टैरोके लेख जहाँगीरके इतिहास और उसके दरबार एवं दरबारियों आदिके रोचक चित्रणके लिए बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। राजकुमार खुमरूके भी व्यक्तित्व एवं चरित्रकी इन अँगरेजोंने बड़ी सराहना की है।

१६१२ ई० में बंगालके बिद्रोही सरदार उस्मानख़ाँका दमन किया गया और दक्षिणमें अहमदनगरपर आक्रमण किया गया, किन्तु उस राज्यके सुयोग्य हथ्शी प्रधान मलिक अम्बरके कारण विशेष सफलता नहीं मिली। मेवाड़के विरुद्ध भी प्रारम्भसे ही युद्ध चल रहा था। राणा अमरसिंह अपने पिता वीर प्रताप-जैसा दृढ़प्रतिज्ञ एवं चारित्रवान् नहीं था। वह कुछ आलसी और बिलासी था। राज्यकार्य भी कम ही देखता था। मामा-पाहका पुत्र जीवाशह उसका प्रधान था। चूड़ावत आदि सामन्त सरदारोंके

मुगल साम्राज्य—ऊर्ध्वगत

करीबत करनेसे ही राधा बचतन मुनकोने पिछे पुत्र करता था किन्तु जब उसकी बीर उठके रात्मको धर्मि बहती था रही थी । १९१८ ई के पड़वारे मुनिकी धर्मि बोला बीर मुनकोने रात्मको बचीला स्वीकार करनेपर निवृत्त कर दिया किन्तु स्वर्ग ब्रम्हदे राधारमे कपरिबत होने अपने बचकी किटी कपकी मुनकोने देने एवं रात्मकर देवत बनन सर्वथा इनकार कर दिया । नन्हीबीर राधामे पराधामता स्वीकार कर कैनेने ही कपकत प्रमत्त था । बचने उसकी लव धर्म स्वीकार कर ली । मुनके बाब पुत्रराज कनकिहू अपने बानी कोना-काई-महित बचमेरेमे लभ्यके सम्मुख कपरिबत हुआ बीर अपने कपकी बीर देव और ब्रम्हदे बाब स्थापत किया । कनकिहूको पौत्र-पुत्राणे कन-लव बचान किया बनी । मुनमे हो पुत्रराजका बनी निवृत्त ही हो बच था । नन्हीबीरमे बचकिहू और कनकिहूकी स्वेतमर्मरानी मृतिपति किया बचान रात्रबानीमे स्थापित करायी । ठगुपराज औरबदेके कन लव बचमुनके राधा मुनकके निवृत्त बने रहे । करीबतका बोबान बोबामज ही था और उठके लवराज बचका पुत्र बचबराज था बी राधा बचकिहूके बच लव बोबान बना था ।

१९१९ ई के बचराज केन लवक मद्रामारी बीली । कनि बनारसी बचने अपने बचबकिहूके इन बीबन मद्रामारीका बीला देना तबीर बचन दिया है । नारनर्दमे मुद्राणे कैनेनेकाके इन रोना पड़ी लव प्रकन प्रकोप था । लीन-बार कनि लव बचन नारनन केनका बह प्रतीत था ।

इली बच रात्रमुनार लूरनेने निबामधारीकी रात्रबानी मद्रामरनार बचिबन कर किया । नन्हीने प्रमत्त हाकर बके पात्रबारीकी कनि बीर लीन-बकारी कननन दिया । १९१९ ई के ननिराके प्रविष्ट एव मुद्रा मुनिकर बहारीका बचिबन हुआ । इन मद्रामरुन लकनली बचमरनने मद्राबीरने कन मुनिके बीतर ही एक कनिबन बचानी और एक बीनकी मुनली थी । नह नर्न प्रमत्तार बच बचके सिद्ध बचनेके सिद्ध ही

था कि राजा और राज्यका वास्तविक धर्म इस्लाम ही है। पिछले दिनोंके ऐसे कार्योंमें उसके परामर्शदाताओंका प्रभाव भी काफी था। १६२२ ई० में राजकुमार खुसरूका वध हुआ। उसी वर्ष ईरानके शाह अब्बासने मुगलोंसे क्रन्दहार छीन लिया। इस घटनासे जहाँगीर बड़ा क्षुब्ध हुआ, वह स्वयं वीमार था अतः शाहजहाँको एक बड़ी सेनाके साथ क्रन्दहारका उद्धार करनेके लिए आदेश दिया, किन्तु शाहजहाँने स्वयं विद्रोह कर दिया। क्रन्दहार-उद्धारका कार्य बीचमें ही रुक गया। जहाँगीर अत्यन्त क्रोधित हुआ और विद्रोही राजकुमारके दमनमें जुट गया। दिल्लीके निकट १६२३ ई० में शाहजहाँ पराजित हुआ और उसका प्रधान सहायक सुन्दर ब्राह्मण युद्धमें मारा गया। शाहजहाँ राजपूतानेकी ओर भाग गया जहाँ मेवाड़के कर्णसिंहने मित्रता निवाही और उसे आश्रय दिया। तदनन्तर मालवा होता हुआ वह दक्षिण पहुँचा, वहाँसे तेलिगाना होता हुआ बगाल पहुँचा और बगाल एवं बिहारपर उसने अधिकार कर लिया। किन्तु वहाँ भी शाही सेनाने उसे पराजित किया अतः फिर दक्षिण चला गया और वहाँ उसने मलिक अम्बरसे मित्रता की। १६२५ ई० में पिताके साथ उसकी सुलह हो गयी, अपने पुत्र दारा और औरंगजेबको उसने अपने सदाचरणके आश्वासनके रूपमें सम्राट्के पास भेज दिया किन्तु स्वयं उसके सम्मुख उपस्थित होनेका उसे साहस नहीं हुआ और जहाँगीरकी मृत्यु पश्चात् मेवाड़-नरेशके आश्रयमें वा अन्यत्र गुप्तरूपसे ही वह रहता रहा।

१६२६ ई० में साम्राज्यके एक प्रधान सरदार महाबतख़ाँसे, जो शाहजहाँके विद्रोह-दमनमें और उसका पीछा करनेमें सफल हुआ था, ग़लफ़ा नूरजहाँ रूठ हो गयी। उसने अपनी स्थिति भयप्रद जान जहाँगीर और नूरजहाँको, जब वे झेलमके तटपर छावनी डाले पड़े थे, घेर लिया। किन्तु नूरजहाँकी चतुराईसे उसका प्रयत्न विफल हुआ और उसे प्राण बचाकर स्वयं भागना पड़ा। वह भी जाफर शाहजहाँसे मिल गया। १६२७ ई० में कुछ दिन रोगी रहनेके उपरान्त कश्मीरके मार्गमें सम्राट्

बर्दाभीरनी कुपु हो गयी । बर्दाभीरके उतके कट्टरोंमें बड़े खलबल मचा ।
 उनका बड़ेबड़ा गुन गुनक बढ़के ही बाप या पुता या १९१९ ई
 में गुनरे गुन बरबेउनी को लुरेबके ही बर्दाभीर बहर दे दिया गया
 था । हीनरा गुन बाहरका नुरबर्दाभीर बाजार का बड़ बिलकुल निबन्ध
 का जानकर बर्दाभीरमें बनिफाई जान गया और तबहार बोंगिन कर दिया
 गया । बिलकुल बान मन्ना बानबननि को बाबुबर्दाभीर बमुर का बानक
 बाबुबर्दाभीर बनिफाई बावे लुनकके गुन बाबरबकवनी बिबुबनकर बिया
 दिया । बहरका उतका बिराज कावे मन्ना ही बानबननि बने कपी
 कावे मन्ना करवा दिया । बाबुबर्दाभीर गुल्ल बाबरबलीके बिबु बक मन्ना
 और बर्दाभीर बानबननि बादि बनने लकबरोकी बावेय येन दिया कि बर्दाभीर
 बकके बनेक गुन बनेबाबर निबिबन्ध बक कर दिया बावे । बाबरबक
 ही बान बकाकर ईरलके बाबुकी बाबरबे मन्ना मन्ना और लुनक बनेके
 मन्ना बक बनेक बाबुबर्दाभीर कुपुके बाब बहार बिबे बने । बनिफाई नुरबर्दाभीर
 एक बाबरबक बनेबिबि बनीकी बादि बिब बिबली कपी और बनेबाबर
 बाबुबर्दाभीर एक बाबरबके कट्टरोंमें खलबल हो गयी । बाबुबर्दाभीर बावे
 निबिबन्धक गुन ।



अध्याय ४

मुगल-साम्राज्य—अधोगत

शाहजहाँ (१६२८-१६५८ ई०) इस प्रकार अपन भाई मतीजों-के रक्तसे रजित मुगल मिहासनपर आसीन हुआ । आम्फ्रुखी उसका प्रधान मन्त्री था, उसकी बेटी मूमताजमहल जो शाहजहाँकी अत्यन्त चहेती पत्नी थी साम्राज्ञी हुई । शाहजहाँके दाराशिकोह, औरंगजेब, मुराद और शुजा नामके चार वयस्क पुत्र तथा जहाँनारा और रोशनआरा नामकी दो पुत्रियाँ सुसिद्धित, राजनीति-निपुण और राजकायमें सहायक थे ।

राज्यके प्रथम वर्षमें ही जहाँगौरके कृपापात्र वीरसिंह बुन्देलके पुत्र जुझारसिंहने विद्रोह कर दिया । उसको दबा दिया गया किन्तु वह फिर विद्रोही हो उठा । जब शाही सेना उसका पीछा कर रही थी तो १६३५ ई० में गोड़ोंने उसका वध कर दिया और कुछ कालके लिए वीर बुन्देले घात हो गये । १६२९ ई० में खानजहाँ लोदीने अहमदनगरके सुलतानके साथ मैत्री करके सम्राट्के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, उसका भी तत्काल दमन कर दिया गया, चार वर्ष बाद उसने फिर विद्रोह किया और इस बार वह मारा गया । १६३०-३२ ई० में जब दक्षिण विजयके उद्देश्यसे सम्राट् बुरहानपुरमें छावनी डाले पड़ा था तो दक्खिन और गुजरातमें भयकर अकाल पड़ा । इस भीषण दुर्भिक्ष और उसकी सहयोगिनी महा-मारीके कारण ग्राहि-ग्राहि मच गयी और असंख्य मनुष्य कुत्ताकी मौत तडप-तडपकर मर गये । सम्राट्ने कुछ कर माफ़ कर दिये और कुछ द्रव्य दान किया, किन्तु दुष्कालकी भीषणताके समक्ष यह सब महायत्ना

ममय्य जी । १९११ ई में धातुग्राहकी खोली केमन अनुकूलनको कलम
मुद्राग्रमय्यकी अनुमिष्टाने मुद्रा ही पड़ी । उसके पक्षमय्य १४
कलमों हुई थी । लोकदीक्षित बहादुर बाबरा बाबिर बाबा जीर १९१२
ई के ही अपनी द्विज पत्रिकाके पत्रको सुप्रसिद्ध रखनेवाले अनुमूर्त
स्मारक पत्रमय्यका निर्माणकाय करने शारम्भ कर दिया ।

१९१२-१५ ई के बीच धातुग्राह ईसाइयोंपर आन्तरिक मुक्ति का
जीर विरोधकर बलात्कृत हुएकी प्रेषणमें विप्लव नुर्वाहिकोंपर करने की
आपत्तार मिले । वे आत्माचार अनुष्ठित की न थे । नुर्वाहिकी मन्त्र
कलम बर्माण एवं द्विज जीर मुकलमान कीमति ही विरोधी थे जीर मुके
आपत्तार करी थे । १९१२ ई में बाही केमने मुद्राकीका पैर कलम
जीर नुर्वाहिकोंका वह प्रेषणमें आन्त कलम ही कर दिया । इसी वर्ष
करने बापकी तथा आत्माके अन्य बाबिर कलम द्विज-मन्त्रियोंकी
विरोधका आनेष बापी दिया जिसका निर्माण शारम्भ ही मुद्रा का तथा
परीष मन्त्रियोंके निर्माणपर प्रतिपन्न कला दिया । केमन बापकी कीमने
ही कलम बाबिर कर दिया कलम ।

१९११ ई के ही धातुग्राह कीमने पत्रिका मुद्राकीका
पत्रिका कलम करनेकी कोर कलम दिया । अनुकूलनकरका मुद्राका मन्त्री
मन्त्रिक मन्त्र १९१५ ई में ही कर कला का । कलम मुद्रा जीर कलम-
विप्लवकी कलमकी स्मरणकीका का । कलम १९१२ ई में कलम विप्लवका
जीर मुद्राकी कीमने पत्रिकाका मुद्रा जीर अनुकूलनकीका कीमनेका कलम
केने जीर अनुकूलनकीका विप्लवकीका कलम करके की आत्माके विप्लव
में कलमकी थी । इन कलमपर धातुकी कीमने विप्लवकी कलम कलम
बाबिरकी मुकलमान बाबिर करके कलम पत्रिका कीमने कलम विप्लव
मकल किया । १९१५-१६ ई में कलमकी कीमने जीर कीमनेका
मुद्राकीके कलम कलम कीमनेका स्मरण करनेका कलम कीका । कीमने-
मुद्रा-बाबिर की कलम-जीमने कलम कलम मुद्राकी कीमने कलम

स्वीकार कर ली, किन्तु बीजापुरके साथ निरन्तर युद्ध चलता रहा। अन्ततः १६३६ ई० में बीजापुरने भी सम्राट्की शर्तोंपर सन्धि कर ली किन्तु वह उसके पूर्णतया अधीन नहीं हुआ। उसी वर्ष राजकुमार औरंगजेब दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया गया। खानदेश, वरार, तेलंगाना और दौलताबाद प्रान्त उसके धामनमें थे और १६४४ ई० तक वहाँ उसने शासन किया। वह वहाँ निरन्तर युद्धोंमें सलग्न रहा। अन्तमें सम्राट् उससे छट हो गया और उसे कुछ कालके लिए बेकार एवं तिरस्कृत रहना पड़ा। १६४५ ई० में वह गुजरातका सूबेदार बनाया गया और १६४७ ई० में वल्लभ और बदरशाका सूबेदार बनाकर भेज दिया गया। मम्मव-तया यह औरंगजेबकी बढ़ती हुई शक्ति और उसके स्वभावकी देखकर उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी भाई दाराके सकेतपर ही हुआ था जो कि उस समय पिताका सर्वाधिक कृपापात्र था।

१६३८ ई० में कन्दहारपर वहाँके शासकके विष्वासघातसे मुगलोंका फिर अधिकार हो गया था। १६४५ ई० में राजकुमार मुराद और सेनापति अलीमर्दाने वल्लभ और बदरशापर भी अधिकार कर लिया था। किन्तु औरंगजेब उन प्रदेशोंको अधिकारमें रखनेमें असफल रहा। वल्लभ और कन्दहार दानो ही मुगलोंके हाथमें निकल गये। १६४९ ई० में कन्दहारपर फिर आक्रमण किया गया किन्तु ईरानियोंसे पराजित होकर मुगल सेना फिर लौट आयी। इन असफलताओंके कारण औरंगजेब और अधिक तिरस्कृत हुआ। १६५२ ई० में फिर कन्दहारका घेरा डाला गया, इस बार भी असफलता ही मिली। तीसरी बार १६५३ ई० में दाराको भेजा गया वह भी असफल रहा। इन मध्य-एशियाई प्रदेशोंको अधिकारमें रखने या हस्तगत करनेमें शाही-कोषका विपुल धन्य व्यय हुआ और अन्ततः विफलता ही मिली। मुगलोंने कन्दहारको लेनेका फिर प्रयत्न नहीं किया।

राणा जगतसिंहने चित्तौड़ दुर्गका नवीन परकोटा निर्माण कराना शुरू किया था किन्तु दाहजहानि उसे नष्ट करवा दिया। राणाके विद्रोहके

शाहकी मृत्यु होनेसे औरगजेबके हाथ अच्छा अवसर आया। उसने मीरजुमलाको साथ लेकर बीजापुर राज्यपर तुरन्त आक्रमण कर दिया। १६५७ ई० में बीदर और तदुपरात कल्याणपर उसका अधिकार हो गया। बीजापुरकी पूर्ण पराजय निकट ही थी कि शाहजहाँकी आज्ञासे उसे इस सुलतानके साथ भी सन्धि करनी पड़ी।

उसी समय शाहजहाँकी गम्भीर बीमारीका समाचार ज्ञात हुआ और औरगजेब दक्षिणकी समस्याको वहीं छोड़ उत्तरके लिए चल पड़ा। दक्षिणकी अपनी इस सूबेदारीमें उसने मीरजुमला और मुर्शिदकुलीखाँ-जैमे नवीन योग्य सहायक पैदा कर लिये थे और धन और शक्तिका भी सचय कर लिया था। उसकी बहन रोशनबारा उसकी पक्षपातिनी थी। किन्तु सम्राट्का विशिष्ट स्नेहपात्र उसका ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह था और उसे ही वह अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, वही बहन जहाँनारा भी उसीकी पक्षपातिनी थी। राजकुमार मुराद और शुजा भी शक्तिशाली सूबेदार थे और राज्यके दावेदार थे। चारो ही राजकुमार बीर यादवा और अपने-अपने प्रदेशके प्रायः अर्धस्वतन्त्र स्वामी थे। उन सबके अधीन अपनी-अपनी पर्याप्त सेना थी। किन्तु जब कि दाराशिकोह उन सबमें अधिक विद्वान्, वेदान्तो आध्यात्मिक एवं सूफी विचारोंका प्रेमी, उदार, सज्जन और जनप्रिय था, औरगजेब कट्टर सुन्नी, धर्मान्वि मुसलमान, अनुदार, छल-कपटमें कुशल एवं कूटनीतिज्ञ था, मुराद शराबी था और शुजा सामान्य बुद्धिका व्यक्ति था। शाहजहाँकी आसन्न मृत्युका समाचार पाते ही शुजाने बगालमें और मुरादने गुजरातमें अपने-आपको सम्राट् घोषित कर दिया। राजधानी आगरामें दाराने सारे अधिकार अपने हाथमें कर लिये। अब औरगजेबने खुला विद्रोह कर दिया और शाहजहाँकी आज्ञाके विरुद्ध मीरजुमलाको बन्दीगृहमें रोक रखा। तीनों राजकुमार ससैन्य राजधानीकी ओर चल पड़े। औरगजेबने मूर्ख मुरादको भुलावा देकर अपनी आर मिला लिया। उज्जैनके निकट धरमत नामक स्थानमें १६५८ ई० में

जब बीबीबी बेगाबोंकी ठगारकी ओरके राया बचकनानिह १८५१ और
 आधिकारिकी रोका, कुछ हुका और आदी सेवा पराजित हुई। इन मुजबे
 राजकुतोंकी ही अति अधिक हुई। १८५१ राजा बेराज कीकर माव गया
 किन्तु अली और राजीकी बलका मुनकर धनुका लाकना करकेके निर
 फिर जब पठा इन बीबीबी राजबाबोंकी सेवा अन्तरके निररत पहुँच गयी
 डिम्बे ८ बीक दुर्ग राजकुतने बापकिबोहने कनेन्य कनध प्रतिरोध किया।
 इनकी ओरके राजपुत्र प्राय इबैलीर रनकर लख। बाप अली बापकी
 मुनके बारन पराजित हुका और आधिकारिकी ओर माव गया। मुल
 औररजेबने आताता आकाश कर दिया और दुर्ग एवं राजबाबीकी
 अलपत काके निरर राजबाबीकी निकैने ही ईश कर दिया सदा १९९४
 ई में कतकी मुल हुई। मुलकी ओ औररजेबने कनेन्य दली करके
 आधिकारिकी दुर्गमें ईश कर दिया सदा तीन वर्ष बाद ठगका लख कर
 दिया गया। मुका पराजित होकर अलपतकी ओर माव गया और
 सदा अलपतकीन कनका अपरिहार लख कर दिया। औररजेबने स्वर्ग
 करके पुन पुनरार मुलतली, डिम्बे पुनरा का किया का आकाश
 अलीमुहने कल दिया और १९ ९ ई में कतकी मुल हुका कप गी।
 बापके पुन मुलतली डिम्बेने राजबाबीके किन्तु राजाकी घरन की की किन्तु
 राजाके पुनने निरालाकन करके कते औररजेबके किन्तु कर दिया।
 मुनेअलीकी आधिकारिकी मुने ईश किया गया और कनबाई केकर मार
 जाल्य गया। बापके छोटी पुन निरकिरिबोहकी और मुलके पुन अतिर
 बचकनी, ओ अलपतक ने प्राय-प्राय ही दिया गया और स्वय अली एक-
 एक पुनीके प्राय कनका किया कर दिया गया। बापकिबोहका अलपत कीका
 किया गया वह राजाके निरर ठगकर कनका और फिर मुलतली पहुँच
 और कुछ सेवा कनका करके अलपतकी ओर गया। राजकुतोंकी बीबी कने
 अलपत की अलपत न मिली। वह पराजित होकर फिर माव और अनेक
 निररिषा एवं अलपत केकने हुए, अनेक निरालाकनोंका निरर होठे हुए

अन्ततः वह पकड़ा गया। अपनी प्रिय पत्नी नादिरा बेगमकी मृत्युसे वह विक्षिप्त-सा हो गया था। औरगज़ेबने उसकी जितनी बन सकी दुर्गति की और अन्तमें उसका वध करवा दिया। इस प्रकार शाहजहाँका राज्यकाल उसके जीवनमें ही समाप्त हो गया, उसकी मन्ततिका बहुभाग भी नष्ट हो गया। बूढ़े सम्राट्ने आगराके किलेमें अपने प्रिय ताजमहलकी ओर दृष्टि लगाये हुए ही अत्यन्त दैन्य, अपमान, शोक और सतापमें जीवनके शेष दिन बिताये, और मृत्युके उपरान्त ताजमहलमें ही मुमताजकी वसलमें वह दफना दिया गया।

शाहजहाँने ३० वर्ष पर्यन्त शासन किया। वह अत्यन्त धनी और ऐश्वर्यशाली था। जवाहिरात समग्रह करनेका उसे बड़ा चाव था। अपने दरबारकी शान शौकतको उसने चरम शिखरपर पहुँचा दिया था। कोहेनूर हीरा उसके ताजकी जामा बढ़ाता था और मुप्रमिद्ध रत्नजटित मयूर-सिंहासनपर बैठकर वह दरबार करता था (इस सिंहासनकी कल्पना एक जैन-कथामें वर्णित विमानसे ली गयी बताया जाती है)। आगराके किलेके कई विशाल तहखाने मोने-चाँदी और हीरे-जवाहरातसे पटे पड़े थे। अपने उस अतुल वैभव-प्रदर्शनमें उसे बड़ा आनन्द आता था। स्थापत्यकलाका भी वह बड़ा प्रेमी था और भारी निर्माता था। दिल्लीका लालकिला जिसके दीवानेखानाकी छत चाँदीसे मढ़ी थी, दिल्लीकी विशाल जामा-मस्जिद, सुन्दर चाँदनीचौक जिसके बीचने दोनों ओर वृक्षोंसे ढकी नहर बहती थी, आगराकी जामामस्जिद, आगराके किलेकी मोतीमस्जिद, दीवानेखाना, सम्मनचूर्ण आदि इमारतें और सबसे अधिक विश्वके आश्चर्योंमें परिगणित ताजमहल इस सम्राट्की अमूल्य कृतियाँ हैं। अपने भवनोंमें सगमर्करका उपयोग करनेका उसे बड़ा चाव था। शिल्प-स्थापत्यकी मुगल-कलाके विकासमें उसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार चित्रकलाका भी अच्छा विकास हुआ, उसके समयके चित्र अधिक सजीव हैं। उसके प्रथममें अब्दुलहमीद और खफीखाने अपने इतिहास-ग्रन्थ भी लिखे।

मुगल-साम्राज्य—अधोगत

जाता। वैसे राज्यके अनेक अधीन राजपूत राजाओं, सामन्त सरदारों, हिन्दू एवं जैन पदाधिकारियों, सेठों और व्यापारियों आदिको सहन करना ही पड़ता था। उनको तथा बहुमूल्यक प्रजाको सन्तुष्ट रखनेके लिए सामान्यतया अपने पूर्वजों द्वारा प्रचलित सहिष्णु और उदार नीतिको भी वह वरतता ही था। जब वह अपने पिताके समयमें ही गुजरातका सूबेदार था तो उसने वहाँके जैनोको प्रार्थनापर जीवहिंसा निषेधक कई फरमान निकाले थे, चाहे उनके लिए वहाँके धनी सेठोंसे राजकोषके लिए विपुल धन लेकर ही वैसा किया हो। कहा जाता है कि आगराके कवि बनारसीदास (१५८६-१६४३ ई०) शाहजहाँके मुसाहब थे और उससे साथ बहुधा शतरंज खेला करते थे। अपने अन्तिम वर्षोंमें जब उनकी वित्तवृत्ति राज-दरबारसे विरक्त हुई तो सम्राट्ने उन्हें दरबारमें उपस्थित न होनेकी सहर्ष अनुमति दे दी। बनारसीदास न केवल श्रेष्ठ कवि, प्रकाण्ड विद्वान् एवं अत्यन्त धार्मिक थे, वे एक मानवतावादी विचारक भी थे। उनके नेतृत्वमें आगरामें दसियों उच्चकाटिके विद्वानोंकी विद्वद्गोष्ठी होती थी। पाण्डे भूपचन्द, चतुर्भुज वैरागी, भगवत्सीदास, धर्मदास, कुँवरपाल, जगजीवन आदि उन विद्वानोंमें उल्लेखनीय हैं। दिल्ली, लाहौर, मुल्तान आदि विभिन्न प्रमुख नगरोंके विद्वानोंसे इस सत्सङ्गका सम्पर्क बना रहता था। बाहरके भी अनेक विद्वान् समय-समयपर वहाँ आते रहते थे। महाकवि तुलसीदास और सन्तकवि सुन्दरदासके साथ भी बनारसीदासकी साहित्यिक मैत्री थी। इसी समय शान्तिदास नामके एक नग्न जैनमुनिका भी आगरामें आना पाया जाता है। वैसे उत्तर भारतमें नग्न जैनमुनि उस कालमें घिरले ही थे, उनका स्थान दिगम्बर भट्टारको, ग्रह्यचारियों और क्षुल्लकोने ले लिया था। इसी शासनकालमें स्वयं बनारसीदासके अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके अतिरिक्त उनके विभिन्न साधियों और कवि सालिवाहन, पाण्डे हरिकृष्ण, भट्टारक जगभूषण, पाण्डे हेमराज, यति लूणसागर, पृथ्वीपाल, वीरदास, कवि सघास, मनोहरलाल, खरगसेन, रायचन्द्र आदि अनेक श्वेताम्बर-

विष्णुभक्त भट्टारकों, यक्षियों तथाकथितों और गृहस्थ विद्वानोंने कामन्दकके विविध श्रेणीमें संस्कृत बना हिन्दी वगैरह एवं वगैरह अनेक यज्ञिक एवं कौटिलिक कर्मोंकी रचना की थी । सिन्धुदेमें स्वयं कामन्दकके नामसे ही माहजदिक सम्भव ही लैनीला यह प्रसिद्ध कामन्दकभिर बना वा जो कई यज्ञिक भी कल्पगुहा है । यह मन्दिर राजा के नामसे लैनीकों एवं अन्य कर्मकाण्डोंकी शर्मानापर गभादकी अनुमति एवं प्रपयपुर्णक बना वा ।

औरंगाज़ेब (१६५८-१७०७)—१६५८ ई में आग़ापर बकि-
नार बग़ी हुई औरंगजेबने अपने आपकी सत्ता पर पोषित कर दिया था
और १६५९ ई में दिल्लीमें अपना विधिकर राज्याधिकार करके लख-
नौने सिवा सत्ता की सभी वृद्धों को हटाकर लखनौ-सुल्तान के रक्तों को हटा दिया
इस आक्रमण के बाद सत्ता को आग़ापर लखनौ में ५ वर्षों तक
राज्य करने के बाद १६५९ ई में लखनौ की सत्ता को हटा दिया । अतः इस
समय सत्ता को लखनौ और लखनौ अपने-आपने छोटे-छोटे लखनौ बसुल
करा गया ।

इसमें लगेष्ट नहीं कि और-तरेव और-बीर कुछन सेनानासक बोझ
 राखनीति-मनु कुरुनीमिला नुच करीच करव नासवान और क्रिपाधीन
 था । यह एक बलि बीम्य धामक ब्रजावधानी व्यक्ति धातिपायी और
 मरुत् नरीच बा- किन्तु बाव ही मरुत्पयी कनी कम्पी कुर्त और बर्मान
 बी बा । बावसे कभी-कभीकि हुरपरी यह मक्का ही लंवार करता था
 स्नेह और धकिता नहीं । स्मित ब्रजावो और धातिमने बने कीर्त हेम
 नहीं था बरन् यह कनका बिगोकी ही बा पक्षि स्वर्न मुनिविज एव
 बहुविज था । नीरम और अनुवार हो था ही यह परचम कवदिपुनू बी
 था । यह बहुर मुनी नुनकमल था और कनसे बर्मेका पक्ष कनके हुरकी
 नवीतिरि था कनके बिलमें यह बारावा था नवी बी कि कनके पूर्वर्त-
 की नुनकापूर्व कीति एवं कनकापक्ष कविपद कनारनाके बारव पालव
 मूलमवाधिर दिनु कविर्तकी नैक्य धाति और ब्रजाव कव्यधिक था

गया है तथा ईरानियों और शियाओंका प्रभाव भी बहुत बढ गया है, और इन सबके कारण इस्लामधर्म और मुसलमानोंकी सत्ता खतरेमें पड गयी है, ये सब विरोधी प्रभाव मिलकर शनै-शनै उसे हडप लेंगे, अतएव इस्लाम और मुसलमानोंकी रक्षा उसका प्रथम ध्येय है, जो अपनी शक्तिका यथाशक्य अधिकसे अधिक विस्तार करने, मुसलमानेतर धर्मों और जातियोंका अत्याचारपूर्वक दमन करने और इस्लामकी प्रभावना एवं प्रसार करनेसे ही सिद्ध होगा। उसकी दृष्टिमें साध्यका महत्त्व था, साधनोंके औचित्यका कोई मूल्य न था। राज्य प्राप्त करनेके प्रयत्नमें ही उसने अपनी यह प्रवृत्ति चरितार्थ कर दी थी। अपनी अभीष्ट प्राप्तिके लिए स्वयं अपने पिता और राजाका बन्दा करना, अपने सगे-सम्बन्धियोंका क्रूरतासे बध करना, विराधियोंको घोर यन्त्रणाएँ दकर नष्ट कर डालना, विश्वासपात, ढाग, छल कपटका भी अवसर पडनेपर आश्रय लेनेसे न चूकना, आदि उसके काम प्रारम्भसे ही सर्व-विदित थे और उसको जीवन-नीति एवं शासन-नीतिके परिचायक थे। किसी भी व्यक्तिका विश्वास करना वह जानता ही न था, विशेषकर बड़ेसे बड़े हिन्दू सरदारोंका भी वह सनिक विश्वास नहीं करता था और उनको अपमानित करनेके किसी अवसरको तो चूकता ही न था। अकबरका उदार, सहिष्णु, समदर्शी एवं विवेक और बुद्धिमत्तापूर्ण नीतिकी प्रतिक्रिया जहाँगीरके समयसे ही होने लगी थी, किन्तु बहुत हलके रूपमें। शाहजहाँके समयमें उसने और अधिक बल पकडा किन्तु औरगजेबने तो उसे चरम शिखरपर पहुँचा दिया। उसने यथा-सम्भव अकबरकी नीतिकी पूर्णतया उलटनेका प्रयत्न किया। फलस्वरूप अकबरकी नीतिके कारण जिस साम्राज्य-शक्तिका इतना सुदृढ़ निर्माण एवं अद्भुत विकास हुआ था कि वह बावजूद इन प्रतिक्रियाओं, मूर्खताओं और बय अनेक दोषा एवं भूलोंके डेढ़-सौ वर्ष पर्यन्त सर्वप्रकार अधुण्ण बनी रहें और उसके आगे भा और डेढ़-सौ वर्ष पर्यन्त बस-स्थायित्वकी रक्षा कर सकी, औरगजेबकी नीतिके कारण वह साम्राज्य शक्ति उसके जीवन-

[illegible]

बीरबहेबरा राजस्वकार की मालीयत विवरण दिया जा सकता है १९५८ के १९८१ ई तक यह बतायी जा रहा और मुम्बईवा बहिनी राजस्वकारोंमें सम्मिलित रहा १९८१ के १९९७ ई के अपनी कृषि वर्गों यह बहिनी बाण्यों यह और बहिनी राजस्वकारोंमें सम्मिलित सम्मिलित रहा ।

विद्यार्थक समय करते ही कलमें व्यवसायकार कुछ योग्यताई की विभिन्न
मुक्तपत्रिका समयमें ८ राज्य-करी एवं व्यवसायीकी जानकारी जारी कर ना।
यसुद्ध वह समय सामान्यके विभिन्न जानकारी व्यवसाय करवा कुछ ही समय
में ही १९९५-९६ ई. में बड़ा उपयोग हो गया। अतएव कलमें
नियमित करोंकी मर्यादा वह समय स्वाभाविक ही थी, न ही हो जाती तो
ही कलमें करोंका व्यवसायीविरुद्ध बनाना करना नद्विज ही था। इसलिए
उत्पादकीय दृष्टिकोणकारके व्यवसायकार तो इस माफ़ीका भी कोई परिचाय
न हुआ स्थानीय सरकार बन करीबो मर्यादा फिर भी बनाना करते थे
कोर जारी की करते थे।

अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके विरुद्ध औरगजेवकी सफलतामें उसका प्रधान सहायक मोरजुमला रहा था, किन्तु इसी कारण वह अत्यन्त शक्तिशाली भी हो गया था। अब औरगजेवने उसे मुद्दूर वगालका सूवेदार बनाया और गुजाके अन्त करने एवं आसामका दमन करनेका भार सौंपा। गुजाका तो सपरिवार मोरजुमलाके प्रयत्नसे नाश हो गया किन्तु आसामके युद्धमें १६६३ ई० में वह स्वयं भी मारा गया और औरगजेवका एक कण्टक दूर हुआ। उसके स्थानपर उसने अपने मामा शाहस्ताखाको नियुक्त किया जो लगभग ३० वर्ष तक उस पदपर रहा। १६६० ई० में शाहस्ताखाको शिवाजीका दमन करनेके लिए दक्षिण भेजा गया था, किन्तु पूनामें उसको उपहासास्पद असफलताके कारण वहाँसे बुलाकर फिर वगाल भेज दिया गया।

दक्षिणमें १६५७ से १६६० ई० पर्यन्त मुगलोंकी ओरसे प्रायः शान्ति रही थी जिसका लाभ उठाकर बीर शिवाजीने बीजापुर-नरेशकी हानि करके अपना राज्य जमाना प्रारम्भ कर दिया था। शाहस्ताखाके उपरान्त राजा जयसिंह और शहजादा मुअज्जुम शिवाजीके विरुद्ध भेजे गये। जयसिंहके परामर्शपर १६६५ ई० में शिवाजी आगरे भी आया किन्तु सम्राट्की विद्वत्सहायता नीतिका आभास पाकर निकल भागा। १६६७ ई० में औरगजेवने राज्यके महान् स्तम्भ जयपुर-नरेश राजा जयसिंहको सम्भवतया उसीके पुत्र कीरतसिंहसे विपक्षित करवा डाला। जयसिंहके उपरान्त शहजादेके सहायकके रूपमें जोधपुर-नरेश जसवंतसिंहको शिवाजीके विरुद्ध भेजा गया। वह भी असफल रहा, बल्कि शहजादेने स्वयं घूम लेकर सम्राट्से शिवाजीकी रानाकी पदवी भी दिलवा दी। शिवाजीकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी, साम्राज्यके सूरत, खानदेश आदि प्रदेशोंको भी उसने कई बार लूटा। साम्राज्यकी दामन-व्यवस्था इतनी शिथिल हो चुकी थी कि सम्राट् शिवाजीका कुछ न बिगाड़ सका। १६७४ ई० में शिवाजीने अपना राज्याभिषेक करके स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया।

१९५९ ई. में मधुप शिकरी बीजक बाटके केमूल्य में बाटने पर्यन्त
बिडई कर दिया था और बाटके कीमतीकरण की मार दिया था। दोनों चीजों
के मूल्यों के अन्तरों की दृष्टि से अत्यन्त बड़ो अन्तर था।
१९८१ ई. में बाट फिर बाटके के और फिर बाटके के मूल्य में अन्तर
दिया। १९८८ ई. में बाट फिर एक बार फिर बाटके और बाटके की
मूल्य पर्यन्त चला रहा। इसी बीच १९९१ ई. में बाटके के बाटके
मूल्य के मूल्य की मूल्य और बाटके के मूल्य का अन्तर लगा
कर बाटके के मूल्य कर दिया, ऐसा कहा जाता है।

१५ २ ई के मास्कीकी सत्तामित्रीने बालक निरोह निवा । एउ
बालके अनेक छोटी बालिकाके बीच के छोटी देवा बाटी बलि ब्रह्म
कन निरोहवर कनू कर गवा । अपने हाथके कुटानकी बावलीके छोटी
बाली करवाटीकी देकर भी बीरबहाब अपनी बलि कर न कन गवा ।

इसी समयके सम्बन्ध कोषान्त लेखके पृष्ठ ३३०-३३१ पर
लिखा। आखिरी पैलाका एक बड़ा भाग इस वर्षों तक नहीं उलझा रहा। यहाँ
वसन्तसिंह तथा अन्य अनेक सेनापतिगणों ने भी यहाँ यहाँ सिन्धु का विजय
रही। १९७४ ई. में सलाम्द स्वर्ण नहीं गया और इन्वैरिबल दमन किया,
सिन्धु बाली १९७८ ई. तक ही आकर स्थापित हो गया। १९७९ ई. में
कोरबोवने सिन्धीवर अन्तर्गत किया और कुछ ठीक-ठाकुरक वर करवा
रिखा। इन मुद्दों अन्तर्गत सिन्धु विरोध-नीतिविरोध किया या और नहीं
कभीवर युद्धकाल वकाल अन्तर्गत कर दिया या।

[illegible]

दुर्गादासके प्रयत्न और कोशसमे रानों और राजपूत गुरदित मारवाट पहुँच गये। औरगजेव बहुत दुःख हुआ और उसने उनके पकड़नेके लिए सेना भेजी। मारवाटके सेनापति दुर्गादास राठौट, उसका भाई मुकुन्दयास-खोची तथा अन्य सरदार अपने राजा और राज्यको रक्षाके लिए कटिबद्ध हो गये। उन्होंने अन्य राजपूत राज्योंमें भी सहायता माँगी। समय ऐसा था कि औरगजेवकी घातिका नीति और राजपूत विरोधी चालाम समस्त नरेश असन्तुष्ट हो उठे थे। राजाओंका अब पहले-जैसी आन्तरिक स्वतन्त्रता नहीं रही थी, औरगजेव उनके राज्योंका भी सीधे केन्द्रसे ही शासन करनेका इच्छुक था। जयसिंह और जसवंतसिंह-जैसे साम्राज्यके प्रधान स्तम्भ और दक्षिण-सम्पन्न एवं प्रभावशाली नरेशोंका एक-एक करके उसने अन्त करवा दिया था। जसवंतसिंहकी मृत्युका वह पुरा लाभ उठाना चाहता था और मारवाटपर पूर्ण अधिकार करना चाहता था क्योंकि वह देश मालवा और तदनन्तर दक्षिणवर्ग मार्गके बीचमें पड़ता था। उसकी नीयत और इरादे छिपे नहीं थे। अतः समस्त राजस्थान स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके लिए उठ खड़ा हुआ और स्वयं मेवाड़ नरेश राणा राजसिंहने युद्धका नेतृत्व ग्रहण किया। औरगजेव जिसे मात्र जाघपुरक राजाविहीन राठौर सरदारोंका विद्रोह समझता था उसने एकाएक जयपुरको छाड़ प्रायः सम्पूर्ण राजस्थान-द्वारा घेरेपित भीषण युद्धका रूप ले लिया। सम्राटने अपनी सारी सैन्यशक्ति केन्द्रित करके अजमेरमें डेरा डाला और स्वयं युद्धका संचालन किया। किन्तु इसी बीचमें उसका पुत्र राजकुमार अकबर राजपूतोंसे मिल गया। इससे सम्राट् अत्यन्त चिन्तित हो उठा। अपने छल-कौशलसे उसने राजपूतोंको विवश कर दिया कि वे राहजादेको अपने आश्रयसे निकाल दें। लाचार अकबर दक्षिणकी ओर भाग गया। इधर और राजपूत युद्धोंमें सम्राटकी भारी क्षति कर रहे थे। अन्ततः १६८१ ई० में औरगजेवने राणाके तथा राजपूतोंके साथ सन्धि कर ली। राजपूत राज्यों-को जजियासे भी मुक्त कर दिया, उनकी सत्ता भी पूर्ववत् स्वीकार कर

भी और अन्य साधारण चीं भी बननी लग गयीं । जन्म करने में इन
 बालक-बालिका साधारण यह भी था कि राखसालेरी देहा-देवी कुटुम्बवाले
 बालक-पुत्र और उनके पुत्र जनमान कुटुम्बमें भी स्वागत-मन्त्र और पिता
 का । एक कारण दक्षिण के साथ बलवान् बालक-पुत्र बालक-पुत्र निश्चय
 ही बना था । अन्तर दक्षिण की और जान गया था और बर्तमान बालक-पुत्र
 निश्चय इनके विरोध करने की सम्भावना था और राखसालेरी दियोरी
 राखेले दक्षिण के कुटुम्ब के बालक-पुत्र मदावना दिये-बने बोई बालक-पुत्र
 भी । इन-उपने राखसालेरी राखसालेरी साथ दक्षिण कर भी बर्तमान दक्षिण-
 बालेरी राखसालेरी बने बने अब हाल न ही बनी और राखसालेरी विरोध
 एवं सम्भावना बननी । कुत्तु बलवान् बना रहा । कुटुम्ब-बालेरी दक्षिण भी कुछ बालक-
 बालक करके बने बने दक्षिण कर भी । किन्तु और बलवान् भी बलवान्
 बनना विरोधी ही बना रहा । अब १९८१ ई । में ही और-बालेरी बीम-पुत्र
 के साथ दक्षिण बर्तमान और फिर बलवान् लक्ष्मी बना ।

दक्षिण के बालक-पुत्र और-बालेरी बने बने किन्तु और बलवान् राखसालेरी
 बलवान् करने-कर बननी । विरोधी राखसालेरी बलवान् ही बने बने
 बालक-पुत्र । १९८० ई । में विरोधी भी कुत्तु ही कुत्तु भी बना बने पुत्र
 एवं बलवान् बालेरी बलवान् ही बलवान् ही बलवान् बने बने
 और ही बना बना और । ८ ई । में बनी बने कुत्तु ही । इन
 और-बालेरी बीम-पुत्र और बीम-पुत्र-बने-बने बने बने बीम-पुत्र
 बलवान् कि में बने ई । किन्तु और बलवान् बने बने बने बने
 बीम-पुत्र-बने-बने बिम-पुत्र बने ई । बिम-पुत्र बने बने बने बने
 बिम-पुत्र, १९८५ ई । में बीम-पुत्र और १९८७ ई । में बीम-पुत्र
 बना बने बने बीम-पुत्र बालक-पुत्र बिम-पुत्र । बने बने इन
 बने-बने कि बने बने बने बने बने राखसालेरी बने बने बने बने
 बलवान् बिम-पुत्र ई बने बने-बने बने बिम-पुत्र । किन्तु १९९४ ई । में बने
 बने बने बने बने बीम-पुत्र बने बने बने बने बने बने

किया तो मुअज्जमको मुबत करके काबुलका सूवेदार बनाकर अकबरके विरुद्ध भेज दिया। अकबर पराजित होकर वापस लौट गया। १६८९ ई० में औरंगजेबने राजा शम्भाजीको पराजित करके उसे उसके ब्राह्मण प्रधान मन्त्री सहित बन्दी कर लिया और तदनन्तर उसका वध करवा दिया। शम्भाजीके बालक पुत्र साहुको उसने अपने महलमें ला रखा और वहीं उसे पलवाया। अब औरंगजेब प्रायः सम्पूर्ण भारतका एकच्छन्न सम्राट् था, किन्तु इसी समय समस्त मराठा जाति उसके विरुद्ध मटक उठी। अवतक केवल मराठा राजे ही उसके शत्रु थे और उन्हींसे उसका युद्ध था किन्तु अब समस्त दक्षिणापथकी जनता उसकी विरोधी थी। शम्भाजीके भाई राजारामने सुदूर जिजोको अपना केन्द्र बनाकर इस जातीय विद्रोहका नेतृत्व किया और उसके पश्चात् उसकी वीर पत्नी ताराबाई युद्ध संचालित करती रही। औरंगजेबने मराठोंके इस देशन्यायी विद्रोहको कुचलनेका भरसक प्रयत्न किया। उसके मन्त्रियोंने उसे दिल्ली वापस लौट जानेकी सलाह दी, किन्तु वह मराठोको नि शेष किये बिना दक्षिणसे चलनेकी तैयार न हुआ। अन्ततः दक्षिणने ही उसका अन्त कर दिया। सन् १७०७ ई० में विफल प्रयत्न और निराशाग्रस्त वृद्ध सम्राट् औरंगजेब आलमगोरकी औरंगाबादमें मृत्यु हुई और वही वह दफना दिया गया। उसके साथ ही महान् मुगल साम्राज्यकी महत्ताका भी अन्त हो गया।

औरंगजेबकी विफलता और उसके राज्यकालके उपरोक्त जाट, सिख, बुन्देले, सतनामी, राजपूत, मराठा आदि युद्धों एवं विद्रोहोंका प्रधान कारण उसकी अपनी राजनीति थी। उसकी सकोर्ण धर्माघता, अत्यन्त अमहिष्णु एवं अनुदार धार्मिक नीति एवं मुसलमानोंतर जाति-विरोधी राजनीति उसकी अपनी असफलताओं एवं उसके उपरान्त महान् मुगल साम्राज्यके वृत्त पतनके प्रधान कारण थे। वह भारतमें मुगल-साम्राज्यको विशुद्ध अरबी संस्कृतिपर आधारित एवं इस्लामके नियमोंके अनुकूल एक पक्का मुसलमानी राज्य बना देना चाहता था। प्रारम्भमें ही यह ध्येय एवं तदनुसारो

राज्यकरसे मुक्त कर दिया गया। जो हिन्दू अपना धर्म-परित्याग करके मुसलमान बन जाते उन्हें पुरस्कृत करने और राज्यकी नौकरी देनेकी व्यवस्था की। हिन्दुओंको राज्यसेवासे वंचित कर दिया गया और एक फरमान निकाला कि महकमें-मालमें यथासम्भव केवल मुसलमानोंकी ही नियुक्ति की जाये। महाराज जयसिंह और जसवन्तसिंह-जैसे शक्तिशाली हिन्दू मरदारोंका अंत करना शुरू कर दिया। सभी मुसलमानेतरोंपर जजिया कर लगा दिया। हिन्दुओंके धार्मिक मेले बन्द कर दिये और उनके होली, दिवाली आदि त्योहारोंका खुले रूपमें मनाया जाना बन्द कर दिया। जाट, सिख, सतनामी, राजपूत, मराठे आदि हिन्दुओंके जिम धर्गने भी जहाँ विद्रोह किया उन्हें निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया और इन विद्रोहोंको क्रूर धार्मिक अत्याचाराका अवसर बनाया गया। हिन्दुओंके समस्त मन्दिरों, विद्यालयों एवं अन्य धर्मायतनों और सांस्कृतिक संस्थानोंको नष्ट करनेके लिए एक आम आज्ञा जारी कर दी गयी। हिन्दुओंके तीर्थ विरोधपर धनारस फरमान-द्वारा इस आज्ञामें यह संशोधन कर दिया गया कि पुराने मन्दिरोंको रहने दिया जाये किन्तु नवीन मन्दिर कोई न बनाया जाये और जो बन रहा हो उसे गिरा दिया जाये। राजा जयसिंह एवं जसवन्तसिंहकी मृत्युके उपरान्त यह संशोधन फिर धापस ले लिया गया और अनेक प्राचीन भव्य मन्दिरोंका विनाश करा दिया गया। जहाँगीरके समयमें बीरसिंह बुन्देल-द्वारा ३३ लाखकी लागतमें निर्मित मथुराके अप्रतिम केशवदेव मन्दिरका, काशीके प्राचीन विश्वनाथ मन्दिरका तथा अयोध्या आदि अन्य अनेक स्थानोंके प्रसिद्ध मन्दिरोंका ध्वंस करके उसने उनके स्थानमें उन्हें स्थलोंपर मसजिदें निर्माण करा दीं। हिन्दू आदिकोंके धर्मप्रचार, धार्मिक शिक्षा और उन्मुक्त धर्मपालनपर कड़े प्रतिबंध लगा दिये। मस्कृत और हिन्दी साहित्यका तो प्रश्न ही क्या, उसने फारसी साहित्यके सृजनको भी हतोत्साहित किया, यहाँतक कि इतिहास-ग्रंथोंके निर्माणपर भी कड़ा प्रतिबंध लगा दिया। खफ़ोख़ाँ आदिके छिपाकर लिखे गये इतिहास,

[illegible]

ब्रिटीश-शास्त्रियों के बहालवि केयन विहारी देव मुचल मठियाज बाई
 इसी नामसे हुए । रोडिकालीन दिनु कविपौने अम गृहार एतदा मीय
 ही अकादित विवा और पामा-रईपेको विवाविनाम वृत्तमेव अज्ञातय थी ।
 इसके निरुपेन बीरा बरीलीयन आनन्दवन बकोविशय विनदविशय
 नासीयन देव अज्ञातापी अवनगल प्रिटीमविशय बीरराज बाई देव
 कविपौने पाल्य विपदपुर्न आध्यात्मिक विचारोंका पोषक विवा । इनके
 हाथ काविक बन्दोंके अतिरिक्त बंशान विवाविनिधि एतुन वरीय
 नामुद्रिक पाल्य एतपटीया, वचनवीन क्यक बाई मयलपुर्न अर्थिक
 बान थी एवै ववै । आनय विवावी बीय बरीलीयन (१९७४-९८ ई)
 ने अममम ९७ एतपटी की ओ इनके विवाककय अज्ञाविनामवै अर्थीय
 हुई । आचार्य मयविशय (१९९१-८८ ई) आन बाई विवि विपवी-
 के अकाय विवा की दिनी नामके कविशयके अतिरिक्त अज्ञा
 बाववै अज्ञे अमम ५ छोटे-ववै अकरय वा बान एवै बाववै बावै
 ई । अज्ञपुर्नके अकरय अकअकके बीन बीयन अज्ञावमके अज्ञ एववी-
 कयने अज्ञपुर्न नामक दीनविवायक आनीन अमवा बाबापुर्न एव
 आकय की थी । इविअमके विवापुर्न मुरेनपुर्न बाई अज्ञपुर्न
 अज्ञपुर्नके अकट ही एवमवका अरकय और अज्ञावका अज्ञाव कर थी

थे। साहिजादपुर-निवासी कवि विनोदीलाहने जिन्होंने कई ग्रन्थोंकी रचना की है, अपने श्रीपालचरित्र (१६९० ई०) के अन्तमें लिखा है कि 'उस समय औरंगशाह ग्लोका राज्य था जिनने अपने पिताको धन्दी बनाकर राज्य पाया था और चक्रवर्तीके समान समुद्रमें समुद्र पर्यन्त अपने राज्यका विस्तार कर लिया था।' कोई विशाल नवीन मन्दिर जैनाग उत्त वाममें नहीं बना, कुछ प्राचीन मन्दिर तोड़े भी गये होंगे किन्तु किसी प्रसिद्ध मन्दिरका ध्वस या तोषका विनाश नहीं किया गया प्रतीत होता। आगरा और दिल्लीमें किलाके निकट ही उस तालरू पूर्वके बने हुए विशाल जैनमन्दिर सुरक्षित एवं विद्यमान रहे। दिल्लीके शाहजहाँकालीन उद्द मन्दिरमें दोना समय पूजन आरती आदिके अवसरपर वाद्य बजते थे। औरंगजेबने उनका निषेध किया। कहा जाता है कि बाजे फिर भी बजते रहे और औरंगजेबने अपनी निषेधाज्ञा वापस ले ली। अहमदाबादके जोहरो धान्तिदासको, जो शहजादे मुरादका कृपापात्र रह चुका था, औरंगजेबने आगरे बुलाकर रक्षा और उसने अपना दरबारी नियुक्त किया। फन्नडी मायाको एक प्राचीन विरुदावलोके अनुसार औरंगजेबने कर्णाटकक एक दिगम्बर जैनाचार्यका भी आदर-सत्कार किया था।

राजस्थानमें तो जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, धोकानेर, बूंदी, जैसलमेर आदि प्राय सभी राज्योंमें हिन्दुओंके साथ-साथ जैनो भी पर्याप्त उन्नत-वस्थामें थे। मेवाड़के राणा राजसिंहका प्रधान दोवान सघवी दयालदास था। कर्नल टाडके कथनानुसार 'यह अत्यन्त साहसी और चतुर था, मुगलोंके अत्याचारोंका बदला लेनेकी प्यास उसके हृदयमें सदा प्रज्वलित रहती थी। उसने तेज घुडसवार सेना साथ लेकर नर्मदासे वेतवा तक फैले हुए मुगलोंके मालवा प्रांतको लूटा, सारंगपुर, सरोज, बेवास, माण्डू, उज्जैन, चन्देरी आदि नगरोंको विजय किया, किसी मुसलमान शत्रुको क्षमा नहीं किया तथा काजी-मुल्लाओं और उनके धर्मग्रन्थ कुरानको भी न बख्शा। उसकी प्रचण्ड भुजाओंके सम्मुख कोई शत्रु नहीं टिकता था। लूटका यह

युद्धमें घायल हुआ था। रघुनाथ मण्डारी जमवन्तसिंहके पुत्र महाराज
 बजीतसिंह (१६८०-१७२५ ई०) का प्रधान दीवान था। जैसलमेर राज्य-
 में एक विशाल जैन ग्रन्थ-भण्डार था। बीकानेर-नरेश राजा अनूपसिंह
 जिनचन्द्र सूरिको गुरुवत् मानता था। महाराज जयसिंहके समयसे ही
 आमेर राज्यकी नवीन राजधानी जयपुर जैनोका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बनना
 प्रारम्भ हो गयी थी। बुन्देलखण्डमें ओढ़छाका बुन्देलानरेश बीरवर छत्रमाल
 भी जैनधर्मके प्रति अति उदार और महिष्णु था। जैन मन्दिरों एवं
 तीर्थोंके सुरक्षण, उन्हें दानादि एवं प्रश्रय देनेमें वह तत्पर रहता था।
 १६५९ ई० के, जेरठके चन्द्रप्रभ चैत्यालयमें वस्त्रपर लिखे गये, एक सचित्र
 प्रशस्ति-पत्रसे ज्ञात होता है कि उस कालमें जैनी बुन्देलखण्डके राज्योंमें
 प्रतिष्ठित थे और निविधन धर्मपालन करते थे।

मराठोंका उत्कर्ष १७वीं शती ई० के उत्तरार्धकी एक अत्यन्त
 महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है और मुगल-साम्राज्यके पतनका सर्व-
 प्रधान कारण। दक्षिणापथका पश्चिमी घाटकी पहाडियोंसे निर्मित वह
 उत्तर पश्चिमी भाग जो प्राचीनकालमें रट्टिकों और तदनन्तर राष्ट्रकूटोंका
 केन्द्र रहा था और पूर्व-मध्यकालमें जिमपर देवगिरिके यादवोंका राज्य रहा
 था तथा मुसलमानों कालमें जो बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुण्डा
 राज्योंके अन्तर्गत पड़ता था, महाराष्ट्र या मरहट्टा देश कहलाया। छोटे
 क्रमके श्यामवर्ण, बलिष्ठ, फुरतीले, परिश्रमी, चतुर और चालाक मराठे
 ही इस प्रदेशकी जन सख्याका बहुभाग थे। उनमें-से अधिकतर खेतिहर
 और शेष गाँवोंके पटेल आदि मुखिया थे। उनके अतिरिक्त चतुर्थ-पंचम
 जातियोंमें परिगणित मोदी धनिये, मजदूर आदि थे जिनमें-से अब भी
 बहुत-से जैन थे। काकणके चित्तपावन ब्राह्मण भी जो अपने-आपको
 मराठोंसे भिन्न प्रकट करनेके लिए दक्षिणी कहते हैं, इस प्रदेशमें बढने
 लगे थे।

राष्ट्रकूटोंके ही नहीं, उत्तरवर्ती चालुक्यों, होमसलों एवं यादवोंके

सरल छ'दमें अपने उपदेशों द्वारा महाराष्ट्र के निधानियों की एकता, धर्मों
 मुसलमानों के अत्याचारों में स्वधर्म, स्वजातिकी रक्षा करने की ऐसी दृष्टि, प्राचीन
 भारतीय धर्मयोरों की गौरव पाया नुनाकर हीनता, निराशा एवं
 हतोत्साह—जैसे भाग्योपा बहिष्कार आदि मनोवृत्तियों का पोषण किया और
 उन्हें नष्ट जागृतिकी एक लहर देश में फैलनी आरम्भ कर दी। विजयनगर के
 महान् हिन्दू साम्राज्य का अमानुषिक अन्तर्लोगों की स्मृति में गजब था—विजय
 नगर परम्परा के उत्तराधिकारी चन्द्रगिरि के राजा तो अभी भी स्वतन्त्र बने
 हुए थे। आक्रांता धर्मशायी मुसलमानों के क्रूर शक्ति स्वधर्म, स्वजाति और
 स्वदेश की रक्षा के लिए तीन सौ वर्ष पूर्व हायमल, यादव, ककातीय आदि भार-
 तीय राज्यों के क्रूरतापूर्ण अन्त में प्रेरणा पाकर जिस प्रकार सगम के धीरे-धीरे ने
 सफल प्रयत्न किया था, क्या अब कोई अन्य भारतीय वीर वैसा ही नहीं
 कर सकता ? यह प्रश्न लोगों के हृदय में उठ रहा था। पिछले ५०-६०
 वर्षों के उत्त-के मुगल सम्राट दक्षिण के मुसलमान राज्यों पर निरन्तर
 आक्रमण कर रहे थे और इस काल में वे दक्षिणी मुसलमानों के राज्य पहले-
 जैसे असहिष्णु एवं अनुदार नहीं रहे थे, किन्तु अब और गंजव के रूप में जो
 एक सर्वाधिक प्रबल मुसलमान सत्ता के नवीन आक्रमण एवं अत्याचार
 प्रारम्भ हो रहे थे वे पूर्व काल के अत्यन्त धर्मांध मुसलमानों के अत्याचारों का
 भी अतिरेक कर रहे थे। दक्षिण की अपनी सूबेदारी में उसने यह स्पष्ट कर
 दिया था। फिर यह स्वयं सम्राट् हो गया और उसने अपनी हिन्दू-विरोधी
 नाति उन्मुक्त रूप से कार्यान्वित की। दक्षिण से उसकी सेनाएँ भी एक
 सण के लिए न हटीं। ये सब कारण और परिस्थितियाँ थीं जो इस्लाम की
 इस विनाशकारी प्रगतिका सफल प्रतिरोध करने वाले उपयुक्त नेता की
 माँग कर रही थीं। और मराठा और शिवाजी के रूप में वह नेता आ
 उपस्थित हुआ।

अहमदनगर सुल्तान की सेवामें मालोजी भोसले नामका एक छोटा-सा
 मराठा सरदार था। शिवनेर का दुर्ग उसकी जागीर थी। उसके पुत्र

मुगल-साम्राज्य—अधोगत

पाण्डु की जीवके के और कहति थी । निजामपाण्डु के अन्तिम दिनों में तो अपने
 ब्रह्म बनाती मुननादे रीत की जो नरबाह न करके जानै ब्रह्म स्वामी
 पाण्डु की जीवके बनाने रमनेका बड़ीरमकर्म किया था । अन्त- निजाम-
 ब्रह्म होना न बनन कीबाहुरे मुननामकी जीवकी बन थी । बाह्यर
 बाह्यरपाह ब्रह्म बनन बुद्धिबान् और बनार का । पाण्डुनेबाने दिगुबोकी
 उमन बाकी होलाहम रिवा का । राजा पाण्डु की मानन बनका एक ब्रह्म
 अज्ञान्य हो नरा और इसे मुवाकी जन्मी निमी । १६२ ई में विजय-
 के पुर्वक आहुरीकी बानी होबाबाहने विवाहीकी बन रिवा । होबाबाह
 स्वर्ण एक बाकीन बनन नाबन्म बननेकी बान्ना हो थी बनी बननेन एवं
 विधिना थी । मुवाके जन्मी बाबा एवं मुद बाकीकी बौद्धेनके अविधान-
 बनने विवाहीका बान्मकाल बीता और विवाह-बीता हुई । विवाहीकी
 विवाह-बीता बनार एवं बाहिक हुई थी । बाह पाह और बुद्धिबाने
 भी ताव-ही-नाह उमने निजामना जन्म थी । बान्मके बनाने बने बान्म-
 नि न बाह और बहुरन बनना मुद बाहनेन बनन बहुरन पुर्वकीना
 नीनन बाबुन रिवा और बनकी बहुरनबीताकी बनेनिन किया एक
 बनने उमबाह बाहिके बान्मने इसे बाबाबाकी विधिबिधीना विधि एवं
 नंतर बनने बनके बाहने बान्म और बाहिकी रवा करवीकी होना निमी ।
 रिवाके बने राजनीतिक बान्म एवं मुद-बाबुने नरबाहने निने थे । अन्त
 बन-नन और विधिबकर १६-१४ वर्षकी बाबुने रिवाके बाह बीतापुर
 बानेनर बने बहुरनबीताकी बुद्धिने बनना और बनकी बाह एवं बान्मकी
 होना एवं बन-बननर निने बानेबाके बनबाहना अनुबन हुआ । यह
 होना मुनक स्वाभाविक बन-बीता था पाण्डु एवं बाह-बिवाह बनने
 बाहिके बान्मनर थे विवाहीकी बुद्धिने ताव हो बन-मुन का बाहनेके
 अविधानबीतिबान्मकी और बहु ब्रह्म बड़ी रीत का ।

इन विधि कर्तव्ये निमित्त एवं रिवा-बाह बाहिक इन और ब्रह्म
 मुनाने १५-१६ वर्ष की बाबुने ही बाहिके-बिधिने निम्न ब्रह्म बाहिक

कर दिया। उसने पूना में ही रहते हुए आस-पास के अपने समवयस्क भावले लड़के एकत्र करके उनकी एक छोटी सेना सुगठित की और १६४६ ई० में १९ वर्ष की आयु में ही निकट के तोरनदुर्ग की आदिलशाह के किलेदार से छोनकर हस्तगत कर लिया। इस विजय से उत्साहित होकर उसने शनै-शनै अपनी पूना की पैतृक जागीर का विस्तार एवं शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ कर दी। भावले बड़े सादे, तगड़े, चतुर और पहाड़ी एवं जंगली युद्धों में अत्यन्त निपुण थे। अतएव एक-एक करके शिवाजीने अनेक दुर्ग हस्तगत कर लिए और कुछ नवीन भी निर्माण कर लिये। शाहजहाँने १६३३ ई० में अहमदनगर राज्य का अन्त कर दिया था और उसके पुत्र औरंगजेबने दक्षिण की अपनी प्रथम सूबेदारी (१६३४-४४) में अवशिष्ट बीजापुर एवं गोलकुण्डा राज्यों को एक पल शान्तिकी साँस न लेने दी थी। इस परिस्थिति में शिवाजी का लड़कपन बीता था और उसके भावी कार्य-क्रम की योजना बनी थी। पूना के निकटवर्ती ये दुर्ग राजधानी बीजापुर से दूर थे और औरंगजेब उत्तर की ओर वापस चला गया था। शिवाजी का पिता शाहजी सुलतान का प्रभावशाली आमात्य था, अतः छल-बल, धूस और सिकारिश आदिके प्रयोग से शिवाजीने इस अवसर का लाभ उठाया और साथ ही वह बीजापुर दरवार की ओर से उपेक्षित रहा। इसी बीच में शाहजी से सुलतान रुष्ट हो गया और उसे बन्दीगृह में डाल दिया अतः कुछ समय के लिए पिता की सुरक्षा के खयाल से शिवाजी शान्त रहा।

१६५३ ई० में औरंगजेब फिर दक्षिण का सूबेदार होकर आ गया। सुलतानों के उससे उलझे रहने के कारण शिवाजी को अवसर मिला और उसने अपनी शक्ति और अधिक बढ़ानी प्रारम्भ कर दी। अब उसने उवरा एवं समृद्ध कोंकण और कोलावा आदि प्रदेशों पर भी आक्रमण किये और १६५५ ई० में जाओली के राजा को, जिसने सुलतान के विरुद्ध युद्ध में उसका साथ देना स्वीकार नहीं किया था, मार डाला। अतः सुलतान अब सहन न कर सका और १६५८ ई० में औरंगजेब के आगरे की ओर

सुगल-साम्राज्य—अधोगत

रायगढ़का नवीन दुर्ग-निर्माण करके शिवाजीने अपनी राज्य सत्ता अत्यंत प्रबल प्रकार जमा ला। अनेक दुर्ग और विस्तृत प्रदेश उसके अधिकारमें थे। १६६७-७० ई० तक उसने अपने राज्यके आन्तरिक शासन-प्रबंधको व्यवस्थित किया। १६७० ई० में उसने खानदेशपर घावा किया और चोप वसूल का तथा भविष्यमें भी दिये जानेके लिखित वचन स्वीकृत किया। उसी वर्ष सूरतको फिर लूटा और अंगरेजोंको कोठीसे विपुल धन प्राप्त किया। १६७४ ई० में उसने रायगढ़ दुर्गको अपनी राजधानी बनाकर उसीमें प्राचीन प्रथाके अनुसार समाराह-पर्वक अपना राज्याभिषेक कराया और छत्रपति महाराज शिवाजीके नामसे सिंहासनारोहण किया, तथा अपना राज्य सार्वभौमिक प्रकट किया। १६७६ ई० में महाराज शिवाजीने अपनी सुदूर दक्षिणकी विजय यात्रा की और गोलकुण्डा पहुँचकर यहाँके सुलतानको अपना अनुवर्ती बनाया। ब्रिजी, वेलोर, वेलारी आदि दुर्गों और प्रदेशोंको अधिकृत करता हुआ वह बीजापुर पहुँचा और वहाँके सुलतानके साथ भी उसने मैत्री सन्धि कर ली। यह यात्रा अत्यन्त सफल रही। अब शिवाजी दक्षिण भारतका एक स्वतन्त्र एवं सर्वाधिक शक्ति-शाली नरेश था। बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतान उसका मुंह निहारते थे। उनको साथ लेकर उसने मुगलको देशसे बाहर निकाल देनेकी योजना बनायी। औरंगजेब सीमान्तके अफगानों, साम्राज्यमें होनेवाले अथ विद्रोहों और राजपूत-युद्धोंमें उलझा रहनेके कारण कुछ न कर सका और और शिवाजी अपनी शक्तिके शिखरपर तथा अपने लक्ष्यके निकट पहुँच गया। १६८० ई० में शिवाजीको ५३ वर्षको आयुमें मृत्यु हो गयी।

औरंगजेब उसके एक वर्ष उपरान्त दक्षिणमें आ पाया। शिवाजीका उत्तराधिकारी उसका पुत्र शम्भाजी (१६८०-८९ ई०) हुआ। वह वीर और योद्धा तो था किन्तु क्रूर, दुराचारी और विलासी भी था। अपने पिता-जैसा चरित्र, आदर्श और बुद्धिमत्ता उसमें न थी। विद्रोही शहजादे अकबरको उसने आश्रय दिया था। शिवाजीकी सफलता और इस प्रबल

[illegible]

इससे कन्हेरू नहीं कि बीर बिचाड़ी कटार-बल्लभानके उल्लिखनी
एक व्याप्त राजनैतिक विभूति है। कबली तर्कबद्ध बल-कला नहीं जो कि
कहने बल-शून्य अति शीघ्र होने एवं पणधन करने विचरी हुई बल
उल्लिखनी एकलित एवं कुर्वनकृत करके इसे स्फुरतीय राज्यपाल एवं
कालीय उल्लिखन कर है दिया था। बलकृत विषय विरोधी परिस्थितिमें
बीर बलः शासनविहीन करने बीकन-बाली आरम्भ करके कहने बलकृत
कलित एवं बीकन-तन्त्र विषय कुछ बलः शास्त्रात्मकी कलतीय नून बनकर
बीरबलकेबी कटार बलनैतनायक बलकृत प्रविष्टाद दिया बीर बलके देवते-
देवते ही बलीके शासनोपा बलकृत बलकृत करके कलीकी कलतीय एक
बलनैतनायकी स्वरूप दिनु राज्य स्थापित कर दिया। बिचाड़ीके बिलकी
बल विषय दिया कि ऐह बलकृत बल बीर विषय विरोधी परिस्थितिमें
बी एक भारतीय बीर कला कुछ नहीं कर कहता। बलकृत कलतीय काली
भारतीय स्वातन्त्र्य बलनैतनायके प्राथमिक देवतेमें बिचाड़ीके बलकी
ही बलका एवं स्फूर्ति बल की है। बिचाड़ीके बलकृत बल बलकृत

एव प्रभावोत्पादक था, मनुष्यकी पहचान भी उसे अद्भुत थी। अर्घसन्ध
 अतिक्षित हीन भावलोंको उसने दुर्दर योद्धा बना दिया था। उसका सैनिक
 संगठन अति उत्तम था। उसका विशाल एवं शक्तिशाली सेनामें स्त्रियोंके
 रहनेका सर्वथा निषेध था। नौ-शक्तिका निर्माण करनेवाला भी मध्यकाल-
 में वही प्रथम भारतीय नरेश था। देशका शासन प्रबन्ध सुचारु था। अष्ट-
 प्रधान नामक आठ प्रधान अमात्याके मन्त्रिमण्डलकी अध्यक्षतामें प्राचीन
 भारतीय एव मुगल दोनों शासन-पद्धतियोंके उचित सम्मिश्रणसे अपनी
 शासन-व्यवस्थाका उसने विकास किया था। शत्रुको क्षमा करना वह नहीं
 जानता था, छल-धलसे जैसे बने उसका दमन करके ही दम लेता था।
 अपनी आवश्यकताके लिए छूट पाट करके धन लेनेमें भी उसे कोई संकोच
 न था। किन्तु किसी महिलाका कभी अनादर या अपमान वह नहीं करता
 था चाहे वह कितने ही कट्टर शत्रुसे सम्बन्धित क्यों न हो। गो, ब्राह्मण
 और हिन्दू धर्मकी रक्षा उसका नारा था तथापि वह सभी धर्मोंके प्रति
 उदार और सहिष्णु था और उनका आदर करता था। जन आदि अहिन्दू
 भारतीय धर्मोंका तो प्रश्न ही क्या वह मुसलमानोंकी मस्जिदोंका, क़ुरानका
 एवं उनके धर्मका भी आदर करता था। शत्रुके रूपमें मुसलमानोंपर उसने
 चाहे जो अत्याचार किये किन्तु धार्मिक अत्याचार कभी किसीपर भी नहीं
 किया। स्वयं उसके मराठा-राज्यमें जैन विद्यमान तो थे, किन्तु उनकी स्थिति
 अति गौण, हीन एवं अनुल्लेखनीय हो चुकी थी और अब मराठा राज्यके
 ब्राह्मणोंने उन्हें उभरने नहीं दिया। किन्तु सुदूर दक्षिणके दक्षिणी कर्णाटक,
 तुलुष एवं तमिल प्रदेशोंमें अब भी मैसूर, भट्टकल आदि उनके दर्जनो छोटे-छोटे
 राज्य, श्रवणबेलगोल-जैसे महान् तीर्थ और जैनविद्वी, मूढबिद्वी आदि अनेक
 महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र सन्तत दशामें फल-फूल रहे थे। नाना प्रकारके
 बाह्यान्तर अत्याचारों एवं विरोधी परिस्थितियोंके कारण पहले-जैसी
 उनको दशा नहीं रही थी फिर भी वे प्रायः अच्छी दशामें विद्यमान थे।
 कन्नड़ भाषामें कितने ही श्रेष्ठ जैनग्रन्थ इस कालमें भी रचे गये।

मुगल-साम्राज्य—अधोगत

अध्याय ५

मराठवाडा कबड (१९०७-१८५७ ई.)

[illegible]

प्रायः कोई जातीय या धार्मिक भेद नहीं रहा और देशकी सम्पूर्ण
 जनताका सहयोग और सहभाग प्राप्त करनेका प्रयास किया। उन्होंने
 दान हितका बेलक लगाना निजका या तुल्यताका मानका अपनाना
 इत्यादि हो द्वेष नहीं समझा यरन् उमे सम्पूर्ण भारतका और मानाविषय
 सभी एवं आर्थिकोने निमित्त अतिव्यक्त भारतीय जातिका जित माननेका प्रयत्न
 किया। अतएव उपरोक्त मध्यकालीन म्यण्डलका निर्माण भारतके अन्त-
 र्गत आदि नदारमना भारतका सम्राटोके तथा आश्रयमे भारतकी हिन्दू,
 जैन, मुसलमान सभी जनताके तथा उनके सभी गणों मिलकर सम्पादित
 किया था।

किन्तु औरगजेयको विद्वेष एवं पक्षपातपर आधारित पुनीतिने न केवल
 उसका जीवनमे ही उक्त स्वर्णयुगका तो अन्त कर ही दिया यन् स्वयं
 मुसल साम्राज्यकी मौकको दत्ता खोसला और उसके शरीरको दत्ता जजर
 कर दिया कि उसकी मृत्युके उपरान्त ही यह दुःसंयोगने माय पतनके गम्भीर
 गद्गारमे डूबने लगा और अपने साथ सम्पूर्ण देशको भी ले दूया। आगामी
 दशक-श्री वर्ष (१७०७-१८५७ ई०) का काल भारतीय इतिहासका अन्ध-
 कार युग है, इसलिए नहीं कि उस कालके सम्बन्धमे हमें कुछ ज्ञात नहीं है
 यरन् इसलिए कि जो कुछ ज्ञात है उससे हमारे सम्मनक लज्जासं झुका जाते
 हैं। इस पूरे कालमे अराजकता, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, विनाशिता, लूट-
 मसोट, मार काट, पट्टमन् और विद्वामघात, परस्पर फूट और वैमनस्य-
 का बालबाला था। इन्ही दुगुणा एवं दूषित प्रवृत्तियोंसे उस कालका सम्पूर्ण
 इतिहास भरा पड़ा है। देशकी राजनैतिक एकमूनता और संगठन हो नष्ट
 नहीं हो गये थे और उनमे स्थानमे अव्यवस्थित विकेन्द्रीकरण और विष्ट-
 पनता ही उत्पन्न नहीं हो गयी थी यरन् सम्पूर्ण देशका उत्तरोत्तर घोर
 नैतिक पतन होता चला गया। जिस हिन्दू पुनरुत्थानके नेता एवं पुरस्कर्ता
 मराठा वीर शिवाजी, सिध्दगुरु गोविन्दसिंह, जाट नेता गोकुल, मेवाड़के
 राणा राजसिंह और उनके प्रधान दाह दयालदाम संघवी, मारवाड़के

अराजकता काल

गुर्खाघात राखीर, मुन्देककण्ठके बीर छत्रदायक आदि स्वतन्त्रताके गुठी
नररत्न मे बड़ी गुणलब्धय कवच कभी बाधित हो पावेर को उनके
उत्तराधिकारियोंकी पराजय पूर वैभवतः हुआ एव बाबुराजिदने
कारण इतना मजबूत बीर आक्रमण हो गया कि बाबुर समूह चारों ओरसे
मुठ्ठीमार सेवेरेख आगामी इस बाबुर निष्ठाके देखके स्तब्धी बन गये । ल
परिष्कृत हिन्दू मार्गकोने बड़ीसी गुणलब्धय अस्मिताके साथ ही बड़ी नर
स्वर्ग पराजयके भी कष्ट-भटकर हुआ देखकी इतना निश्चिन्त निश्चल
बीर रहित क्या दिया कि देखकी समस्तदृष्टि अस्मिता के ओर पड़ गयी,
आर्थिक एव आध्यात्मिक जीवनमें अवलम्बित कुटिलिनी अस्मिता के नयी,
देखके आचार एव व्यवहार-कान्ते मह हो गये और कतका देता आर्थिक
जीवन हुआ वैद्य चहुँके कभी नहीं हुआ था । अत्यन्त अस्मिता अस्मिता
आश्रित हो गया । गुणलब्धय, अस्मिता एव आध्यात्मिक अस्मिता
था : न कोई अस्मिता था न अस्मिता । राज्य-अस्मिता कभी कूटेरे के बीर
अस्मिताके आर्थिक व्यवहार-आश्रित कूटेरे का चहुँके । निश्चयी अस्मिता कभी
नैव थी । और को कवच आर्थिक अस्मिताके कभी गुण और बाबुर कूटेरे
के के अस्मिता ही कभी-कभी नगर आश्रित होकर देखकी बराबर-अस्मिताके देखी
गुणलब्धय के अस्मिताके अस्मिता हो गये वैद्य चहुँके कभी नहीं थी न था
कभी थी ।

[illegible]

अल्पस्थायी बल प्राप्त करनेवाला राजस्थान, मराठा शक्तिको चरम-शिखर-पर पहुँचाकर डुबा देनेवाले पशवा और उनके भोसले, गायकवाड, होल्कर, सिन्धिया आदि सगदार जो अपने स्वतन्त्र राज्य जमा बैठे किन्तु उस स्वतन्त्रताकी भी रक्षा न कर सके, भरतपुरके जाट, पंजाबके सिक्ख जिन्होंने रणजोत्तसिंहके नेतृत्वमें चरमोत्कर्ष प्राप्त किया किन्तु उसको मृत्युके साथ ही परामृत भी हो गये, मैसूरमें हैदरअली और टीपूकी अल्पस्थायी मुसलमान शक्ति तथा पुर्तगाली, डच, फ्रान्सीसी और अंगरेज आदि युरोपीय व्यापारी जिनके व्यापारार्थ किये गये परस्पर संघर्षमें अंगरेज ही अन्ततः विजयी रहे और फिर भारतकी हिन्दू एव मुसलमान शक्तियोंको पारस्परिक फूट, अदूरदर्शिता एव देशकी गम्भीर पतनावस्थाका लाभ उठाकर उसके पूरे भाग्यविधाता बन बैठे ।

उत्तरवर्ती मुगलनरेश—औरंगजेबके प्रयत्नोंके बावजूद उसकी मृत्युके पश्चात् उसके पिता तथा उसके स्वयंके द्वारा ढाली गयी प्रथाके अनुसार उसके अवशिष्ट पुत्रों मुअज्जम, आजम और कामबख्शके बीच उत्तराधिकार-युद्ध हुआ ही जिसमें आजम और कामबख्श मारे गये और मुअज्जमने शाहआलम बहादुरशाह (१७०७-१२ ई०) उपाधिके साथ सिंहासनारोहण किया । अपने पूर्वजों द्वारा संचित आगराके विपुल राजकोष-में-से लेकर सरदारों और सैनिकोंमें उसने धन वितरण किया और उन्हें सन्तुष्ट किया । उसके सोभाग्यसे मुनीमखाँ और जुल्फिकारखाँ-जैसे दो सुयोग्य और बुद्धिमान् अमात्य उसे सहायक रूपमें प्राप्त हुए थे । उनके परामर्शसे उसने अजिया-कर उठा दिया । १७०९ ई० में जोधपुर-नरेश अजीतसिंह राठौरके अधिकारको स्वीकार करके और उसे राज्य सेवामें लेकर तथा गुजरातका सूबेदार बनाकर तीस वर्षसे चले आये राजपूत-विरोधका अन्त किया । जुल्फिकारके परामर्शपर मराठामें परस्पर फूट डालनेके उद्देश्यसे घम्भानीके पुत्र साहूको मुक्त कर दिया और उसे दक्षिणमें जाकर अपनी चाची ताराबाईके साथ राज्याधिकारके लिए लड़नेकी अनुमति दे दी ।

[illegible]

जल देह-की वर्षके इस भारतीय सम्प्रदाय इतिहास परामर्श
 विष्णुसकल, महाविष्णु वैदिक काल तथा वर्तमान वर्तमान बोद्ध-के विद्वत्प्रा-
 ण्य इस महामुखी पराधीनताकी वैदिकीय कलहों कायका ही लक्षण-
 मयक इतिहास है । इस इतिहासके प्रमुख नाम हैं अकलित धर्मों विरुद्ध
 हुए कलहोंकी प्रकृति-वर्णन करने के लिये। इसी एवं लक्ष्यों कायका परामर्श
 और सुवेदाय की अवधारणाओं की लक्षण कायका की विष्णु कलकी की
 रक्षा न कर के अविष्णुयुद्ध युद्धों की और अविष्णुयुद्ध अन्तर्गत-की ही
 एवं वर्तमान सम्प्रदायोंकी सुदृष्ट, बीचपुर वर्तमान अन्तर्गत-की सुदृष्ट

अन्तर्गतों वम प्राप्त करनेवाला राजस्थान, मराठा जयिनको परम गिर-
पर पहुँचाकर दुहा दनवाले येगवा और उगवे नामले, गावपाट, होम्बर,
गिपिया आदि सम्राट् जा अपा स्वतन्त्र राज्य जमा बैठे विन्तु उत
स्वतन्त्रताको नो रखा न कर गये, भरतपुरक जाट, पञ्जाबके सिख सिन्धाने
रणजोतसिंहके नेतृत्वमें परमादेश प्राप्त किया किन्तु उगवकी मृत्युके ताम
ही परागृत भी हो गये, मैसूरमें हिन्दुओं और टोपूकी अल्पग्यायी मुसल-
मान अधिन तथा पुतगाणी, पन्, पान्नीकी और अंगरेज आदि दुर्रोधम
व्यापारी जिन्हे व्यापाराप क्रिये गये परस्पर संघर्षमें अंगरेज ही अन्तत
विजयी रहे और फिर भारतकी हिन्दू एवं मुसलमान जनितगाको पारम्परिक
फूट, अदूरदर्शिता एवं देशकी गम्भार गतनावस्थाका लाभ उठाकर उगवे
पूरे भागविपाता बन बैठे ।

उत्तरवर्ती मुगलनरेश—ओरंगजेबके प्रयत्नोंके बावजूद उसकी
मृत्युके पश्चात् उगव पिता तथा उसमें स्वयम् द्वारा डाली गयी प्रयाके
अनुसार उगवे अवशिष्ट पुत्रा मुअज्जम, आजम और कामबख्त घोष
उत्तराधिकार-युद्ध हुआ ही जिममें आजम और कामबख्त मार गये और
मुअज्जमने शाहआजम बहादुरशाह (१७०७-१२ ई०) उपाधिके साथ
सिंहासनारोहण किया । अपने पूर्वजों द्वारा संचित आगराके विपुल राजकोष-
में-लेखर सरदारों और सैनिकोंमें उसने धन वितरण किया और उन्हें
सन्तुष्ट किया । उमके श्रीमार्गसे मुनीमताँ और जुलिकारताँ-जैसे दो सुयोग्य
और बुद्धिमान् अमात्य उसे सहायक रूपमें प्राप्त हुए थे । उनके परामर्शसे
उसने जजिया-कर उठा दिया । १७०९ ई० में जोधपुर-नरेश अजीतसिंह
राठौरके अधिकारको स्वीकार करके और उसे राज्य-सेवामें लेकर तथा
गुजरातका सूबेदार बनाकर तीस वर्षसे चले आये राजपूत विरोधका अन्त
किया । जुलिकारक परामर्शपर मराठामें परस्पर फूट डालनेके उद्देश्यसे
शम्भाजीके पुत्र साहूको मुक्त कर दिया और उसे दक्षिणमें जाकर अपनी
चाची ताराबाईके साथ राज्याधिकारके लिए लड़नेकी अनुमति दे दी ।

कमलवाचन मराठीमें बृहन्मुखा जिन्हा कदा भीर वे कहेनै कळत नये । वास्तव्याहने बुनैरकारको ही कविताका सुबेधार निमुक्त कर दिवत भीर कहेके स्थानमें वाचनवाचीको बहीर मगसा । १७१ ई . में बन्धा बीरानीके कैदगर्भमें जिन्हाोंने अयंकर पिरोइ किवा भीर मुक्तमालीतर क्लेश करायार निवे । वास्तव्याह भीर मृगोवहामें स्वयं साकर निरोइवा सम्य किता । बन्धा बीरानी बचकर वाप किम्बा । १७१२ ई.में १९ वर्षकी बालुमें बहन्नुवाध्याकी मृत्यु हो गयी । यह कुतुबख्तिर कल्पन भीर मगसाकीर वा, किन्तु भीरमसीरके हाथ बुटी तख निवासे हुए बरको किरती क्वाक्य कलके कुठके बाहर वा । निवाके शीर्षकालीन नमोर निदन्वनी कलके कलक तीर भीर प्रतिवाकी बुधित कर दिवत वा । कविता कल्पनकी योग्यता भीर प्रवृत्ति ही फलमें न यह कटी बी इसी कारण यह 'बाहरेखर यह बाप वा

कलके कल्पन करने कीनो माहर्षीकी हवा करके कलका क्लेश पुन व्यापारध्या (१७१२ ई) वास्तव्याह हुआ । यह वास्तव्य निम्मा भीर बुधारी वा । वास्तव्य माकके परवात् ही कलके कटीने इर्दगलिमर (१७१९ १९ ई) में निधकतासे कलका बच करके विहाजन स्वयं हस्तक कर लिया । यह भी निर्वन्म निम्माकी, बुधारी निम्मा भीर हवावा वा । बहीर बीर ही कलने बुनैरकारको बादि कलके बुधीर एवं प्रमुन बरवाती भीर बरवादिगीर निर्विवासे बच कर दिवत । कलने रक्तवात्तपूर्ण धावनक्य ताप बार कलने कल्पन भीर बुधीरकी माकके बी तीर माहर्षीकी तीर किता । कलकी निम्माकवात्तपूर्ण नीतिने कल किन्तु एवं मुक्तमाल बरवातीने यह कर दिवत । कलने कविता कर कलकी वा निम्मा प्रकल किता । १७१५ ई . में बन्धा बीरानी कलका कदा भीर वास्तव्याहने कल भीर कलका बेर बरवा कलका भीर कलके कल्पन एवं हवा बादिमोला बी कलकासे बच करवा किता । कलकीने बुधारी वाप पीर कल कलकीने पेट केर भीर कलके बापी हा । किन्तु कलके कलकीने

प्रसन्न होकर फ़र्रुखसियरने अंगरेज कम्पनोको भारतमें व्यापार करनेकी मूल्यवान् सुविधाएँ दे दीं और उनके मालको भी तट-करसे मुक्त कर दिया। १७१९ ई० में सैयद भाइयोंने ही उसे पदच्युत करके उसका वध कर डाला। तदुपरान्त इन सैयदोंने नेक़ुसियर, रफ़ीउद्दौलत और रफ़ीउद्दरजात नामक तीन शहजादोंको एक-एक करके बादशाह बनाया और थोड़े-थोड़े दिन बाद प्रत्येकका वध कर दिया। इसी कारण ये सैयदबन्धु 'राजा बनानेवाले' कहे जाने लगे।

अन्तमें उन्होंने फ़र्रुखसियरके एक अन्य चचेरे भाई मुहम्मदशाह (१७१९-४८ ई०) को बादशाह बनाया। वह भी बड़ा निकम्मा, दुराचारी और झिलासी था, इसी कारण मुहम्मदशाह रंगीलेके नामसे प्रसिद्ध हुआ। किन्तु उसने सख्तपर बैठते ही सैयद हुसैनअलीका गुप्तरूपसे वध करवा डाला और उनके भाई अब्दुल्लाको बन्दोगूहमें डाल दिया। १७२० ई० में एक अन्य शहजादे इस्माहीमने बादशाह होनेका विफल दावा किया। राठौर-नरेश अजीतसिंहका प्रभाव और शक्ति इस समय पर्याप्त बढ़ गयी थी। जयपुरके सवाई जयसिंह और उदयपुरके सम्राटसिंह भी शक्तिशाली हो रहे थे। इन तीनोंने मिलकर एक राजनैतिक समझौता भी किया था, किन्तु वह सफल न हुआ। मुगल-सम्राट् और उसके दरबारकी ओरसे राजपूत उपेक्षित होते गये और स्वयं अपने-अपने राज्यकी शक्ति बढ़ानेमें व्यस्त रहे तथापि सवाई जयसिंह आदि राजपूत राजाओंके प्रभावसे इस बादशाहने जज़िया लगानेके प्रश्नको सदाके लिए समाप्त कर दिया। राज्यके जैन-धनिकोंके आग्रहपर उसने पशुवधपर भी कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया था। मुहम्मदशाहने १७२२ ई० में चिनकलीख्वाँ आसफ़जहाँ निजामुल्मुल्कको अपना वज़ीर बनाया, इसके पहले वह दक्खिनका सूबेदार था किन्तु साम्राज्यकी पुनः शासन-व्यवस्था करनेका दुस्तर कार्य उसे अपने बूतेके बाहर जान पड़ा अतः अगले ही वर्ष वह फिर अपनी दक्खिनकी सूबेदारीपर चला गया और वज़ीर भी बना रहा। १७२४ ई०में हैदराबाद-

को राजधानी बनाकर बसिन्धबने गुरे मुबक मुबेको कलने बनवा स्वतन्त्र
 मित्राज राज्य घोषित कर दिया । दिल्लीकी राजनीतिमें उलने फिर कोई
 बाध नहीं किया और बरालेने अपने कदीम राज्यकी सुरक्षित रखनेमें ही
 बह व्यस्त हो गया । इसी वर्ष राजपूतों के एक अन्य शासकने बरालेने
 गुरे मुबेवर बसिन्धर बनाकर और ईलाहाबादी राजधानी बनाकर अपनी
 स्वतन्त्रता घोषित कर दी । बरालेने मुबेवर लखीमखीमने भी बख्शरी
 कर देना बल कर दिया और इसके बसिन्धबने को छत्र-छत्र- कसीकार
 करवा शासन कर दिया, कलक राजधानी मुक्तिनगरमें बह (१७४०-
 ५९ ई) गुरे बराल और मुबक विद्यावर स्वतन्त्र कलके बराले राज्य
 करने लगा । बरालेने कलकखी बराल एवं विस्तृत इलाक़, को खोजकर
 बख़्शार, खीने बख़्शनेने बना स्वतन्त्र राज्य बना दिया ।

बरालुर और इसके अन्य-बाह बुरकन बरालेने कलक राज्य बनाया ।
 मुबेकबख़्शने राजा कलकल गुरेबह बिदेही बना हुआ था । मुबक और
 कलकके बुराकनर बुरे राज्यकी बसिन्धर रत और फिर मुबके
 बराल गुरेने कदीम कलक बराल और बसिन्धने मुबक बराल बराले
 बने । दिल्ली बरालनेने बख़्शार, बख़्शार बराल राज्य राजपूत राजाके बराल-
 रिक्त मुबकबख़्श बराल-कीने एक-दो राज्यबल गुरे एवं और बराले
 और भी भी और कलके बरालेने मुबेकी बराले बराल बराल बरालेने
 भी किया बरालेने बराले-बराले ही किया किसी बापी मुब का एक-दो-के
 बाककी बख़्शकी बराले मित्राज मुबक-बख़्शार और बरालेकी बुरके मुब ही
 बख़्शनेने भीतर बिब-बिब एवं मुबिबाल् हो गया । इसके किसीको भी
 बराले दिल्लीके बरालाह मुबकबख़्शार (बीके) भी व कोई बरालेने ही
 हुआ और व मुब किया ही । इसी कलके बरालेने बख़्शार बरालेने
 गुरेनेने, को बह कलकल एवं बख़्शार बीके बापा बराल ई, १७५९ ई में
 बख़्शार बख़्शार किया । इसकी बाबुल और बख़्शारके बरालेने बीके
 हुआ बह किया किसी बापाके दिल्लीके मित्र गुरेने बना । बरालेने बराले

सेनाने उसका प्रतिरोध किया। दो घण्टेमें ही युद्ध समाप्त हो गया, दिल्लीके लगभग बीस हजार सैनिक युद्धमें मारे गये, और बादशाह मुहम्मदशाहने स्वयं दुरनीकी छावनीमें जाकर हाजिरी दी। नादिरशाहने उससे नरमोका वरताव किया और मित्रता प्रदर्शित की। दिल्लीके शाही महलोंमें अत्यन्त सम्मानित अतिथिके रूपमें वह ठहरा। किन्तु कुछ लोगोंने उसकी मृत्युकी झूठी अफवाह उड़ा दी और यत्र-तत्र उसके सैनिकोंको मारना शुरू कर दिया। इसपर नादिरशाहका क्रोध भड़का और उसने क़त्लेआम-की आज्ञा दी। दिल्लीके प्रमुख बाज़ारकी सुनहली मस्जिदमें बैठकर वह नौ घण्टे तक लगातार दिल्ली निवासियोंका निर्मम सहार देखता रहा। अन्ततः मुहम्मदशाह और उसके मन्त्रियोंके अत्यन्त अनुनय विनय करनेपर असह्य निरपराधाके रक्तसे अपनी प्यास बुझाकर उसने यह पैशाचिक नरसंहार रोक दिया। तदनन्तर ५८ दिन तक शाही मेहमान रहकर उसने दो सौ वर्षोंमें संचित किये गये मुग़लोंके अपार धन-वैभवको सम्पुष्ट होकर लूटा। शाही कोष और महलोंके अतिरिक्त दिल्लीकी जनताके भी सभी वर्गोंको जितना बना लूटा-खसोटा। और तब कोहेनूर हीरा तथा मयूर सिंहासनके साथ साथ अन्य विपुल धन सम्पत्ति, जो अनुमानातीत है, ऊँटों, गधों और खच्चरोपर लदवाकर वह ले गया।

दुरनीकी इस भयंकर नादिरशाहीसे दिल्ली धन-जनहीन हो गयी और दिल्लीका बादशाह भी जो साम्राज्य और अधिकारविहीन तो पहले ही हो चुका था, अब धनहीन दरिद्री भी हो गया और उसकी प्रतिष्ठा भी समाप्त हो गयी। सिन्धुनदके पश्चिमका अफ़ग़ानिस्तान आदि समस्त प्रदेश नादिरशाहके राज्यका अंग बन गया। मुहम्मदशाहके अन्तिम दिनोंमें अहमदशाह अब्दालीने, जो नादिरशाहकी मृत्युके उपरान्त उसके साम्राज्यके पूर्वी भागका स्वामी बन बैठा था, पञ्जाबपर आक्रमण किया किन्तु शहजादे अहमदशाह और यज़ीर क़मालुद्दीनने उसे पराजित करके पीछे हटा दिया।

इसके एक मास पश्चात् ही मुहम्मदशाहकी मृत्यु होनेपर उसका पुत्र

अवधका नवाब शुजाउद्दौला दिल्लीके बादशाहका वजीर भी बन गया था और क्योंकि वह अब्दालीका सहायक एवं समर्थक था इसलिए उसकी इस विजयसे उसे तथा नज्बुद्दौला रूहेलेको ही अधिक लाभ हुआ। उत्तर भारतकी इन विषम परिस्थितियोंका लाभ उठाकर चालाक अंग्रेजोंने बंगालपर प्रायः पूर्णधिकार कर लिया था। १७५७ ई० के पलासीके युद्धके उपरान्त अब मोर जाऊँर आदि बंगालके नवाब उनके हाथकी कठपुतली मात्र थे। दिल्लीका बादशाह शाहआलम मात्र एक तमाशाई था। अहमदशाह अब्दालीका भारतके साम्राज्यको भोगनेका स्वप्न भी उसके सैनिकोंके विद्रोहके कारण भग्न हो गया और उसे अपने देशको लौट जाना पड़ा। वह फिर वापस न आया।

१७६५ ई०में इलाहाबादमें बादशाह शाहआलमके दरबारमें उपस्थित होकर अंगरेजोंके गवर्नर क्लाइवने २६ लाख रुपये वार्षिक करके बदलेमें उससे बंगाल और बिहारको दोषानी और फटा एवं इलाहाबादके जिले अपनी कम्पनीके नाम लिखा लिये। वास्तवमें दिल्लीका बादशाह अब नाममात्रका ही बादशाह और सम्राट् था। वह अपने पूर्वजोंके प्रताप और अधिकारको एक गोण एव अपेक्षणीय छाया-मात्र रह गया था। घटनाक्रमपर उसका कोई प्रभाव न था। दिल्ली दरबारका परम्परागत अधिकार-मात्र इतना ही रह गया था कि विभिन्न पक्षों-द्वारा किये गये बलात् एवं अन्यायपूर्ण कार्योंको उन-उन पक्षोंके कहनेसे अपनी शाही मुद्राको छाप-द्वारा वाह्यत न्याय्य रूप दे दे। बादशाह शाहआलम कभी किसी मुसलमान सरदारका या नवाबका, कभी मराठा राजा सिधियाका और कभी अंगरेजोंका बन्दी या आश्रित रहा। गुलाम कादिर नामक एक रूहेले गुण्डेने, जिसने उसके दरबारमें थोड़ा प्रभाव पैदा कर लिया था, शाहआलमकी दोनों आँखें फोड़ दीं। महादाजी सिधियाने उसको कैदसे बादशाहको मुक्त किया और अपनी ही एक प्रकारकी कैदमें रक्ता। १८०३ ई० में वह अंगरेज कम्पनीका आश्रित हो गया और उससे प्राप्त वार्षिक पेंशनसे अपना निर्वाह करने लगा।

[illegible]

मुसलमान नवाब—१. हैदराबादके मिर्जास—हैदराबाद
रजिनाले मिर्जासोंका मुकदमाली राज्य मुगल-शासकके कब्रके लान बहादुर
कबीले बगदीर्बागर स्थापित होनेवाला बर्ग-प्रचल मुकदमाली राज्य का और
करी राज्य कर्नाटक स्वामी भी गद्दा काब ही कर्नाटक बनी एवं बमुह
पी । बहुराज्यके १७१ ई में मुमिन्कार कबीले अपना बगीर कोर
रजिनाला मुसलमान बगल बा मुमिन्कारके बगली कोरके बगलका पगल-
को मुसलमान राज्य करकेके किन् मुमुह कर विष्ट बा । किन्तु बगलका
बगलकिन्तुके मुमिन्कारको बगल काका कोर १७१५ ई के बगलका किन्-
कबीलेका बाबककाकिन् रजिनाला मुसलमान मुमुह किन्तु । १७२२ ई
में बाबका मुमुहकाके बाबककाके किन्तु बाबक मुमुहका बगल
बगीर बगलका किन्तु बाबक का बाब ही बाबक बगली मुसलमान बगल
कोर १७२४ ई में बगल मिर्जासमुमुहका बाबक बाबक करके बगली

स्वतन्त्रता घोषित कर दी, हैदराबादको अपनी राजधानी बनाया और मुगल साम्राज्यके दक्खिनके पूरे सूबेपर अपना राज्य स्थापित कर लिया। आसफ़जहाँ बहुत योग्य, चतुर और बुद्धिमान् था। अपने शासनके अन्तिम २५ वर्षोंमें औरगजेय दक्खिनमें ही रहा था अतएव उसकी बहुत-सी धन-सम्पत्ति वहीं रह गयी थी। दक्खिनकी मुसलमानी सल्तनतोंका अन्त करके जो विपुल सम्पत्ति औरगजेवने वहाँ प्राप्त की थी उसका भी बहुत-सा अंश वहीं रह गया था। विजयनगरकी लूटसे प्राप्त अपार धन इन सुलतानोंके पास था। अंगरेज आदि अमोक्त कुछ छान नहीं पाये थे, शिवाजी और उसके उपरान्त पेशवाआन हो जा थोड़ा-बहुत छीन पाया था उसके अतिरिक्त शताब्दियों तथा सहस्राब्दियोंसे संचित होते आयी दक्षिण भारतकी अपार धन-सम्पत्तिका बहुभाग निजामके ही हाथ लगा था। उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी पेशवा थे, उन्हींका उस सबसे अधिक भय था। पेशवा बाजीराव भारी विजेता एवं पराक्रमी था, उसके कारण मराठों-में परस्पर फूट डालनेकी निजामकी चाल असफल रही। अब उसने उनसे मित्रता बनाये रखनेमें ही कुशल समझी। १७२८ ई० में उसने पेशवाको नियमित चौध देते रहना भी स्वीकार कर लिया। १७३८ ई० में उसने पेशवाको दिल्लीकी ओर बढ़नेसे रोकनेका भी प्रयत्न किया किन्तु मोपालके निकट पराजित होकर चुप बैठ रहा।

१७४८ ई० में बृद्ध निजामकी मृत्यु हुई और उसके दूसरे पुत्र नासिर-जंग और पोते मुजफ़्फ़रजंगके बीच उत्तराधिकारके लिए संघर्ष हुआ। फ़्रान्सीसी व्यापारियोंने मुजफ़्फ़रकी सहायता की। युद्धमें तो वह हार गया किन्तु १७५० ई० में नासिरकी मृत्यु हो गयी और मुजफ़्फ़र निजाम हुआ। उसने फ़्रान्सीसियोंको बहुत-सा धन व जागीरें दीं और उनको एक पलटन भी अपने राज्यमें किरायेपर रख ली। इस प्रकार फ़्रान्सीसियोंका प्रभाव उसके दरबारमें थढ़ गया। मुजफ़्फ़र भी शीघ्र ही एक युद्धमें मारा गया। उसके स्थानमें उसके लड़केको वंचित करके आसफ़जहाँके तीसरे पुत्र

अंगरेजोंने लिया । इस प्रकार कर्णाटककी इस छोटी-सी नवाबीके आन्तरिक सगहोंमें पड़नेके द्वारा ही अंगरेजों और फ्रान्सीसियोंका भारतकी राजनीतिमें सर्वप्रथम प्रवेश और हस्तक्षेप हुआ । मफलताने अंगरेजोंकी राज्य लिप्पाको उत्तेजित किया । १७५१ ई० में कर्णाटकके उत्तराधिकार-युद्धके सिलमिलेमें क्लाइवद्वारा अर्काटके सफल घेरे और विजयमे ही भारतमें अंगरेजों राज्यका सूत्रपात हुआ ।

२ अवधकी नवाबी—निजामके साथ ही, १७२४ ई० म मआदतख़ा नामक सरदारने अवध प्रान्तपर अधिकार करके अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी । अवधके नवाबोंन पहले फैजाबादकी और तदनन्तर लखनऊ की अपनी राजधानी बनाया । दिल्ली बादशाहोंकी अवनति, नादिरशाहके आक्रमण तथा देशकी राजनैतिक अस्त-व्यस्ततासे लाम उठाकर मआदतख़ाके उत्तराधिकारी सफ़्दरजगने, जो बादशाहका बज्जोर भी बन गया था, अपनी शक्ति पर्याप्त बढ़ा ली और अवध प्रान्तके अनेक छोटे-छोटे हिन्दू एव मुसलमान तालुकेदारोंकी अपने नियन्त्रणमें रम्वकर तथा उनकी सहायता-सहयोगसे अवधकी नवाबीकी उत्तर भारतकी प्रधान शक्ति बना लिया । निजामके पीय ग़ाज़ीउद्दीनके पश्चात् सफ़्दरका उत्तराधिकारी अवधका नवाब ग़ुज़ाउद्दौला भी दिल्लीका बज्जोर बन गया । इसीलिए वह और उसके कई उत्तराधिकारी नवाब-बज्जोर अवध भी कहलाते थे । महमदशाह अन्डालीका वह सहयोगी और पक्षपाती था । पानोपसके तीसरे युद्ध (१७६१ ई०) में वह ससैन्य उपस्थित था किन्तु युद्धमें उसने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया और उसके समाप्त होते ही चुपकेस अपने राज्यमें लौट आया । १७५९ ई० में उसने शहजादे शाहआलमके माय विहारप भी आक्रमण किया था किन्तु क्लाइवके नेतृत्वमें अंगरेजों सेनाके प्रतिरोधकारण विफल होकर लौट आया था । १७६४ ई० में बक्सरके युद्धमें उस मोरक्कासिमकी अंगरेजोंके विरुद्ध सहायता की थी और उसे बादशाह शाहआलमकी भी स्वीकृति प्राप्त थी । किन्तु इस युद्धमें अंगरेजोंकी ही विज

हुई । दूधवाड़ीकावे पुनार और दमड़ावाडके दुर्ग जिन बने । दमड़ावाडके
 मो एक प्रवारके अँधेरीबोला बरखान स्वीकार कर दिया । १७१५ ई में
 दमड़ावाडकी दमड़ावाडार ब्रम्हिके द्वारा क्वाइलने दमड़ावाड और बडके
 बिकडेके अतिरिक्त ५ क्वाड क्वाड बुडके दूरवालेके कर्म देवेका नवाबके
 नवाब के किया और किडी जो टीकरी बडके बिकड परस्पर एक-दूडरेकी
 लहावता करनेकी बर्त भी करवा की । नवाबकी डीवाकी खाते सिप्
 किरामेवर अँधेरीकी सेवा रखनेकी बात भी ठग हो गयी और इन प्रकार
 क्वाडके क्वाडकी भी क्वाडन पचास वर्षके भीतर ही स्वतन्त्रता महाराज
 हो गयी । १७७१ ई में क्वाडकी ब्रम्हिके अनुसार नवाबकी नवाब क्वाड
 बरकेके बरकेके बरकेकेके कडा और दमड़ावाडके बिके बागडाइसे किन-
 बाकर क्वाडने नाम दिया किने और क्वाडने वर्ष अँधेरीबोली लहावताके
 अँधेरीकी ब्रम्हिके क्वाड कर दिया ।

४. अध्यात्मकी लक्षणाएँ—१४ १ ६ के लीखंडरसे मुक्तिमुखा

खाँको बगालका सूवेदार नियुक्त किया था। बिहार और उड़ीसाके प्रान्त भी धनै-शनै उसीके अधिकारमें आ गये। वह एक योग्य शासक था। दिल्लीकी राजनीतिसे प्रायः पृथक् ही रहकर उसने अपने सूवेका भली प्रकार शासन किया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी शुजाउद्दीन (१७२५-३९ ई०) अपने पितासे भी अधिक योग्य शासक था, वह सहिष्णु, उदार और दानशील भी था। उसके शासनकालमें बगालने सुख शान्ति और समृद्धि अनुभव किया। यह नवाब पक्षपातरहित और अत्यन्त न्याय-परायण भी था। उस कालमें ऐसा व्यक्ति अपवाद ही था। दिल्ली या शेष भारतको कुराजनीतिसे उसने कोई सम्पर्क नहीं रखा और यद्यपि वह एक सर्वथा स्वतन्त्र शासक ही था तथापि अपने-आपको दिल्ली बादशाहके अधीन और उसका सूवेदार ही मानता रहा और वार्षिक राज्यकर भी नियमित भेजता रहा। उसका पुत्र सरफ़राज़खाँ (१७३९-४१ ई०) धार्मिक प्रवृत्तिका व्यक्ति तो था किन्तु एक अयोग्य शासक था। उस समय उसका अधीनस्थ बिहारका नायब सूवेदार अलीवर्दीखाँ था जिसे शुजाउद्दीनने ही तरक्की देकर उस पदपर नियुक्त किया था और अपना प्रधान वज़ीर भी बनाया था।

अलीवर्दीखाँ बीर, सुयाय्य और महत्वाकांक्षी था। नादिरशाहके आक्रमणका लाभ उठाकर उसने अपने स्वामी सरफ़राज़खाँके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। युद्धमें सरफ़राज़खाँ मारा गया और अलीवर्दीखाँ (१७४१-५६ ई०) ने बगालके मिहानसनपर अधिकार कर लिया। भ्रष्ट दिल्ली दरबार और बादशाहको घूस देकर उसने अपने लिए बगाल, बिहार और उड़ीसाकी सूवेदारीका अधिकार-पत्र भी सहज ही प्राप्त कर लिया और उसके स्वामि-द्रोह एवं स्वामिवध-जैसे अपराधपर कोई प्रश्न न उठा। तदनन्तर उसने एक पैसा भी राज्यकरके नामसे सम्राटको न भेजा और स्वतन्त्र नवाबकी हँसियतसे राज्य किया। हिन्दू, मुसलमान, सभी प्रजा उससे सन्तुष्ट थी। मुश्किदाबादको उसने अपनी राजधानी बनाया।

[illegible][illegible]

मिलाकर नवाबके विरुद्ध एक भीषण पड़्यन्त्र रचा और सब तैयारी कर लेनेपर झूठा दोषारोपण करके नवाबको युद्धके लिए ललकारा । १७५७ ई० में पलासीके मैदानमें दोनों दलोका भीषण युद्ध हुआ । नवाबकी सेनाका बहुभाग जो मीरजाफ़र और उसके पुत्र मीरनके प्रभावमें था तमाशा ही देखता रहा । नवाब हार गया और बन्दी कर लिया गया, तदनन्तर मीरनने उसका वध कर डाला ।

सिराजुद्दौलाके अन्तके साथ ही बंगालकी स्वतन्त्र नवाबोका भी अन्त हो गया और इस विशाल समृद्ध देशपर वस्तुतः अंगरेजोंका ही अधिकार हो गया । मीरजाफ़र नवाब बना । उसने मुफ्तहस्तसे कलाइव तथा अंगरेज कोसिलके मेम्बरोको धन दिया । उसका अधिकार नाममात्रका ही था, वास्तविक शक्ति कलाइवके हाथमें थी । वैसे भी यह नवाब निकम्मा, क्षयोग्य और अफीमचो था । १७५९ ई० में शहजादा शाहआलम और नवाब वज़ीर अवधने उसकी अनोसिके लिए उसे दण्ड देनेके अभिप्रायसे बंगालपर आक्रमण किया । नवाबकी ओरसे सेना लेकर कलाइव उनके विरुद्ध चला, इसपर वे बिना लड़े ही वापस लौट गये । मीरजाफरने प्रसन्न होकर कलाइवको ५-६ लाख रुपये वार्षिककी जागीर दे दी । किन्तु अंगरेजोंकी नोच-खसोटसे मीरजाफर भी तंग आ गया और उसने इच्छासे सहायता माँगी, किन्तु कलाइवने उन्हें भी पराजित किया और उनसे हरजाना लिया । इधर नवाबका खजाना खाली हो गया था, अंगरेजोंकी नित्य नयीन रूपयेकी माँगको वह पूरा नहीं कर सकता था । हिन्दू जमींदारोंकी सहायतासे ही सिराजका अन्त करनेमें कलाइव सफल हुआ था और अब मीरजाफरके भी मुख्यतः हिन्दू दरबारी उसके विरोधी एवं विश्वासघाती थे । १७६० ई० में कलाइवके इंग्लैण्ड रवाना होनेके थोड़े समय पश्चात् ही कलकत्तेकी अंगरेज कोन्सिलने मीरजाफरको गद्दीस उतारकर उसके दामाद मीरकासिम-को नवाब बनाया ।

मीरकासिम बुद्धिमान्, योग्य, धीर और स्वतन्त्रता-प्रेमी था, किन्तु

कहलाता था, रूहेलखण्ड कहलाने लगा । मराठोंके आक्रमणोंसे परेशान होकर इनके सरदार नजीबुद्दोलाने अहमदशाह अब्दालीको आमन्त्रित किया था और पानीपतके युद्धमें १७६१ ई० में वह उसीकी ओरसे लड़ा था । अतः तदुपरान्त कुछ समयके लिए वह दिल्लीके बादशाहा कार्यवाहक बन बैठा था । किन्तु अब्दालीके वापस जाते ही मराठोंने रूहेलको फिर तग करना शुरू कर दिया । अतएव १७७२ ई० में धनारमकी मन्त्रिके अनुसार रूहेला नवाब हाफिज रहमतखाने अवधके नवाबसे यह तय किया कि यदि मराठे रूहेलखण्डपर आक्रमण करेंगे तो नवाब उसकी रक्षा करेगा और बदलेमें ४० लाख रुपया पायेगा । अगले वर्ष जब मराठोंने आक्रमण किया तो अवधके नवाबने अंगरेजा सेनाकी मददसे उन्हें मार भगाया और रूहेलोंसे रुपया माँगा । उन्होंने टाल-मटोल की । इसपर नवाबने वारेन हैस्टिंग्सकी सहायतासे १७७४ ई० में भीरनकटराके युद्धमें रूहेलोंको बुरी तरह पराजित किया । वृद्ध रूहेला घोर हाफिज रहमत युद्धमें मारा गया । लगभग बीस हजार रूहेले देशसे निर्वासित कर दिये गये । रूहेलोंका रूहेलखण्ड राज्य समाप्त हो गया, और अवधमें मिला लिया गया । कुछ रूहेले और उनके सरदार इस देशमें फिर भी बच रहे, उन्हींमें-से एक रामपुरके आस-पासके प्रदेशका शासक बन बैठा । वही रामपुरके नवाबोंका पूर्वज था । किन्तु रामपुर प्रारम्भसे ही अंगरेजोंके अधीन एक छोटी-सी देशी रियासत-मात्र रहा ।

५ मैसूरके नवाब—गंगवाडिके प्राचीन गंगराज्यकी परम्परामें कर्णाटकका मैसूर प्रदेश होयसल राज्यके और तदनन्तर विजयनगर साम्राज्यके अन्तर्गत रहा था । विजयनगरका पतन होनेपर इस प्रदेशके एक प्रान्तोय शासकने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया । यह वंश ओडेयर वंश कहलाता है । १८वीं शती ई०के मध्यमें उसकी राज्यशक्ति कुछ क्षीण हो रही थी और मन्त्री नजराज ही सर्वे-सर्वा हो रहा था । उसने राज्यके एक मुसलमान कर्मचारिके हैदरअली नामक पुत्रकी योग्यता,

कनुरवा एवं मुड-नैगुम्पे ब्रह्माविष्ठ होकर १७५५ ई. में उनके त्रिहीनकका
प्रोन्नयन बना दिया। तदनन्तर उनके बरभोरही कापीर के दो कपी और
राज्यका ब्रह्मण वैवाण्डि भी बना दिया गया। १७५१ ई. में राज्यका
नववच बाबा बाबू कन्होरे अविधारमें ही बना और यह कन्होरे राज्यकी
कोरते बामूर्ध राज्यका ही पालन करने लगा। किन्तु कहीना एक अनुभवर
कापीराल बाबूका ब्रह्मण ब्रह्मण विरोधी ही बना और कन्होरे अनुवर्धके
बाबू विष्णुवर कन्होरे कलका ब्रह्मण करने लगा। १७५१ ई. में हीराले
न्यायकेराजका बनन किया और कन्होरे एक विष्णुले न्यायका कनी काके
काक दिया। कनी बन कन्होरे कोरनूर बाबूका प्रविष्ट न्यायार्थिक बनकर
विजय करके अविधार कर दिया। १७५५ ई. में राजाकी मृत्यु हो जाने-
पर कन्होरे राज्यकाकोही की मृत्यु। उसने राजाके पुत्रकी अनास्थाके लिए
विष्णुवराल बीड दिया और स्वयं राज्यका कन्होरे-कनी ही बना।

यह सबने निराश और गलतोंके साथ गुरदीर्घक चलि-मिहा करके करवी प्रतिष्ठा बहार करना मुक किया। १७६७ ई में बङ्की तथा बङ्के बाबाकी विष निराशकी अनुष्ठान ऐनाथो अँधेरीको प्रतिष्ठित निरा पिन्नु १७६९ ई में ही ईराबकी अँधेरीको निराहके निरुपर नदु बीडा और बङ्के बङ्गे अलि करलेपर विषय निरा निराके अनुष्ठान बीलीने एक गुनीकी लहाना करकेका बन्धन निरा तथा निरुधित अँधेरीको बीडा निरा। पिन्नु १७७१ ई में एक गलतोंमें ईराबकीके राज्याद बङ्गबन निरा ही अँधेरीको निराहके अनुष्ठान बङ्की कोई लहाना व की इनपर नदु बन्धन और पदु हो गया। १७७४ ई में राज्याके साथ कुछ निरु अँधेरीके निराह अँधेरीको निराहका तथा बन्धन निराहका निराह अँधेरीको निराह कर निरा, इनमें ईराबकी और बङ्की निरु निरा। निराह और गलतोंके साथ इनमें अँधेरीको निरु निरु-बन्धन कर की। निराहकी अँधेरीको निरु निरा अँधेरी १८ ई में ईराबकी अली राज्याकी बीलीनगुन-के निरा केकर गया और बङ्के बङ्कीनगर निराह कर निरा और

वहाँ भरपेट लूट-मार की। अंगरेजोंके हाथकी मटपुतली कर्णाटिका नवाब तो अपना था ही। रक्षाके लिए भायो अंगरेजी सेना और उसके नायक कर्नल लेलीकी हैदरअलीने काट डाला और राजधानी अर्काटपर भी अधिकार कर लिया। किन्तु १७८१ ई० में अंगरेजोंने सर आयर वूटके नेतृत्वमें पोर्टोनोवाके युद्धमें उसे पराजित किया। मराठोंने भी उसकी कोई मदद नहीं की। वह अकेला ही अंगरेजोंके साथ युद्ध करता रहा और उसने कई बार उन्हें पराजित भी किया। १७८२ ई० में हैदरअलीकी मृत्यु हो गयी।

किन्तु उसके पुत्र और उत्तराधिकारी टीपू सुलतानने युद्ध जारी रखा। उसने भी कई बार अंगरेजोंको पराजित किया और स्वयं भी पराजित हुआ। अन्ततः १७८४ ई० में दोनों पक्षोंके बीच मंगलौरकी सन्धि हुई जिसके अनुसार जो स्थिति युद्धके पूर्व थी वही हो गयी। १७८६ ई० में पेशवा और निजाम टीपूके विरुद्ध मिल गये और उन्होंने अगले वर्ष उसे पराजित करके एक जिला और ३० लाख रुपये उससे वसूल कर लिये। अंगरेज भी उनके साथ ही मिल गये। इसपर टीपू धुन्ध हुआ और फ्रान्स तथा अफ़ग़ानिस्तानको उसने अपने दूत भेजे। अंगरेजोंके परम शत्रुओं उन विदेशियोंकी सहायतासे वह अंगरेजोंको भारतसे निकाल बाहर करना चाहता था। १७८९ ई० में उसने अंगरेजोंसे सरक्षण प्राप्त द्रावन्कोर राज्य-पर आक्रमण कर दिया और लूट-मार मचायी। अब अंगरेजोंके साथ खुला युद्ध छिड़ गया, मराठे और निजाम भी उन्हींके सहायक थे। स्वयं गवर्नर जनरल कार्नवालिसने युद्धका नेतृत्व किया। कई युद्ध हुए किन्तु प्रत्येक बार टीपूने ही उन्हें पराजित किया, किन्तु अन्तिम युद्धमें वह बुरी तरह पराजित हुआ। १७९२ ई० में श्रीरंगपट्टनकी सन्धि हो गयी जिसके अनुसार उसका राज्यका लगभग आधा भाग, साढ़े तीन करोड़ रुपये और वचन पालनके आश्वासन रूप उसके दो पुत्र अंगरेजोंको प्राप्त हुए। टीपू इस अपमानजनक सन्धिको न भूल सका। अंगरेजोंके विरुद्ध वह नैपोलियनसे

[illegible]

हिरण्यकी निराहार होते हुए भी बालक मुष्टिमान्, कण्ठधारी श्वाभक्त
करकेवाक्य मैत्रीकी कपूर राखीदिग्ध, मुक्ताम केसाकी और और मोक्ष
था । कलकी स्वामिद्विज बड़ी हीन थी । वह प्रभावशाली गरीब और मुक्त
बादक था । हिन्दू और मुसलमानोंके बीच की वह मेर लकी करछ था ।
हीनू की बालकी की और और बलिष्ठा था । वह मुक्तिमिष्ठ और निष्कारणिक
थी था बच्य बचरी कलकी और कर्तु-बाहिरकन प्रभवदण्ड था । इनके
निष्ठक मुक्तप्रभावकी मैत्रीके कलकरी के के के । हिरण्यकी और हीनू
केकीके ही हिन्दू, वैद बादि राज्यके मुक्तकलकेतर बचके बच्य बच्यका
बचकन किन्ना और इनके कलकलीकी बालादि की किन्ने । कल कलके
राखीदिग्ध प्रवीनी बचने बचकेका मुक्तके कलकरी के किन्ना-मुक्त बच्यका ही
थे । बचने हिरण्यकीके स्वामिद्विज करके ही राज्य बचकन किन्ना था
हिन्दू कलके बच्यके एवं बचकनके बचने बचकन किन्ना और बचने की
कलकलिक बच्य की थी । हीनू बचकन बचकन कर बचकन था हिन्दू वह

अत्यन्त वीर एवं साहसी घोड़ा होते हुए भी कुशल सनानी नहीं था और कुछ अदूरदर्शी भी था। सबसे बड़ा अपराध इन पित्रा-गुप्तका यही था कि वे अंगरेजाको नोति और उनके उत्तरोत्तर शक्ति-संवर्धनमें बाधक थे। किन्तु साथ ही ये एकमात्र ऐसे नरेश थे जो प्रारम्भसे अन्त तक स्वतन्त्र ही रहे।

उपरोक्त प्रमुख मुसलमान शक्तिशाली अतिरिक्त कुछ अन्य छोटे-छोटे मुसलमान नवाब भी भारतमें यत्र-तत्र उत्पन्न हो रहे थे, कुछ पहलेसे चले आ रहे थे, कुछ इसी कालमें लूट-मारके बलपूर्वक बने और कुछ अंगरेजाकी कृपासे अस्तित्वमें आये। रामपुर, भापाल, टाक और जूनागढ़के नवाब, सिन्धके अमीर, लुटेरे पिण्डारी सरदार इत्यादि इसी प्रकारके गौण मुसलमानों राज्य थे। ये प्रायः सब सहज ही और प्रथम अवसरमें ही अंगरेजाके अधीन होते चले गये।

राजपूत राजे—इस कालमें राजस्थानके प्रमुख राजपूत राज्य उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, जैसलमेर और धोफानेर थे। औरंगजेबके समयमें राणा राजसिंहने समस्त राजस्थानका नेतृत्व किया था और मुगल सम्राट्स सफल लोहा लिया था। उसको मृत्युके उपरान्त सम्राटसिंह द्वितीय राणा हुआ। १८वीं शतीके पूर्वार्धमें यह ही मेवाड़का महत्त्वपूर्ण राणा था यद्यपि राजस्थानका नेतृत्व अब मेवाड़के हाथमें नहीं रहा था।

जोधपुरके राठौर महाराज जसवन्तसिंहकी मृत्युके बादमें ही लगभग ३० वर्ष तक मुगलोंके विद्रोही रहे, किन्तु १७०९ ई० में बहादुरशाहने महाराज अजोतसिंहका राज्याधिकार स्वीकार करके और उन्हें शाही-सेवामें उच्च पदपर नियुक्त करके राठौरोंको सन्तुष्ट कर लिया। अजोतसिंह वीर, क्षत्र और कुशल राजनीतिज्ञ था। फर्रुखासिरके समयमें कुछ दिन दिल्लीमें रहकर उसने बादशाहीका सञ्चालन किया और उस कालमें उसके विश्वस्त जैन दीवान रघुनाथ भण्डारीने मारवाड़ राज्यका कुशलताके साथ शासन किया। अजोतसिंहके एक अन्य जैनमन्त्री खिमसी भण्डारीके प्रयत्नसे ही

आनुविधानी विधिसे अतिष्ठ अनाथोंका जीवन दिया था । अतएव
 नाथानाथने अजीर्णविहारी मुबारक और अजर्जरका मुदेदार नियुक्त किया ।
 अद्वैतनाथके अवधनी भी अजीर्णविहारी बन गयेनाथ मुदेदार रहा । इनके
 अलग-अलग बनना अलग-अलगारी कोचमूला-वरेच अजर्जरिहारी भी [३] है
 । १० ई. न इन अलगका मुदेदार है । अजीर्णविहारी अतिष्ठ और अजर्जर
 नाथानाथोंका दवादारने एवं आनामकी वरणीय यह क्या था । अजर्जर
 और मुबारककी मुदेदारोंके कारण इनके नामकी अतिष्ठ और अजर्जर भी
 पायी गई वही था । अने-वरे मुकलमान अगस्त इनके अलगने लगे थे ।
 इनके बाद अजर्जरविहारी अतिष्ठ और अजर्जर भी आरंभ किया ही रहा ।

अजर्जरने इन नामकी अलग-अलग अजर्जर अजर्जरका राज था । यह भी
 बड़ा योग्य अनुष्ठान विचार्यक एवं अजर्जर वरेच था । अजर्जर अजर्जरके
 वास्तविक नियोजन और अने अजर्जर कारणका अलग नीच इसे ही है ।
 विविध अजर्जरकी भी इन राजकी अलग-अलग दिया अजर्जरविहारीके ऐसे
 विविध क्षेत्र था और अजर्जर अजर्जरकी अजर्जर अजर्जरका अलग इनके अजर्जर,
 अजर्जर अजर्जर नाथानाथों अजर्जर कई स्थानोंमें अजर्जर-अजर्जर का अजर्जरविहारी
 अजर्जर थे । अलग अजर्जरने अजर्जर अजर्जर नाम और अजर्जर था ।

इस अजर्जर औरअजर्जरका अनुष्ठानके बाद अलग-अलग अलग-अलग अलग अलग
 अजर्जर अजर्जरके अजर्जर अजर्जर एवं अजर्जरके कारण अजर्जर अलग अलग
 अजर्जर अजर्जर अजर्जर बन गया था । अलग अजर्जरविहारी अजर्जर अजर्जरविहारी
 और अजर्जर अजर्जरने अजर्जर अलग और अजर्जर भी रही और इन अजर्जर
 अजर्जर अलग अजर्जर भी बनाया था कि अजर्जर अजर्जर अजर्जर एवं अजर्जर
 अलग-अलगकी अजर्जर अजर्जरका नाम न करने देने और अजर्जर-अजर्जर अजर्जर-
 अलगकी अजर्जर अजर्जर अजर्जर अलग अलग अजर्जर अजर्जर अजर्जर अजर्जर
 अजर्जरका करने । इनके अजर्जर अजर्जर और अजर्जरकी भी अजर्जर अलग था,
 और अजर्जरकी अजर्जरका भी अलग दिया गया । अजर्जर अजर्जर और
 अजर्जरके अजर्जर ही अजर्जर अजर्जरका भी अलग अलग ही अलग था अलग

इनकी योजनामें सहायक हो था अतः उसे रोकनेका इन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया। नादिरशाह-द्वारा दिल्लीकी भीषण लूट-मारके अवसरपर भी ये अपनी राजधानियामें बैठे तमाशा देखते रहें। किन्तु इसी बीच राणा सप्रामसिंह, महाराज अजीत सिंह तथा बीर छत्रसालकी मृत्यु हो चुकी थी। राणाका उत्तराधिकारी अयोग्य था किन्तु अजीतसिंहका पुत्र अभयसिंह अपने पिताका ही अनुमर्ता था। १७४३ ई० में जयमिहकी और १७४९ ई० में अभयसिंहकी मृत्यु हो जानेसे राजपूत पुनरुत्थानकी वह महान् योजना स्वप्न बनकर रह गयी।

हिन्दूपदपातशाहीका समर्थक पेशवा बाजीराव प्रथम भी १७४० ई० में मर चुका था। उपरोक्त राजपूत नरेशोंक उत्तराधिकारी अत्यन्त अयोग्य और निरक्षर थे। एक ओर दिल्लीका बादशाह द्रुत वेगके साथ बल, धन और अधिकार होन होता जा रहा था और दूसरी ओर दक्षिणके मराठाने उत्तरापथके विभिन्न भागोंपर लुटेरे आक्रमण प्रारम्भ कर दिये थे। अब उन्होंने इन राजपूत राज्योंकी भी न बख्शा। उनके साथ ही लुटेरे पिण्डारी सरदाराने भी राजपूत राज्याको लूटना-बर्बाद करना शुरू कर दिया था। आये दिनके इन सकटोने राजाओंका नैतिक बल और अधिक कमजोर कर दिया। अन्त बलह और गृहयुद्ध आम हो गये। ये उत्तराधिकारके प्रश्नों एवं विवाह-सम्बन्धों आदि छाटी-छाटी बातोंके लिए परस्पर एक-दूसरेसे भी लड़ने लगे और मराठे उन झगड़ोमें हस्तक्षेप करके अपना उल्लू सीधा करने लगे। जैसा कि कनल टांडन अपने प्रसिद्ध 'राजस्थान'में लिखा है "जाति-विशेषका पतन स्वयं उस जातिके द्वारा ही होता है। जाति-गौरवके मूलको अस्त करनेके लिए यदि वह जाति स्वयं आगे न बढ़े तो किसी अन्य जातिके द्वारा यह कार्य कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता। जो महाशक्ति जातिकी प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है, जातिको नस-नसमें अपना अर्थ्य तेज भर देती है उस महाशक्तिका जिस दिनसे जातिने अपमान किया और आलस्य एवं विलासिताके बशीभूत होकर जातीय भ्रातृभावकी जड़में कुठाराघात किया उसी

[illegible][illegible]

जाहट—बाबरा एवं दिल्लीके राज्य मजदूरके बाब-बाब जाहटीकी दली
 काली की जीरोपडाके समयमें १९५९ ई. में मोरगा जाहटके कैप्टनमें दल
 जरीके बाबली काली दिल्ली-मिरीकी मोरगा मिरीमें कर्मकर मिरीह मिरी

था और शाही क्रोडदारको भी मार दिया था । कठिनतासे धीरगजैयने इस विद्रोहका दमन किया था । १६८८ ई०में राजारामके नेतृत्वमें जाट फिर बहक उठे और १६९१ ई० में उन्होंने सिक्न्दरमें स्वयं अकबरके मकबरे और शवका लूटा । सम्राट दक्षिणमें था और उसके सरदार कठिनतासे इस विद्रोहका दमन कर पाये । १७०५-०७ ई०में गज्जा जाटके नेतृत्वमें वे फिर बहक उठे । बहादुरशाहने भग्जाक पुत्र चूडामनका शाही-मेवामें नियुक्त करके जाटोंको सन्तुष्ट किया किन्तु फ़र्गसियर उससे दृष्ट हो गया अन चूडामनने थून नामक स्थानमें एक सुदृढ़ दुर्ग बनाकर शक्तिमंथन करना प्रारम्भ कर दिया । बादशाहन १७१६ई०में मवाई जयसिंहको उसका दमन करनेके लिए भेजा । राजाने थूनपर अधिकार कर लिया किन्तु बादशाहको उसके अग्र दरबारियोंन जाटोंके साथ सुलह कर लेनका परामर्श दिया । सचि जाटोंके अनुकूल थी और वे राजधानियों आगरा एवं दिल्लीके निकट-वर्ती प्रदेशमें ही एक भयप्रद शक्ति धन गय । मुहम्मदशाहके समयमें चूडामनके पुत्रोंने फिर विद्रोह किया और जब शाहीसेना उनके दमनके लिए भेजी गयी तो उन्होंने थूनके दुर्गमें शरण ली । किन्तु चूडामनका भतीजा बदन सिंह बादशाहमिल गया और उसने थूनपर शाहीसेनाका अधिवार होनमें सहायता दी । अतः बादशाहने उसे ही जाटोंका राजा बना दिया । उसके दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी सूरजमलने जाटोंकी शक्तिका चरम शिखरपर पहुँचा दिया । उसने अपने राज्यको सुसंगठित एवं शक्तिशाली बना लिया और थूनके अतिरिक्त हौग, कुम्भेर, वेर तथा भरतपुरमें सुदृढ़ दुर्ग निर्माण किये । भरतपुरको उसने अपनी राजधानी बनायी । उसने अपनी एक सवल घुडसवार सेना भी तैयार कर ली । नादिरशाहके आक्रमण और उससे उत्पन्न स्थितिसे उसने पूरा लाभ उठाया था । किन्तु अब मराठे और अहमदशाह अब्दाली भी उसके राज्यपर आक्रमण करने लगे । ऐसे अवसरोंपर वह अपने सुरक्षित दुर्गोंमें बैठकर दायुआको चुनौती देता था । १७५७ ई० में अब्दालीने जब मथुरापर उस नगरको लूटनेके लिए धावा किया तो

मुरजमकने बीमूहा स्वाभरर कपके ताव मोचन मुक्त किया । कसनि कइ
 कडासीकी पीछे हथानेमें लवने मही हुआ कसनि देने तीन पिरोचना मुक्त
 वडा कडासीकी बारतने इनके पूर्व कभी मही करना वडा वा । १ ११
 ई के पानीपतके मुक्तमें मुरजमक इनीन मछालेकी लडाइयामें भिन्न वडा
 वा किन्तु कसने विष महाशायी शिन्धियाकी बलि मुक्तमें कसने भी कोई
 नाव मही किया । कसलकन कडासीके कानेके बार मुरजमक काव ही
 कतर बारतना सर्वाधिक पालिपाली किन्तु पडा ही मछ वा कसनी
 देवा भी कसन यह वही भी बीर कसना कोड भी मछ हुआ वा । १३१
 ई में ही कसने कतराले किमेरर की अधिकार कर लिया । किन्तु बाइली-
 के मुसलिके १७११ ई में मिली दरबारके कर्मे-मर्मा महीमुहोला धूने-
 के साथ एक मुक्तमें मुरजमककी मृत्यु ही मही ।

कसके पुत्र एवं पतनपनिष्पत्ती कबाहुर्निष्ठता मोचन की मुक्तकी
 पडा । मरनिवारके शिन्धियापन यह विष वडा पडा, किन्तु १७१८ ई में
 कसने इत्या कर दी मही । कसकतर कसकसह बीर कसनिपिबकि
 कारण कावकसि मोच लेने कनी बीर कसका कस बारतन ही मछ ।
 कावकसह कावकाकसके सेवकपि मजकसमि १ ७१ ई में कावकतर पुन-
 अधिकार कर किया बीर १७७१ ई में बीरके पुनको की कावसि मोच
 किया । १८ १ ई में बीरके सेवकपि काव केकने मजकसुरक पैरा
 कसकर कसनी किन्तुके वने कस कसकस एवं मुक्त मुक्तकी कसका कसियाई
 के इत्याक करके मजकसुरके कस कसकी बीरकीकी वडाकीला स्वीकार
 करकेवर किन्तु किया । कसके कसकस कसकस यह राज्य की मछ हीकी
 कसकी-बीरा ही मछ मछा ई ।

सिक्का—शिवकसके कसकस मुक्त मजक (१७११-१७११ ई)
 वी । कसने पंजाबने कसिया एवं कसका-कसल किन्तु एकैकसकानी
 कसकसका कसक किया वा । कसकस कसकस कसकस कसक-कावने
 कइ एक कसका-कस वा । वी किन्तु-मुक्तिक कसकके की कसकक वी । कसने

शिष्य अगदको उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियत किया। गुरु अगद (१५३९-५२ ई०) ने सिक्खों (गुरुके शिष्यों) को एक धार्मिक सम्प्रदायके रूपमें संगठित किया और उन्होंने गुरुमुखी लिपिका भी आविष्कार किया बताया जाता है। उनके उत्तराधिकारी अमरदास (१५५२-७४ ई०) के समय सिक्खधर्मको और उन्नति हुई तथा चौथे गुरु रामदास (१५७४-८१-ई०) ने सम्राट् अकबरके आश्रय एवं सहायतासे अमृतसर स्थानको प्राप्त करके उस नगरको, उनके प्रसिद्ध गुरुद्वारेको तथा वहाँ सिक्ख धर्मके केन्द्रकी नींव डाली। तदनन्तर गुरुका पद वंश-परम्परागत हो गया।

रामदासके पुत्र गुरु अजुन (१५८१-१६०६ ई०) ने अपने अनुयायियोंके संगठनको और अधिक व्यवस्थित किया और वह उनसे नियमित दान-दक्षिणा ग्रहण करने लगे। इस प्रकार उनकी शक्ति और धन काफी बढ़ गया। शहजादे खुसरूका पक्ष लेनेके कारण जहाँगीरने उनको मृत्युदण्ड दिया। १६०४ ई० में ग्रन्थ साहिबके सफलनका श्रेय भी इसी गुरुको है। उनके पुत्र हरगोविन्द (१६०६-३८ ई०) ने सिक्खोंका सैनिक संगठन किया। उन्होंने एक छोटी-सी अश्वारोही सेना भी बना ली और स्वयं भी तलवार ग्रहण की। अनुयायियोंकी संख्या भी बढ़ी। अब सिक्ख एक राजनीतिक शक्तिका रूप लेने लगे। उनके उपरान्त उनका पुत्र हरराय (१६३८-६० ई०) गुरु हुआ। वह शान्तिप्रिय था, किन्तु वह दाराशिकोहका पक्षपाती था अतः उसे अपने पुत्र रामरायको आश्वासनके रूपमें औरगजेबके सिपुर्द करना पड़ा। हररायके बाद उनका द्वितीय पुत्र हरकिशन (१६६०-६४ ई०) गुरु हुआ और तदनन्तर हरगोविन्दका द्वितीय पुत्र तेगबहादुर (१६६४-७५ ई०) सिक्खोंका नवा गुरु हुआ। विद्रोहके सदेहमें औरगजेबने गुरुको दिल्ली बुलाया किन्तु मिर्जा राजा जयसिंहके पुत्र कुमार रामसिंहकी सहायतासे वह बहुत समय तक पटना, आसाम आदिमें सुरक्षित रहे और फिर पंजाब आये। वहाँ आते ही सम्राट्ने उन्हें पकड़वा मँगाया और बड़ी क्रूरताके साथ उनका प्राणान्त कर दिया। दिल्ली

पंजाबसे मुग़लोंका अधिकार हो उठ गया। इससे सिक्कोंमें लाभ उठाया और अपनी शक्ति बढ़ायी। अब्दालीकी सेनाओंका ये निरन्तर परेशान करत रहे। पानीपतके युद्धके बाद अब्दालीने उनका दमन करनेका प्रयत्न किया और १७६२ ई० में लुधियानाके युद्धमें उन्हें पराजित करके १२००० सिक्कोंका संहार किया, किन्तु फिर भी उनका अंत न हुआ और ये उस दूने वेगसे बराबर परेशान करत रहे। अतत १७६७ ई० में अब्दालीने अपनी अनेमर्धता स्वीकार कर ली और फिर उन्हें न छेड़ा।

अब सिक्खान सुयोग्य युद्ध-तैयारीके नतृत्वमें बाराह मिस्ला (सैनिक दला) में विभाजित सिक्खदल-द्वारा बहुभाग पंजाबपर अपनी अधिकार जमा लिया। यह एक प्रकारका घम-सैनिक राज्यसंग था। किन्तु अब बाहरी शत्रुकी अनुपस्थितिमें ये मिस्लें परस्पर ही लड़ने लगी, और एक प्रकारकी अराजकता एवं अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। इन्हीं मिस्लोंमें से एकका सरदार महामिह था। १७९० ई० में उसका मृत्यु हो गयी।

उत्तके पुत्र रणजीतसिंहन जिसका जन्म १७८० ई० में हुआ था, १७ वर्षकी आयुमें ही अपनी पैतृक मिस्लका नेतृत्व ग्रहण कर लिया और छाटे-मोटे युद्धोंद्वारा अपनी शक्ति बढ़ाने प्रारम्भ का। १७९८ ई० में जब अब्दालीके पोते काबुलके अमीर जमनशाहने पंजाबपर आक्रमण किया तो रणजीतसिंह उससे मिल गया। जमनशाह तो विफल प्रयत्न होकर लौट गया किन्तु इस अवसरमें लाभ उठाकर रणजीतसिंहन १७९९ ई० में उसके सिक्ख अधिकारियोंसे उस प्रदेशको छान लिया। १८०५ ई० में उसने अमृतसरपर भी अधिकार कर लिया। लाहौरका अपनी राजधानी बनाकर उसने अब अपनी शक्तिका विस्तार करना शुरू किया। इस कायमें उसकी सात सदाकौर, जो मध्य एक मिस्लकी स्वामिनी थी, तथा मित्र क्रतहसिंह, जो एक अन्य मिस्लका स्वामी था, उसके प्रधान सहायक हुए। इस प्रकार शनै-शनै पंजाबके समस्त सिक्ख सरदारा और मिस्लोंकी अधीन करके १८२३ ई० में रणजीत सिंहन सम्पूर्ण पंजाबपर अपना राज्य जमा लिया। क्रतहसिंह तो उसका

उत्तराधिकारी स्वर्गसिंह एक वर्ष भी राज्य न कर पाया। स्वर्गसिंहका पुत्र नौनिहालसिंह जा अपने दादा रणजीतसिंहको ही भाँति होनहार था अगले ही दिन मार डाला गया। तत्पश्चात् रणजीतसिंहका एक अ्य पुत्र घेरसिंह राजा हुआ किन्तु १८४३ ई० में उसका भी वध कर दिया गया।

अब रणजीतसिंहके सबसे छोटे पुत्र दिलीपसिंहको जो छह वर्षका बालक मात्र था राजा बनाया गया। राज्यकी मारी शक्ति और सेना उसके नेताओके हाथमें थी। सना ही स्वयंका राज्यका प्रतिनिधि और खालसा कहन लगी, उसकी मर्यादा द्विगुणिन हो गयी और वही समस्त शासन, बजोरो, राजा एवं प्रजाकी भाग्यविधाता बन बैठी। चतुर अंगरेज तो ऐसे ही अवसरकी ताकमें थे। १८४५ ई० में दानों शक्तियोंके बीच युद्ध छिड़ गया। ननापनियाके परस्पर अविश्वास एवं विश्वासघातक कारण एकके बाद एक चार युद्धोंमें सिक्ख हार और अंगरेजोंको सहज ही विजय प्राप्त हो गयी। पश्चिम स्वरूप जा मन्थि हुई उसके अनुसार जालन्धर दाआवका सम्पूर्ण प्रदेश अंगरेजोंको प्राप्त हुआ, सिक्ख दरबारन युद्धके हरजानेके रूपमें तान करोड़ रुपया दनका वचन दिया और एक अंगरेज अफसर राजा दिलीपसिंहके सुरक्षकके रूपमें तथा शासनके प्रत्यक्ष विभागपर नियंत्रण रखनके लिए लाहौर दरबारमें समर्थ स्थापित हुआ। हरजानको रकम अदा करनके लिए ब्रह्मदेशका जम्मूके खोगरा मरदार गुलाबसिंहके हाथ बेच दिया गया। १८४९ ई० में अ्यका बहाना बनाकर अंगरेजान फिर युद्ध छेड़ दिया। सिक्ख बोरताके साथ लड़े किन्तु पराजित हुए। सिक्खराज्यका अन्त करके सम्पूर्ण प्रदेश अंगरेजी राज्यमें मिला लिया गया और महाराज दिलीपसिंहको पेंशन देकर इंग्लैण्ड भेज दिया गया। वहाँ वह ईसाई बन गया और मृत्यु पयन्त वहीं रहा। भारतका प्रसिद्ध काहेनूर होरा भी, जिसे नादिरशाह छूटकर ले गया था और जिसे रणजीतसिंहन बाबुलके अमार शाहशुजासे पुन प्राप्त कर लिया था, असहाय दिलीपसिंहम महाराना विकटारयाका भेंट करवा दिया गया। वही

दिल्ले जो अगली वसन्ततः गाउ गावा जो देखकी पत्ता न कर जोई सै
 कस लाग्य जिकी जिकी केनये जयौ हो नये जोर आगदौं जयके गाउओ
 गाउ न के अगाउ हू

[illegible][illegible]

छिड़ गया। १७१२ ई० में ताराबाईका पुत्र मर गया और अब स्वयं उसे भी पदच्युत करके उसकी सपत्नी राजसबाईने अपने पुत्र शम्भूजीको राजा घोषित कर दिया तथा उसकी ओरसे कोल्हापुरमें राज्य करना प्रारम्भ कर दिया। मतारामें साहूकी स्थिति भी बिलकुल ढाँवाडाल थी।

इसी समयमें कोकणके एक चितपावन ब्राह्मण विश्वनाथका पुत्र बालाजी भट्ट मराठा सरदार घनाजी जाधवका मन्त्री था। उसके कहनेसे घनाजी ताराबाईका पक्ष त्याग कर साहूमें आ मिला था। उसके साथ ही बालाजी भी आया। १७१० ई० में घनाजीकी मृत्युके बाद उसका पुत्र चन्द्रसेन जाधव फिर कोल्हापुरवालोंके पक्षमें चला गया किन्तु बालाजी साहूकी ही सेवामें रह गया। उसकी योग्यता देखकर साहूने उस अपना सेनाकर्त्ता (बख्शी) बना लिया और तदनन्तर अपना पेशवा (प्रधान मन्त्री) बना लिया। इस प्रकार बालाजी विश्वनाथ (१७१४-२० ई०) पेशवा वंशका सम्यापक हुआ। यह बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था। उसने एक-एक करके सभी लुटेरे मराठा सरदारोंका दमन किया और उन्हें वशमें कर लिया। कन्होजी आग्रे जैसे अधिक क्षयितशाली सरदारोंको भी समझौता करके अपनी ओर मिला लिया। अपनी शक्तिका सवधान करनेके लिए इन अनुयायनके अनन्यस्त निरकुश लुटेरे सरदारोंको अपने नियन्त्रणमें रखना आवश्यक था, अतः साम, दाम, भय, भेदसे उन्हें वशमें करके उसने एक नवीन मराठा मघका स्थापना की जिसका आधार चौघ और सरदेशमुखी था।

समन-द्वारा नियत भूमिकरका दसवाँ हिस्सा सरदेशमुखी कहलाता था और वह पूरा मतारामके मराठा राजाका मिलता था। चौघ भूमिकरका चौथाई होता था, उसका २५ प्रतिशत मराठा राजाको जाता था तथा अन्य ६ प्रतिशत सहोत्रके रूपमें और ३ प्रतिशत नङ्गगुण्डक रूपमें राजाकी इच्छापर अवलम्बित था, जिसे वह चाहे 'उम दे'। शेष ६६ प्रतिशत जो मोकासा कहलाता था मराठा सरदारोंमें बँट जाता था। प्रत्येक सरदारको

नही देना चाहिए। किन्तु बाजीरावने कहा, यदि हम जजर वृक्षके तनेपर ही नीचे प्रहार करेंगे तो उसकी शाखा प्रशाखाएँ तो आपसे आप गिर पड़ेंगी। उसकी वस्तुनाके प्रभावमें आकर महाराज साहू भी अपनी स्वीकृति दे दो। अनएव पेशवाने मालवा और गुजरातपर अनेक आक्रमण किये। इन आक्रमणमें मल्हरराव होन्कर, रानोजी सिंघवा, ऊदाजी पेंवार, रघुजी भासले, पिलाजी गायकवाड आदि उसका अनुचर सगदार अनुभवों एव मिदहस्त हो गये। उसकी युद्ध-यात्राओं और विजयोंके कारण राज्य-को विशाल सेना सुदूर प्रदेशोंमें व्यस्त रहने लगी, उसका निर्वाहका कोई भार राजकोषपर नहीं रह गया, उलटे लूट आदिका धन ही निरंतर राज्य-में आने लगा और मराठाकी शक्ति, प्रभाव एव आतंक देशव्यापी होने लगा। १७२७ ई० में महाराज साहू पेशवाका राज्यके सर्वाधिकार सौंप दिये। पेशवाने १७२६ ई० में श्रीरंगपट्टन तक सुदूर दक्षिणमें भी धावा किया था। निजाम उसके लिए बाधक बन रहा था। उसने कोल्हापुरके राजासे मेल करके पेशवाके चौथ वसूल करनेवाले व्यक्तिका निकाल दिया। किन्तु १७२८ ई० में पलखेडके युद्धमें पेशवाने निजामको पराजित करके उसे कोल्हापुरका पक्ष त्यागने एवं चौथ और सरदेशमुखी नियमित रूपसे देते रहनेका वादा करनेके लिए बाध्य किया। निजामने अपनी कूटनीतिसे सेनापति त्रियम्बक दामडेको पेशवाके विरुद्ध कर दिया किन्तु पेशवाने १७३१ ई० में दमोईके युद्धमें सेनापतिको पराजित करके मार डाला। पेशवाके भाई चिमनाजीने मालवाके मुगल सूवेदार गिरधर बहादुरको भी पराजित करके मार डाला और उसका उत्तराधिकारी मुहम्मदखान बगश भी पराजित हुआ। तदनंतर राजा सवाई जयसिंह मालवाका सूवेदार हुआ। उसने पेशवासे समझौता कर लिया और सम्राट्म कहकर उसे मालवाका नायब सूवेदार बनवा दिया। गुजरातके सूवेदार राजा यजोत-सिंहने भी पेशवाकी चौथ एवं सरदेशमुखी देना स्वीकार कर लिया। इसी समयसे गुजरातमें पेशवाके प्रतिनिधिके रूपमें गायकवाडका प्रभाव बढ़न

पिताकी भाँति महत्शत्रुवांशी तथा उसकी उत्तराभिमुखी नीतिका तो अनु-
मर्त्ता था किन्तु उस जैमा वीर योद्धा, वृधाल सेनानायक और राजनाति-
पटु न था। जयपुर, जोधपुर आदि उत्तराधिवाय्ये क्षगहोंमें (१७४३-
४९ ई०) हस्तक्षेप करने और फलस्वरूप उन राज्याकी लूट लूट करानेमें ये
राजे भी मराठोंसे चिढ़ गये और उन्हें अपना शत्रु समझने लगे। १७४९ ई०
में छत्रपति माहकी मृत्यु हो गयी। उसकी वसोयतने अनुसार ताराबाईके
पोतेको मतारागा राजा बनाया गया, किन्तु ताराबाईने स्वयं ही उसका
विरोध किया और राजाराम राजा बनाया गया। उसने राज्यके सर्वाधिकार
पेशवाको सौंप दिये। अब मतारा और कोल्हापुरके राजा नाममात्रके
अनुल्लक्षनीय छाटे में राजा मात्र रह गये। विस्तृत मराठा साम्राज्य एवं
विशाल मराठा शक्तिका एकमात्र स्वामी पेशवा ही था। १७५० ई०
में उसने पूनाको अपनी पृथक् एवं स्वतंत्र रामधानी बनाया।

उसके मराठा सरदारोंमें वरारका रघुजी भोमले ही उसका प्रबल विरोधी
और प्रतिद्वन्द्वी था। पेशवाने उसे भारतक पर्वी प्रांतोंके सम्बन्धमें खुली छूट
देकर सन्तुष्ट किया। अब भोंसले और उसके सहायक भास्कर पण्डितने प्रति-
वर्ष बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी गैदना एवं लूटना शुरू कर दिया।
भास्कर पण्डितकी बंगालके तत्कालीन नवाब अलावर्दीखाने मरवा दिया,
इसमें भासलेके आक्रमणोंकी भीषणता और अधिक बढ़ गयी। अन्तत अलो-
वर्दीखाने भोंसलेको उड़ीसाका समूचा प्रान्त देकर और बंगालकी चौथके
रूपमें १२ लाख रुपये प्रतिवर्ष देनेका धचन देकर उससे अपना पिण्ड छुड़ाया।
पेशवा निजामके उत्तराधिकारी सलावतजगमे उलझा किन्तु उसके फ्रान्सीसी
सरक्षक बुसीने १७५१ ई०में पेशवाका कई बार हराया। १७५५ ई०में
पेशवाने सरदार आग्रे और उसकी जहाजी शक्तिको नष्ट करनेकी मारी भूल
की। १७५८ ई० में बुसीके हैदराबादसे हटते ही पेशवाने निजाम राज्य-
का अन्त करनेपर कमर कसी, अहमदनगरपर उसने अधिकार कर लिया
और निजामके कुशल तोपची इग्राहीमगर्दीको अपनी ओर मिला लिया।

पैसवाके बाई नरायणचरण साहने कृष्णिके मुकुमें निहालकी बुरी छाप
 नरायण चरणके छेके छापने बीकानाबाद बभीरनग बीकानपुर, बड़वाचन
 और बुराइनपुरके मुकदमिद दुर्ग तथा ६ मयब इन्ने मरिचक कामका और
 पैसवाको बीप देनेके छिद्र बाध कर दिया । कबल कलामें हम बीकानें पैसवा-
 के बाई एबीकामें कलमे १७५४-५६ ई के बाइकननके राजकुमारके बन्धु,
 उदयपुर, बाइक कुंशी बादि विविध राज्योंमें लड़-आर करके बीप क्लृप्त
 की और लखे दिल्ली आकर बाइकनन कामकाइको पहुँचे कलामकर
 बाइकननीर डिपुमको बाइकनन कलामेंमें बहीर इबादुल्लुहकी मज्जला
 बा । बाइ बहादुर नरायणके पुनप्राप्त बहीन बा । ईवाके कामाईमें बी कलमे
 कलमे उदय दे रिसे मुरकमक बाइके राजमें बी कलमेंमें लड़-आर की बीप
 छिद्र बाइकनकी कोर कलमे । १७५६-५७ ई के बड़वाचन बाइकनकी
 दिल्ली आया और कलमे बाइकननन बीकान और मुकदमके कुंसे बाइक कर
 लिये । किन्तु उदयकी बीक छिद्र ही राजीकामें १७५७-५८ ई के छिद्र
 कलमे बाइकनन बाइकनन विद्या और हम बाइ कलमे लड़ बाया दिया
 तथा पहुँचे बाइकनकीके इतिनिबिकी कलामकर कलमी बीकन कलीकनननकी
 कामका निबुस्त कर दिया । कल नरायणकी बाइक कलमे बाइक विद्यानन
 पहुँच गयी था । कलकनके बीकननकी बीक कलमे बाइकनन कामका
 कलमे उदय कामका बाइकनन ईक कलमे बाइ और बाइ-आर बाइकनने के बीप
 कलमे करके थे । राजपुर बाइ, कलमे दिल्ली दरबार और निहाल कली
 कलका बीकन कलमे के कलमे कलमे बाइकनन बा ।

इसी समय दक्खिनमें पैसवाका निहालके बाइ बुरा छिद्र कलमे बा
 निहाल नवाबान बाइक एबीक कलमेंमें कलमी विविध दुर्ग बन्धुलन
 इतिनन कामका कलमे बाइकनकीके कलामकर दक्खिन कलमे कलमे । कलकनकी
 बाइकनकीके कलामनन कलमे कलमे बाइकनन और बाइकननन कलमे दिल्ली
 दरबारनन कलमे कलमे लुन लुन कलामकी कलमे कलमे कर कलमे बा । कलकन
 नवाब और कलमेमें बी बी कलकनकी कलमे कलमे बाइकनन और

मुगलमार्गोंको रक्षा करनेके लिए उसे माग्रह आमन्त्रित किया। अतएव अब्दालीने एक विशाल सेनाके साथ फिर आक्रमण किया। १७५९ ई० में ही उसने पञ्जाबपर पुन अधिकार कर लिया, १७६० ई० के प्रारम्भमें ही उसने दत्ताजी सिन्धियाको पराजित करके मार डाला, राजधानी दिल्लीमें प्रवेश किया और होन्करको मार भगाया। तदनन्तर वह अलीगढ़में डेरा डालकर मराठोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा। अवधका नवाब गुजा-उद्दौला और रहैना सरदार नजीबुद्दौला ससैन्य उसमें आ मिले। मराठे दक्षिणमें निजामके साथ हो उलझ हुए थे। उत्तरके ये समाचार पाने ही पेशवाके भाई मदाशिवराव नाळ और पुत्र विद्यासरायकी अध्यक्षतामें शिवाज मराठा सना अब्दालीका सामना करनेके लिए चल पड़े। इब्राहीम-गढ़ीका प्रसिद्ध तोपखाना भी उनके साथ था। उन्होंने आते ही दिल्लीपर अधिकार कर लिया और खवानीक रसदक आधार कुजम्पुरपर भी कब्जा कर लिया और फिर पानीपतके मैदानमें आ डटे। मन्हरगव होन्कर, मदाशजी सिन्धिया आदि मराठा सरदारोंके अनिरिक्त सूरजमल घाट भी उनमें आ मिला। १७६० ई० के नवम्बरमें ही दोनों मराठों पानीपतमें आ डटे। घों, छुट छुट हमले चलते रहे, किन्तु मराठा सेनाकी कम संख्या ही घली थी और सैनिकोंके अनिरिक्त पादों, बैल आदि वस्तुओं को धरे धरे लगे। १८ जनवरी १७६१ ई० के प्रातःकाल पानीपतका यह तीसरा भोवण घुड़ प्रारम्भ हुआ और तीसरे पहर तक समाप्त हो गया।

इस घुड़में मराठे पराजित हुए। स्वयं नाळ जी शिवाज-राव घुड़में मारे गए। उक्त २३ शतक मराठों की काम आद, मृत और शरण लेनेवाले कई दिनोंका भी। मराठोंकी ४५००० मराठे मृत अन्योक्त अश्विनिक विनाशित नोकरा, बाकरी आदिम वृद्ध पाद ही बचकर अपने जीवन पर पहुँच पाये। अलीगढ़ी ६०००० सेनावाली भी पराजित हुए घुड़में काम आया। इसमें उसका काम भी आद मार मार

3 2

4

[illegible]

वैद्यका माधवदास बाराबंका (१७८९-१९ ई) के समयमें गणेश
चन्द्रनदीन राउत मन्त्री और मन्त्रसर्ग या तबाना बाराबंका निम्नलिखित उक्त
मन्त्रसर्ग और मन्त्रसर्ग का । बाराबंका जहाँ बँदोबंकाके जिन से केन्दुरके कुट्टीमें
कन्दोव बँदोबंकाका बाल निवा और ईश्वरके चरणोंमें लुटके दिवस बँदोबंका ।
१७९५ ई के कन्दोवमें बाराबंका कुट्टीमें निवासमें ही राउत बंकाके और
हमजाका और बीरमाकाका कुट्टी काज निवा, किन्तु कभी वह वैद्यकाके
कुट्टी ही नहीं वह निम्नलिखित था । राउतकाके पुत्र बाराबंका द्वितीयमें
बाराबंका अधिकार करता था । बाराबंकाका उक्त निरोधो या
मन्त्रसर्ग कही वैद्यका बंका १८ ई के मन्त्रा चन्द्रनदीन की घर बंका ।
कच इन्द्रका और निम्नलिखित दोनोमें ही पुत्रा बाराबंका मन्त्रा उक्त मन्त्रा
बंका । इन्द्रकाके वैद्यका और निम्नलिखित मन्त्राका कर निवा वैद्यका काज
कर बँदोबंकाके चरणोंमें लुटके बंका बंका और १८ २ ई के बँदोबंकाके मन्त्राका-

मन्धिकी सब शर्तें मानकर वह उनके अधीन हो गया। इस मन्धिकी सिधिया, होल्कर, भामले आदि सभी मराठा मरदारोंने जो अब प्रायः पूनाके प्रभुत्वसे स्वतन्त्र हो गये थे, बड़ा अपमानजनक माना और अंगरेजोंके साथ युद्ध छेड़ लिया।

अवतक अंगरेजोंकी शक्ति पर्याप्त बढ़ चुकी थी, १८०३-०५ ई० के मराठा मरदारोंके साथ किये गये इन युद्धोंमें अंगरेजोंको ही विजय हुई और उन्होंने पेशवाके माध-टो-साय मिन्धिकी होल्कर, गायकवाड और भासलेका भी सहायक सिधियोंने जालमें जकड़कर अपने अधीन कर लिया। बाजीराव द्वितीय अपने पिताका ही भाँति मूर्ख एवं दुष्ट प्रकृतिका व्यक्ति था। वह पूना मात्रका ही राजा रह गया था किन्तु अपने पूषजाकी भाँति पूरे मराठा सभका अध्यक्ष बनना चाहता था जो अब असम्भव था। उसका मन्त्री श्यामकजी भी बड़ा धूर्त और दुष्ट था। इन दोनोंने पड़्यन्त्र करके गायकवाडके घमतिमा विद्वान् एवं सुयोग्य ब्राह्मणमन्त्री गंगाधर-शास्त्रीका वध करवा दिया, जिससे समस्त मराठा सत्तारमें सनसनी फैल गया। अंगरेजोंने भी हस्तक्षेप किया और अपराधों श्यामकजी पकड़नेका विफल प्रयत्न किया। १८१७ ई० में एक मन्धिकी द्वारा उन्होंने पेशवाका कूठ और इलाका द देनेके लिए तथा मराठोंका मुख्यता बननके अधिकारका त्याग कर देनेके लिए बाध्य कर दिया। पेशवान इस मन्धिकी तोड़ा फूट-स्वरूप १८१८ ई० में अंगरेजोंके साथ युद्ध छेड़ गया अन्य मराठे राजे भी उसमें उलझ गये और पराजित होकर सभी अंगरेजोंको प्रदेश एवं धन और अधिकार देकर और उनकी पूर्ण अधीनता स्वीकार करके पिण्ड छुड़ाया। पेशवाका तो राज्य, पद, अधिकार सब छीन लिया गया और उसे पंजन देकर कानपुरके निकट बिठूरमें रहनके लिए भेज दिया गया जहाँ शतरज खेलकर उसने जीवनके शेष दिन बिताये। १८५१ ई० में उसकी मृत्यु हो जानपर उसका दत्तक पुत्र नाना साहिब बुधुपन्तकी पेशान भी बंद कर दी गयी।

मराठा राज्य—मिनाबोर वगैरेमें परगना जमाकर कच्ची भूमि
 लोक कर्षक नीगर हा कृषाच और कोल्हापुरक ही राज्य स्थापित कर
 दिये थे । मराठा राज्यके आसपासे ही पेशवाओंका सम्पूर्ण हुका था ।
 व मराठे यही व सर्वको शासन थे । १८-गु कुटुम्बे सम्पूर्ण मराठा-राज्य
 को ब्रह्मन् मराठा वाघापोर अपना प्रमुख स्थापित करके आली बलित
 वा अनुमन विधान दिया था । कोल्हापुर राज्य हा मराठाने ही मध्यम
 का शासन था । १७७५ म मराठा की १७८९ ई में बाह्यकी भूमिके उपास
 कची विभागको राज्य हा बना और पेशवाओंकी की उनमें कोई विनयकी
 व ही । पेशवा शाशासन प्रथम ही पेशवा स्थापित वास्तविक निषी
 था और कम स्थापित ब्रह्मन् ज्ञान स्थापित बनाये । १८ कच्ची दूर मिनाबी
 मध्यकाल १८७५ म मराठा उपास वीर राधाजी विनिवदा, मराठार
 शासन और ब्रह्मन् कच्चीक ब्रह्मन् एवं कच्चीक हाग विनिवद एवं विनिवद
 दिया था । ब्रह्मन् कच्ची कुटुम्बे वाघ केकर व मराठार कम बलित केग
 मराठा और अनुमनच वर्यन् ब्रह्मन् कर रहे थे । ब्रह्मन् ब्रह्मन्विधानी
 बाबाकी बाबापोरके ब्रह्मन् हा कच्ची बलित दुरी वरु कची की दि
 पेशवा कुटुम्बे वरु करमका मराठक व कर मराठा था । कच्ची मराठाने कच्ची
 मराठके विनिवद मराठाने कच्ची स्थापनी केग वा कच्ची मराठाने के वरु मराठ
 मराठाने कच्ची (कुमराण) के विनिवद मराठाने ही मराठाने कच्ची
 मराठाने मराठाने दुरी ।

पेशवा ने आधिपत्य में मुख्य, स्वतंत्र राजा घोषित करना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु दोस वर्षों के भीतर ही हमारे अंगरेज-मराठा युद्ध (१८०३-०५ ई०) के फलस्वरूप उन सभी मराठा राजागणों ने स्वयंका अंगरेजों की सहायक-संधि योजना में जकड़वाकर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और १८१८ ई० के तीसरे युद्ध के उपरान्त तो वे अंगरेजों की पूर्णतया अधीन और आश्रित हो गये, उनकी ही कृपापर अश्वत्थिवत् हो गये और अंगरेज उनके आन्तरिक मामलों, उत्तराधिकार के प्रश्न, शासन-प्रबंध आदि में भी गुलाब-हस्तक्षेप करने लगे। उनमें से जिसका जब चाहा अंगरेजों ने अंत कर दिया, जो बच रहे वे वर्तमानकाल पर्यन्त चलत रहे। मराठों और दक्षिण-प्रादेशिकों के कुछ अन्य भी छोटे छोटे राज्य थे। उनकी भी यही गति हुई। उपरोक्त राज्यों के क्षतिपूर्ति प्रारम्भिक नरेश यथा मल्हाराव होल्कर, अहमदाबाद, महादाजी सिंधिया आदि अत्यन्त चतुर, सुयोग्य एवं पराक्रमी थे और अपने काय कलापों के लिए इतिहास प्रसिद्ध हैं किन्तु उनके प्रायः सभी के और प्रायः सभी उत्तराधिकारी निष्कर्ष और अयोग्य हो रहे।

धर्म और संस्कृति—इस दृष्टि से उनके ऐतिहासिक अवयुग में धर्म और संस्कृति-जैसा प्रकाश पुजो की बात ठाना ही व्यर्थ है। उन कालों की धार अराजकता, अशांति, मार-काट, लूट-खसोट, ईर्ष्या-द्वेष वैय-विरोध एवं सद्व्यवस्था की धार नैतिक पतन के बीच जहाँ छोटे बड़े किसी की भी प्रतिष्ठा, प्राण और धन की सुरक्षा नहीं थी, धर्म और संस्कृति की ओर ध्यान देने का किस अवकाश था। उस काल के राजे रईस, नवाब, अमीर, सामन्त और सरदार अधिकतर या तो निर्मम लुटेरे एवं क्रूर अत्याचारी थे अथवा कायर आसपी, बिलामी और दुराचारी थे। किसी की भी अपनी किसी प्रकार की स्थितिके स्थायित्व का कोई विश्वास और भरोसा न था। अतः या तो वे नितान्त अविषकी हो स्वार्थसाधन में रत हो जाते या फिर निर्द्वन्द्व हो विषय भोगों में डूब जाते। इस काल में किसी भी धर्म, जाति, वर्ग या प्रदेश में किसी भी तेजस्वी महात्मा, सन्त, महान् समाज-सुधारक या

कुछ वंशजों तथा अथ मुसलमान नवाबोंके प्रयत्न, प्रथम और प्रोत्साहनसे उद्दामा और उद्दृशायरीको अभूतपूर्व उन्नति हुई और नज्दोर, नसीर, मीर, सौदा, हाली, जोक, दाग, गालिब आदि अनेक उच्चकोटिक गायर हुए, तथापि उद्दूके इन शायरोंने भी इस्क हक़ीकोके बहाने इस्क मज़ाज़ीके कामोत्तेजक गीत गा गाकर अपने आश्रयदाता नवाबा, अमीरों, रईसों और उनक दरबारियोंका विलासिता, काहिली और विषय-भागामें अधिकाधिक शर्क होनेमें ही सहायता दी। यदि कुछ और किया तो यह कि उन्हें निराशावादी बना दिया। कोई नैतिकता या सत् सन्देश इस उद्दृशायरीमें भी न था। दिल्ली और लखनऊ उद्दृशायरीके प्रधान केन्द्र बन गये। तत्कालीन हिन्दा एव उद्दू साहित्यके आधुनिक प्रशसक भले ही उनमें गूढ़ अथ ईश्वरीय प्रेम, अन्य अतिशय ऊँचे-ऊँचे भाव एव आदर्श खोज निकालें, किन्तु जिस कालमें और जिन लागोंके लिए वे कविताएँ—शेर या गीत, गज़लें लिखी गयी थीं और जो उन्हें पढ़ते या सुनते थे उनपर तो इस साहित्यका कोई सत्प्रभाव पड़ा दृष्टिगोचर होता नहीं, प्रत्युत देश और जातिके नैतिक पतनमें ही वह भी साधक ही हुआ प्रतीत होता है।

धार्मिक, तात्त्विक, राष्ट्रीय या किसी भी प्रकारके वैज्ञानिक साहित्यका उस कालमें प्रायः कोई सृजन हुआ ज्ञात नहीं होता। आमोद प्रमादमें मग्न और शराब, अफ़्रोम एव कामानियाके शरीरभागमें सव्यकारके गम-ग्रस्त करनेवाले इन राजे, रईम और नवाबोंने संगीत और नृत्य आदिको भी अपनी ऐशका साधन बनाया, अतः प्रोत्साहन दिया। किन्तु इन महान् कलाओंको भी नीच उद्देश्योंका इस प्रकार साधन बनाकर विकृत एव पतित कर दिया और उनका विकास एव उन्नति करनक बजाय उनका रूप एक मूल्यकी अत्यन्त गिरा दिया। विविध कुव्वसनाका ज़िम देश और समाजमें धोलवाला था वहाँ सत्साहित्य और कलाओंको क्या प्रोत्साहन मिल सकता था। चित्र एव मूर्तिकलाकी भी प्रायः यही दशा थी इस काममें उनको साधना, विकास या किसी उत्कृष्टनियम कृतिका निर्माण नहीं

हृत्वा प्रणीत होता । इन राजाओं और बगलमें स्थापित एवं मिलनसार
 भी कोई विशेष विचार या किसी महत्त्वपूर्ण इतिहास निर्माण नहीं किया ।
 हिन्दु, बौद्ध बुद्धमार्ग आदि किसीका भी कोई महत्त्वपूर्ण बशीरग-मन्दिर,
 मन्दिर आदि तो इस नाममें आवा' बना ही नहीं किया अपने अपने लिए भी
 किसी उपलब्धनीय नगर पूर्व राज्यान्तार आदिमा निर्माण भी करनेमें
 आवा' नहीं किया । अतःहिन्दूकी देवमात्माएँ, ब्रह्माणादिके मन्दिर अमुक-
 नाममें किसीका स्वामन्दिर अमुकद्वारे गवाही-द्वारा निर्मित इनके दो-एक
 इनाम-दाहे या दण्डित विमान-मन्त्र एवं उच्चतम देवमायो-द्वारा कुछ
 तीर्थोंपर बगलमें कोई-कोई हिन्दु मन्दिर ऐसे ही बगलमें दो-एक अन्य
 उपाहारन अथवा नई या कपड़ों हैं । हिन्दु ने भी कोई विशेष बल्लेबलीय
 बगल-इतिहास ही ऐसी बात नहीं है ।

अतः, बीच बगलमें आदि बनानेका तो कोई प्रयत्न ही नहीं था,
 या भी वे भी यह कहते होते नहीं । इतिहास बगल बौद्धनीय भी और
 ब्रह्मा-कन्ये एवं प्याहार इतिहासके यह होते या रहे थे । भारतवर्षके राज्य
 सभी विभिन्न द्वीबोमें स्थित हिन्दु, बौद्ध आदि तीर्थक्षेत्र केवल विभिन्न
 नामोंसे कभी कभीके नामांतर आचार-प्रचार एवं अनुष्ठानके अन्त-
 र्गत नामन करते आये थे । हिन्दु इन अद्यावधि एवं अद्यावन्तके मुरवे
 बगल के भीतर ही मुरवा निर्दिष्ट न भी तो सर्वत्र बना बगल
 के बीच आहुती मुरवेमें अत्यन्त मर्यादित होकर बगल तीर्थोंकी बना
 करदेका कोई आसन ही न कर बनता था । अतः इस कारणसे वे
 तीर्थ-नामाएँ अत्यन्त कम ही थीं जिसके कारण निर्जन स्थलोंमें स्थित
 तीर्थों एवं उनके बगलमें स्मारकोंकी बगल भी निर्माही नहीं गयी । हिन्दु,
 बौद्ध आदि-कन्ये केवल लोकार आदि भी आवा' बन-के ही गये । प्रत्यक्ष ही
 बगलके इतिहास केवल लिए बगल ही न था दूसरे बगल निर्दिष्टतापूर्वक
 बनानेकी सम्भावना था न रहे गयी थी ।

बगल-इतिहास केवल और विचार-स्थान की अत्यन्त एवं अत्यन्त होने वाले

गये। मावजनिक शिक्षाको कोई व्यवस्था ही नहीं रह गयी। प्रत्येक समाज और वगमें धोर ऋद्धिवांशिता, मकीर्णता एवं अनेक अचरित्रताम और भुगीतियाँ घर घर गयी थी। धर्मन परम्परागत नामो, प्रथाआ और कतिपय बोझ आचारो मात्रका रूप ले लिया था। तेजस्वी धर्मानार्यो, सन्ता, मुद्धारको एव विद्वानोके अभावमें प्राण एवं धनकी रक्षामे ही सदैव चिन्ताकुल जनमाधारणका धार्मिक जीवन गडन लगा था। क्या इस्लाम, क्या शैव, क्या वैष्णव, क्या जैन और क्या मिश्र अथवा अन्य कोई भी धर्म, सबको प्रायः एक-ही रखा था। सभी धर्मोंमें धोर विकार अनेक पन्थ उपपन्थ, जो म्बय परम्पर एक दूसरमे वैमनस्य रखते थे, तथा एक प्रकारकी शिथिलता उत्पन्न हो गयी थी। छोटे ही मुसलमान हागे इस्लाम-के सिद्धान्ताको भली प्रकार जानते हो, उमके नियमोका ईमानदारीके साथ पालन करते हा और अपने धर्मके विकट कार्योंको न करत हो या कुछ कही जानेवाली प्रवृत्तियोंमें रत न रहते हों। हिन्दुओंक साथ अपना विरोध बनाये रखनेके लिए ही अथवा अपनी राजनैतिक शक्ति बनाये रखनेके लिए ही वे मुसलमान थे। जब हिन्दुओ या जैनो आदिकी सहायता और सहयोगकी आवश्यकता होती तब वे उनके धर्मके प्रति अत्यन्त सहिष्णु एवं सदाग हो जाते, जब विरोध होता तो बडेमे बडा अत्याचार करनेमें न चूकते। परिस्थितियोंने मन्त गुरु नानकके सीधे मरल धर्मको एक नैतिक संगठनका रूप दे दिया जिसकी राज्य और शक्तिरूपामे बह धर्म कमाने कम उस कालमें तो डूब ही गया था।

जन-माधारण हिन्दू, राम और कृष्णके रूपमें विष्णुके तथा शिव, गणेश, हनुमान्, दुर्गाके मुख्यतया और सामान्यतया तीतोस करोड देवी-देवताओंके उपासक हो गये और उनके लिए शैव, शाक्, वैष्णव आदिका बहुधा कोई भेद नहीं था, किन्तु प्रात, प्रदशों, जानियों और वर्गोंकी दृष्टिसे कहीं शैव मतका, कहीं शाक्तका, कहीं रामभक्तिका, कहीं कृष्ण-भक्तिका, कहीं लिगायत आदि अन्य किसी सम्प्रदायका विशेष पक्ष था

नहीं पहना चाहिए। इसके विपरीत मैसूर के हैदरअली और उसके बेटे टीपू ने अपने राज्य के जैन-गुरुओं और जैन तीर्थों को दान दिये और उनके श्रवणवेलगोल-जैसे तीर्थों का संरक्षण किया। स्वयं औरंगजेब के मुहम्मदशाह आदि वंशजों ने जैन के आग्रह पर जब-तब जीवहिंसा प्रतिवन्धक फरमान जारी किये, और खीमसी भट्टारो, राव कृशारामशाह, लाला हरमुखराय, राजा सुगनचन्द आदि को अपना सजाचो बनाया तथा अपनी दिल्ली, आगरा आदि राजधानियों में भी जैनो की धार्मिक स्वतन्त्रता में विशेष वाधा नहीं दी। बंगाल की नवाबी में मुशिदाबाद का जैन धर्मानुयायी जगतसठ और उसका घराना अत्यन्त प्रतिष्ठित था। धनकुबेर जगतसेठ उस राज्य का स्वामी था और अंगरेज भी उसका आदर करने पर विवश थे। व्यापारियों के रूप में जा घोड़े-बहुत जैनी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम आदि में थे उनकी दशा अन्य हिन्दुओं से भिन्न नहीं थी। यही दशा पंजाब, सिन्ध आदि में थी। शेष उत्तर भारत—दिल्ली-आगरा प्रदेश, मध्य भाग तक मराठा राज्य, राजस्थान, गुजरात आदि में जैनो का अनेकाकृत वाहुल्य था, किन्तु यहाँ भी उनकी धार्मिक और सामाजिक दशा प्रायः वहाँ के अन्य हिन्दुओं जैसी ही थी। सुदूर दक्षिणक तमिल प्रदेश एवं मैसूर आदि दक्षिणी कर्णाटकी प्रदेशों में जैन-धर्म इस काल में भी अपेक्षाकृत उन्नत दशा में रहा। अब भी कई छोटे-छोटे जैन राज्य वहाँ विद्यमान थे। उस प्रदेश के जैन-तीर्थों एवं गुरुओं का संरक्षण एवं कन्नड भाषा के जैन-साहित्यकारों का प्रश्रय वहाँ बराबर बना रहा। अनेक धार्मिक एवं लौकिक ग्रन्थ इन विद्वानों ने इस काल में भी वहाँ रचे। कई ग्रन्थ तो ऐतिहासिक महत्त्वक भी हैं, विशेषकर वहाँ की एक जैन रानी रम्मा का प्रेरणापर देवचन्द्र-द्वारा रचित राजा-वल्लभ्ये (१८३४ ई०) पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। साहित्य-मृज्जन को दृष्टि उत्तर भारत में उस काल में जैनो के प्रमुख कन्द्र—गुजरात, दिल्ली, आगरा, और जयपुर थे। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में साहित्य-सृजन चलता रहा। किन्तु उसमें गद्य एवं पद्य के हिन्दी साहित्य की ही बहुलता

रही और कछकी रचनामें बरपुर केन्द्र मर्यादित ही रहा । इन क्षेत्रों में बरके
 मराठवाड़ा नाममें सम्भव पचास-साठ सैन कर्मियों एवं साहित्यकारोंमें
 नाम मिलते हैं जिनमें कबला एक दर्जन पर्यन्त प्रमुख हैं—बोलाचण्ड,
 गेडरमल्ल, सुबराहान सुबराह, यशोविजय बलराम, बरानुष, कालकल,
 नवमल, देवराज, गुलाबन, देवराज, चन्द्रनाथ, रमविजय, ध्यानलाल,
 नवलसुन्दर आदि ।

बैरागी मुविवाचक के अन्तर्गत दिल्लीके बाड़ी कबांची हरदुखराय
 और सुबराहान बरपुरके नवमल विजय आदि सब बाकी प्रसिद्ध
 व्यक्तिगणों-से हैं । राजपूत राज्योंमें राजनीतिमें भी इस नाममें कुछ
 पैनेने महत्त्वपूर्ण नाम मिले हैं । मुनीश्वरजी देवराज बाबू जी या
 कितने सिल्लिकारा मुद्रा हुआ था ।

बरपुरमें किसी राजा बरबिहारे सम्भव बलराम जी एक सम्भव
 कदाचि प्रमुख था । कालका सुब विजयराज राजा रामविहारी और विजयविहारी
 के समयमें बीता था । यह और बीजा जी या और बाबलीके मुद्रों
 मारा गया था । इसका सुब राजकल कबला बहादुर लवाई बरबिहारी
 (१७ १-४३ ई) का बाबिला हान एवं बहाल बीबा था । यह
 भी बाबल-बहाल एवं राजनीतिमें बाबल मुद्रा होनेके बाब-बी-बाब
 और बीजा एवं मुद्रा फैलायी था । बरपुर और बीबपुरके राजाओं
 बरबिहारी और बरबिहारी जी बरबर बाब-बहाल जी से बहाल
 विहारके मुद्रोंमें बाबलका बाब दिया था कल बहालबाबल बीबी राजनी
 पर बहाल बाबके कल विजय विहा और बाबल बाबल कर दिया ।
 बीबी राजा बाबल बरबुर बाबे बने । बरबिहारे बाब बहाल बीबा
 रामकल जी था । बरबुरबाबली कोई सम्भवित मुद्रा बहाल बरब
 बाबल बरबुरकी और बाब दिया कल कल-बाब-बीबाके कल बाब-
 बाबली मिलने कल विहा बाबल दिया और बरबुर बाबल कर
 दिया । इसी प्रकार अपने राजाकी बाबले बहाल बीबपुरके भी बाबली

नेनाको मार मगाया, और दोनों राजाओंको अपने-अपने राज्यमें स्थापित कर दिया। इस दीवानने साम्बरको भी मुसलमानोंमें विजय किया और दोनों राजाओंके बीच घंटा दिया। राजापर बादशाहको प्रसन्न करनेमें भी यह शीवान महायक हुआ और राजाक साथ दिल्ली गया तथा जब राजाको मारवाका सूबेदारी मिली तो वहाँ भी उसके साथ गया। तदुपरान्त राय कृभागम, जिवजी लाल (मृत्यु १८१० ई०), अमरचन्द (१८१०-३५ ई०) आदि प्रसिद्ध जैन दीवान जयपुर राज्यमें हुए। दीवान अमरचन्द विद्वानोका भागी आश्रयदाता था, निधन छात्रोंको छात्रवृत्ति देता था, स्वयं भी बड़ा विद्वान् और धर्मात्मा था और अनेक मंदिराका निर्माण एवं ग्रन्थोंकी रचना भी इसन करायी थी। राजाका मारा दाप अपने ऊपर लेकर और अपने प्राणोंकी बलि देकर अंगरेजोंके क्रोधमें उसने जयपुर राज्यकी रक्षा की थी। इस कालमें जयपुर राज्यके जैन-साहित्यकारोंने विशेष रूपसे हिन्दी बड़ी बोलीके गद्यका अभूतपूर्व एवं महत्त्वपूर्ण विकास किया। जयपुरके विद्वानोका देशके अन्य प्रदेशोंके जैन विद्वानोंके साथ भी बराबर सम्पर्क रहता था। ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ करनेका एक विशाल कार्यालय भी इस कालमें वहाँ स्थापित हुआ जहाँसे सर्वत्र ग्रन्थ भेजे जाते थे। अनेक जैन मंदिरोंके अतिरिक्त जैन-मूर्तिकलाके निर्माणका भी केन्द्र जयपुर बना। केवल जयपुर नगरमें ही उस कालमें लगभग दस-बारह हजार जैनी थे।

जोधपुर राज्यमें महाराज अजीतनिहवा प्रधान दीवान रघुनाथ भण्डारी था, छिमसी भण्डारी महागजका प्राइवेट सेक्रेटरी (तनदीवान) था और अनूपसिंह जोधपुर नगरका नायक था। विजय भण्डारीको राजाने गुजरातके सूबेका कार्यभार सम्हालनके लिए भेजा था। दूसरी बार पोमसिंह भण्डारीको अहमदाबाद भेजा। मेहता सग्रामसिंह और भावन्तसिंह जिलाधिकारी थे। अमरसिंहके समयमें सूरतराम भण्डारी दीवान था और रतनसिंह भण्डारीने अपने राजाकी ओरस १७३०-३७

मग दम प्रतिपात थे, राजधानी उदयपुरके अतिरिक्त, चित्तौड़, केसगिया-
नाथ, कृष्णदय, बीसोल्वा, दलयाडा, गेरखा आदि प्रसिद्ध जैनतीय एव
केन्द्र थे। मदा-कदा जैगरपुर, धौगयाटा, प्रतापगढ़ आदि उदयपुरमें भी
जनाधी अछी प्रतिष्ठा थी।

जैमलमेरम एक विदाल एव महत्त्वपूर्ण जैनग्रामभण्डार था। इस राज्य-
के जनदीवानामें राजा मूलराज (१७६२ ई०) का मन्त्री मेरुता ग्यम्प-
विद अघिष प्रसिद्ध है। बाकानर राज्यक इस बालके जैनदीवानाम अमर-
चंद मुराना अत्यधिक प्रसिद्ध ह। यह चार सनानो भी था, कई युद्धमें
उत्तम विजय प्राप्त की थी और भाटियार गान जाह्नाबीका चुरी तरह
पराजित करके उसके दुर्ग भटनरका भी हस्तगत कर लिया था। अजमेर
में गवाड़ाका शासन १७८७-९१ ई० तक बीस जैनवीर धनराज राघवी था।
उसने चार वर्ष तक निरन्तर मराठाक विरुद्ध युद्ध करके इस प्रदेशकी रक्षा
का भी और प्राण रहते उन्हें उसपर अधिकार नहीं करने दिया था। बुंदी,
कोटा, बल्लार आदि अन्य राजपूत राज्योंमें भी जैनोकी प्राय ऐसी ही
स्थिति थी। सम्पूर्ण राजस्थानकी जनसंख्याका लगभग दस बारह प्रतिशत
वर्गक जैन थे, और यहा ऐसा प्रदेश अब रह गया था जहाँ जैन मात्र सेठ
साहूकार और व्यापारी ही नहीं थे बरन् उनमेंसे अनेक वीर यादवा,
सैनिक, सामंत सरदार एव राज्यमन्त्री भी थे तथा शासनमें विभिन्न पदोंपर
भी बिना भेदभावके नियुक्त होते थे।

इस बालके सबब्यापा नैतिक पतनके प्रभावसे जैनधर्म और जैनी जन
भी अछूते नहीं थे, हिन्दुओंका जैनविद्वेष भा मदा-कदा एव यत्र-तत्र महक
उठता था और वही संख्यामें जैनी लोग अपना धर्म त्याग कर वैष्णव भी
बनने लगे थे। भट्टारकीय शिथिलाचार, रुढ़िवादिता, संकीर्णता, अशिक्षा,
जाति-पातिका कठोर बंधन, छूआछूत, बालविवाह, बहुपत्नीत्व, सहमरण
आदि अनेक सामाजिक कुरीतियाँ क्या हिन्दू, क्या जैन और क्या मुसलमान,
सभीमें व्याप्त होती जा रही थी। सम्पूर्ण भारतीय समाज एक अजीब

निष्ठायावाह कर्म निवृत्तिवारके वन्दवर्मे जैनकर अवधतिशील कर्म
बन्ना वा ।

इदमे कथ्येत वही है कि हम उद्ग-नी अयेके मुनके प्राप्तेम कर्म को
आत्मीय मत्तमा जीव मत्तुनि मन्नाके मन्नी ईयानि अविद्य वही-वही की
वह कर्म यवके अन्त कर्म मन्नीके विद्यार वही । हम मन्नाके अन्त ईयाने
विद्यारकर मूर्त्तीय ईयाने मन्ना अन्तुमन्ना उन्मन्नि की मन्नाके अन्तुमन्ना
अवधति की ।

अध्याय ६

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

औरंगजेबके जीयामें ही हिन्दू आदि मुसलमानेतर भारतायाया राज-
 नीतिक पुनर्रचना प्रारम्भ हो गया था, और उसकी मूर्तपुन उपरान्त १५०
 वर्षके बीच यह पुनर्रचना अपने चरम दिगम्बरों पहुँचकर देन और जाति-
 का बिना कृल तित बिजे ही द्रुतपगो अधनन भी हा गया । हिन्दू राज्य-
 पन्तिने प्रपष्ट उत्थानक सम्भुय मुसलमान सत्ता दम देगमें पगभूत हो
 हा चुकी थी, किन्तु उस हिन्दू राज्यपन्तिमें स्वयमे एवसूनता न थी ।
 प्रात, जानि, घर्मे एव व्यक्तिगत पक्षपात, फुट, धैमनस्य, स्वाधीयता
 एवं अदूरदक्षितान उस मरान् प्रयत्नको फल दिशानेके पुर्गे ही व्यधे कर
 दिया । इतना ही नही, जैसा कि पय अरुपायम यणन जिया आ चुका है,
 दम और दसवासियाको स्वय उनक अपनोंत हो पार अराजकता, अशान्ति,
 अध्यवस्या एवं अीतिगताक तृफाना अपकारमें दुबो दिया । पाण्णाम यह
 हया कि सुदूर पदिपमग उटकर आय बतिपय गृद्धाकी लालुव दृष्टिने
 इस प्रकार दात विपत, आहन एवं मृतप्राय भारत एव भारतायनाका
 मपट रक्तदापण पय माम भक्षण करनका समुायुवन अवसर दया । गात
 समुद्र पारस आनवालइन मुट्टा भर अनुल्लसनीय, दाधितएव साधनविहीन,
 किन्तु चतुर ग्राहमी एव गृन यूगपीय लुटेरान अपन आपका कुछ नहींसि
 मय कुछ बना लिया । १७०७ स १८५७ ई० पयन्तके भारतीय इतिहासका
 पननोमुखी भारतीय रूप से पूर्वअध्यायमें दक्ष ही चुक ह, प्रस्तुत अध्याय-
 में प्राय दगो कालमें भारतमें भारतवासियोंके ही घन-बल और दूनपर

विद्याभार एवं निवर्तितार्थके स्वस्वार्थे हीनकर अव्यवस्थितोक्त एवं
व्यक्त च ।

हममें कभीहूँ नहीं है कि हम ईश्वरी स्वर्ग के मुख के प्रारम्भ तक जो
मानवीय सम्पत्ति और संस्कृति संसारके सभी देशोंमें अधिक बड़ी-बड़ी थी
वह हम सबके ज्ञान तक नहींले बिछड़ गयी । हम जानें कि ईश्वरी
विद्येपत्र के ईश्वरीय देशोंमें अब समस्तपूर्ण ज्ञानहीन की कारणसे समस्तपूर्ण
व्यवस्थित थी ।

उस समय भारतका समस्त पश्चिमी जलमार्गी व्यापार अरबोंके हाथमें था। पुतगाली उ हें ढराकर पश्चिमी समुद्रतटपर जम गये।

१५०५ ई० में अलमिडा उनका गवनर हुआ। उसने पुर्तगाली वस्तियोंके लिए कुछ किले भी बनवाये। १५०९-१५ ई० में अलबुर्क भारतमें पुर्तगालियोंका गवनर रहा। उसने गोआपर अधिकार करके उसे यहाँकी पुतगाली वस्तियोंकी राजधानी बनाया। उसने मलबकाको विजय किया, लंका मकाया, उरमुज आदि द्वीपोंमें पुतगाली वस्तियों स्थापित की, भारतमें गोआ राज्यको कुछ विस्तृत करके संगठित किया, उत्तम शासन व्यवस्था की और शासन-प्रबन्धमें हिन्दुओंको भी नियुक्त किया। मुसलमानोंसे पुतगाली बड़ी घृणा करते थे। मुसलमान स्त्रियोंसे विवाह करने और मुसलमानों तथा अन्य भारतीयों ईसाई बनानेका भी वे प्रयत्न करते थे। अलबुर्क भारतमें पुर्तगालका एक विशाल एवं सम्पन्न उपनिवेश स्थापित करना चाहता था। उसी समयमें व्यापार गौण और ईसाई मतका प्रचार तथा पुतगाली राज्यका शक्ति-मवर्धन पुर्तगालियोंका मुख्य उद्देश्य बन गया था। दक्षिणके विजयनगर और बहमनी राज्यों तथा गुजरातके सुल्तानोंके भी राजनैतिक सघर्षमें पुर्तगाली आये। मुगलकालमें भी पश्चिमीतटपर वे एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बने हुए थे और सूरत आदिम देशके लिए जानेवाले मुसलमानोंके मार्गमें भारी बाधक होते थे। अतः उनका जब-तब दमन भी किया जाता था। अकबरको इच्छापर गाआक पुर्तगालियोंने सम्राट्के दरबारमें जैसुइट पादरियोंके दो तीन ईसाई धर्म प्रचारकदल भी भेजे थे। १५८० ई० में स्पेनके राजाने पुर्तगालको अपने राज्यमें मिला लिया, तभीसे भारतके पुर्तगाली राज्यकी स्वदेशका राज्याध्यक्ष समाप्त हो गया और उसकी अवनति हान लगी। शाहजहाँन बंगालके पुर्तगालियोंकी क्यादतियोंसे चिढ़कर उनको बुरी तरह कुचल डाला था। तदनंतर फार्मोसा, डच और अंगरेजोंने उनके पूर्वी व्यापारके एकाधिपत्यको नष्ट कर दिया। अन्ततः गोआ, डामन और द्यूके अतिरिक्त

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

अश्वि द्वारा और सन्धीना उपयोग करके कित्त प्रकार पूर्व क्षेत्रों में एव
 वैसे वाली पत्ति एवं प्रसूतिका विज्ञान विद्या कक्षा बनाना करना है ।

[illegible]

सबसे पीछे प्रारम्भ हुआ किन्तु उन्होंने वही शीघ्रताके साथ सन्नति की। १६४२ ई० में सर्वप्रथम फ्रान्सके तत्कालीन प्रधान मन्त्री रिशालूने तीन कम्पनियाँ इस उद्देश्यको लेकर स्थापित कीं, किन्तु वे थोड़े समय पश्चात् ही भग हो गयीं, जिसका कारण सरकारी कमचारियों एवं पादरियोंका अनावश्यक हस्तक्षेप था। १६६४ ई० में फ्रान्सके बादशाह लूई चौदहवेंके मन्त्रा कोल्वर्टने एक नवीन कम्पनीकी स्थापना की जिसका उद्देश्य व्यापार उतना नहीं था जितना पूर्वी देशोंमें फ्रान्सकी राजनैतिक शक्तिकी स्थापना एवं फ्रान्सके राजाकी शक्तमें वृद्धि करना और ईसाई धर्मका प्रचार करना था। फलस्वरूप १६७४ ई० में फ्रान्सिस मार्टिनने भारतके पूर्वी तटपर फ्रान्सके पाण्डुचेरी उपनिवेशकी नौव डाली और बंगालके चन्द्रनगरमें एक व्यापारिक कोठी बनायी। तदनन्तर फ्रान्स और हॉलैण्डके बीच होनेवाले युद्धोंसे इस कम्पनीको भारी क्षति पहुँची और १७२० ई० में उसका पुनः संगठन हुआ। उसी वर्ष मारोशस द्वीपपर तथा १७२४ ई० में मलाबार तटवर्ती माही नामक स्थानपर फ्रान्सीसियोंका अधिकार हो गया।

फ्रान्सीसी गवर्नर ड्यूमा (१७३५-८१ ई०) तत्कालीन दक्षिण-भारतको अव्यवस्थित दशाको देखकर वहाँके छोटे-छोटे राज्योंके राजनैतिक मामलोंमें हस्तक्षेप करके अपनी शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ की। तन्जौर राज्यमें उत्तराधिकारके लिए होनेवाले युद्धमें उसने एक पक्षकी सहायता की और उससे भागीकृत प्राप्त कर लिया, जिससे फ्रान्सीसियोंकी शक्ति, अधिकार और प्रतिष्ठामें पर्याप्त वृद्धि हुई।

तदनन्तर ड्यूले (१४७२-५४ ई०) भारतमें फ्रान्सीसी गवर्नर बनकर आया और उसके साथ ही फ्रान्सीसी कम्पनीके जीवनमें विजय एवं राजनैतिक विकासका नवीन अवधाय प्रारम्भ हुआ। ड्यूले निम्बापों, स्वदेशभक्त, अत्यन्त चतुर एवं कूटनीतिपटु था। अपने पड़ोसी भारतीय राज्योंकी राजनीतिका उसने भली प्रकार अध्ययन कर लिया था। अपने अयोग्य स्वर्णचारियोंके साथ वह कठोर व्यवहार करता

उपरा और कोई प्रवेष्ट न रह गया। सिन्धु के छोटी-छोटी नुखायी
 कम्पनी कुछ दिन पूर्व तक बम्बे वाली रही और नुखायी कोठारी कम्पनी
 भी स्वतन्त्र भारत के वनस्पत राजनीतिज्ञों के सम्मुख एक निरम कम्पनी की
 हुई थी। २ दिसम्बर १९९१ ई. की बीमा समझौदा के तहत
 नुखायी कम्पनी की विविधता भारत में राज्य के सिद्ध की गयी और
 भारत ने उपनिवेशवाद नुखायी को समाप्त हो गया।

राज्य-विभागीय रूप की यह नुखायी अधिक हो गयी है। १९११ ई.
 के पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिए बम्बे एक कम्पनी कम्पनी
 और भारत का समाप्त होना बम्बे के मतलब में सन्धियों के व्यापार पर राज्य
 एकाधिकार बना लिया तथा भारत के नुखायी-उत्पन्न की बम्बे पर बम्बे
 सिन्धु क्षेत्रों की और इतिहासों के कारण भारत को स्वतन्त्र के कम्पनी को
 सन्धियों को ही लिख कर बनाया गया। भारत के ही सन्धियों का विचार
 तीव्र स्वतन्त्र के लिए कुछ बम्बे हुए। कम्पनी को ही बम्बे के कम्पनी
 बम्बे को बना कर बना दिया किन्तु परिणामस्वरूप १९५४ ई. के इति-
 हास के विवेक के बम्बे के इतिहास के कारण उप कम्पनी के बम्बे
 कम्पनी को जारी कम्पनी लिखा गया। बम्बे को और कम्पनी के ही
 इतिहास की इतिहासों के रूप में बम्बे को ही अधिक विवरण है। भारत की
 कम्पनी अधिकतर व्यापारिक कोठारों तक किन गयी और सिन्धु के बम्बे
 को-एक स्थानीय ही कम्पनी भारत की इतिहास पर बना सिन्धु कम्पनी
 सन्धियों पर बना। एकाधिकार बम्बे के साथ एक बम्बे बना रहा।
 कम्पनी के साथ-साथ कम्पनी के बम्बे के विचारों के विचारों की भारत ने
 कम्पनी व्यापारिक कोठारों बनायेगा। भारत विचार, सिन्धु के ही विचार
 रहे। बम्बे को और कम्पनी के कम्पनी को ही इन देशों के विचारों
 बम्बे सिद्ध।

कम्पनी के विचारों के विचारों के कम्पनी के ही पूर्वी देशों के साथ
 व्यापार करने के लिए कम्पनी के विचारों की। कम्पनी के साथ

बंद हो गया और मद्रास अंगरेजोंको वापिस मिल गया ।

इस युद्धके फलस्वरूप इन दोनों विदेशी जातियोंको अपने पड़ोसी भारतीय राज्योंको कमजोरी मालूम हो गयी, और अपनी वस्तियोंके आसपास सौ-सौ मीलके क्षेत्रमें वे भली-भाँति परिचित हो गये । अबतक उन्होंने यह भी समझ लिया था कि देशी राजाओंके पारस्परिक झगड़ोंमें पड़कर कितना लाभ उठाया जा सकता है । इस प्रकारके दृष्टिकोणकी पहल तत्कालके मामलेमें अंगरेजोंने ही करके फ्रान्सीसियोंको पथ प्रदर्शन किया था । दूफ्लेका स्वयं भारतीय स्थितिका अच्छा ज्ञान था । उसने यह भी अनुभव कर लिया था कि यूरोपीय युद्ध-प्रणाली एवं सैनिक अनुशासनके बलपर सुगमस्थित यूरोपीय सेनाओंके द्वारा अधिक गम्भीरतासे भारतीय सेनाओंको कंसी आसानीके साथ हराया जा सकता है और अपनी शक्ति बूझ बढ़ायी जा सकती है । अतः उसने अवसर मिलते ही पड़ोसी राज्योंकी राजनीतिमें भाग लेनेका निश्चय कर लिया ।

अवसर भा तुरन्त आ उपस्थित हुआ । १७४८ ई० में आसफ़जहाँको मृत्यु होते ही निजाम राज्यके उत्तराधिकारका द्वन्द्व छिड़ा । उधर कर्नाटकमें चाँदा साहब वहाँके नवाब अनवरुद्दीनको गद्दीसे उतारकर स्वयं नवाब बनना चाहता था । निजामका पोता मुञ्जफ़्फ़रजंग और चाँदासाहब मिल गये और उन दोनोंने फ्रान्सीसियोंसे अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके विरुद्ध सहायता माँगी । दूफ्ले ता अवसरकी ताकमें ही था, सहर्ष तैयार हो गया । तीनोंने मिलकर अनवरुद्दीनपर हमला कर दिया, वह पराजित हुआ और अम्बरके युद्धमें १७४९ ई० में मारा गया । उसका लड़का मुहम्मदअली तिरुचिरी-पल्लीमें अंगरेजोंकी शरणमें भाग गया, चाँदा साहब कर्नाटकका नवाब हुआ और इस उपकारके लिए उसने फ्रान्सीसियोंको ८० गाँव प्रदान किये । अब तीनोंने मिलकर मुञ्जफ़्फ़रजंगके प्रतिद्वन्द्वी नासिरजंगपर आक्रमण किया किन्तु मुञ्जफ़्फ़रजंग पराजित हुआ, तथापि थोड़े ही समय पश्चात् नासिरजंगके मारे जानेसे वही हैदराबादका निजाम बना । उसकी

यूरोपवासियों द्वारा भारतकी छूट

बंद हो गया और मद्रास अंगरेजोंको वापिस मिल गया ।

इस युद्धके फलस्वरूप इन दोनों विदेशी जानियारों अपने पड़ोसी भारतीय राज्योंको कमजारी मारुम हो गयी, और अपनी वस्तिवासे आसपास मो-मो मौलिक क्षेत्रमें वे नजी-भानि परित्त हो गये । अतः एक उद्देश्य यह भी समझ लिया था कि देशी राजाआत पारम्परिक प्रगणामे पट्टर कितना लाभ उठाया जा सकता है । एक प्रकारर फलस्वरूपकी पहल तन्जीवर्मे मामल्लिमें अंगरेजान हो करके प्रा. मामियाका पय प्रदनात किया था । दूल्हेका स्वयं भारतीय स्थितिका अच्छा ज्ञान था । समन यह भी अनुभव कर लिया था कि यूगपीय पुत्र-प्रणाली कब मनिव अनुशासन-के बलपर सुव्यवस्थित यूगपीय सनाआक द्वारा अधिव रागयायानी भार-तीय सेनाओंको बेसी आमानोके माय दगाया जा सकता है और अपनी शक्ति मूय बढायो जा सकती है । अब समने अवसर मिलते ही पठासी राज्योंको राजनोतिमें भाग लेनेका निश्चय कर लिया ।

अवसर भा तुरन्त आ उपस्थित हुआ । १७८८ ई० में आसकवाहको मृत्यु होते ही निजाम राजवके उत्तराधिकारका द्वन्द्व छिडा । उधर कर्णाटकमें चाँदा साहब वहाँक नवाय अनवरुद्दीनकी गद्दीसे उतारकर स्वयं नवाय बनना चाहता था । निजामका पोता मुञ्जप्रकरजग और चाँदासाहब मिल गये और उन दोनोंने फ्रांसीसिमियामे अपने प्रतिद्वन्द्वियोंने विरुद्ध महायता माँगी । दूल्हे ता अवसरकी ताकमें ही था, सक्षप तैयार हो गया । तीनोंने मिलकर अनवरुद्दीनपर हमला कर दिया, वह पराजित हुआ और अम्बरके युद्धमें १७४९ ई० में मारा गया । उसका लड़का मुहम्मदअली तिरुचिरा-पल्लीमें अंगरेजोंकी धारणमें भाग गया, चाँदा साहब कर्णाटकका नवाय हुआ और इस उपकारके लिए उसने फ्रांसीसियोंको ८० गाँव प्रदान किये । अब तीनोंने मिलकर मुञ्जप्रकरजगके प्रतिद्वन्द्वा नासिरजगपर आक्रमण किया किन्तु मुञ्जप्रकरजग पराजित हुआ, तथापि थोड़े ही समय पश्चात् नासिरजगके मारे जानेसे वही हैदराबादका निजाम बना । उसको

यूरोपवासिया-द्वारा भारतकी लूट

बाहुमत्याने किए एक कान्धीवादी हैना। ईरानवाले सिक्का भी बंदी, कान्धी
 विरोधी कुछ कम और कई बिके मिले। स्वयं कूचेको भी एक बाहर
 निको। यह सब भारतीय कान्धीवादी बैक-गुप्ताने कान्धीकी भाई अह-मद
 पढ़ने किया। कान्धीकी ईनापति बुझीको ईरानकामें बुझकरबोध राजपूनी
 ईरानवाले पहुँचा किन्तु एक कमाईने बाध गया। बुझीने इसके स्थान
 बाहकामाईके ही एक बुझ कान्धीवादीको नवाब बनाना और स्वयं बने
 ईरानकामें करने लगे। ईरानवाले ही अह-मद पढ़ा। बुझी बहुत योग्य,
 मजूर एवं दूरदर्शी था। राज्यमें कान्धीका प्रभाव लॉर्डरि था। कान्धी केवल
 कार्य नकालेके लिए कले निजामते कलरी करकरका प्रवेश मिल गया था।
 १९५८ ई. में बुझीकी मारत बुझा किया गया और इसके बादके बाद
 ही निजाम राज्यके कान्धीवादीका प्रभाव बढ़ाके लिए बंद गया। लॉरी
 बीचमें १९५९ ई. में लॉरीकोले कान्धीकी राज्यकी कान्धीका प्रभाव
 बीच अहमद और बाहकामाईकी मारत करके बुझकरकान्धीको कान्धी-
 का नवाब बना दिया था और इस अहमद कूचेके भागे कान्धीकी निजाम
 बंद दिया था। इन कान्धीवादीकी बात करके कान्धीकी करकर कूचेका
 ही बंदी और अहमद १९५४ ई. में बंदी मारत बुझा किया।

इसके बाद एशियाटी कान्धीकी नवर्नर बोझुने लॉरीकोले बाध बन्धि
 कर की बिकेके मजुगार कान्धीके देखीं। लॉरी बाहकामाईका अहमद बाहकामाई
 बिके। किन्तु लॉरी बहुत बन्धि कान्धीकी भी न हो। लॉरी की नि मुरेली
 ईश्वर और कान्धीके बीच कान्धीकी बुझ (१९५६-५७ ई.) किए बन्धि,
 अहमद बाहकामाई की इस लॉरी बाहकामाईके कान्धीके किए बन्धि। कान्धीकी
 ईनापति लॉरी की लॉरी लो था किन्तु लॉरी और लॉरी था। १९५८ ई.
 में ही अहमद लॉरीकोले ईश्वर-बन्धि बिके और बाहकामाई बाहकामाई
 कर किया। लॉरीकी भी अहमद ईरानवाले बुझा किया था किन्तु लॉरी
 लॉरीमें कुछ बन्धि बनाना भी था और लॉरीकी नवर्नरका लो
 लॉरीकी भी लॉरी न था बाहकामाई बहुत बाहकामाई होने लगा। १९५९ ई. में

षाण्ड्यागके युद्धमें अंगरेज सेनानी सर आयरग्यूटने लैलोको पराजित करके बन्दी कर लिया और इंग्लैण्ड भेज दिया। वहाँसे उसे फ्रांस जानको अनुमति मिल गयी किन्तु उसको सरकारने उसे मृत्युदण्ड दिया। धूसी भी कैदमें डाल दिया गया। अगले वर्ष पाण्नीरोपर भी अंगरेजोंका बग़्जा हो गया। १७६३ ई० में पेरिसकी सन्धिसे इस युद्धका अन्त हुआ। इस सन्धिके अनुसार भारतमें फ्रांसीसियोंकी शक्ति एक-दम घट गयी, उनकी सेनाकी मर्यादा बहुत कम करके नियत कर दी गयी और प्रदेश विस्तारपर भी प्रति-बन्ध लगा दिया गया। बंगालमें ये अब केवल व्यापारीके रूपमें ही जा सकते थे। हैदराबादमें उनके प्रभावका अन्त हो हो गया था, कर्णाटकमें भी कोई अधिकार नहीं रह गया था और उत्तरी सरकारके जिले भी अंगरेजोंके हाथमें आ गये। अब पाण्डुचेगे, घाटनगर आदि दो-तीन छोटी-छोटी बस्तियाँ एव उनमें स्थित उनकी व्यापारी कोठियोंके अतिरिक्त भारतमें फ्रांसीसियोंकी कोई सत्ता न रह गयी और भविष्यके लिए भी कोई आशा न रह गयी। फ्रांसकी सरकारके लिए समये इन भारतीय प्रतिनिधियोंके युद्ध एवं भाग्य परिवर्तन अत्यन्त गौण घटनाएँ थी। वह इस प्रयत्नके तथा उसकी विफलताके मूल्यको तबतक आँक ही नहीं पायी थी।

आस्ट्रिया, स्वेडन, स्वाटलैण्ड आदि अन्य यूरोपीय देशोंके निवासियोंने भी भारतके साथ व्यापार करनेका प्रयत्न किया किन्तु सब ही अमफल रहे।

इस कार्यमें जो सबसे अधिक सफल हुए वे यूरोपके उत्तर-पश्चिममें स्थित इग्लिस्तान नामके एक छोटे-से द्वीप देशके निवासी अंगरेज व्यापारी थे। उन्होंने न केवल पुर्तगालियों, डचों, डेनो, फ्रांसासियों आदि अन्य यूरोपीय जातियोंको ही भारतीय व्यापार क्षेत्रसे शनैः शनैः निकाल बाहर किया वरन् पश्चिम देशोंके साथ होनेवाले इस महादेशके सम्पूर्ण व्यापार-पर अपना पूर्ण एकाधिपत्य स्थापित कर लिया। इतना ही नहीं, देशके सबसेमुखी पतनसे लाभ उठाकर उन्होंने इस पूरे महादेशपर अपना पूर्ण राजनैतिक प्रभुत्व भी स्थापित कर लिया। देशके राजा-नवाब, सामन्त-

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छद्म

सरदार और-बाबू और ठग को देखके कमिनोंको ही नुटकर देखा वन
 देखते ही रहती थी किन्तु इन महान् नुटेरोले को भारतवर्षके जमीन
 और जमीन बावनोंको नुट-नुटकर जबाब कर दिया और वह लटके गुलाम
 स्वयं स्वजाति एवं स्वराष्ट्रको तपतीबुद्धी नैतिक कठिने अनुपूर्व
 एवं अनुमाननीय चरम-विचारपर पहुँचा दिया । उनके हस्तकेने पूर्ण
 उत्तर मनुष्य बावनी जीवन जगजगता एवं अस्मिताके अन्तर्गत इन देखनी
 जगताका बहुमान उनके शर्म व कृतक स्वतन्त्र, कारीगर बावनी की
 स्वाधीन प्रति मही पहुँची थी व उन्हींके अस्मात्त्व ही को देखा व्यापार
 की जैसे ठीके चक रहा था और जेबके देखाही ही कहता नाप जग
 व । निम्न ही प्रान्तो-अवेष्टा और राजनीमें कम-कम मुहावर मुक्त-बाति
 बाविका या अनुभव होता रहता था । किन्तु जेबरोलेनी अर्धकोला बुद्धि
 वनी निर्वन कट-अज्ञा कृतक स्वतन्त्र, अस्मात्त्व व्यापारी बाविकार
 और अस्मात्त्व राजा और बचान कोई भी न था । निम्न ही इन कर्म
 को नुट नी जमीन-जगता का कहता था वह कर्मोंने जमीन और अस्मात्त्व
 दिया । बाव ही भारतवासियोंको वह नुट-नुटकर अनुष्ट एवं अस्मात्त्व
 करनेका प्रयत्न दिया कि हमने तुम्हें और अस्मात्त्व जगजगता, अस्मात्त्व
 और अस्मात्त्व मुक्त दिया है, इन तुम्हें अनुपूर्व सुधासन एवं सुखा जगता
 कर है है और इन अस्मात्त्व जगजगता कृतक अस्मात्त्व एवं अस्मात्त्व
 है । यह सब पूर्ण जेबरोलेना राज था और जेबरोलेना मनुष्य अस्मात्त्वके जगता
 था किन्तु इन समय देखनी दिया ऐसी अस्मात्त्व ही वनी को उत्तरोत्तर
 होती था रही थी और जाने थी होती जाती वनी कि जगता न ही इन
 जेबरोले अस्मात्त्व और न कृतक मनुष्य अस्मात्त्व जाने है होनेवाली जेबरोलेनी
 अनुष्ट वरकेकी बावः कोई अस्मात्त्व अस्मात्त्व या अस्मात्त्व यह वनी थी ।

१२वीं मही ई के भारतमें नुट जेबरोले अस्मात्त्व अर्ध-अस्मात्त्व भारत
 जगता और अस्मात्त्व-जगता वनीके पीछर ही कर्मोंने इन देखते अपने कर्मोंने
 अस्मात्त्व जगता जगता किने और बाव ही नुटवासियों, जमीन अस्मात्त्व

प्रतिद्वन्द्वियोंको प्रतिद्वन्द्विताके क्षेत्रसे निराला बाहर किया। उससे पहले पचास-साठ वर्षोंमें उन्होंने अपने भारतीय व्यापारों समुद्रतक फैलाये, समुद्र द्वारा अपने-आपका और अपने देश एवं राज्योंका सुसम्बद्ध कर लिया तथा भारतवर्षमें अपने व्यापारिक अड्डाका जाल भी बिस्तृत कर लिया और कुछ मुद्दत मुश्किल नेत्र भी बना लिए। तदनन्तर अगले पचास वर्षोंमें फ्रांसीसियोंके रूपमें एक नवीन किन्तु सर्वाधिक प्रबल प्रतिद्वन्द्वीका उन्हें सामना करना पड़ा, किन्तु उन्हें भी अन्ततः अंगरेजोंका पुनस्त दिया, साथ ही फ्रांसीसियोंका पुनर्जाय प्रयत्नमें उन्होंने देशों तान छोड़े, और पचासो दसो राज्योंके अन्तःकरण एवं उनकी विग्राह्यताका लाभ उठाकर अपनी राजनैतिक शक्तिकी सुदृढ़ नींव भी इन दशमें जमा दी। अब उनकी हीमला और बड़ा और आगेके पनाम वर्षोंमें उन्होंने द्रुतवेगसे एक एक करके समस्त दक्षिणापथ एवं उत्तरापथकी विभिन्न हिन्दू एवं मुसलमान राजपूतानोंपर अपना प्रभाव एवं आधिपत्य स्थापित कर लिया। और उससे बाद अराजकता कालके दोष पचास-साठ वर्षोंमें सिन्ध, पञ्जाब, बम्बोरे, नेपाळ, बर्मा आदि भीमांत प्रदेशोंको भी अधीन करके तथा पहले ही अधीन कर लिये गये राज्यों एवं प्रदेशोंपर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करके और समूचे महादेशको निरस्त करके एवं अपना बनाकर उस सृष्टासन, सुरक्षा, न्याय, सांस्कृतिक पुनरुत्थान आदि प्रदान करनेका ढाग भी प्रारम्भ कर दिया। किन्तु इसी युगक अन्तमें बहुभाग भारतने अंगरेजोंके मजबूत पजोसे देशकी मुक्त करनेका भी एक भगोरथ प्रयत्न किया। देशके दुर्भाग्यसे या सीभाग्यसे अथवा उसके नेताओंके स्वयंके दोषसे वह प्रयत्न विफल हुआ। फलस्वरूप देशमें जो कुछ सत्त्व बच रहा था वह भी कुचल डाला गया और अब सम्पूर्ण भारतवर्ष वस्तुतः अंगरेजोंका अपना दास और अपनी सम्पत्ति बन गया। भले ही अनेक अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों तथा इस प्राचीन देशकी नष्ट न होनेवाली प्राण शक्तिके पुनः संचारके कारण अंगरेजोंका वह प्रभुत्व पूरे सौ वर्ष भी न चल सका।

अंगरेजों कम्पनीने गुजरातके मुगल सूबेदारसे सूरत, सम्रात तथा अन्य दो स्थानोंमें व्यापार करनेकी अनुमति प्राप्त कर ली। उन्होंने यह समझ लिया था कि पुर्तगालियोंका दमन किये बिना मफतता न मिलेगी, अतः एक भीषण समुद्री युद्धमें उन्होंने पुर्तगालियोंको हराकर अपनी स्थिति जमायी। इसी समय उनके राजाका अधिकारप्राप्त राजदूत मर टामस रो (१६१५-१८६०) मुगलसम्राटके दरबारमें पहुँचा। सम्राट्को बहुतमूल्य गेंद और उसके आसफ़जहाँ आदि मन्त्रियोंको घूस देकर तथा अपनी चातुरीसे उसने अपनी ईस्टइण्डिया कम्पनीके लिए सूरतमें व्यापारिक कोठी स्थापित करनेका क्रमान्वयन प्राप्त कर लिया। सम्राट् स्वयं इस बीचमें पुर्तगालियोंसे रूठ हो गया था और उनपर अंगरेजोंने जो समुद्री विजय प्राप्त की थी उससे उन्होंने स्वयंको पुर्तगालियोंका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध कर दिया था, अतः सम्राटने इन दोनों सजातीय फिरगियोंको परस्पर लड़ानेका अवसर खोना उचित न जाना और अंगरेजोंको भी प्रश्रय दे दिया। सूरतमें डचोंने भी अपनी कोठी स्थापित कर ली थी। १६१५ ई० में अंगरेजोंने पुर्तगालियोंको फिर एक जहाजो युद्धमें हराया और १६२२ ई० में ईरानियोंकी सहायतासे चर्मूज-द्वीपपर भी अधिकार करके पुर्तगालियोंको अत्यन्त क्षयितहीन कर दिया। १५८० ई० से ही भारतके पुर्तगालियोंको अपने देशके राज्यसे कोई आश्रय या सहायता मिलनी बन्द हो ही चुकी थी।

अब अंगरेजोंने बंगालकी खाड़ीमें भी घुसना प्रारम्भ किया, मछली-पट्टमें एक अड्डा बनाया और फिर १६२५ ई० में आरामगाँवमें अपनी कोठी स्थापित की। १६३९ ई० में आरामगाँवकी कोठीके अध्यक्ष फ्रांसिस डेने चन्द्रगिरिके विजयनगरवशी राजाके प्रदेशीय नायकसे लगभग दस हजार रुपये सालाना किरायेपर एक मील चौड़ी एवं चार मील लम्बी समुद्रतटवर्ती भूमि प्राप्त कर ली। इस कायमें निकटवर्ती सेनयामकी पुर्तगाली बस्तीके पुर्तगालियोंने भी अंगरेजोंकी सहायता की। और इस स्थानपर १६४० ई० में मद्रास नगर तथा सेण्टजार्ज दुर्गकी

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छूट

शात न हुए और १६९८ ई० में कुछ अन्य व्यापारियों ने राजाजा लेकर
 एक नयी कम्पनी की स्थापना कर ली और यह दोनों कम्पनियाँ भारतीय
 व्यापार के एकाधिकार के लिए परस्पर लड़ने लगीं। अन्ततः १७०८ ई०
 में दोनों को 'सयुक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी' नाम के अन्तर्गत मिलाकर एक
 कर दिया गया। इस समय सम्राट औरंगजेब की मृत्यु हो चुकी थी।
 भारतीय इतिहास का मोक्ष अराजकता युग प्रारम्भ हो रहा था। अपने
 अवतक के गत सौ वर्षों के काल में अपनी व्यापारी कम्पनी के आश्रय से
 अंगरेज जाति ने अपने प्रतिद्वन्द्वी पुर्तगालिया एवं डचों का सर्वे के लिए
 दमन करके पश्चिमी देशों के साथ होने वाले भारतीय व्यापार पर
 अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया था, दश के विभिन्न व्यापारिक
 केन्द्रों में अपनी व्यापारी कोठियाँ स्थापित कर ली थीं तथा देश के पश्चिमी
 तट पर बम्बई को, पूर्वी तट पर मद्रास का और बंगाल में कलकत्ता को केन्द्र
 बनाकर और इन स्थानों में अपने सुदृढ़ दुर्ग एवं वस्तियाँ बनाकर अपनी
 स्थिति सुदृढ़ एवं स्थायी कर ली थी। इसी वाच भारत में कम्पनी की
 उत्तरोत्तर उन्नतिके फलस्वरूप कम्पनी के डायरेक्टर, हिस्सेदार, कर्मचारी
 आदि हो नहीं इंग्लैण्ड के अन्य व्यापारों, व्यवसायों, साधारण जनता, राजा
 और मंत्री भा पर्याप्त मालदार हो गये थे। कम्पनी के जो कर्मचारी
 भारत में कार्य करने के लिए आते थे उन्हें वेतन बहुत थोड़ा मिलता था,
 किन्तु उसकी पूर्ति करने के लिए उन्हें व्यक्तिगत व्यापार की सुविधा दे दी
 जाती थी, अतः कम्पनी के वहाने भारत में आने वाला प्रत्येक अंगरेज कम्पनी-
 के प्रधान व्यापार के अतिरिक्त अपना स्वतन्त्र व्यापार भी करता था
 और मालामाल हो जाता था। १७०८ ई० के पूर्व शक्तिशाली मुगल
 सम्राट के मरने और उसके व्यवस्थित साम्राज्य के कारण अंगरेजों-
 की यह प्रवृत्ति अति सीमित हो रही, किन्तु अब उत्तर मुगल काल की
 उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अराजकता, अशांति एवं अव्यवस्था का छोटे-बड़े समा-
 ज के लोगों ने भरसक लाभ उठाना शुरू कर दिया।

रोपवासियों द्वारा भारत की लूट

आनेके समयमें अपनीय सब एक औरेंद मुहल-बाग़ानकरा सब एवं
 मिल-मिल होना और देशकी मिली हुई राजनीतिक बहाली पुनरा
 वेगते रहे । इसी बीच १७१७ ई. में दिल्लीके निकसे बादशाह अकबर-
 शाही और उनके दरबारियोंको नून बारि देकर बन्ही विना राज्य-
 सिने ही ल्यापार करनेकी बुर तथा बन्ध बनाना बुधियार्थ प्राप्त कर ही
 और पुनरापन करने ग्यापारकी कहते रहे । देशकी बन्धनस्थ एवं बर-
 क्षित बहा तथा सब बहाने बनने केन्ही एवं कोशियोंकी चोरी, चानुये,
 कुट्टे बाधिते रखा करनेके बहानेके बन्ही एक बन्धी देना ही ल्यापार
 कर की मिलमें औरेंद बन्धनस्थ बनने एवं उनके हाथ अधिकतम प्राप्त
 भारतीय सैनिक की बही बन्धनस्थ रहने माराम्य कर दिने । इसी बन्हीके
 बन्ही बनने पुनोकी भी मुक्त कर दिया और बन्धी बन्धनस्थ एवं कोशियों-
 की विवेकशी की कर की । बनकर बन्ही देना बनकी बन्धनस्थके लिए
 निजद रहता ही था । किन्तु इसी काण (१७२ ई.) कुन्हीकी बन्धी
 पुन बन्धित होकर गये कलाह और बन्धके बाध देनागने मिले का
 कठरी । बन्धके मुन्धेय एवं हीतमाम्य बन्धनस्थके हाथमें कुन्हीकीकी
 पुन बन्धनस्थ एवं भारतमें उनके केन्द्र धीमे ही मुन्धेय एवं बन्धन हो
 गये । कुन्हीकी बन्धी करकारी की बन्धके बन्धनस्थ की करकारी
 बन्धनस्थ के और बन्धन प्रदान बन्धन की राजनीतिक ही था बन्ध बीच
 बन्ही ही बन्धी धर्म और बन्धनस्थ बन्धनस्थ बन्धन । यह सब
 देशकर औरेंद बन्धनस्थ हुए, किन्तु कुछ कर की न बन्धके और बन्ध-
 नस्थका बन्धन ही रहे । कुन्हीकी बन्धीके बाध कुछ केन्हीका बन्धन का
 बन्धनके बाध बन्धनका कुछ बन्धन केना बन्धनका बन्धन यह बन्धनकारी
 औरेंदकी बन्धी बन्धी कर लच्छी की । कुन्हीकीकीका बन्धन केन्द्र पुन
 समुद्र लच्छन स्थित बाग़ानकी था । बन्धके निजद ही बन्धनकी और बन्ध-
 नस्थका बन्धन केन्द्र केन्द्र-केन्द्र का और बन्धी बुर बन्धनमें बन्धन एक बन्धन
 प्रदान केन्द्र बन्धन केन्द्र था ।

१६७६ ई० में ही पाण्डुचेरीके फ्रान्सिस मार्टिन नामक गवर्नरने एक छोटे-से स्थानीय सरदार धेरखाके लिए बलदूरका दुर्ग आक्रमण-द्वारा हस्तगत करके फ्रान्सीसियों और अंगरेजोंका मार्गदर्शन कर दिया था। अब १७४० ई० के लगभग पाण्डुचेरीके निकट ही दक्षिणकी ओर स्थित छोटे-से तजौर राज्यमें उत्तराधिकारका प्रश्न उपस्थित हुआ। गद्दीके लिए दो दावेदार थे। फ्रान्सीसियोंके भयसे उनसे पहले ही अंगरेजोंने एक पक्षका समर्थन किया, तुरन्त फ्रान्सीसी गवर्नर डच माने दूसरे दावेदारका पक्ष ले लिया। मामला बिना कुछ रक्तपातके ही निपट गया। किन्तु अंगरेजों और फ्रान्सीसियों दोनोंको ही तन्जौर राज्यमें थोड़ा-थोड़ा प्रदेश मिल गया। १७४० ई० में यूरोपमें ही फ्रान्स और इंग्लैण्डके बीच युद्ध छिड़ गया। अब तो कोई बाधा ही नहीं रही, भारतमें भी अंगरेज और फ्रान्सीसी परस्पर लड़ने लगे। १७४८ ई० में एलाशपलकी सन्धि-द्वारा यूरोपका युद्ध बन्द होनेपर भारतमें भी युद्ध बन्द हो गया। इस युद्धके फलस्वरूप किसी भी पक्षको कोई विजय या लाभ प्राप्त नहीं हुआ, दोनोंकी स्थिति पूर्ववत् ही रही, मद्रासपर फ्रान्सीसियोंने अधिकार कर लिया था वह उन्हें वापिस मिल गया। तथापि इस युद्धने इस देशमें उन दोनों जातियोंकी सैनिक शक्ति और राजनैतिक आकांक्षाओंकी नींव ढाल दी एवं उनके राजनैतिक उत्कर्षकी सम्भावना दिखा दी।

इस सम्बन्धमें यह ध्यान रखनेकी बात है कि १८वीं शताब्दीके इस मध्यकाल तक अंगरेजों या फ्रान्सीसियोंकी भारतकी राजनीतिमें अथवा भारतीय राजे-नवाबों, दिल्ली दरबार या प्रान्तीय शासको अथवा छोटे-मोटे सामन्त सरदारोंकी दृष्टिमें भी कोई गणना ही न थी। बहुत-से तो ऐसे थे जो इन्हें जानते भी न थे या जिन्होंने इनका नाम भी न सुना था। अनेक ऐसे थे जो इन्हें अति तुच्छ एवं उपेक्षणीय समझते थे। शेष वे जिनका इन लोगोंके साथ व्यापार आदिके कारण कुछ निकट सम्पर्क पड़ा था इन्हें अपने अनुग्रहका याचक और अपनी दयापर आश्रित एक सामान्य

बालगोविन्द शर्मा १९८६ ई.स.

गो वेवाअने हो बने-गुने साधनग भी हाथ हो जिधे ।

१७४८ ई० में दिल्लीका शाहजहाँ महम्मदशाह मर गया, इन्जिधे निजाम राजका सस्थापन आसदशाह निजामशाह भी उमा मर गया । तब आरम अफगाना आगाने उमा आसद आक्रमण किया ता दूसरे लोग पगवाओका मगाठा मनायने जा माजया, गुलगाण, मण्ड नासद, राजगाना, संगाना बिहार और उरीमा । नी ११ शुम्बर दिना । एग समय निजाम राजने उदासदिगारका प्रदन ज्योस्यग ११ गया । निजामशाह पग वरा पुष हो दिल्लीमें गजीर बन बंटा था, दूसरा पुष नागिरजग निजाम निजामागर पैठा दिगु जमना गागता मुजपदजग म्ब निजाम बनना चाहता था । इयो समय कर्णटकका मयाय धमय एउदोन कागोमियोकि मद्रासका सम्मन करनेके कारण अंगरेजाको महापनाथे का मामियाको जगुना माल ले चुका था आर उनके द्वारा पगजित भी हा चुका था । अत कागोमियाने उम पदव्युग करके उसके एक सम्मघो चाँदा सादयका नयाय यतानेकी योजना की । अंगरेज अनवरुद्दीन और उमके पुत्र मुहम्मदअलीके कर्णटकमे और नागिरजगके हैदराबादमें पगवाती हूण । अत एलाजपडकी मग्घि हा जाने और गुरंगमें फासीसी और अंगरेजी मग्घागकि बीच युद्ध धम्य हा जानेपर भी भारतमें इन दानो जातियोंके बीच युद्ध चालू रहा । प्रारम्भमें फासीयो हो कर्णटक और निजामराज्य दोनोंमें हो सकल रहे और कालस्यम्प उन्हीं घन, प्रदेश गजित और प्रभावका पमपि लाभ किया । अंगरेज यत्र मय देखकर चुन घेलेकालेनहीं थे । इन प्रारम्भिक विफलताओंसे ये बड़े दुःख हुए । इस समय बलाइव नामका एक साधारण घरका आधारा अंगरेज युद्धक मद्रासकी कोठीमें मुसी था । उस बालकी परिस्थितियोंके कारण भारतमें अंगरेज कम्पनीक प्राय समस्त कमचारी मुसी भी थे, व्यापारी भी थे और मैनिग भी थे । बलाइव एक दो छुट-पुटे युद्धोंमें भाग लेकर एक छाटा-मा मैना-नायक बन गया था । उमने अपने गवर्नरको यह योजना मुसायी कि चाँदा यूरोपवागियों द्वारा भारतकी लूट

१७५४ ई० की सन्धि भली प्रकार कार्यान्वित भी न हो पायी थी कि १७५६ ई० युरोपमें फ्रान्स और इंग्लैण्डके बीच सातवर्षीय युद्ध छिड़ गया। फलस्वरूप सत्तारके जिस किसी भागमें भी अँगरेज और फ्रान्सीसी पास-पास हुए वे परस्पर लड़ने लगे, भारतमें भी दानों जातियोंमें लड़ाई प्रारम्भ हो गयी। किन्तु फ्रान्सीसियोंका सेनापति लैली १७५८ ई० के पूर्व भारत न पहुँच सका और जब वह यहाँ पहुँचा तो बगालकी अद्भुत विजयके कारण अँगरेजोंकी शक्ति दसगुनी बढ़ चुकी थी और उनका स्थिति बहुत सुदृढ़ हो चुकी थी। लैलीने दूसरी भूल यह की कि हैदराबादसे बुसोका भी वापस बुला लिया, फलस्वरूप निजामके राज्यमें भी जो भारी प्रभाव आठ वर्षोंसे बुसोने जमा रखा था वह सर्वथा नष्ट हो गया और इस राज्यमें भी अँगरेजोंका अपना प्रभाव जमानेका अवसर मिल गया जिसका लाभ उन्होंने नासिरजगकी मृत्युपर सलावतजगकी नवाब बननेमें सहायता देकर सुरन्त और पूरा-पूरा उठाया। उधर लैलीके नेतृत्वमें फ्रान्सीसी सेनाको अँगरेज सेनापति मर आयर कूटने १७६० ई० में बाह्यबादके युद्धमें बुरी तरह पराजित किया, लैलीने भागकर पाण्डुचेरीमें शरण ली। अँगरेजोंने उसका भी घेरा डाल दिया और १७६१ ई० में उसपर अधिकार कर लिया। उन्होंने लैली आदिको बन्दी बना लिया और भारतमें फ्रान्सीसियोंकी आकांक्षाका अन्त कर दिया तथा स्वयको सजातीय (यूरोपवासी) प्रतिद्वन्द्वियोंसे सर्वथा मुक्त कर लिया। इसी वर्ष पानीपतकी ऐतिहासिक रणभूमिमें भारतके साम्राज्यके लिए मराठों और अफगानों, अथवा हिन्दुआ और मुसलमानों, या भारतीयों और विदेशियोंके बीच भीषण युद्ध हो रहा था। सारे देशकी आँखें उधर ही लगी हुई थीं, दक्षिण भारतके पूर्वी तटपर इन विदेशी फिरगियोंके बीच होने-वाले इस छाटे से संघर्षकी ओर किसीका ध्यान भी न था। किन्तु वास्तवमें भारतके भाग्यका निर्णय १७६१ ई० के पानीपतके युद्धमें शायद उतना नहीं हुआ जितना कि पाण्डुचेरीमें फ्रान्सीसियोंकी पराजयमें हुआ। इस

समस्त प्रतिद्विगोको पछाड कर उक्त व्यापारमें नेतृत्व कर दिया था । बंगालक विभिन्न जगहोंमें उनकी अनेक व्यापारिक कोठियाँ फैल गयी थीं । बलवत्ता उनका प्रधान बल था जहाँ उन्होंने मुदूद दुग, मुगलिन घन्टी तथा जल और पलकी द्विविध मय्याकितसे मुरभित हाथर अपनी जगिज बहुत बढ़ा ली थी । अलीपदोखाँ उनपर पुरा नियन्त्रण भी रखने हुए था और भीतर-ही-भीतर उनसे भय भी गाया था । उन्हें दण्ड बनानेका उसने सभी प्रयत्न लही किया ।

किन्तु १७५६ ई० में उनकी नि सत्तान मृत्यु हो जानेपर उसका दोहित्र सिराजुद्दीन बंगालका नवाब बगा । यह योग एवम् सत्ताशय सा था किन्तु अनुभवहीन अरुह नययुवक था । अंगरेज व्यापारियोंकी पयारतियोंकी देग-मुनकर वह पहलेसे ही उनसे चिन्ता हुआ था, अब इसी वर्ष यूरोपमें सप्तवर्षीय युद्ध छिड जानेके समाचार जाकर इस देशमें भी परस्पर युद्ध छिड जानेकी आशकासे बंगालक अंगरेज और फ्रान्सीसियोंने अपनी-अपनी वस्तियोंकी किलेबन्दी करनी और नैतिक भर्ती करनी शुरू कर दी । नवाबने यह देखकर उन्हें रोकना । फ्रान्सीसी ता सुरत मान गये किन्तु अंगरेजोंने उसकी अवज्ञा की और एव अत्यन्त घृष्टतापूर्ण उत्तर नवाबकी लिय भेजा । 'नवाबके कुछ विद्रोहिया एवं भयानक अपराधियोंकी भी उन्होंने दण्ड दी और नवाबकी माँगपर भी उन्हें उसके अधिकारियाक मियुद नहीं किया । शाही फरमाणाकी आठमें व्यापारक बहाने भी वे देशमें अनाचार करने लगे थे । यह सब नयीन नवाब सहन न कर सका अतः उसने उनकी ग्रामिमवाजाराकी कोठीपर अधिकार करके पलबत्तेपर धावा कर दिया । कलकत्ताका गवर्नर, सेनापति और अन्य बहुत से अंगरेज भाग निकले और कुछ मारे गये । शीघ्र ही नवाबका अंगरेजोंकी बंगाल, बिहार और उड़ीसामें स्थित प्राय सभी कोठियोंपर अधिकार हो गया । इस पराभवका समाचार जैसे ही मद्रास पहुँचा अंगरेज चिन्तित हो उठे और उन्होंने अपने कण्टिकके

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छुट

मातृसर्वीय युद्धमें अंगरेजोंने फार्सीसैनिकोंको मारतमें ही नहीं मुरौतमें बर्धगिजा और फ्माइलमें बलिबली होय-बनुद् और मज्जामामें कर्बब पराजित किया और उनके अधिकार, अधिक और जमाबन्दो हानि पहुँचायी । १७९३ ई. में बैरिबकी लम्बिके द्वारा रोमों देशोंके बीच युद्ध बन्द हो गया । इस युद्धके दौरानमें फ्माइलने भी बंवालते कर्मन्त्र जाकर फल्तीकिशोरों पराजित करनेमें हिस्सा बँझाया था और फिर तुरन्त बंवाल वास्तु फालर फिस्फुराके बचोवा कुचम्या खन कर दिया था । इस प्रकार १७९३ ई. में भारतमें अब कोई मुरौतय धर्मि अंगरेजोंकी अविज्जनी या प्रसिध्दी न रह गयी थी और न किसी अन्यके कारण होनेकी कोई सम्भावना रह गयी थी ।

इसी युद्धके प्रसंगके और उनकी बीच अंगरेजोंकी भी बड़े अधिक मङ्गलपूर्ण बकम्पना थी वह कई बंधनमें प्राप्त हुई । सुबैशार मुबिस्-मुलीका और मुआइजिन तथा मवाब अजीमखानिके मारण (१७ ७-५९ ई.) में लम्बबन पचाइ बर्ब फालत बंवाल देशक निवाधियोंने पारलपरिक नद्विष्णुता बसाठा मुब-अलिठ और मुयाज्जका बचबोन किया था । इन लिखमें यह बात समस्त भारतमें ज्ञायः बन्यार था । कुछक मुर्ची के बयीशार लम्बब ने, बरब बधिके बबोन-कन्ने अति बनुबत ने, बधिकार परपरिक म्वापार की मुकलका बीन केडके हाथमें बय-बय था १७४ ई. के ही रमुजी चोककेके बैल्लमें मराठीने रोबब कुँरे मारम्बों-द्वारा देशकी अकल ही पराजित हानि पहुँचायी थी और अकालि कला कर की थी लिन्ग मवाब मजीरखिने कन्नी बनुपति करके की फाल था किया था । बंधनमें फल्तीकी अब मारुतीकिम अंगरेज बालि भिरेकी म्वापारी मुबैयारी और म्वालोंकी बसाठाके कारण लज्जबय-बुर्क बकने म्वापारकी बसाठेतर बालत करते रहें थे । अबः बमल दिरेकी म्वापार इन्ही बीबके इन्ने आ गया था । इनमें की अंगरेजोंने पाही करबायोंके बल्लर तथा बकनी मुल्लेकि एवं पाबालीने बकने बब

समस्त प्रतिद्वन्द्वियोंको पछाड़ कर उक्त व्यापारमें नेतृत्व कर लिया था। बंगालक विभिन्न नगरोंमें उनकी अनेक व्यापारिक कोठियाँ फैल गयी थीं। कलकत्ता उनका प्रधान केन्द्र था जहाँ उन्होंने मुद्दह दुर्ग, सुगठिन बम्बो तथा जल और थलकी द्विविध सैन्यशक्तिसे सुरक्षित होकर अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। अलीवर्दीखाने उनपर पूरा नियन्त्रण भी रखे हुए था और भीतर-ही-भीतर उनसे भय भी खाता था। उन्हें शत्रु बनानेका उसने कभी प्रयत्न नहीं किया।

किन्तु १७५६ ई० में उनकी नि सन्तान मृत्यु हो जानेपर उसका छोटा बेटा सिराजुद्दौला बंगालका नवाब बना। वह खोर एव सदाशय ता था किन्तु अनुभवहीन अल्हड़ नवयुवक था। अंगरेज व्यापारियोंकी व्यापारिक शक्तिसे देख-मुनकर वह पहलेसे ही उनसे चिढ़ा हुआ था, अब इसी क्षण युद्ध-से सन्तवर्षीय युद्ध छिड़ जानेके समाचार जानकर इस देशमें जो युद्ध छिड़ जानेकी आशकासे बंगालके अंगरेजों और फ्रेंचोंके अपने-अपने अस्तित्वोंकी किलेबन्दी करनी और सैन्य शक्ति बढ़ा कर दी। नवाबने यह देखकर उन्हें रोका। फ्रेंचों ने मान गये किन्तु अंगरेजोंने उसकी अवज्ञा की और नवाबके घृष्टतापूर्ण उत्तर नवाबको लिख भेजा। 'नवाबके कुछ अधिकारों पर भयानक अपराधियोंको भी उन्होंने शरण दी और अंगरेजोंको भी उन्हें उनके अधिकारियोंके सिपुर्दे नहीं दिया। अंगरेजोंके आहमें व्यापारके वहाने भी वे देशमें अनायास घुसने लगे। नवाब नवाब सहन न कर सका अतः उसने अंगरेजोंके कोठोपर अधिकार करके कलकत्तेपर घावा मार दिया। अंगरेज गवर्नर, सेनापति और अन्य बहुत-से अंगरेज मारे गये। शीघ्र ही नवाबका अंगरेजोंकी बंगाल, सिन्धु और कुछ अन्य प्रायः सभी कोठियोंपर अधिकार हो गया। अंगरेजोंके जैसे ही मद्रास पहुँचा अंगरेज चिन्तित हो उठे कि अंगरेजोंके

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छद्म

बीर कथाइसको बर्णनिकार देकर तथा एडमिरल वाटसन एवं १ बीर
 बीर १५ हिन्दुस्तानी सिपाहियोंको सेवा उनके साथ करके बचकत्ताके
 बिद् रवाना कर दिया । इन्होंने आते हो बचकत्ता वापस के किया क्योंकि
 मयाह वहाँ बीरोंके सैनिक छोड़कर अपनी राजधानीकी वापस या बुद्ध
 या । जब वे हुजूमकी ओर दौड़े । मयाहकी एक कैलाके साथ मुठभेड़ की
 हुई जिसमें हार-बीठका निचय होनेके पुर ही दोनों पक्षों बीच बन्धि हो
 गयो । बीरोंको अपनी सब कोठियाँ और गहने बिक्रीकर वापस
 भिन्न गये ।

मयाहके बन्धन अन्धकारके लम्बान्धने बीरोंको बहानोंके बिद्
 हालाँकि-हाग कैलाके बने बचकत्ताकी बालकोठठिनिचयक बिद्वा मयाह-
 वा कथाइसके इन सबकारण कोई बालेन ही नहीं किया । उनसे इन समय
 बड़ी वापसकी ओर चतुर्पक्षे कम किया । यह वह भी बालता था कि
 फूलोंको बीच मयाहके साथ बीरोंको बिच्छ । पैरों-बन्धि करकेवा मयाह
 कर रहे हैं, आज यह मयाहको सैनिक भी बालतुह नहीं करवा पाइया था ।
 मयाहके बिच्छ भी कुछ बिक्रीबन्धि यह मयाह या बगली बालता भी
 मयाहके बीरोंकी ओरसे बालबाल रानेपर ही बिर्धर भी और को
 बालबन्धि करके नुई यह मयाहके बालकोठियोंकी चुनकर मयाह
 देना पाइया था । अगर इसी समय बालकोठियोंके बिच्छीपर बिदे करे
 बालमय मयाह करके मयाह बिच्छीके हुत मयाहके बिच्छ मयाह मयाह
 या बालके बालेक बालमय बालार भी होइ कर रहे थे । यह वह भी
 बीरोंको अपना भिन्न मयाह रकवा पाइया था । बालमय बीरोंके
 बालमयको बिच्छ करके एवं बालमय बिच्छ करके बालकोठियोंकी चुनकर
 मयाह । इस मयाह बीरोंके बिच्छ मयाहका एक मयाह बालमय
 हो गया ।

मयाहम बिच्छबुद्धिमय बाल करके बिद् कुछ निचय होकर बीर
 ही-बीर एक बालकर बालमय करना मुक्त किया । मयाहके चुन और

उगकी फौजके प्रधान बख्शी मोरजापरकी, जो उस समय बगालके मुसल-
 मान सरदारोंमें सबसे अधिक दामिनीशाली था, नवाब बनानेका लोभ देकर
 पगलाइवने अपनी ओर फोड़ लिया। नवाबकी मामी अर्थात् अलीवर्दीखानकी
 पुत्रवधू घसोटी बेगम, मरदान यागलतीकुर्खी, राजा रागदुर्ग, जगतसेठ
 आदि नवाबके स्तम्भ भी अंगरेजोंसे मिल गये। वास्तवमें प्रायः सभी बगाली
 हिन्दू जमींदार और सेठ व्यापारी भी नवाबके पतनके इच्छुक थे और व
 किसी-न किसी रूपमें अंगरेजोंके पट्टणमें महागक हुए। नवाबके अन्त
 होनेकी तूरतमें उसके कोप एवं सम्पत्तिकी लूटमें सभीका हिस्सा निश्चित
 हुआ। अमीचन्द नामक एक धनी मिथव गोदागरकी मार्फत पगलाइवने मोर-
 जापर आदिके साथ सम्पर्क बनाये रखा। अमीचन्दकी भी हिम्मा मिनता
 था, किन्तु धूर्त पलाइवने उसके साथ भी जाल किया और गमभीतेके जाली
 मसविदे भी तैयार किये। नवाबी दरबारके सरदारोंमें परस्पर भी ईर्ष्या
 द्वेष और फूट थी, सभी अपने अपने स्वार्थमें लगे थे, नवाबके, राज्यके,
 देशके या जनताके हितको किसीकी कोई चिन्ता न थी। तत्कालीन देश-
 व्यापी अनैतिकता और पतनके प्रभावसे बगाल भी अछूता नहीं था, और
 १७५६-५७ ई० के वर्षोंमें ता अंगरेजोंके प्रोत्साहन एवं सहयोगसे बगालके
 प्रायः समस्त राज्याधिकारियोंकी कुचालोंके कारण यह प्रभाव अपने चरम
 शिखरपर था। धूर्त अंगरेज इसी अवसरकी ताव में थे। पट्टणकी सब
 याजना पूरी और पक्की हो जानेपर पलाइवने नवाबकी एक अत्यन्त उद्धत
 एवं घृष्ट पत्र लिखा जिसमें उसपर फ्रान्सिसियोंकी सहायता करनेका मिथ्या
 दापारोपण भी किया। थोड़े समय तक उत्तरकी प्रतीक्षा करनेके उपरान्त
 वह सेना लेकर नवाबकी राजधानी मुर्शिदाबादमें २३ मील दक्षिणकी ओर
 स्थित पलासीके मैदानमें जा पहुँचा। नवाबने वहाँ कुछ सेना पहलेसे ही
 एकत्र कर रखा थी। उसकी संख्या पर्याप्त थी किन्तु उसमें ईरानी,
 अफगानी, अन्य मध्य-एशियाई तथा भारतीय हिन्दू, मुसलमानोंका अद्भुत
 अव्यवस्थित मिश्रण था। अधिकांश सिपाही राज्यभक्तिके कारण नहीं

वर्तक केवल केके किन्तु लम्बेबाके से । नवाब स्वार्थियोही एवं विरुद्ध
 वाली सरदारोंके विराट् हुआ था । स्वयं बीरबादुर बारमठीके बीर राज-
 पुर्नवासी बख्शवठमें सेमरा बहुराज था जो केवल लम्बेबा केबाके किन्तु
 वही बुधबाज निश्चिन्त बना रहा । फिर जो नवाबकी धर्मित्वातनी को कि
 बीरबाके केबाका वही बिहू को सेव न रहता । इसी कारण नवाब काका
 बख्शवठ बीर निश्चित था वह एवके कानो-डाप ही नवाबकी केबाको
 ही बरानेके लक्ष्ये था । किन्तु बने-बने सरदारों बीर बायी ऐलिकोंके
 निस्प्रतयवातनी देकर नवाबके विरुद्धी ईलिक को हतोत्साहित नै बीर
 एवके बाकेने ही नै पीके हुनने कने । नवाब स्वयं बना काका बीर सेमरा
 कोकर राज बना काका कानो हुआ बीर काकापुर्नक बखरा बन कर
 बिबा पया । नवाब को बाकी बीरबाके बीर बाके को काकाके नरे का
 काका हुए, किन्तु १७५७ ई के बख्शवठके इस कोरे-के बुद्धके बख्शवठके
 बख्शवठ ही वही नरे देकरा काका बिबा कर बिबा । बख्शवठके बिबा-
 बिबाके नवाबी मुर्तवा एव बुद्ध स्वार्थियोकाके बख्शवठ होकर बनने देकरे
 एक बायीय बायीयका बन करके बने बख्शवठका, बख्शवठका लक्ष्य
 बख्शवठके बिबाके बिबाके स्वार्थियोके बाकेने स्वयं ही सेव बिबा । इस
 बीरमें बीरबाके लक्ष्यका कारण बनकी बुर-बीरता का सेमरापति
 काकी बी बरान बनका बीरबाज बाकाकी निस्प्रतयवात बीर स्वार्थियो
 का बीर का स्वयं देकरा बुधबाज लक्ष्य देकराबिबाके बनकी मुर्तवा बपुर
 बिबाके बिबाकाका एव बिबा स्वार्थियो

बख्शवठके बुद्धके बायीय बीरबाके बायीय बायीय एवं बायीय बीर
 बन बीर । बख्शवठ बीरबाके लक्ष्यः बुधबाज बायीय ही नै बन नै बायीय
 बन कने । इस बख्शवठके बायीय बायीयका बीर बख्शवठ बायीय बायीय
 बीरके बायीय ही लक्ष्य बख्शवठ बीर बायीय-बिबाके एवं बायीय बायीय
 बायीयके बीर बायीय बायीय बख्शवठ । बायीय बीरबाके-बायीय बायीय
 बायीयबायीय बख्शवठ बुद्ध बिबाके एवं बायीय बायीय बायीय बायीय

उसका प्रारम्भ बगालसे ही हुआ जिसे सर्वप्रकार लूटनेमें उन्होंने कोई कसर न रखी। बलाइवने अपनी सरसकतामें नीच मोरजाफ़रको नवाब बनाया। स्वयं बलाइवको लगभग ढाई लाख पौण्ड नक़द और तीस हजार पौण्ड धांपिककी जागीर मिली। कलकत्ता कौन्सिलके अन्य सदस्योंको भी किसीको पचास हजार और किसीको अस्सी हजार पौण्ड मिले। कम्पनीकी सेनाके विभिन्न अंगरेज़ अफसरोंको सब मिलाकर साढ़े बारह लाख पौण्ड तथा सिराजुद्दौलाद्वारा कलकत्तेके घेरेमें जिन अंगरेज़ोंको जो कुछ क्षति हुई थी उसके मुआवजेमें पीने दो करोड़ रुपये उन्हें मिले। सिवाय अमीचन्दके अन्य देशी सामन्त सरदारोंको भी हिस्से मिले। बड़ी शान्तिके साथ जी भरकर सैकड़ों वर्षसे संचित बगालके राजकोपकी लूट हुई और वह बिलकुल खाली हो गया। अंगरेज़ोंका देना फिर भी काफ़ी बाक़ी बना रहा जिसका तफ़ाज़ा नवाबकी गरदनपर हर समय सवार था। अब अंगरेज़ ही बगालके वस्तुतः स्वामी थे। घटनाका सवाद पाकर शहज़ादे अलीग़ीहरने अवधके नवाबके साथ बगालपर आक्रमण किया, किन्तु जैसे ही बलाइव उसका सामना करनेके लिए बढ़ा वह बिना युद्ध किये ही अवध वापस लौट गया। अंगरेज़ोंके अंकुश और नित्य नयी माँगोंसे तंग आकर मोरजाफ़रने चिनसुरा के ढ़चोंसे घात-चोट करनेका प्रयत्न किया। इसपर अंगरेज़ोंने जल और घल दोनोंपर ढ़चोंको घुरी तरह पराजित किया और उन्होंने अंगरेज़ोंको दस लाख पौण्ड हर्जाना देकर अपना पिण्ड छुड़ाया। इसके बाद ढ़चोंको ओरसे भी अंगरेज़ सदाके लिए निश्चिन्त हो गये। १७६० ई० में अब अत्यन्त धनवान् बलाइव इरलैण्ड चला गया।

बलाइवके जाते ही कलकत्ता कौन्सिलके सदस्योंने मोरजाफ़रको उनकी माँगोंकी पूर्ति करनेमें असमर्थ पाकर पदच्युत कर दिया और उसके दामाद मोरक़ासिमको नवाब बनाया। इस उपलक्ष्यमें उससे खूब धन लूटा, लाखों रुपये और कई जिले प्राप्त कर लिये। मोरजाफ़रके पतनमें उसके हिन्दू मुसाहब और सरदार भी सहायक हुए थे। मोरजाफ़रसे ही अंगरेज़ोंने यह

किन्तु कुछ परिणाम न निकला । इसपर उसने समस्त कर उठा दिये । इससे अंगरेजोंको जो दस्तकोके-द्वारा विपुल लाभ होता था वह बन्द हो गया । अतः युद्ध छिड़ गया । पटनामें मोरक्कासिमके जर्मन कप्तान समरूने २०० अंगरेजोंका घब कर दिया और तदनन्तर १७६४ ई० में वषरमें अंगरेजोंके साथ मोरक्कासिम, अवधके नवाब और बादशाह शाहआलमका युद्ध हुआ जिसमें अंगरेजोंकी ही विजय हुई । मोरक्कासिम और अवधका नवाब अवध भाग गये और शाहआलम अंगरेजोंकी शरणमें आ गया ।

अब तो अंगरेज बंगालके ही सर्वे-सर्वा न थे वरन् स्वयं दिल्लीका बादशाह उनके संरक्षणमें था, देशमें उनकी शक्तिकी धाक जम गयी और भारतीय राजनीतिमें उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी । वषरके युद्धके कार्यको पूरा करनेके लिए प्लाइवुको कलकत्ताका गवर्नर एव सेनापति बनाकर फिर भारत भेजा गया । उसने १७६५ ई० में इलाहाबादमें शाहआलम और शुजाउद्दौलाके साथ सन्धि करके अपनी कम्पनीके लिए बादशाहसे बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानो अर्थात् इन प्रान्तोंकी मालगुजारी वसूल करनेका अधिकार प्राप्त कर लिया जिसके बदलेमें बादशाहको २६ लाख रुपया वार्षिक देनेका वचन दिया । अवधके नवाबसे उसने कड़ा और इलाहाबादके जिले ले लिये, उससे परस्पर सहायता करनेकी शर्त कर ली और उसकी सीमापर उसीके खर्चेसे अंगरेजी सेना रखनेकी बात तय कर ली । अब दिल्लीका बादशाह अंगरेजोंका एक प्रकारका पेशनर था, अवधका नवाब वजोर उनके प्रभावमें था तथा खर्चे एवं हजनिंकी रकमके लिए ऋणी था, और बंगालके तो वे पूरे स्वामी थे । मोरक्कासिमको नाम-मात्रका नवाब बना दिया गया, पुलिस एव दण्डविधान ही उसका एक-मात्र अधिकार-क्षेत्र रह गया । कुछ ही मास उपरान्त वह मर गया और उसके बेटे नजमुद्दौलाको नवाब बनाया गया । मोरक्कासिमके पुनरुत्थानपर भी उसे खूब लूटा-छसोटा गया था । स्वयं स्क्रैपटन नामक एक अंगरेजके शब्दोंमें 'नवाब तो कम्पनीके नौकरोंके लिए एक ऐसा बैंक बना हुआ था

मित्रों ने जब मिठनी बार-बार मिठना पाईं कया मिरा के ।
 बरखा दीपन की अँवरेयोंके हाथ ही मिथुन कया बाठा या बीर
 बरखी केया भी परिचित एव निरुत भी । बंधावमें दोहरा बालन इन्-
 कित हो गया । अँवरेय बरखरी बीर कयके बाछीन कर्मचारियोंका
 बाध देखके बाध-बाधमें निरुत गया । कर्मन्तीके ब्राह्मणरी कर्मचारियोंका
 भ्रष्टाचार बीर अधिक बढ़ गया । कर्मन्तीके कर्मन्ती केनाम कुमार बीर
 बँवठन किया तथा कर्मन्तीके कर्मचारियोंबीर भी निरुतन रखी बीर
 कयके ब्राह्मणरी कर्म करनेका प्रयत्न किया । किन्तु १९१७ ई में
 कर्मावृत्त ईन्कीन बालन गया कया बीर कुछ वर्ष बाद पालन होकर तथा
 कर्मन्ती-दुखा करके बर गया ।

दीहरे बाधनके बीच प्रत्यक्ष हा थे । कर्मन्ती बीर कयाव दोनोंके
 कर्मन्ती कर्मन्तीको कर्मन्तीमें होइ कयावें बुर थी । बड़े-बड़े कर्मन्तीको
 को कोई प्रसिद्ध या भुरखा न रह गयी थी । बाधनुवादी बाधके बहुत
 करके कर्म-कर्म मित्रोंकी लज किन्तीकी भी कर्मन्तीमें कोई निरुत न
 थी । गया मित्रावृत्त ही गयी । इस बीचमें होनेवाले बंधावके अँवरेय
 कर्मन्ती बरखरी (१ १७-१९ ई) बीर कर्मन्ती (१९१९-७९ ई)
 भी कर्मन्ती ही थी । १९१९-७ ई में बंधाव देखके कर्मन्ती बंधावक
 भुरिक्त गया मित्रों एक दिहाईके अधिक कर्मन्ती भुरी उड़न-उड़नकर बर
 गयी । कर्मन्तीमें कुछ १ पीछ पीछ कर्मन्ती बंधाव-नीतिमें
 बाधनके निरुत निरुत । कर्मन्तीकी बीचनता राज्य-कर्मन्तीके कर्म-
 बाधके कर्मन्ती बीर अधिक बढ़ गयी । कर्मन्तीके कर्मन्ती कर्मन्ती केनाम-
 का भी कर्मन्ती कर ही निरुत गया बीर कर्मन्ती देखकर कर्मन्ती कर दिया
 गया बाध ही कर्मन्तीके ही कर्मन्ती कर्मन्तीकोने बीर कर्मन्ती-
 नीति कर्मन्तीको कर्मन्ती-कर्मन्ती करकाटे कर्मन्ती १९७१ ई में १ १८ ई
 की कर्मन्ती भी अधिक राज्य-कर कर्मन्ती करके कया कर किया । १ २ ई
 में कर्मन्ती ईन्कीन बंधावका कर्मन्ती बंधाव जाया । बाध बंधा भुरिक्त भुर

नीतिज्ञ था। कम्पनीके अन्य सभी कर्मचारियोंकी भाँति वह घूमखारी और अछाचारसे भी मुक्त नहीं था। जनताका शोषण और लूट वेगके साथ चलती रही। देशके उद्योग-धंधे शनै-शनै अत्याचारपूर्वक नष्ट कर दिये गये। भारतमें अँगरेजोंकी शक्ति एव विस्तार, और संसारमें इंग्लैण्डका घन-वैभव, व्यापार, उद्योग-धंधे, प्रभाव और प्रभुत्व दिन दूने रात चौगुने बढ़ते गये। भारतकी इस लूटसे प्राप्त घन तथा स्वयं भारतके ही कच्चे माल तथा विशाल भारतीय बाजारके बल्पर ही इंग्लैण्डकी औद्योगिक क्रान्ति एव संसारमें उसके व्यापारिक प्रभुत्वका सम्पादन इसी समयके लगभग प्रारम्भ हुआ।

वारेन हैस्टिंग्सने अपनी दो साल (१७७२-७४ ई०) की गवर्नरीमें पड़ोसी राज्योंकी राजनीतिमें हस्तक्षेप करके कम्पनीकी शक्ति बढ़ानेकी प्रयास चालू रखी। अपने ऋणी अवधके नवाबकी इच्छापर रूहेलोंके साथ युद्ध छेड़कर और फलस्वरूप उनका विनाश करके उसने अवधको तो जो लाभ पहुँचाया सो पहुँचाया, स्वयं अपना लाभ किया और कम्पनी की शक्ति और प्रभावको उत्तर भारतमें पश्चिम दिशामें और अधिक विस्तार दिया। इस युद्धमें पड़ना अँगरेजोंके लिए अन्यायपूर्ण और अनुचित था। उसके लिए स्वयं अँगरेजोंने हैस्टिंग्सकी कड़े शब्दोंमें निन्दा की है। रूहेले सरदार हाफिज रहमतखाने अँगरेजोंका कुछ भी न बिगाड़ा था। वह स्वयं भी एक उदार एव सहृदय शासक था। अपनी मुसलमान-तर प्रजाके प्रति भी उसका व्यवहार अपेक्षाकृत अच्छा था। युद्धके उपरान्त अवधक नवाबोंके शासनमें रूहेलखण्डको दशा एकदम बिगड़ गयी। किन्तु उस कालके इन अँगरेजोंकी दृष्टिमें उचित-अनुचित, न्याय-अन्यायका कोई मूल्य न था। जा घात भी उनकी शक्ति-संवर्द्धन और स्वायत्तसाधनमें सहायक होती वही उचित एव 'यावय' थी और उसे करनेमें वे कभी न चूकते थे। वारेन हैस्टिंग्सने इसी कालमें बंगालके शासनको भी व्यवस्थित करनेका और उसमें सुधार करनेका कुछ प्रयत्न किया, किन्तु इन सुधारों-

यूरोपवासियों द्वारा भारतकी लूट

में जो सम्पत्ति और संवेदोंके द्वितीय तथा अधिष्ठाता की सुरक्षा की वृद्धि हो
 प्रदान की। संस्थापकोंके विरोधके मामले प्रसिद्ध एक कानिडीन की सं-
 वेदोंके अन्तर्गतोंके विरुद्ध संस्थापकों के कुछ मामलोंमें इस मामलेमें हुआ किन्तु
 संवेदोंके कने हुए उनके अन्तर्गत मुक्त किया। १९७३ ई के ऐनुमेन्ट
 ऐन्-डाटा इन्वीन्सकी सरकारने सर्वप्रथम संस्थापकोंके मामलोंमें वैधानिक हस्त-
 लेख किया। इस विधानके अनुसार संस्थापका अधिकार बाण्डना अधिकार-
 कलन नहुनाया अन्य तब सुबों और अन्तर्गत सम्पूर्ण अधिकार वसन्तोंपर
 बनना अधिकारित हुआ ५ वर्ष अन्तर्गत कार्यकाय विमल किन्तु क्या, इनकी
 लक्ष्यताके लिए बार मरम्मतोंकी एक वीथिका बनायी गयी और अन्तर्गतोंमें
 सुवीय वीथीके नामने अन्तर्गत अन्तर्गत स्थिति की गयी विधानके अन्तर्गत
 अधिकार और अन्तर्गत वीथीके अधिकारोंके अन्तर्गत दे।
 आन्तर्गतों-अन्तर्गतों में तब अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गतोंके अन्तर्गतों
 सरकारकी अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गतोंकी पया। इस अन्तर्गत अन्तर्गतों-
 अन्तर्गतोंके अन्तर्गत या अन्तर्गत कि अन्तर्गत संवेदोंकी अन्तर्गत अन्तर्गतों
 अन्तर्गतोंके अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गतोंके अन्तर्गतों केने लया। अन्तर्गतोंके
 अन्तर्गत अन्तर्गतोंकी तथा अधिष्ठाताके अन्तर्गत अन्तर्गतोंके अन्तर्गत
 अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गतोंकी अन्तर्गत।

[illegible]

निजाम और उसको राजनीतिपर उन्होंने अपना प्रभाव जमा ही लिया था, अब उसे और अधिक सुदृढ़ करने तथा मैसूरमें हैदरअलीका अन्त करने तथा निजाम और मराठोंकी शक्ति क्षीण करनेके लिए उन्होंने भारतके इस भूभागमें अपनी शक्तिका संगठन, विस्तार एवं सवर्धन करना प्रारम्भ कर दिया था। इसी नीतिके अनुसरणमें उनका हैदरअलीके साथ प्रथम मैसूर-युद्ध (१७६७-६९ ई०) हुआ, यद्यपि उसका परिणाम उनके लिए कुछ लाभदायक न हुआ। इसी प्रकार पश्चिमी तटपर मम्बई केन्द्रसे उन्होंने मराठोंकी शक्तिको क्षीण करनेके लिए वैसा ही प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया था। १७६१ ई० की पानीपतकी पराजयके उपरान्त पेशवा राज्यकी स्थिति विपन्न हो उठी थी। अन्त कलह, परस्पर फूट, सामन्त सरदारोंके स्वतन्त्र राज्य स्थापना आदिस उत्पन्न परिस्थितियों-ने इस भागमें भी अंगरेजोंको स्वर्ण अवसर प्रदान किया। तीनों केन्द्रोंके द्वारा अंगरेज भारतवर्षको तीन महत्त्वपूर्ण दिशाओंसे आवृत करते चले आ रहे थे। तीनों ही केन्द्रोंके अंगरेज अधिकारी प्रायः एक-दूसरेसे स्वतन्त्र रहकर ही अपनी-अपनी दिशामें अवतक अग्रसर होते रहे थे, किन्तु उनमें उद्देश्य, हित और पद्धतिकी एक-सूत्रता एवं साम्य तथा परस्पर सहयोग एवं सहायता अभी तक भी बराबर बनी हुई थी। रेगुलेटिंग ऐक्ट-द्वारा उनका पूर्ण केन्द्रीयकरण एवं एकसूत्रीकरण करनेका प्रयत्न किया गया, जिसमें प्रायः कोई कठिनाई न हुई। अबतक अंगरेजी नीति और पद्धतिका यथावश्यक विकास हो चुका था, उनकी शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी थी, स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गयी थी तथा उनके प्रभाव, अधिकार और साधन पर्याप्त थे। उनकी भारतीय साम्राज्यकी नौव मजधूतीके साथ जम गयी थी, अब मात्र तेजीके साथ उस साम्राज्यका विस्तार करके समस्त देशको उसमें व्याप्त कर लेना था जिसके सम्पादनमें वे मनोयोगक साथ जुट गये। इस काल तककी घटनाओंका कुछ विस्तारके साथ विवेचन इसीलिए किया गया है कि अंगरेजोंके उद्देश्य, उनकी नीति, पद्धति, मनोवृत्ति, जातीय यूरोपवासियों द्वारा भारतकी लूट

में जो बम्बई और मैनरोडोंके दिनों तथा बरिगातेकी सुरक्षाकी दृष्टि ही
 बनाने की। मन्थर्विरोधके विरोधके मामले अधिक एक अवधिमें ही मैन-
 रोडोंके आसपासके विस्तृत क्षेत्रके कुछ भागोंमें इन मामलों द्वारा विस्तृत
 मैनरोडोंमें इन क्षेत्रोंके साथ सुरक्षा दिया। १९५१ ई के रेपुब्लिक
 ऐक्ट-द्वारा इन्हींकी सरकारने सर्वप्रथम बम्बईके मामलों में वैधानिक हस्त
 क्षेत्र दिया। इन विभागके अनुसार बम्बईका सर्वप्रथम शासनका सर्वप्र-
 थम एकमात्र राज्य कुछ कुछ और बम्बई बम्बई के क्षेत्रोंमें
 इनका शासन द्वारा ५ वर्ष तकका शासनके विस्तृत दिया गया, इनकी
 शासनके लिए बार मन्थर्विरोध एक वैधानिक बम्बई की और कमकसेमें
 मन्थर्विरोधके मामले मन्थर्विरोध शासनके शासन की गयी जिसके कुछ प्र-
 थम प्रथम और इनकी वैधानिकके अधिकारके सर्वप्रथम प्रथम है।
 मन्थर्विरोध-बम्बईकी मन्थर्विरोध तथा मन्थर्विरोध एवं मन्थर्विरोध शासनके
 मन्थर्विरोधके अनुसार प्रथम शासनके ही गया। इन प्रकार इन मन्थर्विरोध-द्वारा
 इन्हींकी सरकार का मन्थर्विरोध कि बम्बई मैनरोडों राज्य भारतमें बम्बई
 राज्य-मन्थर्विरोधके विस्तृतमें प्रत्यक्ष करने विस्तृतमें मैनरोडों। बम्बईके
 विस्तृतमें मैनरोडोंके द्वारा मन्थर्विरोधमें मैनरोडोंके इन मामलोंकी मैनरोडों
 सरकारकी सर्वप्रथम मन्थर्विरोध और मन्थर्विरोध एवं मन्थर्विरोधका प्रथम ही गया।

निजाम और उसकी राजनीतिपर उन्होंने अपना प्रभाव जमा ही लिया था, अब उसे और अधिक सुदृढ़ करने तथा मैसूरमें हैदरअलीका अन्त करने तथा निजाम और मराठोंकी शक्ति क्षीण करनेके लिए उन्होंने भारतके इस भूभागमें अपनी शक्तिका सगठन, विस्तार एवं सवर्धन करना प्रारम्भ कर दिया था। इसी नीतिके अनुसरणमें उनका हैदरअलीके साथ प्रथम मैसूर-युद्ध (१७६७-६९ ई०) हुआ, यद्यपि उसका परिणाम उनके लिए कुछ लाभदायक न हुआ। इसी प्रकार पश्चिमी तटपर बम्बई केन्द्रसे उन्होंने मराठोंकी शक्तिको क्षीण करनेके लिए वैसा ही प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया था। १७६१ ई० की पानीपतकी पराजयके उपरान्त पेशवा राज्यकी स्थिति विपन्न हो उठी थी। अन्त कलह, परस्पर फूट, सामन्त सरदारोंके स्वतन्त्र राज्य स्थापना आदिसे उत्पन्न परिस्थितियों-ने इस भागमें भी अँगरेजोंको स्वर्ण अवसर प्रदान किया। तीनों केन्द्रोंके द्वारा अँगरेज भारतवर्षको तीन महत्त्वपूर्ण दिशाओंसे आवृत करते चले आ रहे थे। तीनों ही केन्द्रोंके अँगरेज अधिकारी प्रायः एक-दूसरेसे स्वतन्त्र रहकर ही अपनी-अपनी दिशामें अवतक अग्रसर होते रहे थे, किन्तु उनमें उद्देश्य, हित और पद्धतिकी एक-सूत्रता एवं साम्य तथा परस्पर सहयोग एवं सहायता अभी तक भी बराबर बनी हुई थी। रेगुलेटिंग ऐक्ट-द्वारा उनका पूर्ण केन्द्रीयकरण एवं एकसूत्रीकरण करनेका प्रयत्न किया गया, जिसमें प्रायः कोई कठिनाई न हुई। अब तक अँगरेजी नीति और पद्धतिका यथावश्यक विकास हो चुका था, उनकी शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी थी, स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गयी थी तथा उनके प्रभाव, अधिकार और साधन पर्याप्त थे। उनकी भारतीय साम्राज्यकी नींव मजबूतीके साथ जम गयी थी, अब मात्र तेजीके साथ उस साम्राज्यका विस्तार करके समस्त देशको उसमें व्याप्त कर लेना था जिसके सम्पादनमें वे मनोयोगक साथ जुट गये। इस काल तककी घटनाओंका कुछ विस्तारके साथ विवेचन इसीलिए किया गया है कि अँगरेजोंके उद्देश्य, उनकी नीति, पद्धति, मनोवृत्ति, जातीय यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छूट

मराठा सरदारों और हैदराबादी के साथ अंगरेजों का युद्ध हुआ। अंगरेजों की कूटनीति और चातुरी साध-माध अपना कार्य करती रही। परिणाम यह हुआ कि १७८२ ई० में सालवाई की संधि से मराठा युद्ध का और १७८४ ई० में मंगलीर की संधि से मैसूर युद्ध का अन्त हुआ। अंगरेजों का प्रभाव उनके सभी विराधी राज्यों पर छा गया। उनकी सबकी ही शक्ति-विस्तार और अधिकार कुछ-न-कुछ घट गये और अंगरेजों के पर्याप्त बढ़ गये। अब उन राज्यों का अन्त करने या उन्हें पूर्णतया अपने अधीन कर लेने का मार्ग भी अंगरेजों के लिए सुगम हो गया।

इस काल में देश के प्रत्यक्ष शासन का काम अंगरेजों को केवल बंगाल में ही करना पड़ रहा था। उसक लिए उन्होंने प्रचलित मुगल कालीन शासन पद्धति के ढाँचे को ही अपनाया और उसमें अपने हितों की सुरक्षा एवं उद्देश्यों की सिद्धि की दृष्टि से आवश्यक सुधार करने प्रारम्भ किये। उनकी इस शासन-पद्धति से देश का विशेष लाभ नहीं हुआ, अंगरेजों को ही उसके अधिकाधिक शोषण और लूट में सहायता मिली। देश और जनता के हितों को उन्हें चिन्ता थी भी नहीं। किन्तु रेगुलेशन ऐक्ट द्वारा स्थापित व्यवस्था स्वयं उनके लिए भी सदाय और असुविधाजनक थी। गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिल के बीच सद्भाव एवं सहयोग रहता ही न था और राज्यकार्य में अडचन होता था। अतः इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री पिट ने अपने १७८४ ई० के पिट्स इण्डिया ऐक्ट द्वारा कम्पनी के लन्दनस्थ प्रधान कार्यालय पर तथा उसको भारतीय नीति पर अपनी सरकार का नियन्त्रण एवं हस्तक्षेप और सुदृढ़ कर दिया और गवर्नर-जनरल के अधिकारों में भी वृद्धि कर दी। इसी बीच में अपने कार्यकाल में वारेन हेस्टिंग्स ने कतिपय अन्य जघन्य कार्य किये थे। उसके अन्यायपूर्ण रुहेला युद्ध का उल्लेख किया ही जा चुका है। उसने बंगाल के एक प्रतिष्ठित एवं सम्मानित राजपुरुष महाराज नन्दकुमार को व्यक्तिगत शत्रुता के कारण अपने मित्र सुप्रीम कोर्ट के प्रधान जज सर एला-इजा हम्पे-द्वारा जालसाजी के झूठे मामले में फाँसी की सजा दिलवायी।

परिम एवं अवतराचारिकाः टोक-टोक परिचय मिल जाने । बाबेरी का घटनाई इन्हींकी पुनरावृत्तिमात्र है। यह कमजोर बहिष्कृत विचार ही सर्वोत्त होना की वकाल-अवसरोंमें बाबारे की कालकालानुसार निम्न प्रकार है —

१. बारेन हिस्टोरिय (१७७४-८५ ई) भारतका प्रथम अंगरेज गवर्नर-जनरल था । उसके बहानी नियुक्ति पाँच वर्षके लिए की गयी थी फिर पाँच वर्षके लिए और बढ़ा दी गयी थी । उसके कामकाजके आरम्भ होनेके अनन्तर ही सर्व सम्बन्धीका वर्गपर वैश्या सरकारकी राजनीतिमें उलझ गया । वैश्या राज्यके अन्त-कलहका साथ अन्तर और राजनीति का नष्ट निकल पड़ने अपने प्रान्तों की ईवाककी बदनामी पुनरावृत्ति करनेकी कोशों । किन्तु विचक्षण मराठा राजनीतिज्ञ बाबा कलानीके कूटनीतिक चालचलके कारण सब स्वयं केनेके देने पड़ गये । १७७५-८१ ई के प्रथम अंगरेज-मराठा युद्धमें माला कलानीने हिम्मत होकर, बाबकाज धोके आदि सभी मराठा सरकारोंकी तथा निजाम और ईरानकीकी भी अपनी ओर किला लिया । दूसरे सम्बन्धीको केन्द्र ही अंगरेजों कोर होकर बहादुर सरकारने ईरानकीके साथ युद्ध छेड़ दिया । ईरानकी सर्व अंगरेजोंको कर्नाटक बाहर निकाल देनेपर युद्ध हुआ था । यह प्रथम अंगरेज-मराठा युद्धके बीचमें ही दूसरा अंगरेज-ईरान युद्ध (१७८०-१७८४ ई) भी शुरू हो गया । इन युद्धोंके कारण करनेमें सम्बन्धी और बहादुर के कर्नाटक वर्गपर-अनरक बारेन हिस्टोरिकी कोई अनुपति या स्वीकृति नहीं थी थी । यह सब कुछ समय तक चुप ही बैठा रहा । कम-समय पूर्वो एवं परिचयी तटस्थ अंगरेजोंका नाम-निर्माण मिलने ही का रहा था बिनाके कारण अंगरेजोंकी राज्याकाशा घटित ओर इतिहासकी अभिष्ट केन्द्र कलानी काद ही निजातबाद अचानक आदि जाऊँगे कई उद्देश्यके लिए बहिष्कृत की पढ़ाया पढ़ाया किन्तु उनके पूर्व ही बारेन हिस्टोरिकी अन्त अंगरेज बहिष्कृत केन्द्र करके सब युद्धने जवा दिया । परिचयी छद्म, पूर्वी छद्म और अन्य भारत आदि विभिन्न स्थानोंमें फैला

प्रथाका अन्त करके वगालमें मालगुजारीका इस्तमरारी अर्थात् स्थायी बन्दोबस्त किया और सिविल सचिवकी भी स्थापना की। कार्नवालिस एक उच्च धरानेका सम्पन्न व्यक्ति, ईमानदार और अनुभवी शासक था। उसके पूर्ववर्ती अधिकारियों द्वारा किये गये अत्याचारा एव अनाचारोंको भुलानेके लिए उसे भेजा गया था। ऐसा करना अंगरेजोंकी गहरी कूट-नीतिका प्रदर्शन था। इस प्रकारकी क्रिया प्रतिक्रियापर ही वह अवलम्बित थी और सदैव चलती रही। एक शासक आता जो जो भरकर जार-जुलम, रूट-खसोट करता उसके तुरन्त उपरान्त ऐसा व्यक्ति भेजा जाता जो जनताके आसू पीछनेका और उसे पुराने अत्याचारोंका भूलकर अंगरेजोंकी सदा-श्रुता, उदारता एव न्याय-परायणताकी प्रशंसा करनेके लिए प्रोत्साहित करता। किन्तु इन दोनों ही गरम और नरम प्रकारके अधिकारियोंके हाथमें अंगरेजोंके अपने मौलिक हित समान रूपसे सुरक्षित रहते। १७९०-९२ ई० में दूसरा अंगरेज-मैसूर युद्ध छिड़ा जिसके परिणामस्वरूप टीपू सुलतानका राज्य और शक्ति अत्यन्त घट गये और मद्रास प्रेसीडेन्सीका भी पर्याप्त विस्तार हो गया। इस कालमें उत्तरापथमें महादाजो सिन्धिया सर्वाधिक शक्तिशाली हो रहा था, वह चतुर, बुद्धिमान् और प्रतापी भी था। अंगरेजोंने उसके साथ मित्रता ही बनाये रखी और उसके कार्योंमें हस्तक्षेप नहीं किया। १७९४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। १७९३ ई० में इंग्लैण्डकी सरकारने कम्पनीको आगेके २० वर्षोंके लिए भारतीय व्यापारक एकाधिकारके लिए नया आज्ञा-पत्र प्रदान कर दिया था।

३ सर जॉन शोर (१७९३-९८ ई०) पहलेसे ही कम्पनीका कर्मचारी था और कार्नवालिसका सहायक था। वह सिविलियन मनोवृत्तिका था और देशी राज्योंके मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका अनुसरण करना तथा पिटके इण्डिया ऐक्टका अक्षरशः पालन करना चाहता था। अतः पूर्व सचिवकी अवहेलना करके उसने मराठोंके विरुद्ध अपन मित्र निजामको सहायता न दी, फलस्वरूप खदकि युद्धमें निजाम बुरी तरह

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

प्रयाका अन्त करके वगालमें मालगुजारीका इस्तमरारी अर्थात् स्थायी बन्दोबस्त किया और सिविल सर्विसकी भी स्थापना की। कानेवालिस एक उच्च धरानेका सम्पन्न व्यक्ति, ईमानदार और अनुभवी शासक था। उसके पूर्ववर्ती अधिकारियों द्वारा किये गये अत्याचारों एवं अनाचारोंको भुलानेके लिए उसे भेजा गया था। ऐसा करना अंगरेजोंकी गहरी कूट-नीतिका प्रदर्शन था। इस प्रकारकी क्रिया-प्रतिक्रियापर ही वह अवलम्बित थी और सदैव चलती रही। एक शासक आता जो जो भरकर ज़ार-बुलम, लूट-खसोट करता उसके तुरन्त उपरान्त ऐसा व्यक्ति भेजा जाता जो जनता-के आसू पोंछनेका और उस पुराने अत्याचारोंका भूलकर अंगरेजोंकी सदा-शयता, उदारता एवं न्याय-परायणताकी प्रशंसा करनेके लिए प्रोत्साहित करता। किन्तु इन दोनों ही गरम और नरम प्रकारके अधिकारियोंके हाथमें अंगरेजोंके अपने मौलिक हित समान रूपसे सुरक्षित रहते। १७९०-९२ ई० में दूसरा अंगरेज-मैसूर युद्ध छिड़ा जिसके परिणामस्वरूप टीपू सुलतान-का राज्य और शक्ति अत्यन्त घट गये और मद्रास प्रेसीडेन्सीका भी पर्याप्त विस्तार हो गया। इस कालमें उत्तरापथमें महादाजी सिन्धिया सर्वाधिक शक्तिशाली हो रहा था, वह चतुर, बुद्धिमान् और प्रतापी भी था। अंग-रेजोंने उसके साथ मित्रता ही बनाये रखी और उसके कार्योंमें हस्तक्षेप नहीं किया। १७९४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। १७९३ ई० में इंग्लैण्ड-की सरकारने कम्पनीको आगेके २० वर्षोंके लिए भारतीय व्यापारके एकाधिकारके लिए नया आज्ञा-पत्र प्रदान कर दिया था।

३ सर जॉन शोर (१७९३-९८ ई०) पहलेसे ही कम्पनीका कम-चारी था और कानवालिसका सहायक था। वह सिविलियन मनोवृत्तिका था और देशों राज्योंके मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका अनुसरण करना तथा पिटके इण्डिया ऐक्टका अक्षरशः पालन करना चाहता था। अतः पूर्व संधिकी अवहेलना करके उसने मराठोंके विरुद्ध अपन मित्र निज़ामको सहायता न दी, फलस्वरूप खदकि युद्धमें निज़ाम बुरी तरह

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

अंगरेजोंके साथ यह संधि करता वह अनिवार्य रूपसे अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार कर लेता, किमी देशी या विदेशी शत्रु शक्तिके साथ वह सन्धि-विग्रह नहीं कर सकता था, उसे अपने यहाँ एक अंगरेज रेजीडेण्ट और सेना रखनी पड़ती थी जिसका मंत्र खर्च उस देना पड़ता था और किमी अन्य विदेशीको वह अपने यहाँ नौकर नहीं रख सकता था। सबसे पहले निजाम इस संधिमें बँधा। तदनन्तर अवधके नवाबसे रुहेलखण्ड और गोरखपुरके जिले वरधम छोनकर उसे इस सन्धिमें बाँधा। १८०२-०५ ई० में मराठोंके साथ युद्ध छेड़ दिया और परिणामस्वरूप पेशवा, मिर्झिया, होलकर, भासले आदि मराठा राज्योंको पराजित करके उन्हें अपने अपने राज्योंके मूल्यवान् प्रदेश अंगरेजोंको दे देने तथा इस संधिमें बँधनेपर विवश किया गया। भरतपुरके जाटों और राजस्थानके प्रायः सभी राजपूत राज्योंका भी इन संधियोंमें जकड़ लिया गया।

इन संधियोंके फलस्वरूप भारतमें अंगरेजोंकी स्थिति अत्यन्त दृढ़ हो गयी, उनका राज्य विस्तार प्रत्येक दिशामें देशके अन्त प्रदेश तक पहुँच गया घन, आय तथा व्यापार अत्यधिक बढ़ गया, संधिमें बँधे राज्योंपर उनका साम्राज्य स्थापित हो गया और उनके पास एक सुशिक्षित विशाल सेना हो गयी जिसके लिए उन्हें कुछ भी खर्च न करना पड़ता था। इन कथित अनगिनत मित्र राज्योंकी विदेशी नीतिपर भी उनका पूर्ण अधिकार हो गया और उन्हें अन्य यूरोपीय जातियोंके आक्रमणका कोई भय न रहा। इन संधियोंके लिए बेल्लेजलीने भारतीय राजाओंपर बड़ा दबाव डाला तथा उनको साथ अत्याचारपूर्ण और सख्तीका वरताव किया। उसने उनकी या उनकी जनताकी भावनाओंका तनिक भी खयाल न किया और न उनके न्याय्य अधिकारोंपर ही कुछ ध्यान दिया। उसको तो केवल अंगरेजी राज्यके विस्तार और सुरक्षाकी चिन्ता थी। देशी राजा नवाब उनके दबाव और अत्याचार तथा अपनी स्वयंकी अमहाय अवस्था, अयोग्यता, फूट, स्वार्थ-परता एवं नैतिक पतनके कारण उसका कहा माननेपर विवश हुए।

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

बँबरेच इतिहासकारों और राजनीतिज्ञोंने जल्दी इस बाबि चौरासे
 इस कुत्रीक्षिणी बड़ी शकंठा की है, किन्तु भारतीय राजाओं और बगालीर
 इन छलिक्योका कडा मुता प्रकाश पडा । जब कन्ही विवेकिनीके का पडोसी
 राज्योंके आक्रमणकोका बगवा आन्तरिक शोहीका श्रावः कीर्त नम न एत
 कत-वे निकम्मे बगबोर बागवती और विजयवी हो गये । कबका कलक
 सम्मान की बादा एत और राजनीतिक बीकन निबलत हो गया । एतके
 आत्मन-बगवतकी लोरीत नी वे विमुक्त हो गये । बङ्कन बगवाचर और
 कलवाचार बङ्कने कने और कलमें इन बगवाचारों और कुलीनकी दुसरे
 देकर कलमें-वे बिबे बाहा कत एतकी बँबरेकी एतमें बिबे केकेस
 कङ्क बङ्कना बँबरेकीके हाथने का गया । हासत मनरी बाबि बगवाचरीने
 नी इस छलिक बगवती कने कलमें बागवतकी की है और कडा है कि इसके
 हाथ बागवती बरेच दुर्बलता परिचहीन और दुर्बल हो गये । एतकी
 गद्दी बैकेवकीने नी जल्दी एतका बगवतन कित्दार करकेर पुन
 हुवा कत, तँकीर एतके कतराविभारके जगकेस कप कलकर क
 एतकास कत करके कने बँबरेकी एतमें बिबे बिबे । गुरावरी नगलीने
 कल नी बड़ी बिबे गया और कलकनी नगलीके हाथ नी बँकन-बीक हो
 बरताव बिबे गया । इन बँबरेकी नी बाक-बाककी केकेस केकर कलक कर
 बिबे गया । कलके एतकीर बँबरेकी आत्मन स्थानिष्ठ कर बिबे गया नी
 बाक-बीक हो बागवतीने कलके देवी बाकनकी बरेका बाबिक निबुड और
 कलवाचारपुर्ब क । बैके ली कलक १८ ईतिहास कलके हो इन बीकिक
 आरम्भ कर कने वे किन्तु कल बैकेवकीने कने इस कलकिक बगवत एवं
 बीक कल केकर बागवती बँबरेकीके अनुकनके अनुकनकीक कने कल एवं
 किल्लन बना बिबे और बाक हो केके बैकिक एवं राजनीतिक कलकनी नी
 बिबेकन कलके बिबे । बैकेवकीकी इन लोच लल बीकिक कलकन कनी
 नरन नीकिकी बागवतकी नी अतएव—

३. बागवतीकलकी पुन कलकन-कलक बगवत बीक गया किन्तु

कुछ मास पदचातु ही उसको मृत्यु हो गयी । उसके स्थानमें—

६ सर जार्ज बार्लो (१८०५-०७ ई०) नियुक्त हुआ । उसने भी हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका पूर्णताके साथ पालन किया । वेल्शलीकी नीतिके परिणामों और अंगरेजोंकी गूढ़ दुरभिसन्धिकी बहुत-से भागतीय अनुभव करने लगे थे किन्तु विवदा थे । तथापि १८०६ ई० में वेलोरमें अंगरेजों सेनाके भारतीय सैनिकोंने भीषण विद्रोह कर दिया जिसका कठिनार्द्धसे दमन हुआ । साथ ही देश-भरमें उपद्रव खड़ा हो गया, क्षुण्डके क्षुण्ड डाकू सर्वत्र घूमने फिरते थे और निराक लूट-मार करते थे । बुन्देलखण्डमें तो पूर्ण अराजकता फैल गयी, अनेक छोटे-छोटे सन्दार परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे । उधर पंजाबमें गणगीतसिंहका स्वतन्त्र सिक्ख राज्य उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता जा रहा था । यूरोपमें नैपोलियन बोनापार्ट अपनी शक्तिके शिखरपर पहुँच गया था । अंगरेजोंका वही सबसे अधिक बलवान् एवं महान् शत्रु था जिसके कारण उनकी बड़ी भयप्रद स्थिति थी ।

७ लार्ड मिण्टो (१८०७-१३ ई०) के गवर्नर-जनरलका पद संभालनेके समय उपरोक्त समस्याएँ उसके सम्मुख थीं । अतः उसने ईरान, अफगानिस्तान और पंजाबके नरेशोंके पास दून भेजकर उनसे मैत्री सन्धियाँ कर लीं और उन्हें फ्रांसिसियोंके विरुद्ध अंगरेजोंका मित्र बना लिया । सिन्धके अमीरोंके साथ भी इसी प्रकारकी संधि कर ली गयी । उसने बुन्देलखण्ड आदिके सन्दारोंके पारस्परिक झगड़ोंका निबटारा किया और डाकूओंका भी कुछ दमन किया । मिण्टोको यह गर्व था कि भारतीय शक्तियोंके विरुद्ध शस्त्र उठाये बिना ही उसने सारी अराजकताको दबा दिया ।

८ लार्ड हैस्टिंग्स (१८१३-२३ ई०) के प्रथम वर्षमें ही कम्पनीका नया आशा पत्र अगले बीस वर्षोंके लिए जारी हुआ जिसके द्वारा भारतीय व्यापारपर उसका एकाधिकार समाप्त कर दिया गया । १८१३ ई० के इस आज्ञापत्र-द्वारा ही प्रथम बार अंगरेज कम्पनी सरकारने तीस

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छूट

बैंगरेज इतिहासकारों और राजनीतिज्ञोंमें आये इस भाँति बीरोपी इस कुनीक्षिणी बड़ी झड़ना की है किन्तु भारतीय राजाओं और नरनौतर इन कानिबोना बड़ा बुरा ब्रजाल बना । अब उन्हें रिडेविनोंके या बरोपी राज्योंके आत्मन्योका बचका आन्तरिक डोडोना डाला कीई बय न था बन्ना वे निजमें बचकोर बाबडी और रिक्काडी हो गये । इनका आत्म-आत्मन भी बाता रहा और राजनीतिक बीकन नि-कलन हो गया । उनके आत्मन-बचनकी ओरसे भी वे निबुद्ध हो गये । बचकन बचाचार और बचाचार बढ़ने गये और अन्तमें इन बचाचारों और पुष्पकनकी पुर्तई देकर कर्मी-के सिधे बाता कन राज्यकी बैंगरेडी राज्यमें निबा बैना बचन बचका बैंगरेडीके हाथमें आ गया । बाबक बनरी बाँरि राजन्यत्नीमें भी इस कनिब बचनकी कने कन्नीमें बाजीकन की है और कहा है कि इनके हाथ भारतीय बरीय नुनकन बाँरिगहीन और पुर्बक हो गये । राज्य हो गयी बैकेडकीने भी कनके राज्यका बचाकन निस्तार करेनार पुष्प हुआ था, तभीर राज्यके फलदाधिकारके कनकीका अन्त बचकर वह राज्यका अन्त करके इसे बैंगरेडी राज्यमें निबा निबा । नुनकी बचनमें बाब भी गयी निबा कन और कनिककी कनकीके हाथ भी बचाक-बैना हो बरजान निबा गया । इन बरीडीकी बाक-बाककी बैकन देकर बचन कर निबा गया । कनके राज्यपर बैंगरेडी आत्मन ल्याधि कर निबा कन को अन्त करीय हो आत्मनमें बचने देयी बाकनकी अनेका कनिब निबुद्ध और अन्तनारपुर्ब था । बैके तो कनार ोर ईनिबक बचके हो इन बीरिका आत्मन कर नुके वे निबु कन बैकेडकीने कने एक आन्तरिक आत्मक एवं बैक कन देकर बाध्यमें बैंगरेडीके अन्तकी अनुनलजीय कनमें बचका एवं किन्तु बचा निबा और बाब हो बैके बैकिक एवं राजनीतिक ननकी को निबलनर गयी निबा बैकेडकीकी इन तीव्र लल बीरिका बरजान कनकी बरज बीरिका आत्मनकन की अन्त—

३. आत्मन्योकाकी नुन कननर-अन्तक बचाकर गेना कन निबु

थी, युद्ध छेड़ दिया। महाने इस प्रथम युद्ध (१८२४-२६ ई०) के फल-स्वरूप ब्रह्माशा राजा पराजित हुआ और सहायक सन्धिमें बँधा। भारी रकम और आसाम प्रांत अंगरेजोंमें हाथ आये। मनीपुरका राज्य भी उनकी अधीनतामें रहा। उनकी पूर्वी सीमा भी अब सुरक्षित हो गयी। १८२६ ई० में भरतपुरमें दुर्जनसाल विद्रोही हुआ जिसकी देवा-देवी मालवा, बुन्देलखण्ड एवं मराठा राज्योंमें विद्रोहके चिह्न दीये पड़ने लगे। अंगरेजोंने दुर्जनसालको कुचल दिया, भरतपुरके किल्लेपर अधिकार कर लिया और खजानेको जी भरकर लूटा, किन्तु भरतपुर राज्यको कायम रखा।

१० सर विलियम बेंटिक (१८२८-३५ ई०) ने शासन-सुधार और शान्ति-कार्योंकी ओर अधिक ध्यान दिया। इसके समयमें सर्व-प्रथम अंगरेजोंने अपने एक प्रतिष्ठित अधिकारी टामस मनरोके मुखसे यह कहलाया कि ब्रिटिश सरकार एक सरक्षकके रूपमें भारतको अपने अधीन रखेगी और उसका ध्येय भारतीयोंको अपने देशका शासन करनेके योग्य बनाना है। यहीसे अंगरेजोंने विश्वमें अपना यह दम्भ प्रचारित करना शुरू किया कि भारत-जैसे पिछड़े, अशक्त, अरक्षित और असभ्य देशोंका संरक्षण करना तथा उन्हें उन्नत और सभ्य बनाकर अपने पैरोंपर खड़ा कर देना इस गोरी जातिका स्वेच्छा एवं परोपकार कृतिमें ग्रहण किया हुआ भार और उत्तरदायित्व है। अंगरेजोंका यह दम्भपूर्ण ढोंग वर्तमान पर्यन्त चलता रहा है। अस्तु बेंटिकने घोषित किया कि प्रत्येक भारतीय जाति, धर्म या रंगके किमी भेद-भाव बिना किसी भी सरकारी पदपर नियुक्त किया जा सकता है। उसने कौजी खर्च कम करके तथा शासन सम्बन्धी अन्य आर्थिक सुधारोंद्वारा सरकारकी आय और वचत बढ़ायी, पश्चिमोत्तर प्रान्त-का यन्दाबस्त पूरा कराया और इलाहाबादमें बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू स्थापित किया, अदालतोंमें सुधार किये तथा उनकी भाषा फ़ारसीके स्थानमें संस्कृत कर दी। सतीकी प्रथा, नरबलि, शिशुहत्या, स्त्रियोंका व्यापार आदि

[illegible]

३. लार्ड एम्बेस्सी (१८९१-१८९६) के ब्रह्मणे छत्राणे राज
शिवने आशासकी नियम करके पूर्वी बंगालपर आक्रमण करालेकी हीमारी की

थी, युद्ध छेड़ दिया। ब्रह्मायें इस प्रथम युद्ध (१८२४-२६ ई०) के फल-स्वरूप ब्रह्मा का राजा पराजित हुआ और सहायक सन्धिमें बँधा। भारी रकम और आसाम प्रांत अंगरेजोंके हाथ आये। मनीपुरका राज्य भी उनकी अधीनतामें रहा। उनकी पूर्वी सीमा भी अब सुरक्षित हो गयी। १८२६ ई० में भरतपुरमें दुर्जनमाल विद्रोही हुआ जिसकी देखा-देखी मालवा, बुन्देलखण्ड एवं मराठा राज्योंमें विद्रोह चिल्ला दीख पड़ने लगे। अंगरेजोंने दुर्जनमालको कुचल दिया, भरतपुरके किलेपर अधिकार कर लिया और खजानेको जी भरकर लूटा, किन्तु भरतपुर राज्यको कायम रखा।

१० सर विलियम वेण्टिक (१८२८-३५ ई०) ने शासन-सुधार और शान्ति-कार्योंकी ओर अधिक ध्यान दिया। इसके समयमें सर्व-प्रथम अंगरेजोंने अपने एक प्रतिष्ठित अधिकारी टामस मनरोके मुखमें यह कहलाया कि ब्रिटिश सरकार एक सरक्षकके रूपमें भारतको अपने अधीन रखेगी और उसका ध्येय भारतीयोंको अपने देशका शासन करनेके योग्य बनाना है। यहीसे अंगरेजोंने विश्वमें अपना यह दम्भ प्रचारित करना शुरू किया कि भारत-जैसा पिछड़े, अशक्त, अरक्षित और असम्य देशोंका संरक्षण करना तथा उन्हें उन्नत और सम्य बनाना अपने पैरोपर खड़ा कर देना इस गौरी जातिका म्वेच्छा एवं परोपकार वृत्तिसे ग्रहण किया हुआ भार और उत्तरदायित्व है। अंगरेजोंका यह दम्भपूर्ण ढांग वर्तमान पण्यत चलता रहा है। अस्तु वेण्टिकने घोषित किया कि प्रत्येक भारतीय जाति, धर्म या रंगके किसी भेद-भाय बिना किसी भा सरकारी पदपर नियुक्त किया जा सकता है। उसने फौजी खर्च कम करके तथा शासन सम्बन्धी अन्य आर्थिक सुधारों-द्वारा सरकारकी आय और वचत बढ़ायी, पश्चिमोत्तर प्रान्त-का बन्दोबस्त पूरा कराया और इलाहाबादमें वोर्ड ऑफ रेवेन्यू स्थापित किया, अदालतोंमें सुधार किये तथा उनकी भाषा फारसीके स्थानमें उर्दू कर दी। सतीकी प्रथा, नरबलि, शिशुहत्या, स्त्रियोंका व्यापार आदि

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

[illegible]

देवी राज्यके सम्बन्धमें ब्रिटिशकी नीति सामान्यतया हस्तक्षेप न करने की ही थी। स्वयंसे कबाल और दुर्बल राज्योका सन्त करके उन्हें जीवन्तही राज्यमें लिया गया। मैसूर स्वयं ब्रिटिश ईस्टइंड, डिलिक्टा आदि राज्यके आन्तरिक मामलोंमें भी काफ़ी हस्तक्षेप किया। मैसूरकी सरकारकी तुल्यी नीतिके कारण बहुत देवी राज्योमें यह बोधा था कि मैसूर सरकार उनके राज्योका सन्त करनेका बहुत ही ईर्ष्या रखती है। मैसूरकी यह विचारण सरकार की राहों की कि न ही उन्हें सन्त राज्यकी व्यवस्थाकी अपनी सम्मानुसार होकर करनेका ही सरकार विचार है और न मैसूर सरकार ही एक राज्यमें उन्हें कोई सङ्कल्प देती है। १८११ ई. में मद्रास एजेंसीजिहाके बंद करके मैसूरमें मैसूर-मिलन नीतीकी कुछ किया और १८१२ ई. में डिम्बके एक अजीबोकी सङ्कल्प बलिष्ठ सन्त में बोध लिया। १८१३ ई. में बम्बईका सन्त सीक-काता काका-नम बापी हुआ जिसमें बम्बईकी एक व्यापारके सन्तमें मद्रास काका-नम करनेकी ही काका मिली। काका-नमसन्तमें कुछ मद्रासपूर्व परि कर्म की दिने नये सन्त मैसूर-मिलनकी नीतिकमें सन्त सन्तकी

वृद्धि । इस पदपर मैकालेकी नियुक्ति हुई । साथ ही पार्लियामेण्टने यह घोषणा भी की कि भारतका कोई निवासी अथवा ब्रिटिश सम्राटकी कोई प्रजा अपने धर्म, जन्म भूमि, वंश या रंगके कारण किसी सरकारी पद या नौकरीमें वचित नहीं की जायेगा ।

११ सर चार्ल्स मेटर्कोफ़ (१८३५-३६ ई०) ने प्रेस-एक्ट-द्वारा समाचार पत्रोंको स्वतन्त्रता प्रदान की ।

१२ लार्ड ऑकलैण्ड (१८३६-४२ ई०) के समयमें प्रथम अफ़ग़ान युद्ध हुआ । इस युद्धका उद्देश्य रणजीतसिंहको सहायतासे काबुलके स्वाधीन शासक दोस्तमुहम्मदको, जिसपर अंगरेजोंको अपना विरोधी होनेका सन्देह था, पदच्युत करके शाहशुजाको अफ़ग़ानिस्तानका अमीर बनाना था । अंगरेजी सेनाने सिन्धके मार्गसे अफ़ग़ानिस्तानमें १८३९ ई० में प्रवेश किया । इस युद्धमें अंगरेज बुरी तरह पराजित हुए । १८४२ ई० में जब पराजित अंगरेजी सेना सिन्ध करके वापस लौट रही थी तो अफ़ग़ानोंने उसे काट डाला और १६००० सैनिकोंमें से केवल एक उस दुःस्वप्न घटनाका वर्णन करनेके लिए जीवित बचकर आ पाया । ऑकलैण्डको बड़ी निन्दा हुई और वह वापस इंग्लैण्ड बुला लिया गया ।

१३ लार्ड एड्विनबरा (१८४२-४४ ई०) ने अफ़ग़ान युद्धको समाप्त कर दिया । उसने पिछली हारका कुछ प्रतीकार करके वादवाही छूटी । दोस्तमुहम्मद ही काबुलका बादशाह फिर बन बैठा । ऑकलैण्डने सिन्धके अमीरोंके साथ सन्धि करके उन्हें रेजाडेण्ट रखनेपर विवश किया था और उनपर वार्षिक कर भी लाद दिया था । १८४३ ई० में अमीरोंपर कुछ झूठे दोषारोपण करके युद्ध छेड़ दिया गया और मियानीके युद्धमें उन्हें पराजित करके समस्त सिन्ध प्रान्त अंगरेजी राज्यमें मिला लिया गया । इस अन्यायपूर्ण कार्यकी स्वयं इंग्लैण्डकी पार्लियामेण्टने निन्दा की किन्तु उसे उलटा नहीं क्योंकि उससे अंगरेजोंको भारी व्यापारिक और राजनैतिक लाभ जो हुआ था । खालियरमें उत्तराधिकारका प्रश्न उठा,

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी, लूट

१८५२ ई० में अंगरेज व्यापारियोंके हितोंकी रक्षा करनेके बहाने ब्रह्माके साथ युद्ध छेड़ा गया और राजाको पराजित करके तथा सहायक सन्धिमें बाँधकर सम्पूर्ण दक्षिणी ब्रह्माको अंगरेजी राज्यमें मिला लिया गया। अब बंगालकी खाड़ीका सम्पूर्ण समुद्र तट, कुमारो अन्तरीपसे मलाया प्रायद्वीप पर्यन्त अंगरेजोंके अधिकारमें था।

डलहौजी एक कट्टर साम्राज्यवादी था, निर्बल देशी राज्योंके साथ उसकी कोई सहानुभूति नहीं थी। वह उनके अस्तित्वको बनाये रखनेका विरोधी था। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि ब्रिटिश शासन इस देशकी जनताके लिए परम लाभदायक है, चाहे वे उसे पसन्द करें या न करें। अतः उसने देशी राज्योंका अन्त करके उन्हें अंगरेजी राज्यमें मिलानेकी एक नयी योजना बनायी जिसके अनुसार किसी राजाकी औरस पुत्रके अभावमें मृत्यु होनेपर उसका राज्य समाप्त कर दिया जाता था। इस समय अंगरेजोंके आधिपत्यमें अवस्थित देशी राज्योंको उसने तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया। प्रथम वे नेपाल आदि स्वतन्त्र राज्य थे जिनमें भारतकी अंगरेज सरकार राजाकी मृत्युपर उपयुक्त उत्तराधिकारीको गद्दीपर बैठाती थी, दूसरे वे राजपूत मराठा आदि राज्य थे जिन्होंने मुगल सम्राट् या पेशवाके स्यानमें अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। और तीसरे वे राज्य थे जिन्हें अंगरेजोंने ही बनाया या विजय किया था। इस तीसरी श्रेणीके राजाओंको तो उसने दत्तकपुत्र लेनेके अधिकारसे भी वंचित कर दिया। अब भीतर बाहर किसीके भी विरोधकी कुछ परवा न करके उसने जितना बना इन राज्योंका अन्त करना शुरू किया। सबसेप्रथम नागपुरके भोंसला राज्यका अन्त और उसकी लूट हुई। १८४८ ई० में सतारा राज्यका अन्त हुआ, तदनन्तर उड़ीसाके सम्मलपुर, बाघट, उदयपुर आदि राज्याका अन्त किया गया। १८५३ ई० में झाँसीकी रानीके दत्तकपुत्रको अमाय किया। पेशवा बाजीराव, द्वितीयकी मृत्युपर उसके दत्तकपुत्र नानाको भी अमान्य किया और उसकी पेन्शन बन्द कर

ऐसा महान् विद्रोह था जिसमें अंगरेजोंके तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रान्त, अवध, बिहार, बुन्देलखण्ड और मध्यभारतकी जनता, अंगरेजों सेनाकी विभिन्न छावनियोंके भारतीय सैनिक, अनेक देशी राजे, नवाब, जमींदार, तालुकेदार आदि सम्मिलित थे। अंगरेजोंको देशसे निकाल बाहर करनेके लिए एक बार तो हिन्दू और मुसलमान भी मिलकर एक हो गये थे। यूरोपमें उस समय क्रीमियाका युद्ध छिडा था और इंग्लैण्डकी शक्ति उसमें लगी हुई थी। भारतके जो अनगिनत देशी राजे नवाब खुले रूपसे इस विद्राहमें सम्मिलित नहीं हो हुए थे उनमें-से भी अनेकोंकी विद्रोहियोंके प्रति सहानुभूति थी।

मुसलमानोंको उत्तेजित करनेके लिए अवधके साथ किये गये अन्याय-का तथा दिल्लीके बादशाहको उसका साम्राज्याधिकार वापस दिलानेका नारा था और हिन्दुओंको उत्तेजित करनेके लिए पेशवाके दत्तकपुत्र धुंधुपन्त नानाक पेशवा साम्राज्यकी स्थापनाका नारा था। हिन्दू मुसलमान जनसाधारणमें अंगरेजों और उनके शासन-द्वारा लोगोंके धर्म-कर्मको नष्ट किये जानेका प्रचार था। रेल, तार, डाक, अस्पताल, स्कूल आदिकी स्थापना तथा सती आदिकी प्रथाओंकी बन्दो उदाहरणमें प्रस्तुत किये जाते थे। सैनिकोंमें नयी क्लिस्मकी बन्दूकों और उनकी मुंहसे खोली जानेवाली कार-तूसोंमें धर्म भ्रष्ट होनेकी बात, गोरे सैनिकोंका प्रभुत्व एव अधिकाराधिकार आदि उन्हें भड़कानेके लिए पर्याप्त थे। छावनियोंमें रक्त कमल और ग्रामोंमें चपातियोंक वितरण-द्वारा विद्रोही आन्दोलनका प्रचार किया गया।

रविवार १० मई १८५७ ई० को मेरठकी अंगरेज सैनिक छावनियोंमें इस विद्रोहका प्रथम विस्फोट हुआ और दावानलकी नाइ यह आग शीघ्र ही एक जिलेसे दूसरे जिलेमें द्रुतवेगसे फैलने लगी। मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, झांसी, रुहेलखण्ड, बुन्देलखण्ड, बिहार आदि अनेक स्थानोंमें जेलोंको तोडा गया और सेनाओंके गोरे अधिकारियोंका ही नहीं जहाँ जिस अंगरेजको देखा उसका सफाया कर दिया गया। नाना साहिब, वात्याटोपे,

साँचीकी राजी कदवीबाई विहारके जमींदार हुँकरहित् बौद्धकी मठपरबद्ध
 कैम इतरवमदम बाबसाह बड़ापुनधाइ जादि पितिस बनेसोंमें विरोधिनी-
 के बगदा से ।

[illegible]

इस बार भी पिछड़ी जनजातोंकी वरतार पुनः, जलज्वर एवं स्थाई
पछाड़ जनकी सेवाओंमें हीनजनम जनता पिछड़ा जन जनक
जनविपक्ष दुर्घटों और कुटुंबोंका कार्य करता है इस जनता जनताकी
निष्पक्षताके कारण हुए : वेदम राष्ट्रीयता एवं हनुमानका नाम जनक
जन ही नहीं हुआ था : पिछड़ोंका नाम केवलसे रात्री जनता जनता
जाति नहीं थीन वे जिनकी हीनताके नाम जनविपक्ष जनता की और
जिनकी हनुमाने जनके राज जनविपक्ष, नर नर जनने विपक्ष कर दिया
था : इस भीषणकी पुनः जातिके लिए जनने-जनने निजी स्थायिक कारण
वे जन नर वे हीनताके जनताके जनविपक्ष जनने वरतार जन निजी
जनने की जनता, भीषण जनता या जनता ऐन नर था : जनता और
हीनता जनता जनविपक्षी है, नर नर जनता जनता की और जनताके
निष्पक्ष ही जनने जनने न नरता जनता करके जनता जनता जनता

पूर्ण अधिकार जमा पाया था और उसके फलस्वरूप अनुमानातीत विविध लाभ उठाया था। वह इस मोनेकी चिड़ियाको सहज ही अपने हाथसे निकल जाने न दे सकते थे। अधिकांश भारतीय नरेशोंने विद्रोहमें भाग नहीं लिया वरन् वे अंगरेजोंके ही महायक रहे। बंगाल उड़ीसा, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, सिन्ध, पंजाब आदि प्रान्त विद्रोहके प्रभावसे प्रायः अछूते ही बचे रहे। अपने मित्र और गोरखे नैनिकोंकी अंगरेजोंको पूर्ण स्वामिभक्ति प्राप्त थी और इन्हींकी सहायतासे उन्होंने उनके देश-भाइयोंका दमन किया।

इस प्रकार यह महान् क्रान्ति विफल हुई और फलस्वरूप अब सम्पूर्ण देशपर अंगरेजोंकी सत्ता और अधिक दृढ़ एवं स्थायी हो गयी। इंग्लैण्डकी सरकारने भारतका राज्य कम्पनीके हाथोंसे छीनकर अपने अधिकारमें ले लिया, और वह अब इंग्लैण्डकी महारानी विक्टोरियाका भारतीय साम्राज्य कहलाया। लार्ड कैनिंग अब कम्पनीकी ओरसे नियुक्त उसका गवर्नर-जनरल नामक कर्मचारी न रहकर इंग्लैण्डकी महारानीका प्रतिनिधि शासक, भारतका वायसराय कहलाया। इंग्लैण्डके मन्त्रिमण्डलका एक मन्त्री भारत-सचिव हुआ जो अपने लन्दनस्थ भारत-कार्यालयके द्वारा इंग्लैण्डकी सरकारके निर्देशनमें भारतका शासन-संचालन वायसराय आदि भारतमें नियुक्त अधिकारी वगैरे कराने लगा। इलाहाबादमें १ नवम्बर १८५८ ई० को दरबार करके वायसराय कैनिंगने उपरोक्त व्यवस्थाको कार्यान्वित किया और महारानी विक्टोरियाका घोषणापत्र पढ़कर सुनाया जिसमें यह विश्वास दिलाया गया था कि कम्पनी और देशी नरेशोंके बीच की गयी समस्त सन्धियों एवं प्रतिज्ञाओंका पालन किया जायेगा, देशी नरेशोंको गोद लेनेका अधिकार प्रदान किया जाता है, सरकारी नौकरियोंका द्वार सबके लिए खुला है, जाति वर्ण या धर्म उसमें बाधक न होंगे, जनताके घामिक मामलोंमें सरकार किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करेगी, और जिन लोगोंने विद्रोह-कालमें अंगरेजोंकी हत्या करने-जैसा महान् अपराध नहीं

किन्तु उनका यह दम्भ भी एक प्रकारसे ठीक ही था । उसके लिए भारत-वासी स्वयं ही जिम्मेदार थे, अपने स्वयंके दोषों एवं त्रुटियोंके कारण ही वे स्वयं गुलाम बने थे । देशका दुर्भाग्य भी था कि अनेक दीर्घकालीन ऐतिहासिक परिस्थितियोंने देशको उस कालमें वैसी विपन्न स्थितिमें ला डाला था और कोई ऐसा तेजस्वी प्रतिभाशाली वीर या वर्ग उस समय उत्पन्न न हुआ जो देशको उस अन्ध-कूपसे उद्धारता । किसीको ठगनेमें ठग-का जितना दोष है उतना स्वयं ठगे जानेवालेका भी है । तथापि इसमें शदेह नहीं कि भारतके इतिहासमें सबसे बड़े विदेशी लुटेरे अंगरेज ही सिद्ध हुए और उनके द्वारा भारतकी महान्, दीर्घकालीन एवं व्यवस्थित सभ्यता का सम्पूर्ण सम्य विश्वके इतिहासमें दूसरा उदाहरण नहीं है ।

किया था उन्हें कहा किया गया ।

कस्तूरः भारतमें ओरोचने शारङ्गदे ही करने-द्वारा ब्रह्मिष्ठ प्रेमी बनवा बसौल्लभ राज्योंकी कलाके बार्मिक मानकीमें लक्ष्मी हस्तसे न करतही बोलिही ही बरवा था । वे हिन्दू, वैद, तिब्बत मुनकपुन राजकी भावि कही प्रबलित बनके हाथ ब्रह्मिष्ठ एवं बनवहीं रहे थे । ईश्वर एवं बनव्य कला राजवर्ग था बन कवनो कला ही प्रोत्साहन दिया और बनवा व्यवस्थित प्रचार बाहु कराया । तथापि बर्बरप्रचार बनवा कोई प्रबुध करेन न था । राजनीतिक कलाधारी एवं बार्मिक योगकी ही उन्हें बरवाद्य न था कस्तूरः बार्मिक कलाधारमें वे प्रबुध न हुए । वे यह भी जानते थे कि यदि वे ऐसा करनेका प्रयत्न करेंगे तो उनके मूल राजनीतिक एवं बार्मिक ब्रह्मिष्ठकी सिद्धिमें बाधे बाधा बनेगी सम्भाव्य है ।

इस प्रकार बनवे इस देशमें मानकीके उपरान्त प्रबल देश-की कर्म करने कल मुरोरीय ब्रह्मिष्ठिनीकी कुचकीके काम-ही-काम कर्मोंमें इस मन्त्रकेके व्यापारपर पूर्व स्वाधिकार स्थापित कर लिया । वह व्यापारके कलाके विचारपर पहुँचा दिया और बहने कर्मों केद्वारे एवं कलाके दिष्ट-कारी बौद्धिक व्यापारिक एवं बार्मिक कर्मों कला कर दी । कर्मों की कर्मोंमें कर्म-कर्म दिन्तु कर्मोंके ताव कर्मोंमें बहने दिन्तुप्रबुध कर्मों एवं कलाके कर्मों कर्मों कर्मों शारङ्गवर्ग बहने कीकला एवं कलाके प्रेमी-ब्रह्मिष्ठ बनवा कलाके व्यापार स्थापित कर लिया और बहने हाथ बनवे देश कला और प्रबुधकी कलाकी बहने बही एवं कर्मों अधिक प्रबुध बलिष्ठ बना दिया । इन कर्मोंमें कर्मों केद्वारे और राजनीतिक एवं वैदिक कलाका बरपुर व्यापार कलाके बह कलाकी कर्मों दिष्टके दिष्ट और बार्मिक प्रोत्साहित किया और फिर इन कलाके कीकला प्रचारित करनेमें वे कर्मों हुए कि इन का प्रोत्साहन कलाके इन लिक्षित पविष्ठ कलाके एवं कलाके हुए कलाके बार्मिकीके केद्वारे कला करके कलाके बर्धन कर रहे हैं और कर्मों कुचकित कुचक कुचक एवं प्रबुध कलाकेके कलाके प्रयत्न कर रहे हैं ।

किन्तु उनका यह दम्भ भी एक प्रकारसे ठीक ही था । उसके लिए भारत-वासी स्वयं ही जिम्मेदार थे, अपने स्वयंके दोषों एवं ग़ुटियोंके कारण ही वे स्वयं गुलाम बन थे । देशका दुर्भाग्य भी था कि अनेक दीर्घकालीन ऐतिहासिक परिस्थितियोंने देशको उस कालमें वैसी विपन्न स्थितिमें ला डाला था और कोई ऐसा तेजस्वी प्रतिभाशाली वीर या धर्म उस समय उत्पन्न न हुआ जो देशको उस अधःपूर से उबारता । किसीको ठगनेमें ठग-का जितना दोष है उतना स्वयं ठगे जानेवालेका भी है । तथापि इसमें सन्देह नहीं कि भारतके इतिहासमें सबसे बड़े विदेशी लुटेरे औरेज ही सिद्ध हुए और उनके द्वारा भारतको महान्, दीर्घकालीन एवं व्ययस्थित लूटका सम्पूर्ण सम्पन्न विश्वके इतिहासमें दूसरा उदाहरण नहीं है ।



जातिके हित-संरक्षणको पूर्ण प्राथमिकता थी। १८०० तक भारतवर्षका प्रशासन एवं उन्नति अंगरेज जातिके अपने किसी भी प्रकारके उत्कृष्ट साधक या उसे उत्पन्न बनाया गया। यदि उससे भारतीयोंको उन्नति होती है तो यह और भी अच्छा। किन्तु जहाँ और जिस रूपमें भारतको इस उन्नतिसे स्वयं अंगरेजोंके अपने उत्कृष्टमें बाधा होनेको सम्भावना होती वहीं उसपर रोक और नियन्त्रण लगा दिये जाते। इंग्लैण्डके हितके सम्मुख भारतका हित सदैव गौण रहा।

प्रारम्भमें जो अंगरेज भारतमें आते रहे वे प्रायः छोटे घरोंके अशिक्षित, अवारा, लोभी, धूर्त एवं चरित्रहीन होते थे। व्यक्तिगत व्यापार और लूट लूट-द्वारा जल्दी ही धनी बनकर स्वदेश लौट जानेपर उनकी दृष्टि रहता थी। किन्तु १८वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें बंगाल और कर्णाटकमें राज्य-सत्ता हाथमें आनेपर तथा सद्गुणान् द्रुतवेगसे भारतके विभिन्न भागोंमें अंगरेजों की सत्ताके प्रसारके कारण उक्त वर्गके लोगोंका अनुपात धीरे-धीरे घटने लगा और अच्छे घरोंके सम्पन्न सुशिक्षित अंगरेज भी अब आने लगे तथा उनकी संख्या शनैः शनैः बढ़ने लगी। ईसाई पादरी भी बहुसंख्यामें आने लगे जिनका प्रधान उद्देश्य यद्यपि धर्मप्रचार और अधिकसे अधिक संस्थानोंमें भारतीयोंको ईसाई बना डालनेका था किन्तु साथ ही उनमेंसे अनेक सुशिक्षित, परोपकारी वृत्तिके तथा दयालु भी होते थे। १९वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें बंगाल, मद्रास, बम्बई आदि जिन प्रान्तोंपर अंगरेजों की सत्ताकी स्थापित हुए चालीस पचास वर्ष बीत चुके थे और फलस्वरूप जहाँ अंगरेजोंने अपना प्रशासन बहुत कुछ व्यवस्थित कर लिया था वहाँ शान्ति स्थापित कर ली थी वहाँके भारतीय भी शासनके विभिन्न विभागोंमें कार्य करने लगे थे और अंगरेजोंके सम्पर्कसे पाश्चात्य आचार-विचारों और मन्मतासे परिचित हो गये थे। उनमेंसे अनेक अंगरेजों की भी सीख चुके थे और सीख रहे थे और अब वे जातीय सुधारकी अवसर होने लगे थे। बंगालके राजा राममोहनराय, महर्षि देवेन्द्रनाथ

हुआ, देशके अनेक प्रदेशोंका सर्वे हुआ तथा अनेक स्थानोंमें गजेटियरीका निर्माण हुआ और भारत तथा भारतीयताके अध्ययनकी प्रभूत प्रगति हुई । कर्नल टॉडका प्रसिद्ध राजस्थान, कर्नल मेकेंजीका लेख संग्रह तथा एल्फिन्स्टन आदिके इतिहास ग्रन्थ लिखे गये । स्वयं अंगरेज अधिकारियोंका ही एक दल ऐसा था जो भारतीयोंकी शिक्षाका माध्यम संस्कृत आदि प्राच्य भाषाओंको बनानेके पक्षमें था । मैकालेके तीव्र विरोधके कारण ही उनकी बात न चली । उपरोक्त समस्त प्रयत्न व्यक्तिगत थे तथापि उन्होंने भारतीय साहित्य, संस्कृति और इतिहासके आधुनिक अध्ययनकी सुदृढ़ नींव जमा दी और इस प्रकार इस देशका सर्वमहान् उपकार किया । इन दर्जनों उदार मनीषी, विद्या-व्यसनी अंगरेज महानुभावोंने ही अपने कार्यों एवं कृतियोंके द्वारा भावी पीढ़ियोंके भारतीय विद्वानोंका तो पथ प्रदर्शन किया ही इस देशके निवासियोंमें घर कर जानेवाले होनताके भावोंको धन-धन दूर होनेमें भी भारी सहायता दी ।

इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण देशको एक केन्द्रीय शासन-सूत्रमें बाँधकर, रेल, डाक, तार आदिकी व्यवस्था करके तथा सड़कों आदिका निर्माण, मार्गोंकी सुरक्षा और शान्तिकी स्थापना-द्वारा अंगरेजी शासनने देशमें एक-सूत्रता एवं एकजातीयताके भावको प्रोत्साहन दिया, जाति, वर्ग एवं प्रान्तीयताके भावोंको शिथिल किया, और 'देशके चाहे जिस कानेमें रहते हो हम सब भारतवासी ही हैं' इस भावको उत्तरोत्तर पुष्ट किया । अंगरेजोंने ज्ञान-वृक्षकर भले ही इन प्रभूति प्रवृत्तियोंका पोषण न करना चाहा हो किन्तु उनके कार्योंसे इन परिणामोंका लक्ष्य या अलक्ष्य रूपमें स्थभावत प्रकट होना अनिवार्य था ।

इस प्रकार अंगरेजोंने देशकी भोषण लूट एवं शोषणके तथा उसे पराधीनताकी वेढियोंमें जकड़ लेनेके दावजूद जाने या अनजाने इस देश और जातिके पुनरुत्थानके बीज भी बो दिये । १८५८ ई० के उपरान्त देशकी आन्तरिक शान्ति, उत्तम शासन व्यवस्था और शिक्षा-प्रसार तथा एक

अपेक्षके विवाहियोंका सुदृढ प्रीतिके साथ बहुत कुछ मिलकर समाधान एवं समर्थ देखो कल्पुरे की जिन्होंने देखने एक बचीय कल्पुति लुप्तता केन्द्र और कर्मयोगकी प्रवर्तिका और बुद्धिमे दृष्ट कर दी । निष्कलम समय करके और सम्पूर्ण देखको अपने सुदृढ पंजीमें पूरी तरह करकर सब अंगरेज यह समझ गये थे कि जब तो इस देश और बाह्यितर दुमाटी पूर्ण बसा स्थायित्व और प्रकृत्य करके केन्द्र स्थानी और अवर हो गया है । ज्ञान कभीके ही उनके देखते-ही-देखते देश और बाह्यिके पुनरुत्थानका भी आरम्भ हो गया । ज्ञाने वर्ष की व बीतने जाने कि कहीं इस देशको स्वतन्त्र करने और कर्मका छोड़कर सबे जानेकर बाध्य होना पड़ा । ज्ञाने वर्षकी अवधि की कुछ छोटी नहीं है, किन्तु देशका उनके पूर्णके उद-बीत बहिरक बचीका कर्म-प्रकारका कलम तथा कल्पक सब एवं बाधक-अपार अंगरेज बाह्यिक समाधान की की सब एक इस प्रकार बसपेतर अधिकधिक कदा कभीकाय बाह्यिकार, धातु और निष्कलम की कुछ कम नहीं था ।

१८५७-१९४७ ई के इस काले वर्षमें बीस अंगरेज वायव्यमें विदेशकी सरकारके प्रतिनिधित्वमें इस देशका अन्तः-समाधान किया—
 जार्ज कैनिंग (१८५८-५९ ई) जार्ज एडिंस प्रवर (१८५९-५९ ई) हर बांस कोलिंग (१८५४-५९ ई) जार्ज बेनी (१८५९-७२ ई) जार्ज मार्चहुक (१८७९-७९ ई), जार्ज किंग (१८७९-८० ई), जार्ज रिग (१८८०-८४ ई) जार्ज जर्जिंग (१८८४-८८ ई), जार्ज कैन्टमैन (१८८८-९४ ई) जार्ज एडिंस प्रिटीम (१८९४-९९ ई) जार्ज फर्गन (१८९९-१९५९ ई) जार्ज मिटो (१९५९-६९ ई) जार्ज हार्डिंग (१९६०-६९ ई) जार्ज वेम्प-कोर्ब (१९६९-७९ ई) जार्ज टैडिंग (१९७९-८९ ई) जार्ज हर्बिस (१९८९-९९ ई) जार्ज रिजिम्बल (१९९९-२९ ई), जार्ज मिन्डिन्गो (१९९९-४९), जार्ज वेरल (१९४९-४७ ई) और जार्ज वायव्यवेरल (१९४७ ई) ।

इस नब्बे वर्षके ब्रिटिश शासनकी प्रधान विशेषताएँ वैदेशिक नीति, आन्तरिक शासनका वैधानिक विकास, देशकी धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति, राष्ट्रीयताका विकास और स्वातन्त्र्य सघर्ष हैं जिनमें उक्त शासनकी कतिपय सुदेन और कुदेन दोनों सम्मिलित हैं।

वैदेशिक नीति—इस कालमें भारतीय शासनकी वैदेशिक नीति ब्रिटिश साम्राज्यकी वैदेशिक नीतिका ही अंग थी। भारतीय साम्राज्यकी सुरक्षाके लिए उसके सीमान्त प्रदेशोंको निष्क्रिय करना तथा उनके उस पार स्थित पड़ोसी स्वतंत्र राज्योंको अपने प्रभावमें रखकर उन्हें 'घक्का सम्हाल' राज्य बना देना, तथा ब्रिटेनके शत्रुओंको कुचलनेमें अपनी पूरी शक्ति लगा देना ही भारतकी विदेशी नीति थी।

१८६३ ई० में लार्ड एलिंगन प्रथमने सीमान्तके पठानोंका दमन करनेका प्रयत्न किया और भूटान नरेशके साथ भी एक सन्धि की। १८६५ ई० में लॉरेन्सने उस सन्धिको अमान्य किया और भूटानियोंको पराजित करके अपना करद घनाया।

दोस्तमुहम्मदकी मृत्युके उपरान्त १८६३-६८ ई० में अफगानिस्तानमें उत्तराधिकारके प्रश्नपर गृह-युद्ध चलता रहा। इस प्रसंगमें वायसराय लॉरेन्सने 'वर्तमान राजाके प्रति मित्रभाव रखने और उसके राज्यके अन्न-फलहमें कतई हस्तक्षेप न करनेकी' नीति बरती। रूस मध्य-एशियामें अफगानिस्तानकी ओर बढ़ता आ रहा था और भारतके लिए एक खतरा था, किन्तु लॉरेन्सने युद्ध मोल लेना ठीक न समझा। उसके उत्तराधिकारी मेयोने भी इसी नीतिका अनुसरण किया। अफगानिस्तानका अमीर शेरअली १८६७ ई० में स्वयं भारत आकर अम्बालेमें वायसरायसे मिला और विविध प्रकारकी सहायताकी याचना की। वायसरायने उसका बड़ा शिष्टाचार और आश्वासन की किन्तु सहायताका कोई स्पष्ट वचन नहीं दिया। फिर भी अमीर उसकी मित्रता, सौजन्य और शक्तिसे प्रभावित एवं सन्तुष्ट होकर लौट गया। रूसके साथ भी एक सन्धि की गयी जिसके अनुसार रूसी

इसी बीचमें पूर्वकी दिशामें ब्रह्मा राज्यके द्वारसे भारतपर फ्रांसीसियोंके आक्रमणका भय बना हुआ था। ब्रह्माका राजा मिण्डोन (१८५२-७८ ई०) बड़ा चतुर था, उसने अंगरेजोंके साथ भी मित्रता बनाये रखी और फ्रांसके साथ भी सम्बन्ध रखा। किन्तु उसका युवक पुत्र और उत्तराधिकारी थोड़ा मूर्ख, अयोग्य और अनुभवहीन था। उसपर फ्रांसीसियोंके साथ मित्रताके करनेका दाय लगकर भारत सरकारने युद्ध छेड़ दिया और उसके राज्यका अन्त करके उसे १८८६ ई० में अंगरेजी राज्यमें मिला लिया।

लार्ड कर्जनने १९०७ ई० में एक अंगरेज रूसी मन्त्रिके अनुसार ईरान देशको भी दो प्रभावक्षेत्रोंमें बाँटकर दक्षिणी ईरान और फारसको शाहोपर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। तिब्बत देशपर भी जो नाममात्रके लिए चीनके आधिपत्यमें था रूस और भारत-सरकार दोनों ही अपना प्रभाव स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे थे। इस सम्बन्धमें भी १९०७ ई० में अंगरेजों और रूसियोंमें यह तय हो गया कि वे दोनों ही चीनके जरिये तिब्बतसे सम्बन्ध रखेंगे और उसके किसी भी प्रदेशपर कभी भी अधिकार न करेंगे।

१९१० ई० में अफ़ग़ानिस्तानक अमीर हबीबुल्लाका वध कर दिया गया और उसका पुत्र अमानुल्ला अमीर बना। १९१९ ई० में उसने ब्रिटिश प्रदेशपर आक्रमण कर दिया और सीसरा अफ़ग़ान युद्ध छिड़ गया तथा शीघ्र ही समाप्त भी हो गया। अफ़ग़ानिस्तान अब सर्वथा स्वतन्त्र और अंगरेजोंके नियन्त्रणसे मुक्त राज्य हो गया। १९२९ ई० के उपरान्त होनेवाली उसकी राज्य क्रांतियाँ और गृह-युद्धोंमें भारत-सरकारने कोई हस्तक्षेप नहीं किया और पुनः शान्ति स्थापित होनेपर नादिरशाहको अमीर मान्य कर लिया।

इसी बीचमें १९१४-१८ ई० के प्रथम विश्वयुद्धमें भारत सरकारकी पूर्ण शक्ति अंगरेजोंकी ओरसे जर्मनीके विरुद्ध प्रयुक्त हुई। जनतासे युद्ध-

कन्हा हथहा किया क्या । भारतीय सैनिक आखीरों में बर्बाद, पैनीपोटाईया आदि गुरुर विरोधोंमें आकर बीरतापूर्ण बने । भारतमें कलर में बरेल और उनके विष-पट्ट बर घातुओंमें निजरी हुए । मुझमें भारतमें बर-बर्बादी भी बरि हुई और मुझमें परिभाषित-पर भारतमें भी आधिक बर-बर्बाद बरि बने । भारतमें ही बर-बर्बाद । इसी कारण १९१९-२० ई के द्वितीय विश्वयुद्धमें भारतमें बर-बर्बाद बरि मुझमें भी बरि अधिक विनाश हुआ और इस बार भी भारतमें बर-बर्बाद बरि करके भारतमें बर-बर्बाद और उनके विष-पट्टोंमें निजक-प्राप्तिमें बर-बर्बाद बरि हुआ ।

[illegible]

कार्यवाही के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यवाही के अन्तर्गत

वनरोंके अधीन प्रान्तोंमें विभाजित था। प्रत्येक प्रान्त कमिश्नरोंके अधीन कमिश्नरियोंमें, प्रत्येक कमिश्नरी कलक्टरोंके अधीन जिलोंमें, प्रत्येक जिला तहसीलदारोंके अधीन तहसीलोंमें, प्रत्येक तहसील परगनोंमें और परगने गांवों या महालोंमें विभाजित थे। सेना, पुलिस, जेल, डाक-तार, शिक्षा, व्यापार, वित्त, पब्लिक वर्क्स आदि विभिन्न सरकारोंके विभाग प्रान्तीय एवं केन्द्रीय आधारोंपर संगठित हुए। अदालतोंमें वादो-प्रतिवादी या अभियुक्तोंको सहायताके लिए वकील मुख्तारोंकी प्रथा प्रचलित हुई। १८६१ ई० में इण्डिया कौन्सिल ऐक्ट पास हुआ जिसके अनुसार वायसरायकी सहायताके लिए एक कार्यकारिणी समिति तथा एक व्यवस्थापिका समिति बनायी गयी। कार्यकारिणीमें स्वयं वायसराय, जिसके अधिकारमें परराष्ट्रनीति भी थी, सेनाके शासनके लिए सेनापति, शान्ति-रक्षा तथा आन्तरिक शासन आदिके लिए गृहसदस्य, वैक, करेन्सी, ऋण, व्यय, टेक्स आदिके लिए अर्थ-सदस्य, कानूनके लिए न्याय-सदस्य, धाणिज्य, बन्दरगाह, जहाज, रेल आदिके लिए व्यापार सदस्य, शिक्षा-स्वास्थ्य आदिके लिए शिक्षा-सदस्य, तथा उद्योग एवं श्रमके लिए एक अन्य सदस्य सम्मिलित थे। कानून बनानेके लिए ६ से १२ सदस्योंकी एक परामर्श-दायी व्यवस्थापिका समिति बनी जिनमें आधोंका गैर-सरकारी होना आवश्यक था। पटियाला और काशीके नरेश तथा खालियरके दीवान दिनकरराव इस समितिमें मनानीत किये गये। बम्बई, मद्रास और बंगाल प्रान्तोंकी कौन्सिलोंकी भी कानून बनानेका अधिकार मिला। व्यवस्थापिका-द्वारा बनाये गये अधिनियमोंपर वायसरायको विटोका अधिकार था, छह मासके लिए वह स्वयं भी कोई आर्डिनेन्स जारी कर सकता था।

उपरोक्त आधारोंपर भारतके आन्तरिक शासनका विस्तार और वैधानिक विकास उत्तरोत्तर होता गया। १८७१ ई० में प्रथम बार लार्ड मेयोने भारतकी जन-संख्या गणना करानेकी योजना की किन्तु पूरी गणना १८८१ ई० में हुई। इसी वायसरायने १८७० ई० में म्युनिसिपल ऐक्टों-

हाल कार्ती बोके करने-बाने जवाबदे स्याहीर उदाहरने भाष केनेके करे कारकी सहीकार दिया । बी सी १८८३ ई के हा कमकम भाष कीर बानाईके कर सिल्ल दूत कम बवानेने खुदबिदईकरेकी स्याहीर ही बनी थी किन्तु उनके को बोकेके बानाव होने के से कर ही करिबदईकी-हाल करीनीर होने के कीर बनार ही बिचरे के । अब अब कर स्याहीर कावके बिदालकी सहीकार दिया गया । १८८३-८४ ई के स्याहीरिल्ले दूत कीनीकी कीर करिक अवकास कीर सिद्धार दिया । करिक बवानेने कर स्याहीरई स्याहीर हुई उनके करिकार के कीर उनके बानाव काव बनका-हाल बिचोवन होने के । देहली करीने की स्याहीर कम दिया कीनीकी स्याहीर हुई ।

१८९२ ई. में हुए इस सम्मेलन के निम्न दो मुख्य बातें हैं। पहली बात यह कि इस सम्मेलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम से ही सम्मेलन में भाग लिया था। दूसरी बात यह कि इस सम्मेलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम से ही सम्मेलन में भाग लिया था।

[illegible]

सर अधिक सहयोग प्राप्त करते जानेकी है जिससे कि वे दाने-शमै, स्वायत्त-शामनका विकास करके ब्रिटिश साम्राज्यके एक अभिन्न अंगके रूपमें अपने देशमें भी उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकें।"

कलम्बुरूप माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ट सुधार प्रस्तुत हुए जिनके आधारपर १९१९ ई० का गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया ऐक्ट पास हुआ। इसके अनुसार भारत-सचिवकी इण्डिया कोमिशनमें भारतीय सदस्योंकी संख्या बढ़ायी गयी, वायसरायकी कार्यकारिणीमें भी सदस्य वृद्धि हुई, उसकी व्यवस्थापिका समितिकी कौन्सिल ऑफ़ स्टेट्स तथा लेजिस्लेटिव एमम्बल्स नामक दो सदनोंमें विभक्त कर दिया गया जिनकी सदस्य-संख्या क्रमशः ६० और १४४ नियत हुई। उनकी अधिकार-वृद्धि भी हुई और निर्वाचन-क्षेत्र विस्तृत हुआ। प्रान्तोंमें द्वैध शासन स्थापित हुआ, सरक्षित विषयोंपर गवर्नर और उसकी कार्यकारिणीया पूर्ण अधिकार था और हस्तान्तरित विषयोंपर प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कोमिशनके जाता द्वारा निर्वाचित सदस्योंमेंसे नियुक्त किये जानेवाले मन्त्रियोंका। विभिन्न जातियोंके प्रतिनिधित्व, प्रत्यक्ष निर्वाचन और मताधिकार-विस्तारकी भी प्रश्रय दिया गया। म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, टाउन एरिया कमेटी आदिके अधिकारोंमें भी वृद्धि हुई और इन संस्थाओंकी प्रान्तीय मन्त्रियोंके अधीन किया गया। नगरोंकी उन्नतिके लिए इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट स्थापित हुए। ग्राम-पञ्चायतोंके संगठनका सिलसिला १९०९ ई० के डोसन्ट्रेलाइजेशन कमिशन (विकेन्द्रीकरण आयोग) की सिफारिशोंसे ही शुरू हो गया था, अब १९२२ ई० से स्थानीय अधिनियमोंद्वारा उनका उत्तरप्रदेश आदिमें व्यवस्थित संगठन प्रारम्भ हुआ। सर जान साइमनने भारतका दौरा करने तथा विभिन्न दलोंके नेताओंके विचार जान लेनेके उपरान्त सन् १९३० ई० में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, सदनन्तर १९३०-३२ ई० में लन्दनमें तीन गार्लमेज कांफ़रेंसें हुई जिनमें भारतीय नेताओंके साथ ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने भाग-

भारतका प्रथम गवर्नर जनरल होकर रहा, तदनन्तर १९४८-५० ई० तक चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य भारतके गवर्नर-जनरल रहे, इस बीचमें ए देशो विशिष्ट विधान निर्मातृ-सभा सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र भारतका प्रजातन्त्रात्मक विधान निर्माण करती रही। आधुनिकतम आदर्शोंपर, देश विदेशोंके विधानोंका सम्यक् अध्ययन करके भारतीयोंने ही अपने देशके लिए यह संविधान स्वयं बनाया जो २६ जनवरी सन् १९५० ई० से कार्यान्वित हुआ। तबसे तबत संविधानके अनुसार ही स्वयं भारतीय जन पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ अपने देशका शासन कर रहे हैं, यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति-की एक प्रधान शर्तके अनुसार दशका एक बड़ा भाग पाकिस्तानके रूपमें उससे सर्वथा पूर्यक् फिर भी कर दिया गया।

ब्रिटिश राजकी कुदेन—अशत लगभग दो सौ वर्षके और पूर्णतः लगभग सौ वर्षके ब्रिटिशराज ने भारतवर्षको अनेक भयंकर कुदेन प्रदान कीं जिनके कुफल यह देश ब्रिटिशराजके आरम्भसे ही मोगने लगा, कुछको अवसक मोग रहा है और सम्भवतया आगे भी न जाने कबतक भागेगा। सबसे बड़ी कुदेन तो इस देशक इतिहासमें लग जानेवाला यह लज्जा-जनक अमिट बलक है कि तीस करोड़से अधिक जन-संख्यावाले इस महान् प्राचीन देशको जो सम्यक्ता और संस्कृतिमें किसीसे पीछे नहीं था, जिसमें उस कालमें भी न राजाओं और न राजनीतिज्ञोंका अभाव था और न शूर-वीर योद्धाओंका, हजारों मीलकी दूरीपर स्थित एक छोटे-से विजातीय विदेशने जिसका विस्तार, जन-संख्या, शक्ति और धन-वैभव भारतके एक राज्य या छोटे से प्रान्तसे अधिक नहीं था, अपने मुठ्ठा-भर निकृष्ट श्रेणोंके तथा व्यापारके उद्देश्यसे आनेवाले प्रतिनिधियोंके छल-कौशल द्वारा इतने सहज और सुगम रूपमें अधीन कर लिया। कुछ ही दशकोंके भीतर सम्पूर्ण देशपर, उसके समस्त प्राकृतिक सीमाओंके उत्त पार पर्यन्त, उनका भुत्त्व छा गया और फिर एक शताब्दीसे अधिक काल पर्यन्त सुदूर ग्लोबमें बँटे-बँटे ही वे अपने एक लाखसे भी कम प्रतिनिधियों द्वारा तीस-रुथान युग

अवसरोंपर इग्लैण्डके राजा-रानी, राजकुमारों आदिको मूल्यवान् भेंटें, कई-कई बार प्रत्येक वायसराय और उनकी लेडीको दिये जानेवाले मूल्यवान् उपहार, रेजिडेंट, पोलिटिकल एजेंट आदि अन्य अंगरेज अधिकारियोंका दी जानेवाली घूम, प्रत्येक राजा-रईसके इग्लैण्डकी सैरके लिए जाकर वहाँ अपने वैभवका प्रदर्शन करना एक रिवाज बना देना, प्रत्येक राजा नवाबके पीछे एक आध गोरी मेम लगा देना और इन निकम्मे आलसी राजा-नवाबों और रईस जमींदारोंको चरित्र-हीन एवं विलासी बना देना, छोटे छोटे जमींदारों और रईसोंमें रायबहादुर, खाँबहादुर, राजा, रावराजा, सर आदि अनेक उपाधियोंको प्राप्त करनेका चस्का और होड़ लगा देना जिनके लिए वे अंगरेज अधिकारियोंको घूम देनेमें विपुल द्रव्य व्यय कर डालते थे, इत्यादि अनेक उपाय काममें लाये जाते थे ।

टोमटाम, दिखावा, फ्रैगन-परस्तो, पश्चिमी सम्पत्ताका अविश्वेकपूर्ण अनुकरण और अंगरेजोंकी बिना हेयीमादेयताका विचार किये नक़ल करना भारतीय जनताके विभिन्न वर्गोंमें छूनकी बीमारीकी नाई फैलने लगे ।

देशके विदेशी व्यापारको अंगरेजोंने बहुत पहले, १८वीं शताब्दीमें ही, पूर्णतया अपने अधिकारमें ले लिया था, शनै शनै आन्तरिक व्यापारके महत्त्वपूर्ण अंगोंपर भी वे छा गये । अनेक बैंको, बीमा-कम्पनियों, विभिन्न एवं विविध व्यापार करनेवाली अंगरेज उद्ग्राहण्ट स्टोक कम्पनियों या प्राइवेट फ़र्मोंका देशमें जाल फैल गया । स्थान-स्थानमें उनके आफ़िस, डिपो और एजेंसियाँ खुल गयीं । स्थानीय खरीजके व्यापारको छोटी मोटी दूकानदारों ही भारतायोक हाथमें अधिकतर रह गयी । इसपर भी सट्टे बचनो, स्टोक एक्सचेंज आदि अनेक वैध जुआका चस्का भाग्यवासियोंको लगा दिया गया जिसके फलस्वरूप उनमें पड़नेवाले अधिकांश भारतीय अन्ततः वरबाद ही होते रहे किन्तु सरकार तथा उनके प्रधान सचालक अंगरेज कम्पनियों या व्यक्तियोंको लाभ ही होता था । घुड़दौड़,

महाराष्ट्र विधानसभा

अंगरेजोंके साथ स्वतन्त्र व्यापारकी नीति चर्चती जाती थी तथा अंगरेज व्यापारियों और व्यवसायियोंको सरकार सर्व-प्रकारकी सुविधाएँ और प्रोत्साहन देती थी ।

अंगरेजोंको यह स्पष्ट और निश्चित नीति थी कि भारतवर्ष इंग्लैण्डकी फ़ैक्टरियोंको विपुल एवं श्रेष्ठ कच्चा माल प्रदान करनेवाली उत्पादन-भूमि और उनके पक्के सैयार मालको निरन्तर खपाते रहनेवाला सुगम एवं लाभदायक बाजार बना रहे और ऐसा ही होता भी रहा । अंगरेजोंने अपने शासनकालमें विश्वके अन्य सभी देशोंको इस विशाल देशका उपरोक्त द्विविध लाभ उठानेसे वंचाशक्य वंचित रखा और स्वयं इस देश-में भी देशो उद्योग धंधोंको प्रोत्साहन न देकर धरन् उनमें बाधक बनकर उक्त द्विविध लाभपर अपना ही एकाधिकार अक्षुण्ण बनाये रखनेका प्रयत्न किया । फ़रग्युसन भारतके बलपद इंग्लैण्ड अपने औद्योगिक एवं व्यापारिक विकासके चरम दिखारपर पहुँच गया । इसी शताब्दीके प्रारम्भमें पाण्ड्य मदुराके वीर विदाम्बरम् पिल्लेने एक देशी जहाजी कम्पनी बनानेका प्रयत्न किया था जिसके कारण सरकारने उसपर राजद्रोहका अपराध लगाकर उसे जेलमें सजाया । ऐसे न जाने कितने उदाहरण मिलेंगे । जहाज, रेल और उनके बनानेके कारखाने, जूट, नील, चाय, तम्बाकू (सिगरेट) आदिके उत्पादन, विभिन्न खनिजोंकी खानें इत्यादि इस देशके अनेक प्रधान व्यवसायोंपर अंगरेजोंका पूरा एकाधिकार था और अवतक बहुत कुछ चला आ रहा है ।

देशके धन और भूमिके चिरकालीन भयंकर क्षोषणने उसे बाढ़, भूकम्प, अकाल, महामारी आदि दैवी विपत्तियोंसे लहने और स्वरक्षा करने-में अशक्य एवं असमर्थ बना दिया । साथ ही उपरोक्त स्थितिके कारण ये दैवी प्रकोप आये भी बड़ी सख्यामें । १८५७ ई० के पूर्व अराजकता काल-में तो प्राकृतिक उत्पातोंके अतिरिक्त निरन्तर घने रहनेवाले लूट-मार, युद्ध, अशान्ति आदि मानुषी उपद्रवोंके कारण देश बराबर अकालपीडित-

एव नगरोंके छोटे छोटे दूकानदार ये । और ये ही लोग निम्न वर्गके बहुसंख्यक राज्यकर्मचारियों-द्वारा निरन्तर पीस जाते थे । एक लाल पगड़ी-वालेको देखकर सारे ग्राममें अज्ञात विपत्तिकी आशकासे घृण्यता, भय और विषाद छा जाता था । जिला अधिकारियोंकोको घूस, रिश्वत आदिके द्वारा अपना मुट्ठोमें रखनेवाले जमींदार और साहूकार पुलिस और अदालतोंके सहयोगसे इस गरीब जनसाधारणपर मनमाना अत्याचार करते थे, निरन्तर उनका लूट चूसते थे और उन्हें पनपने न देते थे । भारतीय पुलिस चुल्मका आदर्श थी । कहीं किसी राजनैतिक, कानूनी या नैतिक अपराधके होनेका सन्देह मिलता कि सारे गाँव और वस्तीपर आफ़त आ जाती और नले आदमियोंका घन एव इच्छत जो भग्न लूटा जाता । नित्य नये बननेवाले कानूनों और अदालतोंके जालने जनताकी नस-नस घोंघ दो । अदालतोंके पण्डे, वकील और मुख्तार, मुकदमेबाजीको प्रोत्साहन देते । न कुछ बात-पर भाई-भाई और पड़ोसी पड़ोसी आये दिन लड़ते रहते और उस लड़ाई-का निपटारा करनेके लिए अनिवायत इन वकील, मुख्तारों, पुलिस और अहलकारोंको क्षरण लेते, अपनी शान्ति, समय, धन और कारबार नष्ट करते और जीवन-भरकी खून-पसीना एक करके सचिव की हुई कमाई उनकी जेबोंमें भरते, सदाके लिए श्रृणके भारसे दब जाते और स्वयं अपनी शत्रु बन जाते । न्यायका ढोल बजाकर इस मुकदमेबाजीने देशकी जनताका जितना खून चूसा है, उसका जितना नैतिक पतन किया है और उसे अपग बनाया है उतना शायद किसी अन्य चीज़ने नहीं । और इसके लिए अंगरेज़ तो परोक्ष एव अलक्ष्यरूपसे ही उत्तरदायी थे, वास्तविक एवं प्रत्यक्ष उत्तरदायी तो देशी वकील, मुख्तार, अदालतें, अहलकार और पुलिस-कर्मचारी थे । दुर्भाग्यसे मुकदमेबाजीका यह विष स्वतन्त्र भारतमें भी घटनेके बजाय और अधिक बढ़ रहा है ।

देशमें अंगरेज़ोंने शिक्षाका प्रचार किया, स्कूल, कॉलेज और विश्व-विद्यालय खोले, पर्याप्त-द्रव्य भी व्यय किया, किन्तु उसमें अंगरेज़ोंका

समाये जा सकते, अतः अनेकोंको घोर निराशामें जीवन नष्ट करना पड़ता । देशमें फिर भी ९० प्रतिशतसे अधिक निरक्षर थे, और जब इन थोड़े-से शिक्षितोंकी यह दशा थी तो हम शिक्षासे देशको क्या वास्तविक लाभ हो सकता था यह अनुमान ही किया जा सकता है । सरकारी नौकरियोंमें भी प्रारम्भमें, वल्कि १९वीं शती ई० के प्रारम्भ तक तो अँगरेज अधिकारी भारतीयोंपर विश्वास ही नहीं करते थे और उन्हें सरकारी नौकरीके योग्य ही नहीं समझते थे । बादमें वे यह घोषणा करने लगे कि सरकारी नौकरीका द्वार प्रत्येक भारतीयके लिए खुला है, किन्तु तब भी किसी उत्तरदायित्व-पूर्ण या ऊँचे पदपर भारतीयोंको चाहे वे कितने ही योग्य हों नियुक्त न करते थे । १९वीं शती ई० के उत्तरार्धमें भी नुरेन्द्रनाथ बनर्जी-जैसे अनेक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने आई० सी० एस० की परीक्षामें उत्तम सफलता प्राप्त की किन्तु उच्च नौकरी प्राप्त करनेसे वंचित रहे जब कि उनके साथके तथा उनसे कम योग्यतावाले अँगरेजोंको प्राथमिकता दी गयी ।

सरकारके प्रश्रयमें काम करनेवाले ईसाई मिशनरोंके व्यवस्थित जाल-द्वारा भारतीयोंको ईसाई बनानेका प्रयत्न किया गया तथा निम्न जातियोंके असह्य अशिक्षित दीन भारतीयोंको ईसाई बना भी डाला गया और उनके रूपमें अपने राज्यके स्यायित्वका इस देशमें एक स्थायी स्तम्भ निर्माण किया गया । एंग्लोइण्डियन या यूरेशियन गोरोंके रूपमें भी एक अन्य ऐसे वर्गका निर्माण किया गया ।

अँगरेजोंने इन देशमें साम्प्रदायिकताके तीव्र विषको भी स्वार्थके वशी भूत होकर खूब फूँका । सर्वधर्म समदर्शिता, बहुसंख्यकोंसे अल्पसंख्यकोंकी रक्षा, न्याय, उदारता आदिका बहाना लेकर उन्होंने हिन्दू और मुसलमानोंके बीच ऐसे फूट और वैमनस्यके बीज बो दिये जैसे कि पूर्व मुगल कालके सुलतानी शासन या औरंगजेबके कट्टर मुसलमानों के शासनमें भी शायद न थे । हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके जानी दुश्मन हो गये, आये दिन

समग्रशास्त्रिक एवं और सम्मान होने लगे अन्तर्गत इस कृत्या परिष्कार देखकर विस्मयन हुआ । ऐपने अंगरेजी धानन-भाषमें जो अपनी स्वाभाविक आधुनिक एवं ऐतिहासिक पूर्णता एवं विस्तार प्राप्त कर लिया था और स्वतन्त्रताके सम्पन्न की गई बना चुका वो वह देख सीमा ही एक भावना नमूना एवं परिचितम्बल प्राप्त ही था । किन्तु हमने अंगरेजोंके लक्ष्य-को धारि नईकनेकी भाषी सम्भावना थी । अन्तः अन्तर्नि व केवल नहीं, अन्तः अन्तर्नि धारिनी ही एक देखके पुनर् करके सम्पन्न कर दिया, वान् एवं देखके थी थी की अन्तः एक निम्न संसार एवं परिचितता की सम्पन्नके कर्णें परिचित परिस्थान और पुनर् पुनी संसारके कर्णें पुनी परिस्थान करके देखकी अन्त-अन्त एवं आधुनिक कर दिया । अन्तः ही नहीं कर्णों, कीन्तु अन्तर्नि और अन्तर्नि देखी पायीकी सम्पन्न की कर्णोंके धारि सम्पन्नके धारि कीन्तु थी ।

हम मद्रासकी मुर्तशुद्धि मूल्यन बनावे, टीबेटका एक बड़े दुर्ग
तथा मुन्धन बनावे रकने कडका कर्षकभार बनावन जोरन करने की
कल्पित मैत्रिक बन्धन कर केनेर बंदीर हने छोड़कर बने की ती बन्ध-
विषय की बन्ध-वर्गीय विधि करके बने की बन्ध करीमि बन्धना मुर्त
की बन्ध की बने । बन्धनेमि बाण्डका विषय छोड़ दिया विष्णु बन्धने मुर्त
बन्धना विष्णु बन्धनी की बन्ध छोड़ दी ।

त्रिविधा शासनकी प्रतिपक्ष सुरेभे—शासनकी विषय की त्रिविधताका उपयोग करके शासन एवं प्रतिपक्ष सुरेभे की चर्चा कुछ व्यस्तपूर्ण एवं गहनता सुरेभे की है। कानूनी कानूनी चर्चा सुरेभे के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक गुणधर्मोंके बीच कलक करता है। चाहे कानूनी या अर्थशास्त्र, राजनीति और अर्थशास्त्र के अन्तर्गत के अर्थशास्त्र और अर्थशास्त्र ही, कानूनी कानूनी या अर्थशास्त्र कानूनी अर्थशास्त्र की विषय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत की है भारतीय राज्यके अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र के गुणधर्मोंके बीच कानूनी कानूनी अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र की है। अर्थशास्त्र

जो प्राकृतिक, स्वामायिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पूर्णता थी उसे प्रथम बार राजनैतिक, आर्थिक एवं प्रशासकीय एकसूत्रतामें बाँधकर चढ़ाने चरितार्थ और पुष्ट कर दिया। देशका विस्तार सभी दिशाओंमें उसकी वैधानिक सीमाभा एवं अंग-उपांगा तक पहुँचा दिया। ऐतिहासिक कालमें ऐसे अनेक भारतीय नरेश हुए जिनमें-में कुछने पश्चिमोत्तर दिशामें काबुल और कन्दहारसे भी कुछ आगे तक अपने राज्यका विस्तार किया, कुछने पश्चिममें अरबसागर और ईरानकी खाड़ीपर अपना प्रभुत्व रखा, कुछने उत्तरमें कश्मीर, नेपाल और भूटान ही नहीं तिब्बत तक अपने राज्यका विस्तार किया, कुछने पूर्वमें आसाम और अराकान तक ही नहीं ब्रह्म देश तक अपना प्रभावक्षेत्र बढ़ाया, और कुछने दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्वमें लंका, मलाया प्रायद्वीप तथा पूर्वी द्वीप-समूहके अनेक द्वीपोंपर अपना अधिकार विस्तार किया। किन्तु ऐसा कोई एक नरेश कभी नहीं हुआ जिसने एक ही साथ उपरोक्त सभी सीमान्ता और सीमापार प्रदेशोंपर अपना प्रभुत्व जमाया हो। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त, अलाउद्दीन खलजी, अकबर या औरंगजेब, इन महान् सम्राटोंमें-से एक भी ऐसा न था जिसने सम्पूर्ण देशपर अपना पूरा, अधूरा या नाममात्र भी अधिकार फैला पाया हो। देशका किसी-न-किसी दिशामें और कुछ न-कुछ भाग उनके आधिपत्यके बाहर रहा हो। चक्रवर्ती सम्राटका जो प्राचीन भारतीय आदर्श था उसकी सिद्धि इतिहासकालमें यदि कभी हुई तो ब्रिटिश शासनके अन्तर्गत ही, और उसके अन्तके साथ ही वह भग भी हो गयी या कर दी गयी। किन्तु एक बार प्राप्त हो जानेवाली तथा एक शताब्दी पयन्त स्थायी बनी रहनेवाली वह पूर्णता एवं एकता फिरसे भग्न और खण्डित हो जानेपर भी यह प्रदर्शित कर गयी कि वह कितनी सुगम, सम्भव, युक्तियुक्त और आवश्यक है। स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्रके लिए वह एक सजीव प्रेरणा बन गयी जो उसे निरन्तर यह स्मरण दिलाती रहेगी कि उचित मौलिक पूर्णता एवं एकताकी पुनः प्राप्ति राष्ट्रीय सत्ताका

एक अनिवार्य कर्तव्य है ।

देवदेवी जीके पुनरुद्धारका मुक्तिपथ पुनर्वासित एवं कैथिन प्रयास-
का तथा उनसे प्राप्त आभितुर्न वाग्रपरम भुजा, अस्तित्व परदा
स्वात्म्य आदि का प्रयोग एवं काममें किया देना पुनरात्मने कृत कर्म
व्यवहारों का किया था । उनको कृतवत्ता रही मानके साथ है कि स्वतन्त्र
हीनेके बाद भी प्रवारे आने वर्तमान प्रयासकीने कहे जाय । यही वा ली
अपना किया और मान रहा है । कहने सबसेक दोन अर्थों का पुनर्धार
भी भी क्या मान करे प्रत्यक्ष कृत्य वचन-व्यवहार कथा आचार
अपना पुनरुद्धारकीको प्रोत्साहन देना प्रयासनेके विविध कार्यों
प्रसाधार और प्रयास-व्यवहार की वृद्धि, मुक्ति आदि की अनुत्तराभितुर्न
व्यवस्थाओं काकारी आर्थी, कर्तव्य आदि के प्रयासवत् वृद्धि, अर्थवत् विद्या-
पद्धतिके दोन पाठ्यक्रम केसाओकी निवृत्तिकीने कृपा विचारों, विचारों
का प्रकाशना प्रवीण इत्यादि । तथापि विविध कामके अतीत पुन-
वर्तित प्रयासको ही एवं मानना प्रेव है कि इनके विचारों केसा कृत-
इत्यादि के विचारों के का प्रयासनेके प्रयासमें प्रयास प्रयासकीने
स्वात्मने स्वाधीनता निरुद्धी आत्मने स्वात्मने स्वदेवी आत्म वचन वचन
अर्थोंके स्वात्मने आत्मवर्तितकीने निवृत्ति देना और अर्थ-व्यवस्थाओं
की इत्यादि के प्रेव इत्यादि इनकी अर्थ-व्यवस्था पुनरुद्धार काका,
कीका एवं अर्थोंके का प्रयासित ही क्या । ऐसी महान् अर्थोंके
एव प्रयास अर्थोंके हीनेका विचारके पुन इत्यादि के आत्म एका ही
कृतवत्ता के ही के । और इनका प्रयास प्रेव कृत आत्मव्यवहारकी
तथा कुछ अर्थोंके अर्थोंके अर्थोंके प्रयासितकी है । इनकी भी कर्तव्य
की कि वह आधीन आत्म अर्थोंके केकेन की वत्ता कीका अर्थोंके
प्रकाशना था । के ही वह पुन अर्थोंके आर्थोंके वह अनुभव किया
कहने आत्मकी अर्थोंके प्रयास करनेका वह भी आर्थोंके अर्थोंके वत्ता
वृद्धिकी की, अर्थोंके केके कृत-कृत केके अर्थोंके अर्थोंके

उन्होंने कुछ कलंकित ही किया ।

किंतु अंगरेज इस देशसे क्यों चले गये और भारत स्वतन्त्र कैसे हो गया इन प्रश्नोंका उत्तर है देशमें उदित राष्ट्रीयताकी भावनाका विकास और फलस्वरूप किये गये स्वातन्त्र्य-आन्दोलनकी उत्कटता । अंगरेजोंने भारतवासियोंके हृदयमें राष्ट्रीयताकी भावनाका उत्पन्न होना और पनपना कभी भी नहीं चाहा और न स्वातन्त्र्य-आन्दोलनको कोई प्रोत्साहन दिया, वरन् उन्होंने समय-समयपर अपना अत्यन्त क्रूर एवं भयकर दमनचक्र चलाकर इन दोनोंका मूलोच्छेद करनेका ही भरसक प्रयत्न किया । तथापि इन दोनोंके उदय और विकास एवं अन्तिम सफलताका भी श्रेय अनेक अंशोंमें अंगरेजोंको और उनके शासनको है । अंगरेज जाति चिरकालसे राजनैतिक स्वातन्त्र्यका उपभोग करती आयी थी । भारतपर राज्याधिकार स्थापनके कुछ पूर्वसे ही उनका देश नामके लिए राजतन्त्र किन्तु वास्तवमें प्रजातन्त्रका रूप लेता आ रहा था । भारतसे होनेवाले कल्पनातीत आर्थिक लाभके कारण उनके देशने द्रुत-वेगसे उन्नति की थी । उसके उद्योग-धन्धे, व्यापार-व्यवसाय, शक्ति समृद्धि, प्रभाव और साम्राज्य विस्तार ही न केवल शोघ्नताके साथ अत्यधिक बढ गये और उन्होंने उसे विश्वकी प्रधान शक्ति बना दिया, वरन् शिक्षा, साहित्य, ज्ञान एवं विज्ञानकी भी उस देशमें अभूतपूर्व उन्नति हुई और उसकी शासनप्रणाली अधिकाधिक जनतन्त्रात्मक होती चली गयी । शक्ति, सत्ता और समृद्धिके साथ शिक्षा, सभ्यता और संस्कृतिके योगने अंगरेजोंके जातीय चरित्रको भी उन्नत एवं परिष्कृत किया, तथा उनमें बुद्धिमत्ता, विवेक, दूरदर्शिता, उदारता, सहिष्णुता, न्यायपरायणता और स्वतन्त्र विचारक्षमताका पोषण किया । वहाँकी सत्ताधीश पार्लियामेण्ट द्विदलीय रही जिसमें एक दल नरम उदार परहितापेक्षी और शान्तिप्रिय रहा और दूसरा गरम अनुदार स्वहितापेक्षी और प्रतिक्रियावादी रहा । जब जिस दलके हाथमें सत्ता आ जाती उसीकी नीतिका प्रभाव उस देशके ही शासनमें नहीं भारतके प्रशासनमें भी लक्षित

साहसी होते थे वे सार्वजनिक भाषणों, समाचार पत्रों, स्मृति-पत्रों अथवा उच्च अधिकारियोंके साथ व्यक्तिगत बैठकों द्वारा सरकारसे टक्कर लेने लगे ।

नरम दलके शासनमें उनके साथ सहानुभूति प्रदर्शित की जाती, आश्वासन दिये जाते, कुछ अधिकार और सुविधाएँ भी प्रदान कर दी जातीं । किन्तु तदुपरान्त जब गरम दलका शासन प्रारम्भ होता तो प्रति-क्रिया होनी और सरकारकी आलोचना एवं अधिकार-माँगकी राजद्रोह और घृणता माना जाता । उससे नेताओं और उनके अनुयायियोंका क्षोभ बढ़ता और आन्दोलनमें कुछ गरमी आती तो दमनचक्र चलाया जाता । फल-स्वरूप सारे देशमें सरकारकी निन्दा होने लगती और आन्दोलन और अधिक उग्र रूप धारण करने लगता । दमन नीति उसे स्यायी रूपमें दवा देनेमें सफल भी हो जाती तो देशकी सहानुभूति आन्दोलनकर्त्ताओंके साथ और अधिक बढ़ जाती और स्वयं इंग्लैण्डमें पदच्युत नरम दल सत्ताधीश गरम दलकी कटु आलोचना करने और उसे पदच्युत करनेका नया वहाना ढूँढ़ लेता तथा भारत और उसके नेताओंके साथ सहानुभूति एवं समवेदना प्रदर्शित करता । सत्ता प्राप्त करनेपर वह पूर्व माँगोंके अनुसार भारतीयोंको कुछ अधिकार प्रदान करता । किन्तु इस बीचमें भारतीयोंकी माँगे उससे कहीं अधिक बढ़ चुकी होतीं, अतः उस अधिकार प्रदानसे भारतीयोंको कुछ भी सन्तोष न होता और आन्दोलन दबनेके बजाय और अधिक बल पकड़ता और प्रगतिमान् हो जाता । ब्रिटिश शासनके प्रायः प्रारम्भसे अन्त तक यही क्रम चालू रहा । स्वयं अँगरेजोंने ही भारतीयोंको अपने विरुद्ध लड़ना सिखाया, उसकी विधि और पद्धति बनायी और उसके साधन भी प्रदान किये । अतः इसमें अत्युक्ति नहीं है कि इस देशमें राष्ट्रीयताकी भावना और स्वातन्त्र्य-आन्दोलनकी उत्पत्ति, विकास एवं सफलताका श्रेय अनेक अंशोंमें अँगरेजों एवं अँगरेजी शासनकी है ।

भारतवर्ष लोककी अपेक्षा परलोक और स्वार्थकी अपेक्षा परमायपर

दुहि एवमेवामा धार्मिकीय वर्तमान सामाजिक देख है। निधीय कमी, नशाबाद, कन्याई काशी दवा कमेवमा कसारा मद्रिम्मुता कसक-कसक और एकीनरीता कादि मुन दक देखके निवादिनीके कदीहे सामान्य मुन एने बके जाने है। निगरमान और काशपरदेका इवन मोड़ कने बराबर एका जाय है। इनिमा केवा विद्या-उदय और विचारबोका-ने के कमी किनीके पीछे मदी रहै। कसाव-दसाव और कसक-निगमपी कर्ष पीरता निधीयता और कासक दक शा-नाथ देख देके कसक निम्ने बदिन है। कर्षरीर हो कर्षरीर हो मकता है बड़ दक भारतीय कसिका कसरी एता है और एकी कसकता कसकवन कसरी जाने कसक-कसक और मुनरीके कसिकारीका कासर कानेही कसैर कसकक बने एकीर मापातिर रही है। निरदुष्ट कसिकेको स्वार्थीय केकाविक मापातिरके कस-कसके कसमुन दक देखकी कनेक बार बामुन होय गता। किन्तु बड़ बामुन कर्षका कसिक एके मकसमायी रहा और कासकी कासी-गता कसक कनेके कसकक देखकी बड़ कमी की निरीय न कर कसा। कनेकेको मुने की और कसने की निरीको मापातिर दक देखके कसक कसकी की बामुन के जाने कसै एकी होकर एता गता कसै कासकीका देखके देखता गता और दक देखके कसकी मापातिर करय गता। देखके कन कस देखके हो रहा देखके कसक कसकी-कसकी और कसक-कसक-कसके कारण निरीको की कन कस-कसकर दक देखके मापा एता। देखकी कसिक मापातिर एके कसिक निरीय और कसक कसकी-कसकी की कसक निरीय कसक मदी गता। देखकी कने इतिहासे कसिक कसक कसैर कसकीय कसक कसिक-कसिक कसक और कसकीर कस कसकी-कसकी मुकसमायी एके मापातिरकी रही है की देखके निम्न कस निम्न-कसकी के और कस की है। मुकसमायिके मापा-कनेके कसकी को कस हो कस सिन्धीके कसै मुकसमायी एके कसकीय मुकसमन मनेकी की कसक कसै दक कसकन कसका कस की हो मदी। और केका कि कसकीय कस-

नाथ ठाकुरने सन् १९३१ ई० में अँगरेज मनोपी एच० जी० वेल्ससे कहा था—‘मुगल शासक भी गाँवोंके प्रगतिशील सामाजिक जीवनमें कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे। दरबारी शासकोंके बावजूद भी जातीय जीवनकी धारा सहजरूपसे चली आ रही थी। मुसलमान शासकोंने (अँगरेजोंकी भाँति) कोई शर्तें घोषित नहीं कीं और न भारतीय शिक्षा-दाताओं और ग्राम-वासियोंकी अपने आदर्शपर चलनेके लिए पीड़ित किया।’ वास्तवमें प्रत्येक ग्राम अपने नम्बरदार, मुखिया, चौकीदार, पटवारी, दुकानदार, साहूकार तथा विभिन्न आवश्यक कार्य करनेवाले व्यक्तियोंसे पूर्ण और अपनी शुद्ध जनतन्त्रीय ग्राम पचायतसे शासित पूर्णनया आत्म परिपूर्ण, स्वनिर्भर और स्वतन्त्र था। साम्प्रदायिक एवं जातीय पचायतें अनेक ग्रामों, नगरों और पूरे-पूरे प्रदेशोंकी जनताको अपने स्वायत्त शासनमें बाँधे हुए थीं। राजा-महाराजाओं, सुलतानों और बादशाहोंकी स्वाधीनता-पराधीनता उनमें स्वयंमें परस्पर एक-दूसरेके सम्बन्धसे थी, सामान्य जनताका उससे कोई सरोकार या विशेष हानि-लाभ नहीं था। अपने राज्य या प्रदेशकी स्वाधीनताके संग्राममें भाग लेनेके लिए यदि सामान्य जनताका आह्वान किया जाता तो वह भी उसमें महर्षि भाग ले लेता। किन्तु प्रथम तो उपरोक्त पराधीनता भी प्रायः अल्पस्थायी और परिवर्तनशील रहती थी, दूसरे ये स्वाधीनता संग्राम भी क्षणिक एवं अल्प हानिकर होते थे, तथापि वे देशकी समस्त जनताको सदैव सजग सचेष्ट और आत्म-रक्षा में समर्थ बनाये रखते थे। १९४७ ई० में प्राप्त स्वतन्त्रताकी नदीके वास्तविक अटूट एवं अजस्र उद्गम स्रोत भारतवर्षकी उपरोक्त भारतीयता, स्वभाववैशिष्ट्य और सनातन संगठनमें ही अन्तर्निहित हैं। उन्हें अन्यत्र खोजना व्यर्थ है। अँगरेजोंने इन स्रोतोंको सुखा डालनेका सर्व-प्रथम भगीरथ प्रयत्न किया किन्तु साथ ही उनके फूट पड़नेके अन्य द्वार स्वतः ही खोल दिये जिनके कारण वे मून्स्रोत भी सधारा न सूख पाये। राष्ट्रीयताकी भावना और स्वातन्त्र्य-आन्दोलनने इन स्रोतोंकी सूखनेसे रक्षा की और इन्होंने द्विगुणित

१८८५ ई० में ए० ओ० ह्यूम नामक एक अंगरेज सिविलियनने सर विलियम वैडरबर्न, सर हेनरीकाटन, जार्ज यूज आदि उदाहृत्य अंगरेजों और मुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादामाई नौगोजी, फ़ोरोजशाह मेहता, दिनशा वाचा, बदरहोत्र तैयदजी, के० टी सैलंग, महादेव गोविन्द रानाडे आदि भारतीय व्यक्तियों की सहायतासे बम्बईमें इण्डियन नेशनल कॉंग्रेसको स्थापना की। ज्योमेशचन्द्र बनर्जी उसके प्रथम सभापति बने। प्राग्भूत ही कांग्रेसकी पूरे देशका प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। उस समय सरकारके प्रति कांग्रेसका भाव पूर्ण मन्त्रीका था और बहुत पीछे तक इस सभाका लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्यक अन्तर्गत स्वायत्त प्रान्त करनेका बना रहा। १८८६ ई० में वायसराय डकारिने कांग्रेस नेताओंको कलकत्ताके राबनसनमें प्रीतिभाषके लिए आमन्त्रित किया। किन्तु उसके उपरान्त ही कांग्रेसने अपनी नीति विनाश्यात्मक एवं आलोचनात्मक बना ली अतः सरकार ने संकाही दृष्टिसे देखने लगी और १८९० ई० में आज्ञा प्रचारित की गयी कि कोई मन्कारी कमचारी उसमें भाग न ले। मुसलमानोंके नेता सर सैयद अहमदखाने कांग्रेसका विरोध किया और १८८८ ई० में अगर इण्डिया मुसलिन एसोसियेशनकी स्थापना की, फिर भी कांग्रेसके छठे अधिवेशनमें २२ प्रतिशत मुसलमान थे। १८८९ ई० में० चार्ल्स ब्रेहला नामक पार्लियामेण्टका एक उद्वेग कांग्रेस अधिवेशनमें सम्मिलित हुआ और फरवरी १८९२ ई० का ऐक्ट पास हुआ। किन्तु जनताका असन्तोष बढ़ता ही गया।

महाराष्ट्रमें लोकमान्य बाल गंगाधर टिळकने राष्ट्रीय आन्दोलनकी छड़ बन दिया। उन्होंने अपने 'केमरा' नामक मगले समाचारपत्रमें सरकारको सख्त कटु आलोचना करने पर आग्रह की और विद्यार्थियोंको उत्तेजित किया। उनकी पत्र बन्द कर दिया गया और स्वयं उन्हें जेलमें भाल दिया गया। पंजाबमें लाला लाजपत राय और बंगालमें विपिनचन्द्र पाल भी उन्होंने नीतिके समर्थक थे। कांग्रेसने अब नरम और गन्धही

विरोध नहीं किया। युद्धकालमें श्रीमती एनीबेसेण्टने होमरूल आन्दोलन चालू कर दिया और अपने पत्र 'न्यू इण्डिया'-द्वारा उसका उत्साहपूर्वक प्रचार किया।

१९१६ ई० के लखनऊके काँग्रेस अधिवेशनमें नरम और गरम दल फिर मिलकर एक हो गये, मुसलिम लीगके माय भी समझौता किया गया जो लखनऊ पैक्ट कहलाया और स्वायत्त-शासनको सरकारसे माँग की गयी। काँग्रेसने एनीबेसेण्टके होमरूल आन्दोलनको भी अपना लिया। भागत-मन्त्रिमोष्टेग्युने भारतको युद्ध-सेवाओंको स्वीकार करते हुए उसे सन्तुष्ट करनेका आश्वासन दिया और १९१९ ई० का ऐक्ट पास कराया। किन्तु इसके पूर्व ही राजद्रोहके दमनके लिए रोलट ऐक्ट पास कर दिया गया था जिसके फलस्वरूप अमृतसरमें हायरगर्दी मची और जनतापर भयकर अत्याचार किया गया। लोकमान्य तिलककी इसी वर्ष मृत्यु हुई, महायुद्धका भी अन्त हुआ और महात्मा गान्धीने जो दक्षिण अफ्रीकामें गोरे लोगोंके विरुद्ध छेड़े गये आन्दोलनके कारण पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे, भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलनमें पदार्पण किया। उन्होंने रोलट ऐक्ट और जलियाँवाले बागके हत्या-काण्डका तीव्र विरोध किया तथा जनताको असहयोग आन्दोलन चालू करनेकी सलाह दी। तुर्कोंको युद्धमें घसीटने एवं खिलाफतकी मष्ट करनेके कारण मुसलमान भी अँगरेजोंसे रुष्ट हो गये थे और उन्होंने खिलाफत आन्दोलन छेड़ दिया। महात्मा गान्धीने जो अब काँग्रेस तथा स्वातन्त्र्य-संग्रामके नेता बन गये थे और पूर्ण अहिंसक नीति-के पालक थे, खिलाफत आन्दोलनको अपनाकर मुसलमानोंको भी अपना सहयोगी बना लिया।

१९२१ ई० में असहयोग एवं खिलाफत आन्दोलनने बड़ा चरमरूप धारण किया। स्कूल, कॉलेज बन्द हो गये, अनेक वकील-मुख्तारोंने बकालत छोड़ दी, कुछ लोगोंने सरकारी उपाधियाँ त्याग दीं, बहुत-से सरकारी कर्मचारियोंने पदत्याग कर दिया, विलायती वस्त्रोंकी होलियाँ जलीं, विदेशी

बंगालीका बहिष्कार हुआ और सभी एवं बहुरंगी युव बच रही । किन्तु
 भेरवा गिट्टी और चौपचौरी बलबने बाल्मोहनको जारी आवाज गई
 बाबा । सरकारका बचन-बहल डींगीके बाब बल बहा बाल्मोहन बाल्मी, कम
 अन्धक केन्द्र और हुकारी कार्यकर्ता बौलीके दूध रिबे बने । किन्तु-मुनकालीने
 पावरर कूट और बैबनरक बाल्मन बहा दिया बहा बिके बाल्मन
 कीडाट अर्धिके बीचक बाल्मनारिक बने बहल बने । १९११ ई में
 बलिनेके बाल्मिह बैडाओने भी बाल्मिन बनेके बाल्मन कूट बह रही ।
 बिनरकन दाब और बौनीनाल बैदक-बैके बैदा कोटिबिन बनेके बहाई ही
 बने । १९१५ ई में बाल्म दारिकन बाल्मनार बहा बहने बाल्मिनार बल
 ीति बाल्मी । बैडाओको बैकके मुल कर दिया और किन्तु-मुनकालीने
 बैल बाल्मोहन बाल्मन दिया । १९१७ ई में बाल्मन बाल्मन कम
 बिनका बाल्मिनके बैदुलके बैकके बहिष्कार किया ।

१९१९ ई में बलिनेके बाल्मीर बाल्मिनके बं बाल्मनार
 बैदकके बाल्मिनके बलिनेके बल 'बुध स्वाधीनता' बाधित दिया
 बाल्मोहन बाल्मीके बैदुलके बलिनेके बलिने बाल्मनार और बाल्मिन
 बाल्मोहन बाल्मिनके और बलक बाल्मनार बाल्मी । बाल्मी बैकके स्वात्त
 बाल्मीन बाल्मिन । बल बल बाल्मीन बलभी एवं बाल्मिनके बलिने
 बलिनेके तक ही बाल्मिन बली बल, बाल्मिनी बलिने और बाल्मिन बलिने
 में भी बल बाल्मीनके बने बाल्मिनके बल किया । बाल्मिनके फिर बाल्मिन
 बाल्मी और बलके बाल्मिनके एवं बाल्मिनके बाल्मीके बाल्मीके बैकके
 दूबा, किन्तु बाल्मीन ब बहा । बैदक बाल्मी और बाल्मी हुई बैकके
 बलके बाल्मीन एवं बाल्मिनके और बलिने बलिने । बल बैकके बल
 बल और बलके बलिने बल बाल्मिनके बीच बाल्मीन बाल्मीन बलिने
 बाल्मन दिया । १९१ ई में ही बल बलिने बाल्मीन हुई किन्तु बलिने
 बलिने बल बली । १९११ ई में बलिनेके बाल्मीन ब बल बाल्मीन
 बलिनेके मुल कर दिया और बाल्मी-बलिने बलिने ही बहा । १९११

ई० की दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंसमें महात्मा गान्धी, ५० मदनमोहन मालवीय एवं श्रीमती सरोजिनी नाथडूने काँग्रेसका प्रतिनिधित्व किया किन्तु कोई समझौता न हुआ। सत्याग्रह आन्दोलन फिर छिड़ गया, नये वायसराय बिलिंगहमने कठोरताके साथ आन्दोलनका दमन करनेका प्रयत्न किया और अनेक स्पेशल आर्डिनेस जारी किये। नेताओं और कार्यकर्त्ताओंको जेलोंमें भरा जाने लगा। शासन सुधारके प्रश्नपर भी बहस चलती रही किन्तु साम्प्रदायिक प्रश्न सबसे बड़ी बाधा थी। उसके निर्णयके लिए इंग्लिस्तानके प्रधान मन्त्री रैमजे मैकडानल्डने अपना कम्प्यूनल एवार्ड दिया जिससे और अधिक असंतोष फैला। महात्मा गान्धीने अनशन आरम्भ कर दिया। देशमें तहलका मच गया। अतएव प्रधानमन्त्रीने महात्माजीसे समझौता कर लिया जो पूना पैक्टके नामसे प्रसिद्ध हुआ। १९३२ ई० में तीसरी गोलमेज कान्फ्रेंसके प्रस्तावोंके आधारपर १९३३ ई० का स्वतंत्रता प्रकाशित हुआ और उसके आधारपर १९३५ ई० का ऐक्ट पास हुआ। वायसराय लिनलिथगोने इस ऐक्टको कार्यान्वित किया और १९३७ ई० के चुनावमें सात प्रान्तोंमें काँग्रेसकी विजय हुई और मन्त्रिमण्डल बने। किन्तु द्वितीय महायुद्ध छिड़नेपर सरकारी नीतिसे मतभेद होनेके कारण उन्होंने पदत्याग कर दिया। सर्वत्र आर्डिनेन्सोंपर आधारित निरंकुश गवर्नरी शासन चालू हो गया। काँग्रेसने युद्धमें देश-द्वारा अँगरेजोंकी सहायता किये जानेका विरोध किया और आन्दोलन छेड़ दिया। मुसलिम लोग और काँग्रेसका परस्पर विरोध एवं मतभेद भी बढ़ता ही गया। मुहम्मदअली जिन्नाके नेतृत्वमें लोगने पाकिस्तानकी माँग पेश कर दी।

सन् १९४२ ई० में स्वतन्त्र्य-आन्दोलनने अति भीषण रूप धारण कर लिया। 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास करके काँग्रेसने ही नहीं बल्कि सारी जनताने आन्दोलन मचा दिया। रेलकी पटरी हटाना, तार काटना, स्टेशन, डाकखाने आदि जलाना, ऐसे अनेक उस्तात भी यत्र-तत्र हुए।

करनेके कारण कांग्रेस ही सत्ताबद्ध हुई और केन्द्रीय एवं प्रायः समस्त राज्य सरकारें कांग्रेसी बलकी हाँ बनीं। स्वतन्त्र स्वतन्त्र गणतन्त्र भारतीय राष्ट्रका इस प्रथम प्रजातन्त्रात्मक कांग्रेसी सरकारने समस्त देशो राज्यों और जमींदारियोंका अन्त कर दिया, देशको विविध क्षेत्रीय उन्नतिके लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना चालू की और उसकी समाप्ति होते-न-होते द्वितीय पंचवर्षीय योजना चालू कर दी। अन्तर्राष्ट्रीय जगतमें भी भारतने सम्मान एवं प्रभावपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। देशको स्वतन्त्र करनेमें चाहे वह स्वतन्त्रता कितनी ही लुज़ी, झुट्टिपूर्ण और चलसर्नोसे भरी हुई रही, इस देशके निवासियोंको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके योग्य बनानेमें और स्वतन्त्रता-प्राप्तिके उपरांत उसका संरक्षण करनेके लिए उनके समर्थ होनेमें अंगरेजी शासनका भी हाथ रहा है—इसमें सन्देह नहीं है, तथापि इस सबका प्रधान श्रेय भारतवर्षकी भारतीयता, देशवासियोंका अन्तर्निहित स्वातन्त्र्य-प्रेम, उनके अनगिनत विविध बलिदान और विपन्न परिस्थितियोंमें किये गये चिरकालीन संघर्षको ही है। देशने स्वयं स्वप्रयत्नसे ही स्वतन्त्रता प्राप्त की है और उसी प्रकार वह उसका सफल संरक्षण एवं उन्नति करेगा।

ब्रिटिश शासनमें देशकी कृषि, उद्योग-धन्धों, व्यापार और व्यवसायोंका भी पुनरुत्थान हुआ। विभिन्न नियमित बन्दोबस्तों, टेनेन्सी ऐक्टों, भूमि आलेखों और सुविस्तृत भूमि प्रशासन द्वारा देशकी कृषि-भूमि तथा कृषि योग्य भूमिकी समुचित व्यवस्था की गयी। कृषि आयोगों तथा सरकारी कृषि अनुसन्धान समिति, सहकारिता विभाग, कृषि प्रदर्शनियो आदिके द्वारा कृषि और कृषकोंकी दशा सुधारनेका प्रयत्न किया गया। नहर, कुएँ, ट्यूबवेल, बाँध आदि विभिन्न उपायोंको विस्तार देकर सिंचाईका सुप्रबन्ध किया गया। चकबन्दी, नवीन प्रकारके रासायनिक खाद तथा यान्त्रिक उपकरणोंके प्रयोग भी कहीं-कहीं चालू किये गये। इस कृषि-प्रधान देशकी लगभग तीन चौथाई जन संख्या खेतीपर ही निर्भर रहती

कब्र कुड़ियाँ जर्मनी और जापानकी निजब हो रही थी भारतीय और
 मैलाबी मुवायफत बीचमे अपनी बाजार दिग्ग केनामा निर्माण करने
 जापानकी बहालगाये सम्मदा और बहालर आक्रमण कर किया और
 जापानके जापानकी वैवादी थी । हरकारने जापान कोरानके हर
 जापानिक विरोधका रक्त करना मुक्त किया, मुक्त की वाता वाता
 कबा और विवाहपुत्रीकी निजब होमे लगी । १९४४ ई में सम्मदा
 मेमेमे जाते ही राष्ट्रीय मैलाकोके वाता सम्मदाके प्रकल वाता कर कि ।
 १९४५ ई में मेमेमे विजय और जापानकोरी ईकीवैकल वाता ।
 महाकुल वर बहाल हो गया वा और बीरबीने जापानके स्वतन्त्र करने
 निजब कर किया वा । विवाह १९४५ ई में ५ बहालका मेमे
 निजबमे जापान हरकारकी स्वाता कर दी की । १९४७ ई में
 जापान वातावा वातावाके जाते ही बहालवातावाकी कार्त
 मुक्त कर दी । ५ जुन १९४७ ई को विजय जापानकोरी जापान
 स्वतन्त्रता ऐक वाता और की कर १५ बहालकी जापानके स्वतन्त्र
 कर किया गया वा की बहाल जापानकी विमुक्ता और जापान
 वाता की बहाल करके बीनेकी मुक्त-मुक्त स्वातन्त्रा प्रकल कर दी की ।
 एक कर जापानकोरी स्वतन्त्र जापान वातावा करती बहाल एकर
 बीनेकी वाता बहालवातावाके सम्मिलित वर बहालका जापान
 बहाल की । इस वातामे निजबके विवाहवाता विमुक्त-मुक्त
 ईकवाता जापान कर वाता । कभी बीनेकी मुक्तवाता जापानके जापान
 और जाते की बहाल की वातामे मुक्तवातावा वर जापानकोरी
 जापान वाता । करकर स्वातन्त्र एवं बहाल हूँ और जापानके वर-वरी
 वाता जापान एवं जापानिक बहालवाता वाता जाते हूँ ।

बहाल वाता हूँ बीने बहाल वातावा रही की १५ बहाल
 १९५५ ई के सम्मिलित हूँ । स्वातन्त्र-जापानकोरी ईक
 वाता वर वाता वातावाका वर होमे वाता वाता वातावा

मिलें सून कातनेका कार्य करतो थीं, कपडा इग्लैण्डमे हो बनकर आता था । जमशेदजी टाटाने लोहेका कारखाना पढ़ने हो चालू कर दिया था । कुछ अन्य चीजोंके कारखाने भी स्थापित होने लगे । १९१४ ई० के महायुद्धसे इन उद्योग घघोंको भारी प्रोत्साहन मिला और उन्होंने अभूतपूर्व प्रगति की । लोहा, सूत और चीनीके उद्योग विशेषरूपसे चमके, कुछ मिलें घस्त्र भी बनाने लगीं । १९१८ ई० को सरकारी इण्डस्ट्रियल कमाशनकी रिपोर्टमें देशकी औद्योगिक उन्नतिके महत्त्वपर बल दिया गया और उन्नतिके अनेक उपाय सुझाये गये । १९२४ से १९३९ ई० के बीच भारतीय मिल-उद्योगने अपूर्व उन्नति की । वैज्ञानिक अनुमन्थानशालाओ और कई स्थानोंमें पानीसे तैयार की जानेवाली विद्युत् शक्तिने भा इस कायमें भारी सहायता की । प्रत्येक प्रान्तमें एक औद्योगिक विभाग खुल गया, सरकारने सहायता, प्रश्रय और कुछ द्रव्य प्रदान किया । रेल, मोटर, तार-झाक आदिसे यातायातकी सुगम सुविधा भी अत्यन्त सहायक हुई । दूसरे विश्वयुद्धने भारतीय मिल-उद्योगको और अधिक प्रोत्साहन दिया । फलस्वरूप स्वतन्त्रताप्राप्तिके समय तक भारतीय उद्योग-धन्धे पर्याप्त विकसित हो चुके थे और दैनिक उपयागकी उन वस्तुओंमें-से जो पहले विदेशोंसे आयात की जाती थीं, अधिकतर अब भारतमें ही बनने लगीं । इतना ही नहीं, कुछ वस्तुओंका भारत कतिपय विदेशोंको भी निर्यात करने लगा । मिल-उद्योगके उत्थान-क कुछ पहलसे ही भारतीय व्यापार और व्यापारियोंकी दशा भी उन्नत होने लगी थी । उद्योग घघाक उत्थानने उसे और अधिक उन्नत किया । धीरे धीरे देशके आन्तरिक व्यापारका अधिकांश तो उनके अधिकारमें आता ही चला गया, थोडा थोडा विदेशी व्यापार भा उनके हाथमें आने लगा । अनेक अँगरेजी या अन्य विदेशी कम्पनियों और फर्मोंमें भी भारतीय हिस्सेदार, साझीदार या प्रधान कार्यकर्त्ता, मैनेजिंग एजेण्ट आदि होने लगे । वर्तमानमें देशका अधिकांश देशी एवं विदेशी व्यापार देशवासियोंके हाथमें है । व्यापार और उद्योग धन्धोंक संचालनके अतिरिक्त धकील, बैरिस्टर,

वाली है। बंदरेवाँके आरम्भिक अवर्गों-द्वारा देखके बौद्ध उद्योग-कर्मोंके
 मह हो जानेके बीटीपर और अधिक भार बढ़ गया था। बंदरेवाँके व्यापारके
 द्वारा ही कपास बीज, चूड़, तब, चाय आदि वस्तुओंके लिए निर्यात
 वापसोंकी कमी करनेके उपाय कपासोंकी कुविसय क्षेत्रफल बढ़ गया था।
 मिठ-मउदुलोंकी बढ़ती हुई संख्याके कुवनोंकी संख्यामें कमी की ऐसी
 निरस्तुत बाध और बंदरोंके व्यापार की कुवियों की संख्या में बढ़ती।
 राष्ट्रीय कुवनोंका पूर्णकालीन स्वनिर्भर स्थापन करनेका बीरव आरम्भिक
 अवस्था ही बना था। मुद्राबैद्यकीके व्यवसाय केवल आर्थिक एवं
 वैज्ञानिक कला और अधिक विद्या। कदाचित्कालीन ईशान्यार चीनकी
 और कर्मदुष्टक होते हुए की विविध व्यवसायोंके व्यवसाय तक कुवनोंकी
 कला वह व्यवसायके कारण ही व्यवसाय कीकमी हो गयी थी। किन्तु
 विविध व्यवसायों की कमी केवलार्थ कावने केवलार्थ विविध व्यवसायोंद्वारा
 देखकी हवि और हवकीने पुनर्व्यवस्थापन व्यवसाय कर दिया था।
 १९३ ई के आन्दोलनके ही राष्ट्रीय व्यवसाय कमी राष्ट्रीय केवल
 और-बीरके व्यवसाय कमी आरम्भ कर दी थी और अनेक बंदरोंके स्थापन-
 आन्दोलनकी व्यवसायका नेत्र देखकी व्यवसाय राष्ट्रीय व्यवसाय-द्वारा कमी
 जिने की बाधकी है।

ईश्वर इच्छित वस्तुओंके आरम्भ- कमी बहुतायुक्त कमी-कर्मों
 को व्यवसायपूर्वक मह कर दिया था। १८५३ ई के व्यवसाय की कुछ
 वस्तुओं तक व्यवसायके कमी पुनर्व्यवस्थापनकी कीर्ति होव्याप्त नहीं दिया।
 किन्तु व्यवसाय और आधुनिक व्यवसाय तथा व्यवसाय और आधुनिक व्यवसाय
 कुछ व्यवसायों आधुनिकोंके व्यवसाय आधुनिक व्यवसायोंके व्यवसाय
 कमी-कर्मोंका पुनर्व्यवस्थापन आरम्भ कर दिया। १८७९ ई तक राष्ट्रीय
 व्यवसायोंकी संख्या ५८ थी और १८८९ ई तक बढ़ ९ हो गयी थी। १९-
 की व्यवसाय आरम्भ तक ९ जिने व्यवसाय ही व्यवसाय की जिने १३
 कमी व्यवसाय कमी था और की व्यवसाय व्यवसाय कमी थे। व्यवसाय

मिलें सूत कातनेका कार्य करते थे, कपड़ा इस्लैण्डमें ही बनकर आता था ।
 जमशेदजी टाटाने लोहेका कारखाना पढ़ने ही चालू कर दिया था । कुछ
 अन्य चीजोंके कारखाने भी स्थापित होने लगे । १९१४ ई० के महायुद्धसे इन
 उद्योग-धंधोंकी भारी प्रोत्साहन मिला और उन्होंने अनूतपूर्व प्रगति की ।
 लोहा, सूत और चीनीके उद्योग विशेषरूपसे चमके, कुछ मिलें वस्त्र भी
 बनाने लगीं । १९१८ ई० की सरकारी इण्डस्ट्रियल कमाशनकी रिपोर्टमें
 देशकी औद्योगिक उन्नतिके महत्त्वपर बल दिया गया और उन्नतिके अनेक
 उपाय सुझाये गये । १९२४ से १९३९ ई० के बीच भारतीय मिल-उद्योगने
 अपूर्व उन्नति की । वैज्ञानिक अनुसन्धानशालाओं और कई स्पानोंमें पानीसे
 तैयार की जानेवाली विद्युत् शक्तिने भा इस काममें भारी सहायता की ।
 प्रत्येक प्रान्तमें एक औद्योगिक विभाग शुरू गया, सरकारने सहायता, प्रथम
 और कुछ द्रव्य प्रदान किया । रेल, मोटर, तार-झाक आदिसे यातायातकी
 सुगम सुविधा भी अत्यन्त सहायक हुई । दूसरे विश्वयुद्धने भारतीय मिल-
 उद्योगकी और अधिक प्रोत्साहन दिया । फलस्वरूप स्वतन्त्रताप्राप्तिके
 समय तक भारतीय उद्योग-धंधे पर्याप्त विकसित हो चुके थे और दैनिक
 उपयोगकी उन वस्तुओंमें-से जो पहले विदेशोंसे आयात की जाती थीं,
 अधिकतर अब भारतमें ही बनने लगीं । इतना ही नहीं, कुछ वस्तुओंका
 भारत कतिपय विदेशोंकी भी निर्यात करने लगा । मिल-उद्योगके उत्थान-
 के कुछ पहलेसे ही भारतीय व्यापार और व्यापारियोंकी दशा भी सुन्नत
 होने लगी थी । उद्योग धन्धोंके उत्थानने उसे और अधिक सुन्नत किया ।
 धीरे-धीरे देशके आन्तरिक व्यापारका अधिकांश तो उनके अधिकारमें
 आता ही चला गया, थोड़ा-थोड़ा विदेशी व्यापार भा उनके हाथमें आने
 लगा । अनेक अँगरेजी या अन्य विदेशी कम्पनियों और फर्मोंमें भी भारतीय
 हिस्सेदार, साक्षीदार या प्रधान कार्यकर्त्ता, मैनेजिंग एजेण्ट आदि होने लगे ।
 वर्तमानमें देशका अधिकांश देशी एवं विदेशी व्यापार देशवासियोंके हाथमें
 है । व्यापार और उद्योग-धन्धोंके संचालनके अतिरिक्त स्कूल, वैरिस्टर,

[illegible]

विद्या-वर्द्धित ज्ञान-विकास और जनशक्ति की पुनर्स्थापना ।
 वायव्यप्रशासन ने राष्ट्रीय स्तर पर विद्या-जनकता और इसके समान
 ज्ञान-विकास और ज्ञान-वृद्ध हो चुके हैं । वस्तुतः प्राथमिक विद्यालयों
 में अपने स्वार्थ और पुनर्स्थापित किए जाने की प्रेरणा के द्वारा राष्ट्रीय
 वायव्यप्रशासन के लिए भी और इसके लिए एक समान चालू किया
 गया कारणों की वायव्य प्रार्थना, यदि यदि प्रेरणा वायव्यीय की
 ईश्वरी प्रेरणा प्रसार करने की वायव्य प्रार्थना की शिक्षा करने का
 समान चालू किया वायव्यप्रशासन और वायव्य प्रार्थना एक वायव्य की
 शिक्षा एक वायव्य-वृद्ध की विकास और वायव्यप्रशासन की वायव्य
 वायव्यप्रशासन अनुसार वायव्यप्रशासन किया । वायव्य प्रेरणा विद्यालयों में वायव्य
 वायव्य वायव्य प्रार्थना के लिए वायव्य प्रार्थना की, ईश्वरी,
 वायव्यप्रशासन और वायव्यप्रशासन वायव्यप्रशासन और वायव्य प्रार्थना
 वायव्यप्रशासन की भी वायव्य । वायव्यप्रशासन एक वायव्य और वायव्यप्रशासन एक
 वायव्य प्रार्थना वायव्यप्रशासन । १८वीं शताब्दी के वायव्य प्रार्थना
 वायव्यप्रशासन वायव्यप्रशासन १९वीं शताब्दी प्रार्थना प्रार्थना प्रार्थना

शिक्षा और अँगरेजोंके निकट सम्पर्कसे लाभान्वित राजा राममोहन राय, राधाकांतदेव, जयनारायण घाष आदि भारतीय प्रतिष्ठित जनोंने और इंग्लैण्डमें ग्राण्ट तथा विल्बर फ़ोर्सने भारतमें शिक्षा-प्रचारके आन्दोलनको प्रगति दी। १८१३ ई० के कम्पनीके चार्टरमें सरकारने इस मदमें एक लाख रुपया यापिक व्यय करनेकी स्वीकृति दी, १८१५ ई० में गवर्नर-जनरल लार्ड हस्तिंग्सने अपने सरकारी मसविदेमें शिक्षा-प्रचारके महत्त्वपर जोर दिया, १८१६ ई० में कलकत्तेमें हिंदू कॉलेजकी स्थापना हुई, १८२३ ई० में कलकत्ता बुक सोसाइटी एव कलकत्ता स्कूल सोसाइटीकी स्थापना हुई तथा ऐडम और विल्सनकी अध्यक्षतामें सार्वजनिक शिक्षा कमेटीका निर्माण हुआ। १८३३ ई० के चार्टरमें शिक्षा-व्ययकी सरकारी रकम दस लाख कर दी गयी। १८३५ ई०में लार्ड वेंटिकने शिक्षाका माध्यम अँगरेजी निश्चित किया। १८४२ ई० में पब्लिक इन्स्ट्रुक्शन कमेटीके स्थानमें कौन्सिल ऑफ़ एजुकेशन स्थापित की गयी। संयुक्त प्रान्तके गवर्नर सर जेम्स टाम्सनने देहाती स्कूलोंकी स्थापनाका कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। १८५४ ई० में चार्ल्स वुड-द्वारा प्रस्तुत सार्वजनिक शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्टमें कहा गया था कि “शिक्षाके सिवाय और कोई प्रदान ऐसा नहीं है जिसपर सरकारको सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। भारतवासियोंको वे नैतिक एव आर्थिक लाभ जो केवल विद्योपा-ज्जनसे ही प्राप्त हो सकते हैं, उपलब्ध कराना सरकारका पवित्र कर्त्तव्य है। हम चाहते हैं कि भारतवर्षमें ऐसी शिक्षाका प्रचार हो जिसके द्वारा जनताको यूरोपके साहित्य, विज्ञान, दशन, कला आदिका ज्ञान हो।” रिपोर्टमें यह भी कहा गया था कि “सार्वजनिक शिक्षाके लिए मातृभाषा ही प्रधान माध्यम है परन्तु अध्यापकोंको अँगरेजीका ज्ञान होना आवश्यक है। देशी भाषाओंकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए, किन्तु जहाँ कहीं अँगरेजी भाषाके पढ़नेकी इच्छा प्रकट की जाये वहाँ उसका प्रचार करना स्वाध्य है।” फलस्वरूप विभिन्न प्रान्तोंमें पुषक् पुषक् व्यवस्थित शिक्षा-

मुकम्मल अरबी कालिग्राफ होकर इंजीनियर, अध्यापक केवल सम्पादन वचनार इलाहाबाद विभवसुदूर कैदमिह आदि केने बरवाही और और-बरावारी सुतागे कया हैं, जो आदिनी बनाने, अन्य बरावारी खोजिनी, गऊमे ठ आदि अनेक बरनेन व्यवसाय डिस्टिग प्राप्तकालमें उचित हुए । बिबकी तथा बरनी अज्ञानाके इनकीने आनेकाले अनिष्ट बरावारी कालमें मुनिबाही और निरवर्ति इलाहाबाद आनेकाले बिबकी कैदमिह आदिबरावारीके साथ आनेके बीबन बिबान्नी बंधन बनावा बीबन-लरकी कया बरवा आनेन बीबनकी अलतला बरवाही और बीबन-लरकीके अतिरु एवं उह कया गिया । इन प्रकार बिबकी केनेके अनुकूल बरावारी अनेकीनेकी आदिन पुनरुत्थान हुआ अनेके अरब की ई और कुछ बरानिनी की ई ।

विद्या-आदिन ज्ञान-विज्ञान और कलाशिक्षा की पुनरुत्थान हुआ । अलतलाकालमें भारतकी अरबी विज्ञान-अज्ञाना और इनके अरब ज्ञान-विज्ञान और अरब-गह हो चुके थे । अरबीके आरम्भिक अधिकारीके ने अने लार्ड और मुनिबाके लिप् अनेकी नी-विबो कुछ आली-बीबी आलम-अला अलम की और इनकी बुक्तिके लिप् अलम बानु किया । अली बराने ई. ७ अलम आरम्भिक आरि आदि अनेके बरानिनी की ईसाई अरबका अरार करनीकी आलमके आली-बीबी डिस्टिग अनेक अलम बानु किया, आलम-अला और अलम अनेका एक आलम की बीबन, एक अलम-अरब की लिफतला और आरम्भिक कई आलीन आलम-अली अनुसार अलमिह किया । कुछ अनेके अलमिह-अली लालम-बुलाम अरब विज्ञाना दृष्टिके लिप् आलीन आदिन बरब ईसाई, गुराजल और अलम-अला अलम-अला बानु किया और अलम अलमिह अलम-अली की बीब बरबी । अलम-अली एक अलम और अलम-अली एक अलम अलम लालमिह हुए । १८वीं अली ई के अलम अरब अनेक अलम-अलीके अलम-अली १९वीं अलीके अलम अरब अने अनेकी

विद्यालय स्थापित हुए : १८५७ ई. के ही प्रथम-प्रथम वर्षोंमें विद्याभित्त-
नम एवं विद्याभित्त स्थापित होने लगे । विद्याभित्तोंकी संख्या भी
हृदयपूर्वक बढ़ने लगी ।

[illegible]

प्राप्त किया है। अनगिनत सरकारी अथवा सङ्कार-द्वारा स्वीकृत उपरोक्त प्रकारकी शिक्षा-संस्थाओंके अतिरिक्त कबो-टंगोरको विश्वभारती, प्रो० कर्वेका महिला विश्वविद्यालय, गान्धीजीका सेवाश्रम-जैमो महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ, मण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट जैसे अनेक प्राच्यविद्यामन्दिर, सांस्कृतिक संशोधक मण्डल, खोज बाध एवं अनुम-धान-सम्बन्धी विद्याकेन्द्र, साम्प्रदायिक विद्यालय, पाठशालाएँ और मदरसे, सार्वजनिक पुस्तकालय आदि यत्र-तत्र खुल गये। छापेखानों, साम्प्रदायिक या व्यवसायी प्रकाशन-संस्थाओं और क्रमों, समाचारपत्रा, साप्ताहिक पक्षिक मासिक त्रैमासिक पत्र पत्रिकाओं आदिने भी ज्ञानका प्रसार करने और देशको शिक्षित करनेमें भारी योग-दान दिया। सिनमा और रेडियो आदि मनोरञ्जनके आधुनिक उपकरणोंने भी जनसाधारणको शिक्षित करनेमें सहायता दी। अनेक प्रकाण्ड भारतीय विद्वानोंने प्रारम्भमें पाश्चात्य विद्वानोंके पथ प्रदर्शन या सहयोगमें और कालान्तरमें अधिकांशतः स्वतः ज्ञान और विज्ञानके प्रायः सभी विभिन्न एवं विविध क्षेत्रोंमें आश्चर्यजनक एवं स्तुत्य कार्य किया और भारतीय प्रतिभाकी प्रतिष्ठा विश्वमें स्थापित की।

साथ ही विभिन्न भारतीय भाषाओं और उनके अपने-अपने साहित्य-का भी अभूतपूर्व विकास हुआ। बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, कन्नड़, उर्दू और हिन्दी आदि प्रमुख देशी भाषाओंने स्तुत्य प्रगति की। संस्कृत, प्राकृत, पालि और अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओंके अध्ययनकी भी प्रोत्साहन मिला। हिन्दी, बंगला आदि प्रचलित देशी भाषाओंका सम्पक्-विकास ब्रिटिश शासनकालमें ही हुआ। यों उनकी काव्य-भाषाका उद्गम एवं पर्याप्त विकास पिछली पाँच छह शताब्दियासे होता आ रहा था, किन्तु गद्य-लेखन और उसकी शैलियोंका विकास प्रायः इसी कालकी देन है। प्राकृत भाषासे विकसित और पूर्वमध्यकालीन अपभ्रंश भाषाके द्वारसे उदित होनेवाली हिन्दी इस देशके पञ्जाबसे लेकर बिहार और हिमालयकी तराई-से लेकर नर्मदापर्यन्त बहुभागमें ब्यवहारमें आनेवाली सर्वाधिक प्रचलित

[illegible]

भौतिक एवं वाय दोनों प्रकारके शास्त्रीय एवं लोकप्रिय स्वरोंका विभिन्न
 संगीत-विद्यालयों, कला केंद्रों, नाटक-समाजों मिनेमाओं एवं रेडियो-द्वारा
 पर्याप्त विकास एवं प्रचार हुआ। नृत्य-कलाका भी पुनरुत्थान एवं विकास
 हुआ। इस कलाके शास्त्रीयरूपों, विभिन्न प्रदेशोंमें प्रचलित लोकरूपों,
 पाश्चात्यरूपा आदि विभिन्न प्रकारोंका विकास एवं समन्वय हुआ।
 चित्रकलाके पुनरुद्धारका श्रेय कलकत्ता गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्टके
 प्रिन्सिपल ई० बी० हैवेल्सको है जिनके प्रभावमें अन्नोन्द्रनाथ ठाकुरने
 भारतकी प्राचीन कलाको पुनरुज्जीवित करनेके प्रयत्नमें एक नवीन शैली-
 का विकास किया। नन्दलाल बोस, अब्दुर्रहमान चुगताई, डॉ० सुलेमान
 आदि अन्य अनेक प्रसिद्ध चित्रकारोंने चित्रकलाके पुनरुत्थानमें प्रभूत
 सहयोग दिया। मूर्तिकलामें विषयको प्रत्याकृति बनानेकी ओर अधिक
 लक्ष्य रहा, उसके भावपक्षकी इस कालमें विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला।
 स्थापत्य कलाके क्षेत्रमें भी सादगी सुविधा और उपागिताकी ओर अधिक
 ध्यान रहा। इस कालमें अनगिनत सरकारी और गैर सरकारी इमारतें
 बनीं, किन्तु वस्तुतः कलापूर्ण कृतियाँ कहलाने योग्य उनमें शायद दो चार
 ही निकलें तो निकलें। वास्तवमें इस युगमें कलाका भी पुनरुत्थान तो
 हुआ, किन्तु सभी कलाओंपर आधुनिक पाश्चात्य सम्प्रदायकी भारी छाप
 और प्रभाव रहा।

धर्म और समाजका इस धर्मप्राण देशमें अविनाभावो सम्बन्ध रहा
 है। सामाजिक जीवनका प्राय कोई अंग ऐसा नहीं रहा जो धर्मके प्रभावसे
 ओत प्रोत न रहा हो। इस देशकी संस्कृति भी प्रधानतः धर्मानुसारो ही
 रही, और क्योंकि विचार एवं विश्वास-स्वातन्त्र्यका भी इस देशमें सदैव
 सम्मान हुआ है, अतः यहाँ प्रारम्भसे ही कई-कई धर्म और उनसे सम्बन्धित
 संस्कृतियाँ साथ-साथ बहुधा सद्भाव और सहयोगमूलक ही फलती फूलती
 रहीं। सुदूर प्रागैतिहासिक कालसे ही चली आयो भारतीय संस्कृतिकी
 द्राविड़ आर्य, द्राव्य वैदिक अथवा श्रमण ब्राह्मण रूप विस्तृत स्वदेशी द्विविध

बालकृष्ण इतिहास एक ही

सभ्यतासे अत्यधिक प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। पश्चिमकी धर्म, विचारों, आदर्शों, रहन-सहन, वेशभूषा, आविष्कारों, पद्धतियों एवं प्रणालियों, सभीका भारतीय जीवनपर प्रभाव पड़ा। इसमें भी सन्देह नहीं कि कतिपय जिज्ञासु अंगरेज मनीषियोंने प्रारम्भसे ही भारतीय धर्म, संस्कृति, साहित्य और इतिहासके ज्ञानका पुनरुद्धार करना भी शुरू कर दिया था। और यह कार्य उत्तरोत्तर उन्नति करता गया तथा उसने भारतके सम्बन्धमें पश्चिमी जगत्की धारणाओंको परिवर्तित करनेमें, उनकी भूलोंका संशोधन करनेमें और भारतकी सांस्कृतिक विभूतिका आदर करनेमें पर्याप्त सहायता दी। तथापि भारतका यह प्रभाव अधिकांशतः बौद्धिक ही रहा, व्यवहार-दृष्टिसे उसका फल प्रायः नगण्य ही रहा।

अस्तु, अंगरेजोंके सम्पर्कसे देशमें जा जागृति हुई उसका एक परिणाम धर्म और समाजमें सुधार करके उसे यूरोपवासियोंके आदर्शपर उन्नत बनानेके प्रयत्न थे। संस्था, प्रभाव और व्यापकताकी दृष्टिसे अपने अनेक, बहुधा परस्पर भिन्न एवं विरोधी, रूपोंके बावजूद, देशका प्रधान धर्म अब कथित हिन्दूधर्म था और प्रधान समाज हिन्दूसमाज था। हिन्दूसमाजमें भी वर्ण एवं जाति व्यवस्थाके कारण भारी अनैष्य था। उनमें भी अघण अछूत शूद्रोंकी संख्या आधेसे अधिक थी जिन्हें चतुर अंगरेजाने 'दलित जातियाँ' या 'परिगणित जातियाँ' आदि नाम दिये। उनकी सामाजिक आर्थिक बौद्धिक एवं नैतिक दशा अवश्य ही अत्यधिक शोचनीय थी और जितनी थी उससे कहीं अधिक वणन की जाती थी। १९वीं शतीके पूर्वार्धमें ही राजा राममोहन रायने धर्म एवं समाज-सुधारके उद्देश्यसे ब्राह्म समाजकी स्थापना की थी। इसमें वर्ण व्यवस्था और मूर्तिपूजाका बहिष्कार था और इसका शुकाय अंगरेजियत एवं ईसाइयतकी ओर अधिक था। उस कालमें अंगरेजोंके साथ खान-पानका सम्पर्क रखनेवाला या समुद्रपार जानेवाला व्यक्ति जाति और धर्मसे व्युत्त कर दिया जाता था, और ऐसे लोगोंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी। ब्राह्म-समाज उनको आश्रय देता था, अतः उसका प्रचार

विधवा-विवाह आन्दोलन चलाया । अन्तर्में महात्मा गांधीने समाज-सुधार-को अपने राजनैतिक आन्दोलनका प्रमुख अंग बनाया और विशेषकर अछूत कही जानेवाली जातियोंके उद्धारके लिए हरिजन-आन्दोलन चलाया । अब भी अनेक धार्मिक और सामाजिक नेता इस युगमें हुए । वैज्ञानिक शिक्षा, पाठ्यालय विचारों एवं सभ्यताके सम्पर्क विदेश-यात्रा आदिन भारतीयोंके दृष्टिकोणमें भारी परिवर्तन कर दिया । ऋद्धि, रीति, प्रथा, शास्त्रीय वक्तव्य और पण्डितो पुराहितोंके पतव्योंकी अपेक्षा युक्ति और तर्कको अधिक महत्त्व दिया जाने लगा । अनेक बन्वन तो आधुनिक सभ्यताके स्कूल, अस्पताल, रेल, होटल, छापाखाना आदि विविध उपकरणोंने स्वयं ही ढोले करने प्रारम्भ कर दिये थे । इन सबके योगमें उपरोक्त आन्दोलनोंके फलस्वरूप धर्म और समाजमें प्रभूत सुधार एवं जागृति आ गयो । दलित जातियोंको दशा सुधरन लगी, स्त्री-जातिमें शिक्षा, स्वनिर्भरता, परदेका अभाव आदि वेगके साथ बढ़ने लगे, विदेश-यात्रा, विधवा विवाह, विजातीय विवाह आदि बुरे न समझे जाने लगे और बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय आदि हेय ममक्ष जान लगे । इस प्रकार हिन्दू जातिका पर्याप्त पुनरुत्थान हुआ ।

सह्या और प्रभावमें बहुत कम होते हुए भी भारतीयता, प्राचीनता, देशमें व्यापकता एवं सांस्कृतिक समृद्धिमें कायन हिन्दू धर्म और समाजके प्रायः समकक्ष जैनधर्म और जैन-समाजमें भा उपरोक्त युगानुसारी प्रवृत्तियाँ, विचारों एवं क्रान्तियोंका प्रायः पैसा ही प्रभाव पड़ा । अब भा दशक प्रायः प्रत्येक भागमें पाये जानेवाले जैन अधिकांशतः मध्यमव्यय एवं उच्चमध्यम वर्गके व्यापारप्रधान समृद्ध एवं सम्पन्न भारतीय थे । सामाजिक संगठन, शिक्षा, सशस्त्र, स्वधर्मज्ञान एवं धार्मिकताकी दृष्टिसे वे अब समाजोत्तम बहुत कुछ आगे थे । विवाह गम्भीर कुप्रथाओं, छूताछूत, विदेशगमन, धर्मशास्त्रोंके छापे जानेका विरोध, स्त्री जातिकी अज्ञानता, परदा आदि अनेक कुरीतियोंके सम्बन्धमें मध्य एवं उच्च वर्गोंके हिन्दुओं जैसा ही

और प्रचार बहुत बढ़ा । केवलचन्द्र तैम्बे जैसे और भाये बहुत । ऐन-
 बाब छत्रपुरी ब्रह्म-समाजका प्राचीन वैदिक वाद्योंके साथ सम्बन्ध करने
 के प्रयत्नमें आदि ब्रह्म-समाजके कर्ममें उनकी एक नयी धानाकी कल्प
 दिया । इसके अनुकरणमें ब्रह्मचर्यव्रत निर्गुन स्वेच्छावासी आर्ष-ब्रह्म-
 की स्थापना हुई । ब्रह्मचर्य बौद्धिक पद्धति और पद्महन्त्र बौद्धिक प्रचार
 पर प्रार्थना समाजके प्रमुख विद्या थे । रत्नादेवे समाज-सुधारके ही गौरव
 है ऐनम् स्तुति-संग शोभाइतीनी और वाद्योंके शोचन गुण बौद्धिकमें सर्व-
 बाध इच्छिका शोभाइतीनी की स्थापना की । स्वामी पद्महन्त्र परम्परा
 की वैराग्यी विचारोंका प्रचार किया उनके विषय स्वामी विवेकानन्दने
 तथा स्वामी पद्महन्त्रके विषयोंमें भी वाद्यों भारतीय ब्रह्मचर्यवादी
 कुर्रद और अमेरिकाके विद्यार्थियोंकी प्रभावित किया । पद्महन्त्र विज्ञान
 की एक नया सुधारकत्व बन गया । १८७५ ई में वैदिक ब्रह्मचर्यमें
 भारतीय वाद्योंकी एक नयी रूप लेकर विद्यार्थियोंके शोभाइतीनी
 स्थापना की । चौवती एनीवेष्टमें इन क्षेत्रमें स्तुति काय किया । अमेरीकी
 पत्र-पत्रों भारतीयमें प्रकाश बढ़ा प्रचार हुआ । १८७५ ई के ही लगभग
 स्वामी ब्रह्मचर्यके आर्ष-समाजकी स्थापना की वे भी अमेरिका, ब्रिटिश एवं
 विद्यार्थियोंके विषयों में समाज-सुधारके प्रयत्नों में और वाद्यों वैदिक
 प्रकाश गुण प्रचार करना चाहते थे । प्रयत्न और उत्तर प्रयत्नों आर्ष-
 समाजका बहुत प्रचार हुआ । विष्णु शर्मा आर्ष-समाज ब्रह्मचर्यमें सर्व-
 सुधारियोंकी दूर करनेका प्रयत्न किया स्त्री-वाद्योंके सुधार और विद्यार्थियों
 के आर्षों भावे बढ़ाया और मुक्तकामों एवं ईश्वर-संग कलाओंकी कर्म
 प्रयत्नों में प्रयत्न करनेमें भागे भागे की बड़ी ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य की बहुत ब्रह्मचर्य
 एवं ब्रह्मचर्य प्रयत्न करके कर्म-समाजकी वाद्यों प्रयत्नों की ही
 प्रयत्नों । विष्णु इत्यादी भी एक ब्रह्मचर्य ही हुआ ब्रह्मचर्य कर्म भी अपने-
 अपने ब्रह्मचर्य एवं ब्रह्मचर्य करनेमें प्रयत्न हुए । अमेरीके स्वामी विवेकानन्द-
 ने पद्महन्त्रकी ब्रह्मचर्यकी स्थापना की । ब्रह्मचर्य ईश्वरचन्द्र विद्यावाक्यने

सस्थाएँ स्थापित हो गयी जिनसे शोध खोज एवं विविध विषयक साहित्य-
 का सृजन तथा प्रकाशन होने लगा । बाल-पाठशालाओं, बालिका-
 विद्यालयों एवं उच्च संस्कृतविद्यालयोंके अतिरिक्त जैन स्कूल, कॉलेज,
 छात्रावास, बाला-विश्राम, अनाथालय आदि भी शीघ्रताके साथ स्थापित
 होने लगे । स्त्री-शिक्षा, अन्तर्जातीय या विजातीय विवाहके पक्षमें और
 वृद्ध विवाह, कया-विक्रय आदिके विरोधमें उग्र आन्दोलन चले और पर्याप्त
 सफल हुए । दस्तापूजाधिकार-आन्दोलनने किमी भी व्यक्तिके धर्मपालनकी
 स्वतन्त्रता अपहरण करनेकी प्रथाका अन्त कर दिया । समाज सुधारके
 उद्देश्यसे ही दिगम्बर जैन परिषद्-जैमी सम्पाठ भी स्थापित हुई । तीर्थ-
 क्षेत्रोंके प्रबंधके लिए कमेटियाँ बनीं किन्तु इस प्रसंगको लेकर दिगम्बरों
 और श्वेताम्बरोंमें कई तीर्थोंक एकाधिकारक प्रश्नपर खेदजनक मुकदमे-
 वाजियाँ भी चलीं जिन्होंने घातक साम्प्रदायिक वैमनस्यमें वृद्धि की, जो
 कनिष्ठ नेताओंके सत्प्रयत्नोंमें इधर कुछ दशकोंमें किंचित् शान्त पड़ गया
 है । अंगरेज प्राच्यविदोंने १८वीं शताब्दीके अन्तिम पादमें ही जैनधर्म
 एवं साहित्यमें रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी थी । १९वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें
 अनेक अंगरेज विद्वानोंके प्रयत्नोंसे जैनधर्म, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्त्व
 और इतिहासके अनेक अंगोंपर स्तुत्य प्रकाश पड़ा और धीरे-धीरे जैन-विद्या
 भारतीय विद्याका एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी । १९वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें
 अंगरेजोंके अतिरिक्त अनेक जर्मन, फ्रान्सीसी, इटालियन आदि अन्य पश्चिमी
 देशोंके प्राच्यविदोंने भी जैन विद्याके अध्ययनको प्रभूत प्रगति प्रदान की
 एवं जैन धर्म और उसके इतिहाससे सम्बन्धित अनेक भ्रामक धारणाओंका
 सफल निरसन किया । वीरचन्द्र राघवजी गान्धी, पं० लालन, जगमन्दरलाल
 जैनी, चम्पतराय बैरिस्टर आदि अनेक जैन विद्वानोंने यूरोप और अमे-
 रिकामें जाकर जैन धर्म एवं दर्शनका प्रचार किया । भारतमें अनेक जैन
 एवं अजैन प्रकाण्ड भारतीय प्राच्यविदों एवं विद्वानोंने जैन अध्ययनको
 उत्तरोत्तर प्रगतिवान् किया और यह क्रम चालू है । इस प्रकार इस युगमें

पुनरुत्थान युग

मुसलमान नेताओंकी भाँति राजनीतिक लाभोंकी ओर अधिक रहा है और धर्म, समाज एवं संस्कृतिक पुनरुत्थानकी ओर कम ।

पारसी समाज छोटा-सा किन्तु सर्वाधिक समृद्ध, सुशिक्षित एवं गठानुगता समाज है । अंगरेजी शासन और सम्यताका सर्वाधिक लाभ उमने अपनी व्यापारिक, औद्योगिक एवं सामाजिक उन्नति करनेमें उठाया ।

बौद्ध धर्म लगभग एक सहस्राब्दीके उपरान्त अब कुछ दशकोंके बीच इस देशमें बाहरसे आकर फिरसे उदय हो रहा है, देशमें उसके अनुयायियोंकी संख्या चाहे अधिक न बढ़ रही हो किन्तु समर्थकों एवं प्रशंसकोंकी कमी नहीं है । धार्मिक दृष्टिसे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पुनरुत्थान इस कालमें बौद्ध धर्मका ही हुआ है ।

ईसाई धर्मने अंगरेजी शासनके आश्रय, संरक्षण एवं सहायता, सहयोगसे भारी उन्नति की थी । निम्न जातियोंकी दीन गरीब अशिक्षित जनताको ईसाई बनानेमें उन्होंने अधिक ध्यान दिया और उसमें वे पर्याप्त सफल भी हुए । उनके मिशनरों और पादरियोंने स्कूला, अस्पताला, अनाथालयो आदिके द्वारा देशको लाभ ही पहुँचाया, सेवाभावका आदर्श भी मज़ी प्रकार प्रस्तुत किया, किन्तु इन सत्प्रयत्नोंमें यही सबसे बड़ा फलक है कि इस दशमें ईसाई धर्मका प्रचार करनेके पीछे पश्चिमी गोरी ईसाई जातियोंके राजनीतिक उद्देश्य ही प्रधानरूपसे कार्य करते रहे और सम्भवतया अब भी कर रहे हैं । वैसे ईसाई समाज अपेक्षाकृत शिक्षित एवं सामान्यतया उन्नत समाज रहा है ।

इस प्रकार गत शताब्दीके पुनरुत्थान युगमें भारतवर्षने जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें नवीन जागृति, प्रगति एवं उन्नति की । इस सर्वतोमुखी पुनरुत्थानने स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ एक बड़ी मजिल तय कर ली । देशका पुनरुत्थान हो चुका, अब वह सबप्रकार समर्थ सचेतन होकर अपने पैरोंपर खड़ा है और सम्यताकी दौड़में विश्वके अन्य सम्य राष्ट्रोंके साथ समान स्तरपर भाग लेनेके लिए कटिबद्ध है । यदि अपनी सांस्कृतिक

प्रमुख तिथियाँ

१. देशो भारत

१ करोडसे ६ लाख वर्ष पूर्व	पूर्व पाषाण युग
लगभग ६०००००-१५००० ई० पू०	पुरातन पाषाण युग
„ १५०००-८००० „	नध्य पाषाण युग
„ ८००० „	घातु-युग एव मानव सम्यता और मस्कृतिका उदय, ऋषभ-युग
„ ६०००-२५०० „	सिन्धु घाटो सम्यता-पूर्वकी मानव एव पश्चिम और दक्षिणकी विद्या- घर (द्रविड) सम्यताएँ
„ ३०००-१००० „	वैदिक आर्य-सम्यता
„ २००० „	रामायण काल, अयोध्याके श्री रामचन्द्र मगधमें २०वें तीर्थ- कर मुनिसुग्रत, दक्षिणमें वानर- वशी तथा ऋष जातिकरावण आदि
„ १४४३ „	महाभारत युद्ध, महाराज कृष्ण, २३वें तीर्थकर अरिष्टनेमि
„ १४००-७०० „	उत्तर-वैदिक काल, उपनिषदोंकी रचना, नागोंका पुनरुत्थान, ब्राह्मणों एव श्रमणोंका पुनरुत्कर्ष
„ १००० „	हस्तिनापुरका विनाश

परम्पराके समस्त धर्म एवं कथ्येय तत्वोंका माछापी भारतीयताका, संरक्षण करते हुए और उन्हें अतपीतर समुपज बनाते हुए यह काम बहुत है तो यह अवश्य ही स्व-सर-सम्पादनका लक्ष्य प्राप्त कर केवल हमारे पीढ़े कहेय़ नहीं है ।



४८७-६६७ ई० पू०	पाटलिपुत्रनरेश अनुसुद, मुष्ट, नागदास आदि
४८७ "	गोत्रमवृद्धका पगिनियोग (मृष्ट)
६६७ "	मगधन जेगनाग शास्त्राग्नि-द्वारा विजयवंश (पुष्यनक्षत्र) की स्थापना
६६९ ,	अवन्तीका मगधराज्यम मित्रता
४६५ "	मगधोर-वरमन्त्राक अग्निम अहत्वेवलि सम्बु- स्थामोका नियोग
४४९-४०७ "	मगध-मम्राट नन्दवशत पाण्डिगोश, देवाकरन पाणित
८०८ "	नन्दिवशत-द्वारा कालिग विजय
४०७-३६४ "	मगध-मम्राट महाराजिन्
३६६ "	अग्निम अहत्वेवलि भद्रवाहका (जैन) मध- महित अग्निम दशका विहार मगधमे द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षका प्रारम्भ
३६१ "	कर्णाटके बटयत्र पवत्तपर भद्रवाहका देहत्याग
३६३ ,	मगधमे राजदरान्ति, नवमन्दपशकी स्थापना
३६३-३०९ "	मगधका नन्दमम्राट् महापद्मनन्द
३०९-३१७ "	घनानन्द और समवे माई -८ नन्द, आर्य आणवप
३०९ "	यूनानी सम्राट् सिक्न्दरका पञ्चाथ एव सिन्धपर आक्रमण
३०९ "	मौर्य चन्द्रगुप्तका नन्दोके विरुद्ध विद्रोहारम्भ
३१७ "	मगधमे राजदरान्ति, नन्दवशत अन्न, मौर्यवश- की स्थापना
३१७-२९८ "	मम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य
३१२ "	सम्राट् चन्द्रगुप्त-द्वारा अवन्तिविजय

नवम्बर	१	—	१	१	काशी राजावा हाथ काशी
					काशी
८	३	१	१		कीर्ति काशीवा
				११२	काशीके टिपकाय-काशी काशी
					टिपकायकी हाथका
				१	(१ काथ)
					की ११ कीर्ति काशीका काशी
					का ११
२-१११					काशीका काशीका काशीका
११					काशीका काशीका काशीका
११					काशीका काशीका काशीका
१					(२१ काशी)
१					(१ काशी)
१११ १ १					काशीका काशीका काशीका
११४					काशीका काशीका काशीका
१८					काशीका काशीका काशीका
११७					(११ काशी)
११६					काशीका काशीका काशीका
११६					काशीका काशीका काशीका
१ १					काशीका काशीका काशीका
१ १-४८७					काशीका काशीका काशीका

१५८ ई० पू०	खारवेलने मगध-नरेशको पराजित किया तथा यूनानियोंको मध्यदेशसे निकाल बाहर किया
१५३ ,,	कुमारी पर्वतपर खारवेलने जैनमुनियोंका महा-सम्मेलन किया
१५२ ,,	खारवेलके हाथीगुम्फा शिलालेखकी तिथि
ल० १५० ,,	जैन मरस्वता आन्दोलनका प्रारम्भ
ल० ८५ ,,	शकोंका भारत-प्रवेश
७४-६१ ,,	उज्जैनीमें खारवेलके वंशज महेन्द्रादित्य गर्दभिल्ल-का राज्य
६६ ,,	शकोंका मालवामें प्रवेश, पुरातन शक संवत्-की प्रवृत्ति
६१-५७ ,,	उज्जैनीमें शकोंका राज्य
५७ ,,	विक्रमादित्यके नेतृत्वमें शकोंकी पराजय, मालव-गणकी स्वतन्त्रता, विक्रम संवत्का प्रवर्तन ।
८ ई० पू०-४४ ई०	सुराष्ट्र, मथुरा आदिमें शकक्षत्रप वंशोंकी स्थापना
२५-७५ ई०	जैनाचार्य कुन्दकुन्द और उनके पाहुडग्रन्थ
२६-६६ ई०	दिगम्बर परम्पराके आगमोंका सकलन
२६-६६ ई०	सुराष्ट्रका सहरात नहपान्, गौतमापुत्र शातकर्णी
६६ ई०	दक्षिणव दिगम्बर मूलसंघमें उपभेदोंकी उत्पत्ति
७८ ई०	चण्डन-द्वारा पश्चिमी क्षत्रपवंशकी स्थापना, उज्जैनी-की विजय, शक संवत्का प्रवर्तन
७८-१०० ई०	पुरुषपुर (पेशावर) का कुषाण सम्राट् कनिष्क, घोटिकाचय अश्वघोष
७०	जैनसंघका दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदायोंमें विभाजन
१२०-१	जैनाचार्य समन्तभद्र

१ १ ई १	१	पाटकुल-डाटा कुलमा नम्रा मेम्बुइको राखन
१ १ "	"	पाटकुलको राखनमाथै कुलमा राखन देरील- कीइका बाकन
१८		नम्रा पाटकुल कीइका राखनमाथै कीइ कुनि कनकर बाकनमेथेन (रतिन कनार) को कन बाका
१९८ १ ४		कीइ नम्रा बिनुकार कनिकन
२०-२१९		नम्रा कनिक
१३१ ३		कनिकका राखनमाथै
११२-११	"	कनिक-पुत्र
११३-११		कनिकके पितामाथै राखनमाथै
११४ ११		कनिकका कुन कनिकी कीइ-नम्राका कनिकी कनिक कनिक (राखनमाथै कनिकी) कनिक कनिक कनिक काई कनिक और कनिके बीच
११५-११४	"	कनिकी बिनुकार कनिकका बीचको कनिक
११५-११४	"	कनिकी कीइ कनिकके बीच
११५-११४	"	कनिक-कनिकी कनिक
१८४	"	कुपनिक कुन डाटा कनिके कनिक कीइ कनिक कनिक कन
१८४-१८४		कनिकके कुन बीच कनिककनिक-कुलमाथै, कनिक कनिकी कनिक
१८५		कनिकका कनिकमाथै
१८५		कनिकका कनिकमाथै
१८५		कनिकका कनिकमाथै
१८५		कनिकका कनिकमाथै

१५८ ई० पू०	स्वाखेलने मगध-नरेशको पराजित किया तथा यूनानियाको मध्यदेशसे निकाल बाहर किया
१५२ "	कुमागे पर्वतपर स्वारखेलने जैनमुनियाका महा-सम्मेलन किया
१५२ "	स्वारखेलके हाथोगुम्फा शिलालेखको तीर्थ
ल० १५० "	जैन सरस्वता आन्दोलनका प्रारम्भ
ल० ८५ "	शकोंका भारत-प्रवेश
७४ ई०	उज्जैनोमे स्वारखलक वज्र महेन्द्रादित्य गर्दभिल्ल-का राज्य
६६ "	शकोंका मालवामें प्रवेश, पुरातन शक सभत्का प्रवृत्ति
६१-५७ "	उज्जैनोमें शकाका राज्य
५७ "	विक्रमादित्यके नेतृत्वमें शकोंको पराजय, मालव-गणकी स्वतन्त्रता, विक्रम सभत्का प्रवर्तन ।
८ ई० पू०-४४ ई०	सुराष्ट्र, मथुरा आदिमें शकसत्तप यशाकी स्थापना
२५-७५ ई०	जैनाचार्य कुन्दकुन्द और उनके पाहुडग्रन्थ दिगम्बर परम्पराके आगमोका सकलन
२६-६६ ई०	सुराष्ट्रका शहरगत नहपान, गौतमोपुत्र शातकर्णी
६६ ई०	दक्षिणक दिगम्बर मूलसधमें उपभेदोको उत्पत्ति
७८ ई०	चष्टन-द्वारा पश्चिमी क्षत्रपवंशकी स्थापना, उज्जैनो-की विजय, शक सभत्का प्रवर्तन
७८ १०० ई०	पुरुषपुर (पेशावर) का कुपाण सम्राट् कनिष्क, बौद्धाचार्य अश्वघोष
७९ ई०	जैनसधका दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदायोमें विभाजन
१२०-१८० ई०	जैनाचार्य समन्तभद्र

१३	१५	ई	महामहाराज बहादुर जयचम नुवर्धन जीवरत्ना केन
	१८८	ई	विद्वत्पति-प्राप्त भूभूतके देवर्षिजी स्वात्म
म	२	ई	१. मानव हृदय बरदा अमृत रचित घाघरे घुमि लन्दे मातृमहामहता ज्ञान बाँधीये मानवार्थका उत्पत्ति-प्राप्त बलप्राप्तके मान और सम्मान प्राप्त
	१४९	ई	कनकजी का ईश्वर भक्तका उपलब्धि
म	२५	ई	देवर्षिजीका भूभूतके देवर्षिजी कात्म
	११९२	ई	मुक्त भक्त का बलजी भक्तका उपलब्धि काहुत प्रथमका प्रथमपर अविचार मुक्त ईश्वरी स्वात्म
	३८८	ई	महामह ननुवर्धन बाँधीये विद्वत्पति ज्ञान, प्राप्त-महामहाम
	१८९-४१४	ई	महामह ननुवर्धन विद्वत्पति विद्वत्पति स्वात्म कर्म-प्राप्त
म	४	ई	१. महामहामह ननुवर्धन ननुवर्धन ज्ञान विद्वत्, महामहामह ननुवर्धन
	४८८-४८९	ई	महामहामह ननुवर्धन ननुवर्धन
	४१४-४१५	ई	महामहामह ननुवर्धन ननुवर्धन
	४११	ई	महामहामह ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन विद्वत् कर्म-प्राप्त
	४१५-४१८	ई	महामहामह ननुवर्धन ननुवर्धन
म	४१८-४१८	ई	१. ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन विद्वत् महामहामह ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन
	४१९-४१९	ई	महामहामह ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन
	४१९-४१९	ई	महामहामह ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन
	४१९-४१९	ई	महामहामह ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन ननुवर्धन

४६५-५५५ ई०	महाकवि भारवि
४७३-५१५ ई०	हूणराज तोग्माण (कल्किपुत्र), जैनगुरु हरिगुप्त
४९२-५५२ ई०	गगनरेश दुर्विनीत कोंगुणो, चालुक्य जयसिंह विष्णुवर्धन
४९७ ई०	पूर्वी गग मधत्का प्रवर्त्तन
५०५ ई०	वराहमिहिरकी पंचसिद्धान्तिका
ल० ५२०-५५० ई०	चालुक्य पुलकेशि प्रथम
५३० ई०	मालव-नरेश यशोधर्मन द्वारा हूण मिहिरकुलकी पराजय
ल० ५५० ई०	सज्जैनोमे राजपि देवगुप्त
५५०-५७६ ई०	कन्नोजमें मौखरि ईशान वर्मन, काचोमें सिंहविष्णु पल्लव
६००-६३० ई०	पल्लव महेन्द्र वर्मन प्रथम
ल० ६००-६८० ई०	जैनाचार्य अकलक देव, भतृहरि, कुमारिल भट्ट, धर्मकीर्त्ति, महाकवि दण्डो, वाण आदि
६०४ ई०	वज्रनदि-द्वारा पाण्ड्य मदुरामें जैन ब्रविडसघका पुन सगठन
६०५-११ ई०	वल्लभीका मंत्रक नरेश शिलादित्य धर्मादित्य प्रथम
६०६-४७ ई०	स्थानश्वरमें सम्राट् हपवर्धन, गौड नरेश शशाक (६१९ ई०)
६०८-४२ ई०	वातापीका चालुक्य-नम्राट् पुलकेशिन् द्वितीय
६०९-७० ई०	गगनरेश भूविक्रम कोंगुणि
६१५ ई०	कुब्ज विष्णुवर्धन, वेंगिका प्रथम पूर्वी चालुक्य नरेश
६२९-४३ ई०	ह्वेनसांगका भारत-प्रवास
६३०-६६८ ई०	पल्लव नरमिह वर्मन प्रथम
६३४ ई०	रविकीर्त्तिका ऐहोल शिलालेख

१४३ ई

अनककका नतिनको राखकसपि बीर सिंगोके
काय मार

१४३ ८ ई

बालकन बामाद् विज्जमादित्त ब्रह्म

१७ -७१३ ई

राव पिपराट नवकाम

१८१ १९ ई

बालुकम विज्जमादित्त

१९७-७१३ ई

बालुकम विज्जमादित्त

क ७ ई

बंभालमे आरिपुर

७२९-७ ८ ई

मम भीतुदर मुत्तरन

१ -७९ ई

कपोरवी बंभालमे

७३३-७९९ ई

नमोरेमे बंभालमे मुत्तरन

७३३ ७४९ ई

बालुकम विज्जमादित्त द्वितीय

क-७३९-७९ ई

राजकुट बंभालमे

७४३ ई

कपूरु मुरि—बंभालमे ८४ बंभाल

७४९ ई

बंभाल बालुक-बालुक मुत्तरनमे बंभालमे
बंभाल

७५८-७९ ई

राजकुट बालुक ब्रह्म

७९७-८२४ ई

बंभालमे बालुकमे बंभाल

७९४ ९९ ई

बंभालमे बालुकमे बालुकमे बालुकमे

७७२ ई

बालुक-बालुक बंभालमे बालुकमे बंभालमे

क ७७५-८ ई

मुत्तरनमे बालुकमे बालुकमे

८ ई

बंभालमे बालुकमे बालुकमे

७७९-७९९ ई

राजकुट बालुकमे

७८ ई

बंभालमे बालुकमे बालुकमे बालुकमे
बंभालमे

क ७८ ई

बंभालमे

७८९ ई

बंभालमे बालुकमे

- ७९३ ई० कन्नौजमें इन्द्रायुधका राज्य
 ७९३-८१४ ई० राष्ट्रकूट गाविन्द तृतीय जगत्तुग
 ८१५- ७७ ई० राष्ट्रकूट सम्राट् अमोघवर्ष प्रथम नृपतुग
 ८१५- ५० ई० गग राघमल सत्यवाक्य प्रथम
 ८२८- ७२ ई० वगाल-नरेश देवपाल
 ८३६- ८५१ ई० कन्नौजका गुर्जर-प्रतिहार सम्राट् भोजदेव
 ८७८-९१४ ई० राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय अकालवर्ष
 ल० ९०७ ई० परान्तक प्रथम चोल
 ९३९- ६७ ई० राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय
 ९४७ ई० गुजरातमें मूलराज-द्वारा सोलंकी वंशकी स्थापना
 ९५४-१००२ ई० खजुराहोका घग जतदेव
 ९६१- ७४ ई० गग मारसिंह
 ९७३- ९७ ई० तैलप द्वितीय, कल्याणिके उत्तरवर्ती चालुक्य
 वंशका सम्थापक
 ९७४- ९५ ई० धारामें वाक्पति मुज परमार
 ९७७ ई० म्वालियरमें वज्रदामन कच्छपघट
 ९७८ ई० श्रवणवेल्लोलकी गोम्मटेश बाहुबलि मूर्तिका
 निर्माण
 ९८५-१०१६ ई० राजराजा चोल
 ९९७-१००९ ई० चालुक्य सत्पाश्र्व इरिव वेदिग
 १००६ ई० मुनीन्द्र वर्धमान-द्वारा होयसल राज्यकी स्थापना
 १०१४- ४२ ई० चालुक्य सम्राट् जयसिंह द्वितीय
 १०१६- ४२ ई० राजेन्द्र चोल
 १०१८ ६० ई० धाराका भोज परमार
 १०७६-११२६ ई० चालुक्य, विक्रमादित्य (विक्रमाक)
 १०९० ई० कन्नौजमें चन्द्रदेव द्वारा गहववाल वंशकी स्थापना

- १ ४-११४१ ई : बलिष्ठादीका बरहिदु बिजयन कोलकी
 ११ ९ ४१ ई होमकन नरीय विन्विधन एमन्मुयबार्ब
 ११४३- ४२ ई : मुजरलका मुमालाक कोलकी बीनाचर्य हेमल
 ११५ ई : बरवीर-बामरका बिजयन बीयल सिमी
 बालनपाल होवर
 ११५१- १७ ई कम्बालीमें बिजयन ककनुरि, बावन-हाथ सिम-
 कत कलकी स्वाकन
 ११५५-१२ १ ई बरवाक बन्देक
 ११५५ १३ ई सिल्लीमें मुजलीयन बीयल कलौयमें बरका
 ११८८ १३ ई बाकीनीलीकी बाण-बाणा
 ११८८ ई देवमिरिके बावचौता कल
 ११९१ ई बारबकके ककमडीय एमका कल
 ११९५ ई : हावमुकके होमकन एमका कल
 ११९५ ई इधिर एवं मुकक-हाथ विमकनवर एमकी
 स्वाकन
 ११९५ १४८५ ई विमकनवरमें लनन बंद
 १४८५ १२ ई विमकनवरमें बरहिदु कानून बनीय बंद
 १५ १ ई विमकनवरमें बरह बंदकी स्वाकन
 १५ १३ ई विमकनवर-नरीय कुलकीबाण
 १५१५ ई बरकिनीबाण मुक, विमकनवर सिमंड

२. बिदेसी शासनमें भारत

- १ १ ई बिदयी ककुय शासन
 १४४ ई बरबीय सिमनर बरब बाकनन
 ७१२ ई : मुजकनविन हाकिम-हाथ बादिरकी बरबन बर
 सिममें बरब-एमकी स्वाकन

- १८७ ई० मटिण्डेके राजा जयपाल साहो-द्वारा सुवृत्तगोन
गजनवीकी पराजय
- १९९-१०२७ ई० महमूद गजनवीके ठुटेरे आक्रमण, अलवेम्नी
- ११९१ ई० : तराइनका प्रथम-युद्ध, राजपूतों-द्वारा मुहम्मद
गोरीकी पराजय
- ११९२- ९३ ई० तराइनका दूसरा युद्ध, पृथ्वीराजकी पराजय,
दिल्लीपर मुसलमानाका अधिकार
- ११९४ ई० जयचन्द्रकी पराजय, यशोजय पर मुसलमानोंका
अधिकार
- ११९७ ई० भीमदेव सोलकी-द्वारा गौरीकी सेनावाकी पराजय
- ११९९ ई० मुहम्मदबिन घलित्यार खलजी-द्वारा बिहार व
बंगालपर अधिकार
- १२०६ ई० गोरीकी मृत्यु, कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा दिल्लीमें
मुलामवंशकी स्थापना
- १२१२-३६ ई० इल्तुतमिश दिल्लीका सुलतान
- १२२५ ई० चंगेजखान मंगोलका आक्रमण
- १२६६ ८६ ई० बलघन
- १२९० ई० जलालुद्दीन खलजी द्वारा दिल्लीमें खलजीवंशकी
स्थापना
- १२९६-१३१६ ई० अलाउद्दीन खलजी
- १३२१ ई० ग़ाज़ी तुग़लक़-द्वारा दिल्लीमें तुग़लक़वंशकी
स्थापना
- १३२५-५१ ई० मुहम्मद तुग़लक़, अफ़ोकी यात्री इब्नबतूता
- १३४७ ई० दक्षिण (गुलबर्गा) में बहमनी राज्यकी स्थापना

११५१-८८ ई	बीरीखण्ड मुद्रणक रिक्कीके मुर्ती काद्यामका कल आगम
११८८-१५ ई	मानदेवका राजकी बंद
११९८ ई	सुनगर्भका भारत-आक्रमण बीर मट-मट
११ १५९५ ई	गतिपरका तीवर राज
११ १६०५ ई	बीमपुरका पट्टी बलवन
१४ १६१२ ई	बागू (बालका) का मुलतान होयन रोगी
१४१४ ई	मुनगुईवका बाल दिल्लीमें तीवर बपकी लो- काला—बीवर गिरारया-आग
१४१५-१ ई	कबीरका मुलतान ईशुबबाबदीन (मुबकाल)
१४१६-८२ ई	बालकन मुलतान बहबुर बपकी
१४१ ई	दिल्लीमें बहलीक कोटी-दारा कोटी बहली कालका बंधाईके राजा मुग
१४१९ १५११ ई	मुलतानका मुलतान बहबुर बंधा
१४१९-८९ ई	१ बहली राजका बनिष्ठ कली बहबुर बंधी
१४८४ १५०४ ई	बहली इमरदवाली बलवन
१४८९ १५१ ई	दिल्लीका मुलतान निबलर बीरी
१४८९-१५८५ ई	बीरापुरकी बाबिलवाली बलवन
१४९ १५१ ई	बाबिलनरकी निबालवाली बलवन
१४९१ १५१९ ई	बंवाकका मुलतान हुकेनवाइ
१४९८ ई	गुर्बाली बालोदिलमाका काबीरकी बलवन
१५ १ ई	एन्बुई-आग बीरकी गुर्बाली राजकी लकल
१५१५-१९ ई	१ दिल्लीमें बंधीक कोटी
१५१८ १५८५ ई	बीरकृष्णकी मुनुरवाली

- १७४२-१४ ई० फ्रांसीसी गवर्नर सुट्टे
- १७४१-१४ ई० द्वितीय अंगरेज फ्रांसीसी युद्ध
- १७५१ ई० बलाद्वय-द्वारा अर्वाटका पेग, अंगरेजी राष्ट्रनैतिक
संविधान स्थापना
- १७५६ ई० तीसरा अंगरेज फ्रांसीसी युद्ध
- १७५६ ई० अहमदशाह अहमदशाह-द्वारा दिल्लीकी लूट
- १७५७ ई० फ्रांसीसी युद्ध, बंगालपर अंगरेजीका प्रभुत्व
- १७६१ ई० पानीपतका तामरा युद्ध, मराठोंकी पराजय,
पमताबाबा पतन
- १७६१-८२ ई० मैसूरका हुंजरजली
- १७६५ ई० : लाल बलाद्वय बंगालका गवर्नर, बलाद्वयद्वारा
गणित
- १७६७-६९ ई० प्रथम अंगरेज मैसूर युद्ध
- १७७२-७८ ई० चार्ल्स हेन्ड्रिक्स बंगालका गवर्नर
- १७७३ ई० रेगुलेशन ऐक्ट
- १७७४-८५ ई० चार्ल्स हेन्ड्रिक्स अंगरेजी भारतका गवर्नर-जनरल
- १७७५ ई० सर विलियम जोन द्वाारा बंगाल एशियाटिक
सोसाइटीकी स्थापना
- १७७५-८२ ई० प्रथम अंगरेज-मराठा युद्ध
- १७८०-८८ ई० दूसरा अंगरेज-मैसूर युद्ध
- १७८८ ई० पिट्स एडिक्ट ऐक्ट
- १७८६-९३ ई० लार्ड कार्नवालिस (ग० ज०), इस्तमरारी
चन्दोयस्त
- १७९३ ई० कम्पनीका चाटर
- १७९३-९८ ई० सर जॉन दोर (ग० ज०), हस्तक्षेप न करने-
की नीति

- ୧୧୪ ୧ ବା ୧୧ ଶିରେଇ ୧ ୧୧ ୧
 ୧୧୪୨ ୧ ଛାଟଣିଠି ବାଟଣିଠି ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୧ ୮ ୧ ବଳାବିହାର କୁଡ଼ ଛାଟଣିଠି ବଳି ବଳି
 ଶିରେଇବା ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୧ ୮ ୧ ୩୧ ଶ୍ରୀମାତା ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୧୧୮ ୧ ଶିରେଇବା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୧୩୮ ୧ ଶିରେଇବା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୧ ୧ ଶ୍ରୀମାତା କୁଡ଼ ଶିରେଇବା ବଳିବଳି
 ୧୧ ୧ ଶିରେଇବା ବଳିବଳି ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୩ ୩-୮୧୩ ୧ ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ଶିରେଇବା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୩ ୩-୧୧ ୧ ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ୧ ୮ ୧ ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି (ଶିରେଇ)
 ୧ ୧୮-୧ ୧ ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୩୧୩ ୧ ଶିରେଇବା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ଶ୍ରୀମାତା
 ୧ ୧୩-୧ ୧ ଶିରେଇବା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ୧ ୧୮ ୧୮ ୧ ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୩୧୧ ୧ ୧ ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୩ ୧ ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୩ ୧୧ ୧ ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା
 ୧୩-୧୮ ୧ ଶ୍ରୀମାତା ବାଟଣି ଶ୍ରୀମାତା

- १७४२-५४ ई० • फ्रान्सीसी गवर्नर डूप्ले
- १७४९-५४ ई० द्वितीय अंगरेज फ्रान्सीसी युद्ध
- १७५१ ई० बलाइव-द्वारा अर्काटका घेरा, अंगरेजी राजनैतिक शक्तिका सूत्रपात
- १७५६-६३ ई० तीसरा अंगरेज फ्रान्सीसी युद्ध
- १७५६ ई० अहमदशाह अब्दाली-द्वारा दिल्लीकी लूट
- १७५७ ई० प्लासीका युद्ध, बंगालपर अंगरेजोंका प्रभुत्व
- १७६१ ई० पानीपतका तीसरा युद्ध, मराठोंकी पराजय, पेशवाओंका पतन
- १७६१-८२ ई० मैसूरका हैदरअली
- १७६५ ई० लार्ड क्लाइव बंगालका गवर्नर, इलाहाबादकी सन्धि
- १७६७-६९ ई० प्रथम अंगरेज-मैसूर युद्ध
- १७७२-७४ ई० : वारेन हेस्टिंग्स बंगालका गवर्नर
- १७७३ ई० रेगुलेटिंग ऐक्ट
- १७७४-८५ ई० वारेन हेस्टिंग्स अंगरेजी भारतका गवर्नर-जनरल
- १७७५ ई० सर विलियम जोन्स-द्वारा बंगाल एशियाटिक सोसाइटीकी स्थापना
- १७७५-८२ ई० प्रथम अंगरेज-मराठा युद्ध
- १७८०-८४ ई० दूसरा अंगरेज-मैसूर युद्ध
- १७८४ ई० पिट्स इण्डिया ऐक्ट
- १७८६-९३ ई० लार्ड कार्नवालिस (ग० ज०), इम्तमरासी बन्दोबस्त
- १७९३ ई० कम्पनीका चार्टर
- १७९३-९८ ई० सर जॉन शोर (ग० ज०), हस्तक्षेप न करने-की नीति

१० ८ १८१९ ई	बंदावने राजकीय मिट्ट	मिशन राय नैरायण
१०९८ १८ १ ई	कार्टे बेंनेरकी (न क)	महानन्द नरसिंह
१०९८ १९ ई	बीबा बेंनेर-जीपुर बुड	डीगु मुन्नायरा कल
१८ १-०५ ई	बुमरा बेंनेर-बराडा बुड	
१८ ५ ७ ई	नर कार्टे बायी (न क)	
१८ ७-११ ई	कार्टे बिनी (न क)	
१८११ ई	बराडीया कार्टे	
१८११ ११ ई	कार्टे हस्तिना (न क)	
न १८१५ ई	राजा राजबाद-बराड-बारा बाडा बराडकी	
	स्थापना	
१८१५ ई	बेनाल-बुड और बिनीकी बलि	
१८१५ १८ ई	मिनागिबीडा बरन	
१८१७-१९ ई	डीबरा मधुम बुड, बराडा बलिबा बल	
१८११-१८ ई	कार्टे एडाटे (न क)	
१८१७-१९ ई	बराड बनी बुड	
१८१८ १५ ई	नर लिमिय बलिडा और बरके मुबार	
१८१९ ई	मिन्के बराडीया बरन	
१८११ ई	बराडीया कार्टे	
१८१५ १९ ई	नर बाल्म पैडाडा (न क)	
१८१५ ४२ ई	बाड बाकरीडा (न क)	बराड बरनल बुड
१८१९ ४४ ई	कार्टे बलिबरा (न क)	
१८१९ ई	1. मिन्की बेंनेर-बाल्म मिन्की	
१८१४ ४८ ई	कार्टे हाबि (न क)	बराड बलि बुड,
	बिन्कालाबल बरन	
१८४८-५५ ई	कार्टे बरडीकी	
१८४८ ई	बराडा बाल्म कल	

- १८४९ ई० पंजाबको अंगरेजों राज्यमें मिलाना
 १८५२ ई० दूसरा बर्मा युद्ध, दक्षिणी बर्मापर अंगरेजोंका अधिकार
 १८५३ ई० तामी राज्यका अन्त, बम्पनीका नाट्य, भारतमें रेलका जागी होना
 १८५४ ई० चान्ग वुङ्गको मित्रा-सम्बन्धों रिपाट
 १८५६ ई० अवधकी नवाबोंका अन्त
 १८५७ ई० , अंगरेजों शासनके विरुद्ध देशव्यापी सैनिक विप्लव
 १८५८ ई० विद्रोहका दमन, भारतका शासन इंग्लैण्डकी सरकारानुसार बम्पनीमें छोनकर अपने हाथमें लिया, महारानी विक्टोरियाकी विज्ञप्ति, ऐक्ट फार दो घंटे र गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, लाट रनिंग प्रथम वायसरॉय
 १८५८-१९४७ ई० पुनरुद्धान युग
 १८६१ ई० इण्डिया की सिल ऐक्ट
 १८७० ई० म्युनिसिपल ऐक्ट द्वारा स्वायत्त शासनको मान्य करना
 १८७१ ई० प्रथम जन-गणना
 १८७६ ई० भारतीय मद्य नामक संस्थाकी स्थापना
 १८८३-८४ ई० विभिन्न स्थानोंमें म्युनिसिपल व डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंकी स्थापना
 १८८५ ई० इण्डियन नेशनल काँग्रेसकी स्थापना
 १८८८ ई० अपर इण्डिया मुसलिम एसोसियेशनकी स्थापना
 १८९२ ई० दूसरा इण्डिया कीन्सिल ऐक्ट
 १९०४-०५ ई० बगभग आन्दोलन
 १९०६ ई० मुसलिम लीगकी स्थापना

१७९८ १८१९ ई	बंजारासे रचगौठ तिहु	दिल्ल राज्य लैस्वात
१७९८ १८ ५ ई	कार्ड बेडेडकी (व ब)	तवाक बलि-वप
१७९८ १९ ई	बीना बेंबरेड-मैसूर मुड	टीपू मुल्हासका कल
१८ १-२५ ई	गुठरा बेंबरेड-मराठ्य मुड	
१८ ५-२७ ई	मर बाज बागो (व ब)	
१८ ७-११ ई	माड बिष्टो (व ब)	
१८११ ई	मम्मीका चार्टर	
१८११ २१ ई	माड हॅस्टिन् (व ब)	
क १८१५ ई	राज्य मम्मीकापुन-बाग बाग्य	म्यामरी
१८१५ ई	बेवाल-मुड और तिवीडीकी बलि	
१८१५ १८ ई	मिण्डरीकीका समय	
१८१७-१९ ई	डीबरा मराठ्य मुड	मराठ्य एक्टिफ रज
१८१९-२८ ई	माड एम्पुस्ट (व ब)	
१८१७-१९ ई	बबन बगो मुड	
१८२८ १५ ई	मर मिमिमन बैष्टिक और कलके मुबार	
१८१२ ई	दिल्लके म्यामरीका समय	
१८११ ई	मम्मीका चार्टर	
१८१५-१९ ई	मर बाज बैटकाड (व ब)	
१८१५- १ ई	माड बाकमेंड (व ब)	बबन मंडाल मुड
१८११ ४४ ई	माड एलिबरा (व ब)	
१८११ ई	दिल्लकी बेंबरेडी राज्यके बिल्ल	
१८१४ ४८ ई	कार्ड हाकिम (व ब)	बबन दिल्ल मुड
१८१८-५९ ई	दिल्लराज्यका रज	
१८१८ ई	कार्ड ककडीकी	
	कलाप पारका कल	

- १८४९ ई० पंजाबको अंगरेजों राज्यमें मिलाना
- १८५२ ई० दूसरा बर्मा युद्ध, दक्षिणी बर्मापर अंगरेजोंका अधिकार
- १८५३ ई० . झाँसी राज्यका अन्त, कम्पनीका चार्टर, भारतमें रेलका जारी होना
- १८५४ ई० चार्ल्स वुडको शिक्षा-सम्बन्धी रिपोर्ट
- १८५६ ई० अवधकी नवाबोंका अन्त
- १८५७ ई० . अंगरेजों शासनके विरुद्ध देशव्यापी सैनिक विद्रोह
- १८५८ ई० विद्रोहका दमन, भारतका शासन इंग्लैण्डकी सरकारने कम्पनीसे छीनकर अपने हाथमें लिया, महारानी विक्टोरियाकी विज्ञप्ति, ऐक्ट फ़ार दी वैंटर गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, लार्ड कैनिंग प्रथम वायसराय
- १८५८-१९४७ ई० पुनरुत्थान युग
- १८६१ ई० इण्डिया कौंसिल ऐक्ट
- १८७० ई० . म्युनिसिपल ऐक्ट द्वारा स्वायत्त शासनको मान्य करना
- १८७१ ई० प्रथम जन-गणना
- १८७६ ई० भारतीय मद्य नामक सस्थाकी स्थापना
- १८८३-८४ ई० विभिन्न स्थानोंमें म्युनिसिपल व डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंकी स्थापना
- १८८५ ई० इण्डियन नेशनल कांग्रेसकी स्थापना
- १८८८ ई० अपर इण्डिया मुसलिम एसोसियेशनकी स्थापना
- १८९२ ई० दूसरा इण्डिया कौन्सिल ऐक्ट
- १९०४-०५ ई० वगभंग आन्दोलन
- १९०६ ई० मुसलिम लोगकी स्थापना

- अनाथालय : एक वर्ष

- १९३९-४५ ई० विश्वयुद्ध
- १९४२ ई० 'भारत छोड़ो' आन्दोलन, सुभाष बोसका आजाद हिन्द प्रयत्न, मुहम्मदअली जिन्ना-द्वारा पाकिस्तान-की माँग, स्ट्रेफ़र्ड क्रिस्सका भारत आगमन और भारतीय सघ-योजना प्रस्तुत करना
- १९४४ ई० वेवल याजना
- १९४५ ई० फॉबिनेट मिशन एवं पालमेण्टरी डेलीगेशन
- १९४६-४७ ई० अन्तरिम शासन
- १९४७ ई० (१५ अगस्त), इंग्लैण्डकी सरकारका इण्डियन इण्टेपण्डेस ऐक्ट, भारतवर्षका विभाजन और स्वतन्त्रता
- १९४८ ई० (३० जनवरी), महात्मा गान्धीकी हत्या
- १९५० ई० (२६ जनवरी), भारतीय संविधानका कार्यान्वित होना



